बीएईसी–101
(BAEC – 101)

व्यष्टि अर्थशास्त्र
(Micro Economics)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी – 263139
फोन नं. 05946 – 261122, 261123
टॉल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946–264232, ई–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे,
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 एम0 के0 धडोलिया,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा, राजस्थान

प्रो0 एस0 पी0 तिवारी,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
डॉ0 आर0 एम0 एल0 अवध विश्वविद्यालय,
फैजाबाद उ0 प्र0

प्रो0 मधुबाला,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
इंदिरा गॉधी मुक्त विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रो0 आर0 सी0 मिश्र
निदेशक वाणिज्य एवं प्रबन्ध विद्याशाखा,
विशेष आमंत्रित सदस्य
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. महेन्द्र त्रिपाठी असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय, इलाहाबाद, उ. प्र.	**1,2,3,4**
डॉ.भारती पाण्डे एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, जय नारायण पी. जी महाविद्यालय, लखनऊ, उ. प्र.	**5,6,7,8**
डॉ. अमितेन्द्र सिंह अर्थशास्त्र विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**9,10,11,15, 16,17,18**
डॉ. अरविन्द प्रकाश श्रीवास्तव एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, फ़ीरोज़ गॉधी पी. जी. कॉलेज रायबरेली, उ.प्र.	**12,13,14**
डॉ. चन्द्र प्रकाश त्रिपाठी एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, मदन मोहन मालवीय पी. जी. कॉलेज भाटापारा, देवरिया, उ.प्र.	**19,20,21, 22,23**

संस्करणः 2017
आई.एस.बी.एन.: 978-93-84813-38-3

प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट): @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशकः कुल सचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139
email: studies@uou.ac.in
मुद्रकः

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

व्यष्टि अर्थशास्त्र
(Micro Economics)

बीएईसी – 101
(BAEC – 101)

विषय–सूची

खण्ड– 1. परिचय **(Introduction)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 1. अर्थशास्त्र का स्वरूप (Nature of Economics)	1–25
इकाई– 2. व्यष्टिपरक तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र (Micro and Macro Economics)	26–44
इकाई– 3. आर्थिक स्थैतिकी तथा प्रावैगिकी एवं सामान्य संतुलन विश्लेषण (Economic Statics and Dynamics and General Equilibrium Analysis)	45–65
इकाई– 4. कल्याणकारी अर्थशास्त्र (Welfare Economics)	66–84

खण्ड– 2. उपभोक्ता व्यवहार– I **(Consumer Behaviour-I)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 5. गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण (Cardinal Utility Aalysis)	85–99
इकाई– 6. माँग का नियम (Law of Demand)	100–114
इकाई– 7. माँग एवं पूर्ति की लोच (Elasticity of Demand and Supply)	115–134
इकाई– 8. उपभोक्ता बचत (Consumer Surplus)	135–147

खण्ड– 3. उपभोक्ता व्यवहार– II **(Consumer Behaviour-II)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 9. अनधिमान वक्र विश्लेषण (Indifference Curve Analysis)	148–169
इकाई– 10. आय प्रभाव, प्रतिस्थापन तथा कीमत प्रभाव एवं अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग (Income Effect, Substitution and Price Effect and Applications of Indifference Curves)	170–190
इकाई– 11. उद्घाटित अधिमान विश्लेषण (Revealed Preference Theory)	191–209

खण्ड– 4. उत्पादन तथा लागत सिद्धान्त (Theory of Production and Cost)	पृष्ठ संख्या
इकाई– 12. लागत एवं आगम वक्र (Cost and Revenue Curve)	210–230
इकाई– 13. उत्पादन फलन और परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Production Function and Law of Variable Proportions)	231–244
इकाई–14. समोत्पाद वक्र, साधनों का न्यूनतम लागत संयोग एवं पैमाने के प्रतिफ (Iso-Quants, Least Cost Combination of Factors and Returns to Scale)	245–268

खण्ड– 5. बाजार संरचना एवं कीमत निर्धारण (Market Structure and Price Determination)	पृष्ठ संख्या
इकाई– 15. पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition)	269–287
इकाई– 16. एकाधिकार प्रतियोगिता (Monopoly Competition)	288–304
इकाई– 17. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Monopolistic Competition)	305–318
इकाई– 18 अल्पाधिकार प्रतियोगिता (Oligopoly Competition)	319–339

खण्ड– 6. वितरण का सिद्धान्त (Theory of Distribution)	पृष्ठ संख्या
इकाई– 19. वितरण का सिद्धान्त एवं सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Theory of Distribution and Marginal Productivity Theory)	340–354
इकाई– 20. लगान का सिद्धान्त (Theory of Rent)	355–375
इकाई–21. ब्याज का सिद्धान्त (Theory of Interest)	376–399
इकाई– 22. मजदूरी का सिद्धान्त (Theory of Wage)	400–419
इकाई– 23. लाभ का सिद्धान्त (Theory of Profit)	420–436

इकाई 1 अर्थशास्त्र का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3अर्थशास्त्र की परिभाषा
1.3.1. धन केन्द्रित परिभाषाएं
1.3कल्याण केन्द्रित परिभाषाएं
1.3सीमितता सम्बन्धी परिभाषाएं
1.3आवश्यकता विहीनता सम्बन्धी परिभाषा
1.3विकास केन्द्रित परिभाषा
1.4 अर्थशास्त्र का विषय क्षेत्र व स्वभाव
1.5 अर्थशास्त्र की प्रकृति
1.6 अर्थशास्त्र का महत्व
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी ग्रन्थ
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आधुनिक समय में अर्थशास्त्र का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है वास्तविक जगत जटिल होता है अतः उसके आर्थिक समस्याओं को समझना कठीन होता है, अर्थशास्त्र के अध्ययन से इनका समाधान अत्यन्त सुगम हो जाता है और नीतियों को परखने की समझ भी पल्लवित होती है।

अंग्रेजी भाषा के इकॉनमिक्स (Economics) शब्द की उत्पत्ति लैटिन Economica या ग्रीक शब्द oikonomia से हुई है. जिसका अर्थ है-गृह प्रबन्ध । हिन्दी भाषा का शब्द 'अर्थशास्त्र' दो शब्द 'अर्थ' और' शास्त्र' से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ धन का शास्त्र है। आधुनिक अर्थशास्त्र का जन्म 1776 ई0 में हुआ जब अर्थशास्त्र के जनक कहे जाने वाले एड्म स्मिथ की पुस्तक, "Enquiry in to the nature and causesa of wealth of nations"(राष्ट्रों के धन के स्वरूप तथा कारणों की खोज) प्रकाशित हुई, जिसमें सर्वप्रथम उन्होनें अर्थशास्त्र के क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन का प्रयास किया। इस शास्त्र के जन्म के समय इसका नाम राज्य अर्थव्यवस्था (Poltical Economy) था । 1890 में मार्शल द्वारा अर्थशास्त्र की सुप्रसिद्व पुस्तक Principles of Economics के साथ ही अर्थशास्त्र का नया नाम राज्य अर्थव्यवस्था से बदलकर 'अर्थशास्त्र' हो गया । प्रो मार्शल के पश्चात से सभी अर्थशास्त्रीयों ने इसी अर्थशास्त्र शब्द को स्वीकार किया है। और तभी से यही नाम चल रहा है । प्रस्तुत इकाई के अर्न्तगत हम अर्थशास्त्र के महत्व विभिन्न विद्वानो द्वारा प्रदत्त अर्थशास्त्र की परिभाषाओं व उसके विषय क्षेत्र के साथ ही उसकी प्रकृति का भी अध्ययन करेगे।

1.2. उद्देश्य-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप सब-

- अर्थशास्त्र विषय के प्रति विभिन्न दृष्टि कोणों से अवगत हो सकेगे।
- अर्थशास्त्र का विषय क्षेत्र व स्वभाव क्या है? इससे परिचित हो सकेगे।
- आर्थिक समस्याओ के उत्पन्न होने के कारणों को भली भॉति समझने की मानसिक योग्यता विकसित कर सकेंगे।
- अर्थशास्त्र विषय का अध्ययन समाज के लिए किस प्रकार लाभकारी है? इसे अच्छी तरह समझ सकेगे।

1.3 अर्थशास्त्र की परिभाषा

हम सभी यह सर्वमान्य रूप से स्वीकार करते हैं, कि प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएं असीमित होती हैं और उन्हे प्राप्त करने के साधन (जैसे आय) सीमित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अधिक से अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास करता है। परन्तु वह अपनें सीमित-असीमित इच्छाओं/आवश्यकताओं की अधिकतम प्राप्ति हेतु सीमित साधन को किस प्रकार प्रयुक्त करें उसका निर्णय कैसे करें? यही उसके समक्ष आर्थिक समस्या है।

अर्थशास्त्र की परिभाषा के संदर्भ में इसके विभिन्न विद्धानों के मघ्य मत भिन्नता की स्थिति रही है क्योंकि यह एक ऐसा विषय है जिसमें समय के साथ परिवर्तन होता रहा है। यही कारण है कि आज तक अर्थशास्त्र की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकी है। यही नहीं अर्थशास्त्रियों का एक समूह ऐसा भी है जिसका मत है कि अर्थशास्त्र की परिभाषा देने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों के मध्य मतभेद को कीन्स के कथन से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है जिसमें उन्होंने कहा कि "राज्य अर्थव्यवस्था ने परिभाषाओं से अपना गला घोट लिया है।" चकि विगत दो शताब्दीयों से अधिक वर्षो में अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र में बहुत विस्तार हुआ है। अतः इसकी परिभाषा में एक सीमा तक भिन्नता पाया जाना स्वाभाविक हैं।

अर्थशास्त्र की बहुत अधिक परिभाषाओं की कठिनाई से बचने तथा सुविधा व सरलता की दृष्टि से परिभाषाओं को निम्न प्रमुख वर्गो में विभाजित कर सकते हैं।

1. **धन केन्द्रित परिभाषाएं:** जिसमें एडम स्मिथ, जे.बी.से., जे.एस मिल इत्यादि प्रमुख है।
2. **कल्याण केन्द्रित परिभाषाएं**: जिसमें मार्शल, पीगू, कैनन, बैवरेज इत्यादि प्रमुख है।
3. **सीमितता या दुर्लभता केन्द्रित परिभाषाएं:** जिसमें राबिन्सन प्रमुख है।
4. **आवश्यकता विहीनता सम्बन्धी परिभाषाएं:** (जे.के.मेंहता)।
5. **विकास केन्द्रित परिभाषाएं:** जिसमें सेम्युलसन, हेनरी, स्मिथ आदि है

1.3.1 धन केन्द्रित परिभाषाएं

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को '**धन का विज्ञान**' कहा है। अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ ने सन् 1776 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्व पुस्तक **"An enquiry in to the nature and causesa of wealth of nation's."** अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान कहते हुए कहा कि राष्ट्रों के धन के स्वरूप एवं कारणों की खोज करना ही अर्थशास्त्र की विषय सामग्री है। उनके अनुसार अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य शब्द की भौतिक सम्पन्ता में वृद्वि करना है। एडम स्मिथ की इसी विचार धारा की झलक उनके अनुयायी अर्थशास्थियों के विचारो में मिलती है।

फ्रांसीसी अर्थशास्त्री **जे.बी.से.** के अनुसार “अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन का अध्ययन करता है।”

जे0एस0 मिल के अनुसार- “अर्थशास्त्र मनुष्य से सम्बन्धित धन का विज्ञान है।”

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने धन को अर्थशास्त्र के विषय सामग्री का केन्द्र बिन्दु मानते हुए मनुष्य को गौंण स्थान दिया जिससे इसका क्षेत्र न केवल संकुचित हो गया अपितु इसे ‘**घृणित विज्ञान**’ भी कहा जाने लगा। धन को प्रमुख महत्व देने के कारण ही एडम स्मिथ ने ‘आर्थिक मनुष्य’ की कल्पना की जिसके सारे प्रयास धन प्राप्ति के लिए ही होते हैं। निःसन्देह इस दृष्टिकोंण से सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि इसमें मनुष्य की उपेक्षा की गयी है। उपर्युक्त दोषों के कारण 19वीं शताब्दी के अन्त में इन परिभाषाओं को त्याग दिया गया।

1.3.2 कल्याण केन्द्रित परिभाषा

आपने जाना कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने ष्धनष् पर अधिक जोर दिया। इसके कारण कार्लाइल ;बंतसलसमद्ध व रस्किन जैसे अंग्रेज अर्थशास्त्रियों ने धन के विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र की कटु आलोचना करते हुए इसे ‘**कुबेरपंथ**’ (mammon worship) व ‘**घृणित विज्ञान**’ (dismal science) आदि कहा। अर्थशास्त्र को इस आलोचना से बचाने हेतु 19वीं सदी के अंत में नवक्लासिकी अर्थशास्त्री प्रो0 अल्फ्रेड मार्शल ने बताया कि धन साध्य (end) नहीं बल्कि साधन मात्र है। जिसकी सहायता से मानव कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। उन्होंनें अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “Principles of Economics” में अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी- “अर्थशास्त्र मानव जाति के साधारण व्यवसाय का अध्ययन है। यह व्यक्तिगत और सामाजिक क्रियाओं के उस भाग की जॉच करता हैं जिसका निकट सम्बन्ध कल्याण के भौतिक साधनों की प्राप्ति और उनके उपयोग से है।”

यदि हम मार्शल की उपरोक्त परिभाषा का विश्लेषण करें तो उसकी निम्नंलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं-

i. जीवन के साधारण व्यवसाय का अध्ययन

मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में मानव जीवन की साधारण क्रियाओं का अध्ययन किया जाता हैं। जैसा कि हम सभी जानते है कि साधारण दिनचर्या में मनुष्य आय अर्जित करने व उसका उपभोग (खर्च) करने में लगा रहता है। विनिमय व वितरण क्रियाओ से आशय उपभोग, उत्पादन की क्रियाओं से है।

ii. भौतिक कल्याण पर जोर

मार्शल की परिभाषा में वर्णित कल्याण के भौतिक साधनों की प्राप्ति से स्पष्ट होता है कि उसने अर्थशास्त्र के अध्ययन में भौतिक कल्याण पर बल दिया। मनुष्य के भौतिक कल्याण से अभिप्राय

उस संतुष्टि से है जो उसे भौतिक वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त होती है और जिसे मुद्रा के रूप में मापा जा सके।

iii. सामाजिक मनुष्यों का अध्ययन

मार्शल का अर्थशास्त्र उन्हीं मनुष्यों के साधारण व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन करता है जो समाज में रहते हैं । समाज से बाहर रहने वाले लोग जैसे- साधू,सन्यासी, जुआरी, शराबी इत्यादि को वे साधारण मनुष्य नहीं मानते फलस्वरूप वे अर्थशास्त्र के अध्ययन विषय नहीं हैं।

कैनन ने भी मार्शल से मिलती-जुलती अर्थशास्त्र की परिभाषा दी। उन्होने भी भौतिक कल्याण की वृद्धि पर जोर देते हुए स्पष्ट किया कि राजनीतिक अर्थशास्त्र का उद्देश्य उन सामान्य कारणों की व्याख्या करना है जिन पर मनुष्य का भौतिक कल्याण निर्भर है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मार्शल ने अर्थशास्त्र को एक नया स्वरुप, स्थान व एक नयी दृष्टि प्रदान की लेकिन अनेक अर्थशास्त्रियों विशेषकर राबिन्स ने मार्शल की शब्दसः आलोचना की जिनमें कुछ निम्नांकित है।

1. आर्थिक क्रियाओं को साधारण व असाधारण व्यवसाय में बॉटना अनुचित

मार्शल का अर्थशास्त्र समाज में रहने वाले मनुष्यों की ही आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है। इससे स्पष्ट होता है कि मानव जीवन के व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाएं भागो में बटीं हैं- ‘साधारण’ व ‘असाधारण’ आलोचकों का मानना है कि मार्शल ने कोई ऐसा आधार प्रदान नहीं किया जिससे साधारण व असाधारण क्रियाओं के बीच भेद किया जा सके। रॉबिंस का मानना है कि साधारण व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाओं के अर्थ में स्पष्टता न होने के कारण न अर्थशास्त्र का सही स्वरूप सामने नहीं आ पायेगा और अर्थशास्त्र का क्षेत्र भी सीमित हो जायेगा।

2. अर्थशास्त्र केवल सामाजिक विज्ञान ही नहीं बल्कि मानव विज्ञान है-

मार्शल कहते है कि अर्थशास्त्र केवल उन्हीं मनुष्यों की साधारण क्रियाओं का अध्ययन करता हैं, जो समाज में रहते है। रॉबिन्स ने इसकी आलोचना करते हुए कहा कि अर्थशास्त्र के नियम और सिद्धान्त साधु सन्यासियों पर भी उसी तरह से लागू होते हैं जिस तरह से समाज में रहने वाले व्यक्तियों पर। उदाहरण के लिये .सभी व्यक्तियों चाहे वे साधु-सन्यासी हो या समाज में रहने वाले व्यक्ति हों, सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, समान रूप से लागू होगा अर्थात उनके द्वारा ज्यों-ज्यों रोटी (माना) की अत्यधिक इकाइयॉ उपभोग की जायेगी उससे मिलने वाली उपयोगिता घटती जायेगी। इस तरह अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान नहीं बल्कि मानव विज्ञान है।

3. मार्शल की परिभाषा वर्ग कारिणी है. विश्लेषणात्मक नहीं-

रॉबिन्स पुनः आलोचना करते हैं कि मार्शल द्वारा अर्थशास्त्र की विषय सामग्री के अध्ययन में साधनों को भौतिक और अभौतिक, मनुष्य की क्रियाओं को आर्थिक व अनार्थिक व साधारण व

असाधारण व्यवसाय में बांटने से उनकी परिभाषा विश्लेशणात्मक के स्थान पर वर्गकारिणी हो जाती है, जो तर्क संगत नहीं है

4. अर्थशास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त ही संकुचित -

रॉविन्स का कहना है कि मार्शल द्वारा अपनी परिभाषा में असामाजिक व्यक्तियों, अभौतिक वस्तुओं व अनार्थिक क्रियाओं को शामिल न करने से अर्थशास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित हो जाता है। उदाहरण के लिए-जंगल से लकड़ी इकटठा करने वालों को दी जाने वाली मजदूरी तो इसकी सीमा में आयेगी लेकिन एक नर्तकी, गायक, या किसी चित्रकार इत्यादी को दी जाने वाली मजदूरी इसके अन्तर्गत नहीं आयेगी। क्योंकि पहले व्यक्ति की क्रियाएं भौतिक कल्याण की सृष्टि करती है जबकि नर्तकी की सेवाएं भौतिक कल्याण की सृष्टि नहीं करतीं। इसके अलावा मजदूरी को अर्जित करने के अलावा उसके खर्च करने के बारे में विश्लेषण करें तो पता चलता है कि अर्थशास्त्र का क्षेत्र संकुचित हो जायेगा। उदाहरणार्थ- मजदूरी का वह भाग जो रोटी या अन्य भौतिक वस्तुओं के उपभोग पर व्यय होता है उससे तो भौतिक कल्याण सृजित होगा और वह अर्थशास्त्र का विषय क्षेत्र होगा लेकिन यदि उस भाग को सिनेमा देखने में व्यय किया जाय तो किसी भौतिक कल्याण के सृजन के अभाव में वह अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र में नहीं आयेगा।

5. अर्थशास्त्र का कल्याण के साथ सम्बंन्ध स्थापित करना उचित नहीं

मार्शल के भौतिक कल्याण सम्बंन्धी दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए पुन रॉबिन्स ने कहा कि अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है न कि आदर्श विज्ञान। ऐसी बहुत सी क्रियायें हैं जैसे शराब व आम मादक पदार्थों का उत्पादन और बिक्री जिससे कल्याण में वृद्धि नहीं होती लेकिन अर्थशास्त्र में इसका अध्ययन किया जाता है।

मार्शल की परिभाषा के निष्कर्ष में यह माना जाता है कि यद्यपि मार्शल की परिभाषा सरल है परन्तु तार्किक दृष्टि से दोषपूर्ण है साथ ही यह अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार को भी कमजोर करती है।एडम स्मिथ और मार्शल के अर्थशास्त्र सम्बन्धी दृष्टिकोण जानने के पश्चात अब हम सीमितता या दुर्लभता सम्बन्धी दृष्टिकोण पर चर्चा करेगें जिसके प्रतिपादक राबिन्स है।

1.3.3 सीमितता (दुर्लभता) सम्बन्धी परिभाषायें-

रॉविन्स ने 1932 में प्रकाशित अपनी पुस्तक- "An eassay on the nature and signify cance of Economic science" में अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी-

'अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो साध्यों (ends) तथा वैकल्पिक उपयोग वाले सीमित साधनों के सम्बन्ध के रूप में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।'

(Economics is the science which studiesa human behavior as a relationship between ends and scarce means which have alternative usesa.)

स्पष्ट है कि रॉबिन्स द्वारा दी गयी अर्थशास्त्र की परिभाषा निम्नांकित तत्वों पर आधारित है-

1. आवश्यकताएं असीमित हैं - साध्यों (Ends) से आशय मनुष्य की आवश्यकताओं से है जो कि असीमित होती है क्योंकि एक की संतुष्टि के बाद दूसरी उपस्थित हो जाती है और उसके बाद तीसरी, चौथी आवश्यकता उत्पन्न होती रहती है। आवश्यकताओं का यह क्रम लगातार चलता रहता है।
2. साध्यों की पूर्ति के लिए साधन सीमित होते है। साधनों के सीमित होने का अर्थ है उसकी पूर्ति, मांग की तुलना में कम है। साधन से आशय उस वस्तु से है जो मानवीय आवश्यकता को संतुष्ट करने की क्षमता रखती है।
3. वैकल्पिक साधनों का उपयोग- रॉबिन्स ने अपनी परिभाषा में यह स्पष्ट किया कि साधन सीमित ही नहीं हैं बल्कि उनका वैकल्पिक प्रयोग भी संभव है। इसका आशय है कि एक ही साधन का प्रयोग अनेक उपयोगों में किया जा सकता है। जैसे लकड़ी को फर्नीचर, कुसीर् , मेंज या दरवाजा बनाने में प्रयोग किया जा सकता है।
4. आवश्यकताओं की तीवृता में भिन्नता- इसका आशय है कि मनुष्य की आवश्यकताएं विभिन्न महत्व की होती हैं अर्थात अधिक तीव्र आवश्यकता की पूर्ति पहले करनी पड़ती है। चूँकि मनुष्य की आवश्यकताए असीमित व उसकी प्राप्ति हेतु साधन सीमित होते हैं अतः मनुष्य को आवश्यकताओं की तीव्रता के आधार पर चुनाव करना होता है। साधनों की सीमितता के कारण कम तीव्र आवश्यकताओं का त्याग करना पड़ता है। यह चुनाव की क्रि़या ही 'आर्थिक समस्या' है और इस प्रकार की समस्याओं का अध्ययन ही अर्थशास्त्र का विषय है। यह आर्थिक समस्या तब तक उत्पन्न नहीं होती जब तक कि उपर्युक्त चार तत्व विद्यमान न हो । इनमें से किसी एक तत्व के न होने पर आर्थिक समस्या का सृजन संभव नहीं। आर्थिक समस्या की प्रक्रिया को एक उदाहरण के माध्यम से भी स्पष्ट कर सकते है-मान लीजिए कि आपको फर्नीचर बनाने व खाना पकाने हेतु लकड़ी की आवश्यकता है। अब यदि लकड़ी की प्रचुर मात्रा उपलब्ध हो तो चुनाव की समस्या के अभाव में आर्थिक समस्या का जन्म नहीं होगा। अब यदि लकड़ी की पूर्ति सीमित हो लेकिन उसका एक ही प्रयोग संम्भव हो ;खाना पकाने, फर्नीचर बनाने आदि मेंद्ध तो भी चुनाव की समस्या नहीं आयेगी और यदि यह मान लें कि लकड़ी का दोनो प्रयोग संभव हो तो भी चुनाव का प्रश्न नहीं उठेगा फलस्वरूप आर्थिक समस्या का जन्म नहीं होगा। यदि दोनो आवश्यकताओ में एक अधिक महत्वपूर्ण व दूसरी कम महत्वपूर्ण हो इस प्रकार उपर निर्दिष्ट चारो तत्वों के सहयोग से ही आर्थिक समस्या का जन्म होगा ।

आप यह कह सकते हैं कि रॉविन्स का दृष्टिकोण मानता है कि एक अर्थशास्त्री साधनों के बीच चुनाव के अभिप्रयों का ही अध्ययन करता है, उसका विषय 'सीमितता' है। अतः अर्थशास्त्र की समस्या केवल 'किफायत' की समस्या है। अतः स्पष्ट है असीमित आवश्यकताओं तथा सीमित और अनेक

उपयोग वाले साधनो के बीच मानव व्यवहार का रुप चुनाव करने या निर्णय करने का होता है। इस चुनाव करने की क्रिया को ही रॉबिन्स ने आर्थिक समस्या कहा और यह बतलया कि इसी आर्थिक समस्या का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। रॉबिन्स की विचार धारा का समर्थन करने वाले अर्थशास़्त्रयों में फिलिप विक्स्टीड, वॉन मिसेज, स्टिगलर प्रमुख हैं।

इस प्रकार रॉविन्स ने अर्थशास्त्र की जो परिभाषा दी उससे अर्थशास्त्र का क्षेत्र विस्तृत हो गया। एडम स्मिथ ने जहॉ अर्थशास्त्र को धन के विज्ञान के सीमित दायरे में रखा वही मार्शल, पीगू इत्यादि ने उन्हीं मनुष्यो की भौतिक क्रियाओं को अर्थशास्त्र में सम्मिलित किया जो समाज में रहते हैं। रॉविन्स ने उन सभी संर्कीणताओं से अर्थशास्त्र को बाहर निकालने में सबसे बड़ा योगदान दिया। रॉविन्स का अर्थशास्त्र सभी मनुष्यों की क्रियाओ का अध्ययन करता है। वे किसी भी समस्या का विश्लेषण भौतिक व अभौतिक कल्याण के आधार पर नहीं करते बल्कि चुनाव व दुर्लभ साधनों के आधार पर करते है। उनकी परिभाषा के अनुसार-अर्थशास्त्र वस्तु विनिमय व मुद्रा विनिमय में, व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण में पूर्जीवादी और समाजवादी समाज सभी में लागू होता है। इस प्रकार रॉविन्स की परिभाषा वर्गकारीणी न होकर विश्लेषणात्मक है।

हमने देखा कि रॉबिन्स द्वारा दी गयी अर्थशास्त्र की परिभाषा की क्या-क्या विलक्षणताएं रही है लेकिन इन विलक्षणताओं के अनेक अर्थशास्त्रीयों ने जिसमें केनन, फ्रेजर, ऊटन, क्लार्क, प्रो0 एमान व रार्बटसन इत्यादि प्रमुख है, निमांकित आधारों पर इसकी आलोचना की है।

(1) **उद्देश्यों या साध्यों** ***(ends)-*** के सम्बन्ध में तटस्थता का दावा गलत- राबिन्सन ने यह प्रतिपादित किया कि अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है। उनके अनुसार उद्देश्य तो पूर्व निश्चित है। अर्थशास्त्री का कर्तव्य केवल दुर्लभ साधनों को ठीक से प्रयोग करना है। वह केवल यह देखता है कि साधनों का प्रयोग मितव्ययिता से हो रहा है या अमितव्ययिता सें। इस व्याख्या से उनका साधनों के प्रति तटस्थता का दावा निराधार हो जाता है क्योंकि रान्बिस स्वयं इस तथ्य का प्रतिपादन करते है कि दुर्लभ साधनों के प्रयोग में अर्थशास्त्री को को मितव्ययी होना चाहिए। इस रुप में मितव्ययिता एक साध्य हुआ।

(2) **अर्थशास्त्र के आदर्श विज्ञान भ्रामक-**रॉबिन्सन ने अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान माना। उनके मत में अर्थशास्त्री का कार्य परिस्थितियों का उसी रुप में (As such) अध्ययन करना है, क्या होना चाहिए (what oughat to be)और क्या नहीं? यह उसकी सीमा के बाहर है। यह कार्य नीतिशास्त्र का है अर्थशास्त्र का नहीं है। उनके इस दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र का क्षेत्र सीमित हो जाता है। वैसे भी अर्थशास्त्र का महत्व केवल ज्ञान अर्जित करने के लिए नहीं, बल्कि ज्ञान के प्रयोग के लिए है। प्रो0 पीगू स्वयं कहते है कि- 'अर्थशास्त्र प्रकाशदायक न होकर एक फलदायक विज्ञान है।' इसलिए अर्थशास्त्री साध्यों के प्रति तटस्थ नहीं रह सकता।

अन्यथा अर्थशास्त्र केवल सिद्धान्तों का बोझ बन जायेगा। आधुनिक नियोजित अर्थव्यवस्था में यदि अर्थशास्त्री साध्यों के प्रति तटस्थ हो जाय तो सम्पूर्ण नियोजन प्रणाली ढप पड़ जायेगी।

(3) **अति व्यापक व अति संकुचित टृष्टिकोण-** रॉविन्स का यह दावा कि दुर्लभता चुनाव व मितव्ययिता के आधार पर दी हुई उनकी अर्थशास्त्र की परिभाषा से अर्थशास्त्र का क्षेत्र विस्तृत हो गया क्योंकि इस प्रकार की समस्या प्रत्येक अर्थव्यवस्था में पायी जाती है। पर राबर्टसन व फ्रेजर का मत है कि रॉविन्स की परिभाषा ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को अति व्यापक भी किया और अति संकीर्ण भी। रॉविन्स ने अर्थशास्त्र को निश्चित रूप देने के लिए अर्थात अर्थित निष्कषों पर पहुंचने के लिए निगमन प्रणाली (Deductive method) का प्रयोग किया जबकि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए निगमन के साथ-साथ आगमन विधि का भी प्रयोग होता है। दोनों एक दूसरे की पूरक है। फ्रेजर का मत है कि आगमन के अभाव में निगमन प्रभावहीन है जबकि निगमन के अभाव में आगमन अंधे के समान है।

(4) **स्थैतिक दृष्टिकोण** -रॉविन्स की परिभाषा स्थैतिक अवस्था में लागू होती है प्रावैगिक व आर्थिक संवृद्धि की समस्या को ध्यान में नहीं रखती। आर्थिक संवृद्धि की प्रमुख समस्या वर्तमान दुर्लभ साधनों के अनुकूलतम आवंटन की नहीं बल्कि स्वंय साधनो के सृजन की है ताकि बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। अर्थात विकास की समस्या राबिन्स की परिभाषा में नहीं आती। इस तरह रॉविन्स का दृष्टिकोण प्रावैगिक नहीं स्थैतिक है। स्थैतिक एवं प्रावैगिक दृष्टिकोण की व्यापक चर्चा हम इस खण्ड के इकाई-3 में करेगें।

(5) **प्रचुरता से उत्पन्न समस्या पर प्रकाश नहीं** -आलोचकों का यह भी मानना है कि रॉबिन्स का अर्थशास्त्र दुर्लभता से उत्पन्न होने वाली आर्थिक समस्या पर तो प्रकाश डालता है पर प्रचुरता से उत्पन्न होने वाली आर्थिक समस्या पर नहीं। ऐसे विकसित देश हो सकते है जहॅा इतनी प्रचुर मात्रा में साधन उपलब्ध हो कि उन्हें जान बूझकर नष्ट कर दिया जाता है। जैसे अमेंरीका में मूल्य नियमित करने हेतु अधिक पैदा हुएं गेहूं को जलाने या समुद्र में फेंकने की घटना प्रकाश में आती है। इन देशों के सदर्न्भ में यह परिभाषा लागू नहीं होती।

(6) **साध्य और साधन के बीच अंतर स्पष्ट नहीं-** रॉबिन्स ने अपनी परिभाषा में साध्य और साधनों के बीच अंतर स्पष्ट नहीं किया। यह संभव है कि आज जो वस्तु साध्य रहती है कुछ समय बाद वह साधन बन जाये। जैसे M.B.B.S की डिग्री लेना एक छात्र का उद्देश्य हो जो बाद में वह कैरियर संवारने या जीविका प्राप्त करने का साधन भी बन जाय।

रॉविन्स की परिभाषा की उपर्युक्त आलोचनाओ से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र के क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए उन्होने जगत में रहने वाले मनुष्यों की क्रियाओं को भी इसमें सम्मिलित कर लिया। पर

इससे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि उन्होनें कल्याण व व्यवहारिक अर्थशास्त्र को अर्थशास्त्र के क्षेत्र से बाहर कर दिया। उनकी एक भूल यह थी कि उन्होनें अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान के रूप में उपस्थित किया तथा क्या होना चाहिए की व्याख्या को अर्थशास्त्र के क्षेत्र से बाहर रखा। उचित यह होता कि इन दोनों के बीच का रास्ता चुना गया होता। आजकल जबकि आर्थिक विज्ञान के साधन के रूप में नियोजन को स्वीकार कर लिया गया है , दिन-प्रतिदिन कल्याणकारी राज्य का महत्व बढ़ता जा रहा है। अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान नहीं रह सकता और न ही साध्यों के प्रति तटस्थ रह सकता है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है। जिसका आदर्शवादी पहलू भी है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि राबिन्स की परिभाषा अर्थशास्त्र को और अधिक तार्किक बनाकर उसके वैज्ञानिक आधार को मजबूत करती है। तथा मानवीय व्यवहार के चुनाव की समस्या पर ध्यान केन्द्रित करती हैं परन्तु आधुनिक आर्थिक विश्लेषण में यह परिभाषा भी अपर्याप्त सिद्ध होती है। क्योंकि अब अर्थशास्त्र की विषय सामग्री में आय, रोजगार तथा आर्थिक विकास भी जुड़ चुके है।

अब तक हम लोगो ने एडम स्मिथ के धन सम्बन्धी परिभाषा के पश्चात मार्शल व पीगू की कल्याण सम्बन्धी तथा राबिन्स के 'दुर्लभता सम्बन्धी' परिभाषाओं के बारे में जाना। मार्शल पहले ऐसे अर्थशास्त्री थे जिन्होने अर्थशास्त्र के धन सम्बन्धी दृष्टिकोण को व्यापक स्वरूप प्रदान करते हुए अर्थशास्त्र को ष्मानवीय कल्याणष् के साथ जोड़ा । मार्शल और प्रो0 रॉबिन्स की परिभाषाओं में हम कुछ समानता या असमानता को वगीकृत कर सकते है। आइए संक्षेप में यह जाना जाय कि इन दोनो परिभाषाओं में कौन- कौन सी समानता है और क्या- क्या असमानताएं हैं-

A. समानता-

I. मार्शल तथा रॉबिन्स दोनों ही अपनी परिभाषाओं में अर्थशास्त्र को एक विज्ञान मानते हैं।

II. मार्शल ने धन शब्द का प्रयोग किया है जबकि रॉबिन्स ने सीमित साधनों का। सीमितता धन का प्रमुख गुण है इस दृष्टि से दोनों का अर्थ लगभग एक ही है। यद्यपि रॉबिन्स सीमित साधन में समय को भी सम्मिलित करते है।

III. रॉबिन्स ने सीमित साधनों के मितव्ययिता या किफायत से प्रयोग करने की बात कही जिससे अधिकतम उत्पादन व अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो इसे ही मार्शल ने अधिकतम कल्याण कहा है।

B. असमानता-

प्रो0 अल्फ्रेड मार्शल तथा प्रो0 एल0 रॉबिन्स की परिभाषाओ में कुछ समानता के साथ ही कई मुख्य अन्तर भी है । इन दोनों अर्थशास्त्रियों की परिभाषाओं में व्याप्त अन्तर को निम्न सारिणी से हम संक्षेप में चर्चा कर रहे है-

क्र.सं	मार्शल का दृष्टिकोण	रॉबिन्स का दृष्टिकोण
1.	मार्शल की परिभाषा सरल और स्पष्ट है।	राबिन्स की परिभाषा अस्पष्ट एवं जटिल है।
2.	मार्शल की परिभाषा वर्गकारिणी है।	राबिन्स की परिभाषा विश्लेषणात्मक है।
3.	मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है क्योकि इसके अर्न्तगत केवल समाज में रहने वाले व्यक्तियों की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।	राबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान न होकर एक मानव विज्ञान है जो मानवीय क्रियाओं के आर्थिक पहलू का अध्ययन करता है।
4.	अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं है। इसका उद्देश्य मानव कल्याण में वृद्धि करना है।	इन्होने अर्थशास्त्र के उद्देश्य में अकेले भौतिक कल्याण को शामिल नहीं किया है।
5.	मार्शल ने अर्थशास्त्र को विज्ञान व कला दोनो माना है।	रॉबिन्स ने अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान माना है।

1.3.4 आवश्यकता विहीनता सम्बन्धी परिभाषा -

इलाहाबाद वि0वि0 के अर्थशास्त्र विभाग के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष प्रो0 जमशेद के0 खुसरो महेता (जे. के. मेंहता) जिन्हे भारतीय दार्शनिक सन्यासी अर्थशास्त्री (Indian philosopher saint Economist) कहा जाता है ने आर्थिक क्रियाओं के उद्देश्य को नये रूप में स्वीकार किया। अर्थशास्त्र को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया जो कि पाश्चात्य अर्थशास्त्रीयों के मत से सर्वथा भिन्न है। यह पूर्णतया भारतीय संस्कृति व दर्शन के अनुरूप है। प्रो0 मेंहता, रॉबिन्स के इस मत से तो सहमत है कि अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन है जिसका उद्देश्य संतुष्टि को अधिकतम करना है; लेकिन इस संतुष्टि के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने की विधि से नहीं।इसे प्राप्त करने के लिए दो विधियां हो सकती हैं। पहला यह कि इच्छाओं में वृद्धि लायी जाय क्योंकि इच्छाओं की पूर्ति का प्रतिफल ही संतुष्टि है अतः इच्छाओं को बढ़ाकर संतुष्टि को अधिकतम किया जा सकता है। अधिकतम संतुष्टि को प्राप्त करने का यह भौतिकवादी तरीका है जिसका समर्थन पाश्चात्य अर्थशास्त्रीयों ने किया है। दूसरी विधि यह हो सकती है कि इच्छाओं में कमी लाकर संतुष्टि को अधिकतम किया जाय। इच्छाएं जितनी ही अधिक होंगी संतुष्टि न मिलने पर असंतुष्टि उतनी ही अधिक होगी। वास्तविक वैभव वस्तुओं की प्रचुरता में नहीं बल्कि इच्छाओं की अल्पता में निहित है।

भारतीय दर्शन जो सादा जीवन उच्च विचार पर आधारित है से प्रभावित होने के कारण मेंहता ने यह मत व्यक्त किया कि अर्थशास्त्र का मुख्य उदेदश्य संतुष्टि की वृद्धि नहीं बल्कि 'वास्तविक सुख' (Real happinsss)में वृद्धि करना है। वास्ततिक सुख की प्राप्ति इच्छाओं को अधिकतम करने से

नहीं बल्कि न्यूनतम करने से ही होगी। इसीलिए उन्होने कहा कि इच्छाओं से मुक्ति पाना ही प्रमुख आर्थिक समस्या है। उन्होने अर्थशास्त्र की निम्न परिभाषा दी-

"अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो मानवीय व्यवहार को आवश्यकता विहीनता की अवस्था तक पहुंचने के साधन के रूप में अध्ययन करता है।"

प्रो0 मेंहता के विचारों को भली प्रकार समझने के लिए जरूरी है कि रॉबिन्स की संतुष्टि की धारणा व मेंहता की सुख की धारणा को ठीक ढंग से समझ लिया जाय, दोनों में काफी अंतर है। संतुष्टि वह अनुभूति है जो इच्छा या आवश्यकता के पूर्ण होने पर मिलती है जब तक उस इच्छा की पूर्ति नहीं होगी कष्ट का अनुभव होगा और इच्छा की तीव्रता जितनी ही अधिक होगी उसके पूर्ण न होने पर कष्ट की तीव्रता उतनी ही अधिक होगी। प्रो0 मेंहता ने इस प्रकार की संतुष्टि आनंद (Pleasure) कहा है।

प्रो0 मेंहता के अनुसार- सुख वह अनुभूति है जिसकी प्राप्ति तब होती है जब कोई इच्छा न हो । उनका कहना है कि जब तक इच्छाएं बनी रहेगी मस्तिक संतुलन की स्थिति में नहीं होगा। क्योंकि ज्यों ही कोई इच्छा उत्पन होती है मनुष्य के मस्तिष्क का संतुलन भंग हो जाता है और वह सन्तुलन की प्राप्ती हेतु इच्छा पूर्ण करने का प्रयास करेगा। इस इच्छा के पूर्ण होने पर मानसिक सन्तुलन पुनः स्थापित हो जायेगा और उसे कुछ समय तक आनंद प्राप्त होगी, पर यह स्थिति सुख की नहीं होगी। क्योंकि एक इच्छा की पूर्ति दूसरी, तीसरी या चौथी इच्छा को जन्म दे सकती है। जैसे टीवी लेने के बाद वांशसिंग मशीन लेने की इच्छा उसके बाद कार लेने की इच्छा आदि। प्रो0 मेंहता का मानना है कि आवश्यकता विहीनता की स्थिति में मस्तिक संतुलन में होता है। उसमें किसी तरह का इन्छा नहीं रहती उस समय जो अनुभव मिलता है वही वास्तविक सुख है। चूँकि मानसिक संतुलन की प्राप्ति और उसे कायम रखना अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। अतः इसकी प्राप्ति के दो रास्ते हो सकते है। प्रथम- वाहय शक्तियों के क्रियाशीलन में इस तरह नियमन या समन्वय किया जाय जिससे ये मस्तिष्क के साथ समन्वित हो जाय। रॉबिन्स के साधनों के प्रयोग की धारणा यही है। लेकिन मेंहता का मानना है कि वाह्य शक्तियों नियमन द्वारा स्थायी संतुलन की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि आवश्यकताए असीमित हैं और सीमित साधनों से उन सभी की संतुष्टि संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त इच्छाओं में सृजनात्मकता की प्रवृत्ति होती है- एक आवश्यकता की पूर्ति दूसरी को जन्म देती है, इस प्रकार इस रास्ते से पूर्ण संतुलन की प्राप्ति संभव नहीं हो सकती।

इसकी प्राप्ति के लिए मेंहता ने एक दूसरा तरीका यह बताया कि मस्तिष्क को एक ऐसी स्थिति में रखा जाय जहॉ कि उसके ऊपर वाह्य शक्तियों का प्रभाव ही न पड़े। इसके लिए मस्तिष्क को दबाने के बजाय उसे शिक्षित करने की आवश्यकता है। ऐसा करके मनुष्य को अपनी इच्छाओं में धीरे-धीरे कमी लानी चाहिए। चूँकि सभी आवश्यकताओं को एक साथ छोड़ा नहीं जा सकता इसलिए यहॉ भी चुनाव की समस्या उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम उन इच्छाओं को छोड़ा जाना

चाहिए जिसे पूरा करने की सामर्थ्य मनुष्य में नहीं है। इस तरह धीरे-धीरे मनुष्य के पास केवल वे ही आवश्यकताएं पेश रह जायेंगी जिन्हे पूरा करने का साधन व्यक्ति के पास है। सामर्थ्य के भीतर होने के कारण सभी आवश्यकताएं पूरी हो जायेगी और उन्हे किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं होगा। इस प्रकार प्रो0 मेंहता के अनुसार- अर्थशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य आवश्यकताओं को सामर्थ्य स्तर तक घटाना है और इस लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास ही अर्थशास्त्र का प्रमुख कर्तव्य है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रो0 मेंहता ने भारतीय संस्कृति और दर्शन के अनुरुप अर्थशास्त्र को एक नयी दिशा प्रदान की लेकिन निम्नांकित आधारों पर इसकी आलोचना की गयी है-

1. आलोचकों का मानना है कि मेंहता ने अर्थशास्त्र को धर्म और दर्शन के साथ जोड़ दिया जिसके कारण अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अनिश्चितता आ गयी।
2. आलोचकों का यह भी मानना है कि मेंहता का अर्थशास्त्र एक काल्पनिक व असाधारण मनुष्य तक सीमित है। साधारण जीवन में व्यक्ति यह नहीं सोचता कि अधिकतम सुख प्राप्त करने के लिए उसे अपनी आवश्यकताओं को कम करते रहना चाहिए। यही नहीं आवश्यकता विहीनता की स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास करने वाले व्यक्ति को आज के भौतिकतावादी युग में काल्पनिक व्यक्ति ही माना जाता है।
3. प्रो0 मेंहता ने अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया और उन्होने अर्थशास्त्र के दूसरे पहलू अर्थात आदर्श विज्ञान की उपेक्षा की।
4. कुछ आलोचकों का मानना है कि यदि मेंहता की आवश्यकता विहीनता दृष्टिकोण को स्वीकार का लिया जाय तो अर्थशास्त्र का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा क्योंकि जैसे-जैसे आवश्यकताएं कम होती जायेगीं वैसे-वैसे आर्थिक क्रियाएं कम होती जायेगी और फिर अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता ही क्या होगी?

मेंहता के दृष्टिकोण की उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनका दृष्टिकोण भारतीय दर्शन के अनुरुप है। यद्यपि भौतिकवादी वातावरण में यह अप्रासंगिक अवश्य लगता है, और चूँकि आज का युग भौतिकवादी है जिसका विस्तार तेजी से हो रहा है। अतः इस भौतिकवादी समाज में वास्तविक मनुष्य गायब हो गया है। वह स्थायी सुख के बजाय अस्थायी सुख को वरीयता दे रहा है। किसी भी पेनकिलर गोली को खाने से दर्द से तात्कालिक राहत हो मिल सकती है लेकिन स्थायी राहत नहीं। प्रो0 मेंहता ने ऐसे उपचार की बात की जिससे रोग पनपने ही न पाये। ऐसी स्थिति में लोंगों का यह आरोप भी निराधार है कि आवश्यकता विहीनता की स्थिति में अर्थशास्त्र का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। यह कहॉ तक संगत है कि यदि रोग समाप्त हो जाये तो चिकित्सा विज्ञान का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

1.3.5 विकास केन्द्रित परिभाषा-

एडम स्मिथ से लेकर प्रो0 मेंहता की परिभाषा के विवेचन से आपको यह ज्ञात हो रहा होगा कि समय के साथ अर्थशास्त्र की परिभाषा में भी परिवर्तन होता रहा है। एडम स्मिथ व उनके अनुयायियों ने जहां अर्थशास्त्र को धन के विज्ञान के रूप में, मार्शल इत्यादि ने भौतिक कल्याण के रूप में व रॉबिन्स ने दुर्लभता के विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया वहीं प्रो0 मेंहता ने भारतीय दर्शन के अनुरूप अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। लेकिन समय के साथ सभी परिभाषाये अपर्याप्त लगती रही हैं। अब एक ऐसी परिभाषा की आवश्यकता थी जो कि कि सीमित साधनों के वितरण व आर्थिक विकास दोनो को शामिल कर सके । ऐसी परिभाषा को विकास केन्द्रित परिभाषा कहा जा सकता है राबिन्स ने अपनी परिभाषा देते समय स्थैतिक दृष्टिकोण लिया जबकि आर्थिक समस्या का गत्यात्मक दृष्टिकोण लेना चाहिए। क्योंकि साधनों की सीमितता होने पर मुख्य आर्थिक समस्या केवल दिये हुए साधनों का दी हुई आवश्यकताओं के साथ समायोजन करना ही अपितु भविष्य के साधनों का विकास करना हे जिससे बदलती और बढती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके स्पष्ट है कि रॉबिन्स की परिभाषा में स्थैतिक दृष्टिकोण अपनाया गया है जबकि सम्युएल्सन एवं स्मिथ जैसे विकास केन्द्रित अर्थशास्त्री अपनी परिभाषा में प्रावैगिक दृष्टिकोण अपनाते है। विकास केन्द्रित प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित है।

बेनहम के अनुसार- 'अर्थशास्त्र उन तत्वों का अध्ययन है जो रोजगार और जीवन स्तर को प्रभावित करते है।' इस परिभाषा के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय और रोजगार का निर्धारण के साथ ही आर्थिक विकास के सिद्धान्त भी आ जाते हैं लेकिन इसमें दुर्लभ साधनों के आवंटन का विषय प्रत्यक्ष रूप से नहीं आता। यद्यपि इस परिभाषा में राष्ट्रीय आय का समाज के विभिन्न व्यक्तियों में वितरण किस प्रकार होता है, के विषय का समावेश भी होता है। क्योंकि आय का वितरण लोगों के जीवन स्तर को प्रभावित करता है।

हेनरी स्मिथ ने अर्थशास्त्र की अधिक उपयुक्त परिभाषा दी है। उनके अनुसार- 'अर्थशास्त्र यह अध्ययन करता है कि एक सभ्य समाज में कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों द्वारा उत्पादित पदार्थों से किस प्रकार अपना भाग प्राप्त करता है और कैसे समाज के कुल उत्पादन में परिवर्तन होता है और मूल उत्पादन का निर्धारण कैसे होता है।'

अर्थशास्त्र की प्रमुख परिभाषाओं का अध्ययन करने के बाद हमारे समक्ष महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि अर्थशास्त्र की कौन सी परिभाषा सर्वोत्तम है? अभी तक अर्थशास्त्र की जितनी भी परिभाषाएं दी गयी उन सभी में कोई न कोई दोष रहा है। अर्थशास्त्रीयों का एक वर्ग रॉबिन्स की परिभाषा को उपयुक्त मानता है तो दूसरा वर्ग मार्शल की परिभाषा को अधिक उपयुक्त मानता है। इन सभी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सैद्धान्तिक व वैज्ञानिक दृष्टि से रॉबिन्स की परिभाषा अधिक उपयुक्त है क्योंकि उन्होने आवश्यकताओं की वृद्धि और उनकी अधिकतम संतुष्टि पर बल दिया है। जबकि

व्यवहार में मार्शल की परिभाषा श्रेष्ठ है।यद्यपि आधुनिक विकास को देखते हुए विकास केन्द्रित परिभाषाएं अन्य सभी परिभाषाओं की तुलना में श्रेष्ठ हैं तथा निःसंदेह ये परिभाषाएं आर्थिक समस्या को वास्तविक रुप में प्रस्तुत करती हैं।हाल के अर्थशास्त्रीयों ने अर्थशास्त्र की सही एवं पर्याप्त परिभाषाओं के सम्बन्ध में बाद-विवाद करना बंद कर दिया है। आधुनिक मतानुसार अर्थशास्त्र क्या है? इस विषय की पूर्ण जानकरी उसके विषय वस्तु के विवेचन से मिलती है। आजकल अर्थशास्त्र की विषय वस्तु को दो भागों -व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र में किया जाता है। इसका विशद विवेचन हम इकाई-2 में करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 1

1 निम्न से सत्य/असत्य कथन बताइए-

- **i.** एडम रिमथ ने अर्थशास्त्र के कल्याणकारी विचारधारा को परिभाषित किया।
- **ii.** सुप्रसिद्ध पुस्तक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (Principlesa of Economics) के लेखक प्रो0 अल्फ्रेड मार्शल है।
- **iii.** अर्थशास्त्र की दुर्लभता या सीमितता की परिभाषा प्रो0 पीगू की है।
- **iv.** मार्शल ने धन की अपेक्षा मनुष्य को अधिक महत्व दिया ।
- **v.** रॉबिन्स की परिभाषा मुख्यतः चयन या चुनाव की समस्या से संबधित है।
- **vi.** रॉबिन्स की परिभाषा विश्लेषणात्मक है जबकि मार्शल की वर्गकारिणी है।
- **vii.** प्रो0 मेंहता अर्थशास्त्र को आवश्यकताओं को कम करनें की क्रिया से जोड़ते है।
- **viii.** किसी गुफा में रहने वाले साधु की क्रियाएं मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र के अन्तर्गत नहीं आऐंगी जबकि रॉबिन्स उसे अर्थशास्त्र में सम्मिलित करते है।
- **ix.** प्रो0 रॉबिन्स अर्थशास्त्र को उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं मानते हैं।

1 **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -**

- *i.* अर्थशास्त्र के जनक ....को कहा जाता है। (पीगू/एडम स्मिथ)
- *ii.* आवश्यकता विहीनता सिद्धात के प्रतिपादक ....है। (प्रो0 मार्शल/जे0के0मेंहता)
- *iii.* ....ने अपनी परिभाषा में साध्य और साधन का प्रयोग किया है।(राबिन्स/सेम्युएल्सन)
- *iv.* आर्थिक मनुष्य की कल्पना ....की परिभाषा से जुडी है।(मार्शल/एडम स्मिथ)

v. भविष्य के संदर्भ में संसाधनो के विकास का दृष्टिकोण अर्थशास्त्र की ....विचार धारा से जुड़ा है। (स्थैतिक/प्रावैगिक)

3.बहुविकल्पी प्रश्न-

निम्न में सर्वोतम विकल्प छॉटिए-

i.निम्न में कौन सी मान्यता रॉबिन्स की परिभाषा के लिए सत्य नहीं है।

A.आवश्यकताओं का अनन्त होना B. साधन की सीमितता

C.साधनो के वैकल्पिक प्रयोग D.आर्थिक समस्या हेतु मुद्रा का होना आवश्यक है।

ii. ‘अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है क्योंकि यह समाज में रहने वाले व्यक्तियों का अध्ययन करती है।‘ इस उक्ति से संबधित अर्थशास्त्री है-

A. एडम स्मिथ B. सेम्युलसन C. रॉविन्स D. मार्शल

iii. सामाजिक कल्याण को मुद्रा के मापदण्ड से सम्बन्धित करने वाले अर्थशास्त्री है

A.मार्शल B. पीगू C.रॉबिन्स D. हिक्स

iv. किस अर्थशास्त्री को दार्शनिक अर्थशास्त्री कहा जाता है।

A. मार्शल B. प्रो0 रॉबिन्स C.जे.के.मेंहता D. महात्मा गॉधी

v. निम्न में से अर्थशास्त्र की विकास केन्दित परिभाषा से जुडे अर्थशास्त्री कौन नहीं है।

A.सेम्युलसन B. हेनरी स्मिथ C.बेनहम D. एडम स्मिथ

1.4 अर्थशास्त्र का विषय क्षेत्र व स्वभाव -

अर्थशास्त्र के क्षेत्र से आशय उस विषय वस्तु से है जिसका अध्ययन हम अर्थशास्त्र में करते है। वस्तुतः अर्थशास्त्र की अनेक परस्पर विरोधी परिभाषाओं के कारण अर्थशास्त्र के सही स्वरुप व क्षेत्र के विषय में अस्पष्टता आ गयी। वर्तमान में अर्थशास्त्र का क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि इसे किसी एक परिभाषा में बांधना संभव नहीं है। यही कारण है कि आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को परिभाषित करना बंद कर दिया है। इसीलिए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जैकब वाइनर से पूछे जाने पर कि आप अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत क्या-क्या सम्मिलित करेंगें तो उन्होनें कहा कि अर्थशास्त्री जो भी करता है वही अर्थशास्त्र की विषय वस्तु है वही अर्थशास्त्र का क्षेत्र है।

अतः अर्थशास्त्र क्या है? अथवा आर्थिक सिद्धान्त की विषय वस्तु क्या है? इसकी अच्छी जानकारी हमें उन प्रश्नों से मिल सकती है जो अर्थशास्त्री उठाते है। ये प्रश्न निम्नलिखित है-

1 समाज में कौन-कौन सी वस्तुएं कितनी मात्रा में उत्पादित की जाती है? अर्थात विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में उत्पादन के साधनों का आवंटन किस प्रकार होता है? इस समस्या को क्या उत्पादन किया जाय (what to produce) अथवा

संसाधनों के आवंटन की समस्या (problem of Resaource Allocation)कहा जाता है।

2 विभिन्न वस्तुएं किस प्रकार उत्पादित की जाती है? अर्थात विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में कौन सी तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। इसे प्रायः उत्पादन कैसे किया जाये (How to produce) कहा जाता है।

3 कुल उत्पादित वस्तुओ और सेवाओ का समाज के विभिन्न व्यक्तियो में वितरण किस प्रकार होता है? इस समस्या को 'उत्पादन किसके लिए किया जाय' (For whom to produce) भी कहा जाता है।

4 क्या उत्पादन साधनो का आर्थिक कुशलता से प्रयोग किया जा रहा है? इसका सम्बंन्ध सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने से है।

5 क्या उपलब्ध उत्पादन के साधनो का पूर्ण उपयोग हो रहा है? या उनमें से कुछ बेरोजगार या अप्रयुक्त है।

6 क्या अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता बढ रही है या स्थित है? इसे आर्थिक विकास की समस्या कहते है।

7 उपर्युक्त 6 प्रश्न समय -2 पर आर्थिक सिद्धान्त का विषय रहें हैं। सभी अर्थव्यवस्थाएं चाहें वे समाजवादी हो या पूंजीवादी और चाहे मिश्रित हो उन्हें इन प्रश्नों के विषय में निर्णय लेने होते हैं।

अर्थशास्त्र की विषय सामग्री को निम्नांकित चार्ट के माध्यम से हम संक्षेप में प्रदर्शित कर सकते है।

अर्थशास्त्र की विषय सामग्री →

- **1.उपभोग**
- **2.उत्पादन**
- **3.विनिमय**
- **4.वितरण**
- **5.राजस्व**

उपभोग अर्थशास्त्र के अध्ययन का प्रमुख विषय है इसे आर्थिक क्रिया का अन्त कहा जाता है। उपभोग का अर्थ वस्तुओं व सेवाओं को मनुष्य की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए उपयोग से होता है। जबकि उत्पादन का अर्थ किसी वस्तु या सेवा में उपयोगिता का सृजन करना होता है। उत्पादन के बिना उपभोग संभव नहीं है। स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत उत्पादन का तात्पर्य किसी वस्तु में उपयोगिता का सृजन करना है और उपभोग उस उपयोगिता का विनाश कहलाता है। उपभोग के अन्तर्गत मानवीय आवश्यकताओं की उत्पत्ति, प्रकृति, संतुष्ठि और इससे

सम्बन्धित नियमों का अध्ययन किया जाता है, जब कि उत्पादन के अन्तर्गत उत्पादन के विभिन्न साधनों यथा-भूमि, श्रम, पूंजी तथा साहस तथा उत्पति के नियमों आदि का अध्ययन किया जाता है।

समाज में प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की सभी वस्तुओं का उत्पादन नहीं कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी एक ही वस्तु का उत्पादन कर अतिरिक्त वस्तु को दूसरे से आदान-प्रदान करता है। इस प्रकार की क्रिया विनिमय कहलाती है जिसके अन्तर्गत मूल्य निर्धारण सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

उत्पादन के साधनों के सहयोग से उत्पादन होता है और उत्पादन को पुनः इन्हीं साधनों के मध्य वितरण करना पड़ता है। वितरण के अन्तर्गत हम यह अध्ययन करते है कि उत्पादन के साधनों का प्रतिफल किस प्रकार से निश्चित किया जाता है।

अर्थशास्त्र की राजस्व शाखा के अन्तर्गत सरकार के आय-व्यय व राज्य के आर्थिक क्रियाओं का वर्णन किया जाता है। इसके अन्तर्गत कृषि, उद्योग, यातायात, अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार, आय व्यय, सार्वजनिक ऋण तथा वित्तीय प्रशासन का अध्ययन किया जाता है।

1.5 - अर्थशास्त्र की प्रकृति

अर्थशास्त्र के स्वभाव या प्रकृति के अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला या दोनों ? यह जानने से पहले कि अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला हमें यह जान लेना चाहिए कि विज्ञान और कला का क्या आशय है?

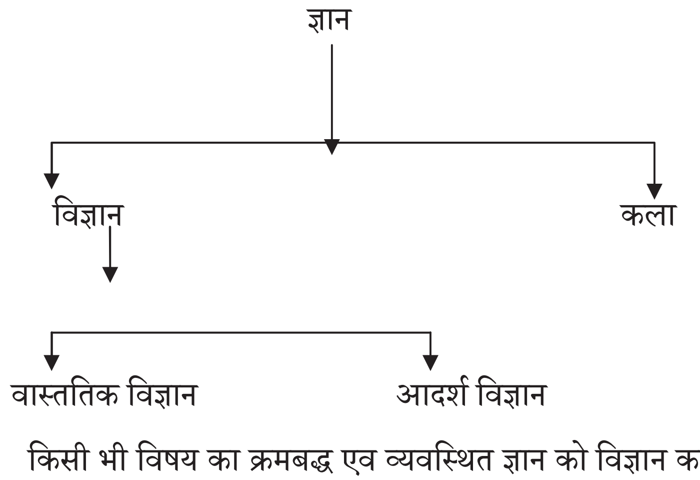

किसी भी विषय का क्रमबद्ध एव व्यवस्थित ज्ञान को विज्ञान कहते है। इससे किसी तथ्य विशेष के कारण -परिणाम के पारस्परिक सम्बंध का अध्ययन किया जाता हैं। **पोइन केयर** के अनुसार - जिस प्रकार एक मकान का निर्माण ईटों द्वारा होता है उसी प्रकार विज्ञान तथ्यों द्वारा निर्मित है पर जिस तरह से ईटों का ढेर मकान नहीं है उसी प्रकार से मान तथ्यों को एकत्रित करना विज्ञान नहीं है।

अर्थशास्त्र विज्ञान है- क्योंकि इसके अध्ययन में वैज्ञानिक विधियों का पालन किया जाता है। और इसके अन्तर्गत पर्यवेक्षण, तथ्यों का एकत्रीकरण, विश्लेषण, वर्गीकरण तथा उसके आधार पर नियमों का निर्देशन किया जाता हैं। अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की भॉति इसमें भी नियम है- यद्यपि ये नियम उतने सत्य नहीं जितने कि प्राकृतिक विज्ञानों में है। वास्तविकता यह है कि अर्थशास्त्र के नियम कुछ मान्यताओं पर आधारित है और यदि ये मान्यताएं अपरिवर्तित रही तो नियम लागू होगा। अतः इस दृष्टि से अर्थशास्त्र को विज्ञान कहा जाना उचित होगा।

कला किसी ज्ञान का व्यावहारिक पहलू है जो ज्ञान को व्यवहार में लाने के सर्वोत्तम ढंग पर प्रकाश डालती है। इस प्रकार विज्ञान का क्रियात्मक रुप कला है। किसी विज्ञान का क्रमबद्ध ज्ञान तो विज्ञान है और उस ज्ञान का क्रमबद्ध एवं उत्तम ढंग से प्रयोग कला है। अर्थशास्त्र कला है- क्योंकि अर्थशास्त्र में अपना व्यावहारिक पहलू है अतः अर्थशास्त्र का कला पक्ष भी है। विज्ञान के रूप में यह मानव आचरण के समझने में सहायता पहुंचाता है तो कला के रूप में यह जीवन स्तर में सुधार के उपाय प्रस्तुत करता है।

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को विज्ञान माना है ,जबकि समाजवाद के समर्थक अर्थशास्त्रियों ने इसके कला पक्ष पर जोर दिया है। नव- क्लासिकल अर्थशास्त्री विशेष रूप से मार्शल ने बीच का रास्ता अपनाते हुए कहा कि अर्थशास्त्र विज्ञान हैं पर इसके व्यावहारिक पक्ष की भी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। मार्शल ने कहा कि अर्थशास्त्र को विज्ञान एवं कला कहने से उत्तम है कि यह कहा जाय कि अर्थशास्त्र एक विशुद्ध एवं प्रायोगिक विज्ञान है। आधुनिक अर्थशास्त्री प्रो0 रॉबिन्स तो अर्थशास्त्र को सिर्फ विज्ञान मानते थे पर आजकल व्यावहारिक अर्थशास्त्र का महत्व बढता जा रहा है क्योकि प्रत्येक जगह आर्थिक समस्यायें है और उनका हल व्यावहारिक अर्थशास्त्र में ही निहित है। आजकल सैद्धान्तिक (विज्ञान) पक्ष की अपेक्षा अर्थशास्त्र का व्यावहारिक (कला) पक्ष कम महत्वपूर्ण नहीं है।

वास्तविक विज्ञान या आदर्श विज्ञान?

अभी हम लोगों ने स्वीकार किया कि अर्थशास्त्र सैद्धान्तिक दृष्टि से विज्ञान हैं लेकिन इसके व्यावहारिक पक्ष अर्थात कला पक्ष की अवहेलना भी नहीं की जा सकती। अब सवाल यह है कि अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है या आदर्श विज्ञान? वास्ततिक विज्ञान, ज्ञान की वह शाखा है जो कारण एवं परिणाम से सम्बन्ध स्थापित करता हैं। वास्तविक विज्ञान, क्या हैं? का उत्तर देना है, क्या होना चाहिए? से सम्बन्ध नहीं रखता । वास्तविक विज्ञान का उद्देश्य सत्य की खोज करना एवं उसका विश्लेषण करना हैं। इस प्रकार के विश्लेषण के बाद वास्तविक विज्ञान उस विषय को उसके वास्तविक रूप में सामने रखेगा पर यह नहीं बतायेगा कि यह विषय अच्छा है, या नहीं, और न ही यह स्पष्ट करेगा कि विषय कैसा होगा चाहिए। उदाहारण के लिए यदि बाजार में वस्तु का मूल्य बढ़ जाय तो अर्थशास्त्री वास्तविक विज्ञान की सीमा में रहते हुए केवल यह बतायेगा कि इसका मॉग पर

क्या प्रभाव पड़ेगा? पर यह वृद्धि उचित है या नहीं ? इस बारे में कुछ नहीं कहता । इसके विपरीत आदर्श विज्ञान क्या वांछनीय है तथा क्या अवांछनीय है, क्या होना चाहिए व क्या नहीं होना चाहिए से सम्बंन्ध रखता हैं। उपरोक्त उदाहारण में वस्तु की कीमत में वृद्धि उचित है या नहीं इसे आदर्श विज्ञान स्पष्ट करेगा।

अर्थशास्त्र 'वास्तविक विज्ञान' है, या 'आदर्श विज्ञान'? इस प्रश्न पर अर्थशास्त्रीयों में मतभेद हैं प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रीयों जैसे- सीनियर, रिकार्डो, जे.बी से., इत्यादि इसे वास्तविक विज्ञान मानते हैं। अर्थशास्त्री से के अनुसार वस्तुस्थिति का अध्ययन करना अर्थशास्त्री का कर्तव्य है पर उसके सम्बन्ध में परामर्श देना उसका दायित्व नहीं है। प्रो0 मार्शल व पीगू अर्थशास्त्र को वास्तविक व आदर्श दोनो रूपों में देखते है।पर आधुनिक अर्थशास्त्री रॉबिन्स निम्नांकित तर्को के आधार पर अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान मानते है -

I. अर्थशास्त्र साध्यों के बीच तटस्थ है।
II. अर्थशास्त्र एक विज्ञान है और विज्ञान अनिवार्य रूप से तर्कशास्त्र पर आधारित होता है।
III. श्रम विभाजन के आधार पर भी अर्थशास्त्री को केवल कारण एवं परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करना चाहिए।
IV. अर्थशास्त्र को आदर्श विज्ञान मानने से उसकी विषय वस्तु अस्पष्ट हो जायेगी।

अर्थशास्त्र के आदर्श विज्ञान होने के पक्ष में निम्न तर्क किए जा सकते है-

1. आज अनेक आर्थिक समस्यायें भयावह रूप धारण किए हुए हैं, कहीं जनसंख्या में वृद्धि तो कहीं बेरोजगारी की समस्या, तो कहीं भोजन व कपड़े की समस्या इन समस्याओं के बीच रहकर अर्थशास्त्री तटस्थ कैसे रह सकता है?
2. आज कल विकसित देश हो या अल्पविकसित पूंजीवादी हो या समाजवादी अर्थव्यवस्था, प्रत्येक में आर्थिक नियोजन का महत्व बढ़ रहा है इसके लिये अर्थशास्त्र का आदर्श पहलू आवश्यक है।
3. कल्याणकारी अर्थशास्त्र के अत्यधिक विज्ञान के कारण भी इस धारणा को बल मिला है कि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान नहीं है,इसमें आदर्श का पहलू आवश्यक है। आजकल हम कल्याणकारी राज्य की बात करते है जिसमें सामाजिक सुरक्षा, श्रम कल्याण, पारिवारिक पेंशन, धन के समान वितरण इत्यादि पर विशेष बल दिया जाता है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आदर्श विज्ञान व वास्तविक विज्ञान अर्थशास्त्र के दो अलग-अलग भाग नहीं बल्कि दो पहलू हैं। वास्वविक विज्ञान अर्थशास्त्र का सैद्धांतिक पहलू है जबकि आदर्श विज्ञान उसका व्यावहारिक पहलू है।

अब तक हम लोग यह समझ चुके है कि कला और विज्ञान दोनों एक दूसरे के पूरक है और अर्थशास्त्र विज्ञान एवं कला दोनों है। उल्लेखनीय कि अन्य विषयों की भॉति अर्थशास्त्र विषय की कुछ सीमाएं है यथा -आर्थिक नियम भौतिक विज्ञान के नियमो की भॉति पूर्ण तथा सर्वकालीन एवं सत्य नहीं होते आदि।

1.6. अर्थशास्त्र का महत्व -

अर्थशास्त्र के महत्व को स्पष्ट करते हुए डरविन कहते है कि अर्थशास्त्र आज के युग का बौद्धिक धर्म है। मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र के अध्ययन का उददेश्य ज्ञान के लिए ज्ञान प्राप्त करना और व्यावहारिक जीवन विशेष रूप से सामाजिक क्षेत्र में पथ प्रदर्शन प्राप्त करना है। अर्थशास्त्र के अध्ययन का सैद्धान्तिक व व्यावहारिक महत्व दोनों है। सैद्धान्तिक महत्व के अर्न्तगत इसके अध्ययन से अनेक आर्थिक घटनाओं की जानकारी होती है। जिससे ज्ञान में वृद्धि होती है। जैसे- देश में धन के असमान वितरण के कारण व परिणाम की जानकारी प्राप्त हो सकती है। यही नहीं अर्थशास्त्र के अध्ययन से मस्तिष्क में तर्क सम्बन्धी योग्यता तथा निरीक्षण शक्ति का विकास होता है। अर्थशास्त्र के अध्ययन का व्यावहारिक महत्व भी है -

1 **उपभोक्ताओं के लिए-** आज का समय उपभोक्तावादी युग है। अर्थशास्त्र के नियम के अर्न्तगत यह अध्ययन किया जाता है कि उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि कैसे प्राप्त करे? अतः इसका अध्ययन उपभोक्ता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

2 **किसानों के लिए-** किसानों को कृषि से जुड़ी अनेक जानकारियॅा यथा- कृषि विपणन, कृषि उत्पादन बढ़ाने की तकनीकी, कृषि के लिए खाद उपकरण, उन्नत बीज व पूंजी से सम्बन्धित अध्ययन अर्थशास्त्र के द्वारा होता है।

3 **श्रमिको को लाभ**- अर्थशास्त्र के अध्ययन से श्रमिकों को भी लाभ होता है। उन्हे यह जानकारी प्राप्त हो जाती है कि मालिकों द्वारा उन्हे दी जाने वाली मजदूरी, उनकी सीमान्त उत्पादकता से कम होती है। इससे श्रमिकों का शोषण नहीं हो पाता ।

अभ्यास प्रश्न- 2

निम्न में सत्य/असत्य कथन बताइये ।

I. अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र के अर्न्तगत उत्पादन, उपभोग, वितरण व राजस्व को सम्मिलित किया जाता है। (सत्य/असत्य)

II. क्या होना चाहिए? इस तथ्य का अध्ययन वास्तविक विज्ञान के अर्न्तगत किया जाता है। (सत्य/असत्य)

III. अर्थशास्त्र के अध्ययन से उपभोक्ता, उत्पादक तथा कृषक सभी लाभान्वित होते है। (सत्य/असत्य)

IV. आर्थिक सिद्धांत आर्थिक घटनाओं के कारण और परिणाम के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट करता है। (सत्य/असत्य)

V. वास्तविक विज्ञान के अन्र्तगत यह माना जाता है कि अर्थशास्त्री का कर्तव्य केवल तथ्यो की खोज करना तथा उसका विश्लेषण करना है,न कि उसका प्रतिपादन और आलोचना करना। (सत्य/असत्य)

1.10 सारांश

इस इकाई के अन्र्तगत हमने अर्थशास्त्र क्या है? इसका विषय क्षेत्र व इसकी प्रकृति क्या है ? इस सन्दर्भ में विस्तारपूर्वक चर्चा की है। एडम स्मिथ की धन केन्द्रित परिभाषा के पश्चात मार्शल, पीगू, रॉबिन्स, मेंहता व विकास केन्द्रित परिभाषाओं से हमें अर्थशास्त्र के व्यापक दृष्टिकोण का पता चलता है। अर्थशास्त्र की विषय सामग्री के अन्र्तगत उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण तथा राजस्व पॉच प्रमुख क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्र अब धन का शास्त्र न रहकर मानवीय कल्याण का आदर्श पहलू बन चुका है। इसमें विज्ञान तथा कला दोनों के गुण है। यद्यपि यह भी सही है कि अर्थशास्त्र में केवल आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन होता है। तथा आर्थिक नियम भौतिकी के नियमों की तरह निश्चित भी नहीं होते ये कुछ तथ्य अर्थशास्त्र की सीमाएं भी प्रदर्शित करते हैेंं। इसके बावजूद आधुनिक समय में अर्थशास्त्र का अध्ययन महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है, क्योंकियह ज्ञान तो प्रदान करता ही है व्यावहारिक जीवन में पथ प्रदर्शक भी है।

1.8 शब्दावली

- **उत्पादनः-** अर्थशास्त्र के अन्र्तगत किसी वस्तु में उपयोगिता का सृजन ही उत्पादन कहलाता है।
- **उपभोगः-** उपभोग, उत्पादन की विपरीत क्रिया है। उपभोग के प्श्चात वस्तु के अन्दर निहित उपयोगिता समाप्त हो जाती है।
- **तुष्टि या सन्तुष्टिः-** किसी इच्छित वस्तु के उपभोग के पश्चात उपभोक्ता के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाला मनोवैज्ञानिक भाव संतुष्टि कहलाता है।
- **निगमन विधिः-** यह अध्ययन की वह प्रणाली है जिसमें सामान्य सत्य या सर्वमान्य स्वयं सिद्ध आधारभूत तथ्यों को आधार मानकर निष्कर्ष निकाले जाते है। इस प्रकार इसमें अध्ययन का क्रम 'सामान्य से विशिष्ट' की ओर होता है।

- **आगमन विधि:-** यह निगमन विधि के ठीक विपरीत है। इस विधि के अन्तर्गत तर्क के माध्यम विशिष्टि सत्य के आधार पर सामान्य निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है। इसमें अध्ययन का क्रम 'विशिष्ट से सामान्य' की ओर होता है।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अभ्यास प्रश्न 1

i. असत्य
ii. सत्य
iii. असत्य
iv. सत्य
v. सत्य
vi. सत्य
vii. सत्य
viii. सत्य
ix. असत्य

2. रिक्त स्थानो की पूर्ति -

i. एडम स्मिथ
ii. जे0 के0 मेंहता
iii. रॉविन्स
iv. एडम स्मिथ
v. विकास केन्द्रित

3. बहुविकल्पीय प्रश्न -

i. D
ii. D
iii. B
iv. C
v. D

अभ्यास प्रश्न -2

i. सत्य
ii. असत्य
iii. सत्य
iv. सत्य
v. सत्य

1.10 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Dwivedi, D. N. (2008): Micro Economics 7th edition vikas Publish House New Delhi.
- Koutsiyanniesa, A- (1997) –Microeconomics Analysis New Delhi.
- Mishra S.K & Puri V.K. (2003) – Modern micro economic theory Himalaya Publishing House.
- Sethi T. T (2006) – 'Principles of Economics' Lakshmi Narayan Agrawal agra.
- Ahuza ,H.L (2010) – "Principles of Microeconomics", S.chand publishing house,new delhi.
- Seth,M.L.(2007),'Microeconomics'lakshmi narayan agrawal,Agra.

1.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- आहूजा, एच0 एल0 (2003) उच्चतर आर्थिक सिद्वात (व्यष्टि परक आर्थिक विश्लेषण) एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- सिन्हा, वी0 सी0 (1999) व्यष्टि अर्थशास्त्र, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- आहूजा, एच0 एल0(1999)उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र, एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- जैन, के0 पी0 (1987) व्यष्टि अर्थशास्त्र साहित्य भवन, आगरा।
- लाल, एस0 एन0 (1999)व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।

- सिंह, देव नारायण (2004)व्यष्टिअर्थशास्त्र- अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्नः1- रॉविन्स और मार्शल की परिभाषाओं की आलोचनात्मक व्याख्या किजिए।

प्रश्नः2- रॉविन्स तथा मार्शल की परिभाषाओं की तुलना करने हुए स्पष्ट कीजिए कि कौन सी परिभाषा उपयुक्त है?

प्रश्नः3- अर्थशास्त्र की मार्शल की परिभाषा की आलोचनात्मक व्याख्या किजिए। वह एडम स्मिथ की परिभाषा से किस प्रकार भिन्न है?

प्रश्नः4- प्रो0जे0के0 मेंहता द्वारा दी गयी अर्थशास्त्र की परिभाषा की पूर्ण विवेचना किजिए। रॉविन्स की परिभाषा से इसकी तुलना कीजिए।

प्रश्नः5- मूल आर्थिक समस्या क्या है? रॉविन्स की परिभाषा इससे किस प्रकार सम्बन्धित है?

प्रश्नः6- आधुनिक युग में रॉबिन्स की परिभाषा क्यो अपर्याप्त है?

प्रश्नः7- अर्थशास्त्र विज्ञान तथा कला दोनो है। क्या आप इससे सहमत है?

प्रश्नः8- अर्थशास्त्र के वास्तविक तथा आदर्शवादी दृष्टिकोणो की विवेचना कीजिए।

प्रश्नः9- अर्थशास्त्र की विषय सामग्री की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

इकाई - 2 व्यष्टिपरक तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उदेद्श्य
2.3 व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र
2.3.1 व्यष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र
2.3.2 व्यष्टि अर्थशास्त्र की विशेषताएँ
2.3.3 व्यष्टि अर्थशास्त्र का महत्व तथा उपयोग
2.3.4 व्यष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएं
2.4 समष्टिपरक अर्थशास्त्र
2.4.1 परिभाषा
2.4.2 समष्टिपरक अर्थशास्त्र का क्षेत्र
2.4.3 समष्टिपरक अर्थशास्त्र का अध्ययन क्यो आवश्यक है?
2.4.4 समष्टिपरक अर्थशास्त्र के दोष व सीमाएँ
2.5 व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र में अन्तर
2.6 व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र और समष्टिपरक अर्थशास्त्र पारस्परिक निर्भरता
2.6.1 व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र की समष्टिपरक अर्थशास्त्र पर निर्भरता
2.6.2 समष्टिपरक अर्थशास्त्र की व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र पर निर्भरता
2.7 सरांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आर्थिक विश्लेषण या अर्थशास्त्र के अध्ययन की दो पद्धतियो की चर्चा की गई है इसकी पूर्व की इकाई में आपने अर्थशास्त्र की परिभाषा, स्वरूप व उसके क्षेत्र के बारे में पढ़ा। किसी भी अर्थव्यवस्था या आर्थिक निकाय के अध्ययन की सामान्यतः दो पद्धतियाँ हो सकती है। पहली पद्धति वह है जिसके अन्तर्गत हम उस निकाय के छोटे या सूक्ष्म इकाईयों का अध्ययन करते है जो उस निकाय का सूक्ष्मतम अंग होती है। यह पद्धति ''व्यष्टि भावी आर्थिक विश्लेषण'' कहलाती है। अध्ययन की दूसरी पद्धति वह है जब हम किसी आर्थिक समस्या का अध्ययन सम्पूर्ण आर्थिक निकाय की दृष्टि से करते है इसे समष्टि भार्वी आिर्थक विश्लेषण कहा जाता है। विश्लेषण की इन दोनो रीतियो के आधार पर अर्थशास्त्र को दो भागो में बाँटा जाता है-

(1) व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र या सूक्ष्म अर्थशास्त्र **(Micro Economics)**

(2) समष्टिपरकअर्थशास्त्र या व्यापक अर्थशास्त्र **(Macro Economics)**

इन शब्दों का सर्वप्रथम निर्माण व प्रयोग रैगनर फ्रिश ने 1933 में किया और तभी से दोनों शब्दो को आर्थिक विश्लेषण में अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रयुक्त किया जाने लगा है। वर्तमान में अर्थशास्त्र की प्रत्येक पाठ्य पुस्तक में आर्थिक विश्लेषण को इन्हीं दो उप शीर्षको में विभाजित किया जाता है।

अंग्रेजी का माइक्रो-इकोनामिक्स शब्द ग्रीक शब्द ''माइक्रोस'' से बना है जिसका अर्थ है छोटा या लघु और इसी प्रकार मेंक्रो इकोनामिक शब्द ग्रीक शब्द ''मेंक्रोज'' से बना है जिसका अर्थ है विषाल या बड़ा अतः स्पष्टहै कि व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था की वर्तमान लघु इकाईयो के छोटे-छोटे समूहो जैसे उद्योगो व बाजारो आदि का अध्ययन किया जाता है जबकि समष्टिपरक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था या उन बड़ी इकाइयो का अध्ययन किया जाता है जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से होता है जैसे कुल राष्ट्रीय आय, कुल बचत, कुल बिनियोग आदि।

इस इकाई में हम पढ़ेगें कि अर्थशास्त्र के अध्ययन व विश्लेषण की इन दोनों पद्धतियों में क्या विभिन्नताएँ है ? क्या दोनों शाखाओ का पृथक अध्ययन आवश्यक है ? पृथक - पृथक होने के बावजूद भी क्या अध्ययन की दोनों पद्धतियाँ एक दूसरे की पूरक है ? इस इकाई के अन्तर्गत इन्हीं मुद्दो पर चर्चा की गई है।

2.2 उद्देश्य:-

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र की प्रकृति व क्षेत्र से अवगत हो सकेगें।
- व्यष्टिपरक तथा समष्टिपरक आर्थिक चरो से अवगत हो सकेगे।

- व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र के मध्य वर्गीकरण के आधार को पहचान सकेगें।
- अर्थशास्त्र के व्यष्टिपरक तथा समष्टिपरक पद्धतियो के अन्र्तसम्बन्ध व उनके महत्व से भली-भाँति अवगत हो सकेगें।

2.3 व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र

व्यष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा से हम यह समझ चुके है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्र्तगत अर्थव्यवस्था का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता हैं यही कारण है कि इसे “सूक्ष्म अर्थशास्त्र” भी कहा जाता है जिस प्रकार शरीर विभिन्न कोशिकाओ से मिलकर बनता है और सूक्ष्म विश्लेषण में हम इन सूक्ष्मतम इकाईयो का अध्ययन करते है उसी प्रकार व्यष्टि परक आर्थिक सिंद्वान्त में हम अर्थव्यवस्था की विभिन्न छोटी-छोटी या व्यक्तिगत इकाईयो-सहस्त्रो उपभोक्ताओ, उत्पादको एवं फर्मो, सहस्त्रो श्रमिक व अन्य साधनो के विक्रेता के मध्य आर्थिक क्रियाकलापो का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दो में कहा जाय तो व्यष्टि अर्थषास्त्र, अर्थव्यवस्था की छोटी इकाईयो अर्थात व्यक्तिगत इकाइयो जैसे एक फर्म, एक उद्योग, किसी एक विषेश वस्तु का मूल्य इत्यादि का अध्ययन करता है, एक उद्योग तथा लधु बाजार का अध्ययन भी व्यष्टि अर्थशास्त्र में किया जाता है।

उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्र के अन्र्तगत हम एक व्यक्ति की माँग का अध्ययन करते है और इसकी सहायता से उस वस्तु या पद्वार्थ का उपयोग करने वाले विभिन्न व्यक्तियो के समूह की माँग (अर्थात उस वस्तु या पद्वार्थ की बाजार माँग) को प्राप्त करते है। इसी प्रकार एक व्यक्तिगत फर्म की कीमत व उत्पादन निर्णय सम्बन्धी व्यवहारो के अध्ययन की सहायता से हम एक उद्योग की कीमत व उत्पादन निर्धारण का विश्लेषण कर सकते है। अतः स्पष्ट है कि व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन न करके व्यक्तिगत इकाइयो के संकुचित समूहो - बाजारो तथा उद्योगो का विश्लेषण करते है

वास्तविकता यह है कि कोई एक व्यक्तिगत उद्योग बहुत सी एक समान फर्मो का योग है जबकि एक उद्योग, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का एक छोटा भाग है। इसी प्रकार एक बाजार भी कुल अर्थव्यवस्था का एक अत्यन्त छोटा सा भाग होता है। अतः संक्षेप में व्यष्टि अर्थशास्त्र को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता हैः-

व्यष्टि अर्थशास्त्र, आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जिसके अन्र्तगत अर्थव्यवस्था की विशिष्ट आर्थिक इकाईयो तथा अर्थव्यवस्था के छोटे-छोटे भागो का उनके व्यवहार तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र से यह जानकारी प्राप्त होती है कि किसी वस्तु या सेंवा की कीमत किस प्रकार निर्धारित होती है। इसी कारण व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण को **कीमत सिद्वांत** भी कहते है।

18वी व 19वी शताब्दी में इसे **मूल्य का सिद्वांत** कहा जाता था। कुछ अर्थशास्त्रियो द्वारा इसे **कीमत तथा उत्पादन का सिद्वान्त** कहा जाता है तो कुछ अर्थशास्त्री इसे **सामान्य अर्थशास्त्र** के नाम से सम्बोधित करते है।

विभिन्न अर्थशास्त्रियो द्वारा व्यष्टि अर्थशास्त्र की निम्नलिखित परिभाषाएं दी गयी हैः-

प्रो0 बोल्डिंग का कथन है किः- "व्यष्टि अर्थशास्त्र विशिष्ट आर्थिक घटनाओ तथा उनकी पारस्परिक प्रतिक्रिया का अध्ययन है जिसमें विशिष्ट आर्थिक मात्राएँ एवं अनका निर्धारण भी शामिल है।"

"Micro economics is the study of particular economics organism and their interaction and of particular economic quantitiesa and their determination" – K.E. BOULDING

हैण्डरसन तथा क्वाण्ट के अनुसारः- "व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्तियो व सुपरिभाषित व्यक्ति समूहो की आर्थिक समूहो की आर्थिक क्रियाओ का अध्ययन होता है।"

"Micrro economics is the stady of economic action of individual and well defirend group of individual"-- Handerson & Quanot

इसी प्रकार **प्रो0 चैम्बरलिन** स्पष्ट करते है किः- " व्यष्टि अर्थशास्त्र पूर्णतया व्यक्तिगत व्याख्या पर आधारित है तथा इसका सम्बन्ध अन्तर वैयक्तिक सम्बन्धो से भी होता है।"

2.3.1 व्यष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र क्या है ?

व्यष्टि अर्थशास्त्र की विभिन्न विद्वानो द्वारा प्रदत्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र के अर्न्तगत सम्पूर्ण क्षेत्र को निम्न तालिका से प्रदर्शित किया जा सकता हैः

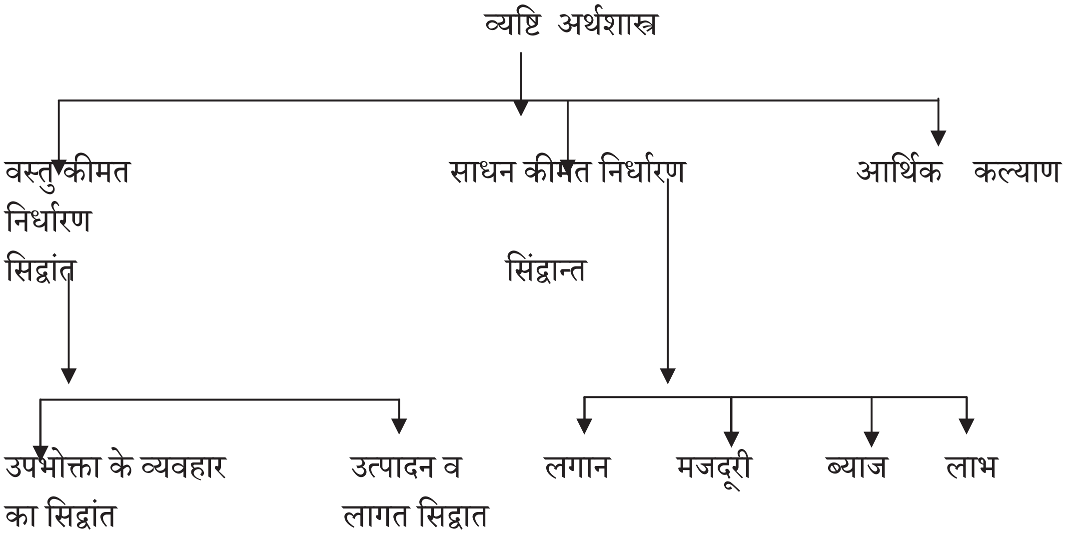

आइए अब यह जानने का प्रयास किया जाता है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र की महत्वपूर्ण विशेषताएँ क्या है ?

2.3.2 व्यष्टि अर्थशास्त्र की विषेशताएँ- व्यष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा और क्षेत्र के आघार पर इसकी प्रमुख विषेशताओ को निम्न रूप में स्पष्टकिया जा सकता हैः-

i. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत व्यक्तिगत आर्थिक इकाईयो जैसे एक व्यक्ति, एक परिवार,एक फर्म आदि से सम्बन्धित व्यय, उपभोग, बचत, विनियोग व आय के स्त्रोतो (व्यक्तिगत उत्पादन, व्यक्तिगत आय, और व्यक्तिगत उपभोग आदि) का विष्लेशणात्मक अध्ययन किया जाता है।

ii. व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत कीमत निर्धारण का अध्ययन किया जाता है, व्यष्टि अर्थशास्त्र में मांग और पूर्ति के द्वारा विभिन्न वस्तुओ के व्यक्तिगत मूल्य निर्धारित किए जाते है।

iii. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत सामान्य मूल्य स्तर ;ळमदमतंस चतपबम समअमसद्ध का नहीं अपितु कीमतो के सापेक्षिक ढाँचे का अध्ययन किया जाता है। अर्थात विशिष्ट वस्तुओ व साधनो की कीमतो के निर्धारण व उनके पारस्परिक सम्बन्धो का अध्ययन किया जाता है।

iv. व्यष्टि अर्थशास्त्र दोष के कुल उत्पादन का नहीं बल्कि कुल उत्पादन की संरचना का तथा विभिन्न प्रयोगो में साधनो के वितरण का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दो में कहा जाय तो यह कुल आय का नहीं बल्कि कुल आय के वितरण का अध्ययन करता है।

अब तक के अध्ययन से हम व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र की परिभाषा, क्षेत्र व विशेषताओ से अवगत हो चुके है। आइए अब यह जाने कि व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र का महत्व तथा आचौत्यि या उपयोग क्या है ?

2.3.3 व्यष्टि अर्थशास्त्र का महत्व तथा उपयोग:-

i. अर्थशास्त्र में व्यष्टि अर्थशास्त्र का सैद्वान्तिक और व्यवहारिक महत्व है क्योकि व्यष्टि अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था की सूक्ष्म इकाईयो या अंगो का अध्ययन करती है। वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को समझने के लिए व्यक्तिगत इकाइयो का (जो मिलकर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का निर्माण करती है) अध्ययन आवश्यक है।

ii. व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिगत आय, व्यय, बचत आदि के स्त्रोतो के स्वभावो को स्पष्ट करता है जिससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का विश्लेषण सुस्पष्ट होता है।

iii. व्यष्टि अर्थशास्त्र किसी व्यक्ति, परिवार, फर्म या उद्योग को अपने-अपने क्षेत्र में आर्थिक समस्याओ से सम्बन्धित निर्णय लेने में मदद करता है।

iv. व्यष्टि अर्थशास्त्र वस्तु विषेश के मूल्य निर्धारण में सहायता पहुँचाता है। तथा उत्पादन के साधनो के पारिश्रमिक कैसे निष्चित होता है? इस पर प्रकाश डालता है, अर्थात किसी वस्तु

की जो कीमत है या किसी कर्मचारी को जितना वेतन मिल रहा है उतना ही क्यो मिल रहा है कम या अधिक क्यो नहीं आदि।

v. व्यष्टि अर्थशास्त्र का प्रयोग आर्थिक कल्याण की दशाओ की जाँच के लिए किया जाता है क्योकि इसके अन्तर्गत व्यक्तियो को वस्तुओ तथा सेवाओ से प्राप्त होने वाले सन्तुष्टियो का अध्ययन संभव होता है।

vi. व्यष्टि अर्थशास्त्र का प्रयोग आर्थिक नीति में किया जाता है क्योकि यह उन नीतियो का सुझाव देता है जिससे व्यक्तियो की संतुश्टि या उनका कल्याण अधिकतम हो सके। इसका प्रयोग अर्थशास्त्र की व्यवहारिक शाखाओ जैसे लोकवित्त ;च्नइसपब पिदंदबमद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ;प्दजमतदंजपवदंस मबवदवउपबेद्ध में किया जाता है।

vii. व्यष्टि परक अर्थशास्त्र यह बताता है कि आर्थिक कुषलता को प्राप्त किया जा सकता है जबकि पदार्थ तथा साधन बाजारो में पूर्ण प्रतियोगिता हो। व्यष्टि परक अर्थशास्त्र के उपरोक्त प्रयोग, आवश्यकता या प्रासंगिकता से हम इस तथ्य से भली-भाँति अवगत हो रहे है कि व्यष्टि परक अर्थशास्त्र आधुनिक आर्थिक सिद्वान्त की एक उपयोगी व महत्वपूर्ण शाखा है।

आइए, अब हम यह जानने का प्रयास करते है कि अर्थशास्त्र की इस महत्वपूर्ण शाखा या पद्धति की प्रमुख कमियाँ कौन सी है ?

2.3.4 व्यष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएँ - यद्यपि व्यष्टि परक अर्थशास्त्र विश्लेषण की आधुनिक आर्थिक सिद्वान्तो में महत्वपूर्ण भूमिका सुस्पष्टहै परन्तु इसकी कुछ सीमाएँ अथवा दोश भी है। व्यष्टि परक अर्थशास्त्र की प्रमुख परिसीमाएँ निम्नलिखित हैः-

1. **एकपक्षीय अध्ययन है** - अर्थशास्त्र का व्यष्टिपरक विश्लेषणो का अध्ययन एकपक्षीय होता है क्योकि इसमें केवल व्यक्तिगत इकाईयो का ही अध्ययन किया जाता है। इसके अध्ययन से राष्ट्रीय अथवा विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था का सही-सही ज्ञान नहीं हो पाता है।
2. **सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन का सही चित्रण नहीं** - व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर ध्यान न देकर उसके कुछ छोटें भागो के संगठन व संचालन पर ही केन्द्रित होता है फलस्वरूप सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन का सामूहिक रूप से उचित ज्ञान प्राप्त नहीं होता।
3. **अवास्तविक मान्यताएँ**- व्यष्टि अर्थशास्त्र कई अवास्तविक मान्यताओ जैसे- पूर्ण रोजगार, पूर्ण प्रतियोगिता इत्यादि पर आधारित, है वास्तविक जीवन में ये मान्यताएँ सत्य नहीं पायी जाती है।
4. **निष्कर्ष सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के दृश्टिकोण से ठीक नहीं**- व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण के बहुत से निष्कर्ष सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से टीक नहीं होते। यह आवश्यक नहीं है कि जो बात व्यक्तिगत इकाई के सम्बन्ध में सत्य है वही समूह के सम्बन्ध में भी उतनी ही

सत्य हो। इसे हम एक उदाहरण के माध्यम से आसानी से समझ सकते है। बचत करना् एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से अच्छा है परन्तु यदि सभी व्यक्ति बचत करने लगे तो यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक होगा, क्योकि ऐसा करने से उपभोग वस्तुओ की माँग कम हो जायेगी फलस्वरूप रोजगार और आय कम होने लगेगी।

5. **कुछ आर्थिक समस्याओं का अध्ययन सम्भव नहीं-** कुछ आर्थिक समस्याओ यथा- रोजगार, प्रशुल्क नीति, उचित मौद्रिक नीति, आयात-निर्यात, आर्थिक नियोजन, आय व साधन का वितरण तथा राजस्व के क्षेत्र की अनेक समस्याओ इत्यादि का अध्ययन व विश्लेषण व्यष्टिपरक आर्थिक प्रणाली द्वारा संभव नहीं है।

अभ्यास प्रश्न 1-

1- व्यष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए एवं इसकी प्रमुख सीमाएं बताइएं ?

2- व्यष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र को स्पष्टकीजिए ?

3- आर्थिक नीति निर्धारण में व्यष्टि अर्थशास्त्र के दो महत्वपूर्ण उपयोग क्या है ?

4- निम्न में सत्य/असत्य बताइएं-

क- व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र में अर्थव्यवस्था का समग्र स्तर पर अध्ययन किया जाता है।

ख- एक उपभोक्ता के मांग वक्र की चर्चा व्यष्टिपरक विश्लेषण के अन्तगत की जाती है।

ग- व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण को ‘‘मूल्य सिद्वान्त’’ भी कहा जाता है।

घ- आर्थिक कल्याण का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र से सम्बन्धित नहीं है।

5- रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिएः-

क- ‘‘माइक्रो इकोनामिक्स’’ तथा ‘‘मेंक्रो इकोनामिक्स’’ शब्दो का प्रयोग 1933 में ....द्वारा किया गया।

ख- एक बाजार के प्रत्येक उपभोक्ता के व्यक्तिगत मांग वक्रो का योग ....वक्र कहलाता है।

2.3 समष्टिपरक अर्थशास्त्र

व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र के क्षेत्र व महत्व का अध्ययन के पश्चात् अब हम समष्टिपरक अर्थशास्त्र के बारे में विस्तार से चर्चा करेगे। आर्थिक विश्लेषण में प्रारम्भ से ही अर्थशास्त्रियो द्वारा व्यष्टि विश्लेषण का प्रयोग किया जाता था और यह माना जाता था कि अर्थशास्त्र में केवल व्यष्टि विश्लेषण की ही

आवश्यकता है न कि समष्टिपरक अर्थशास्त्र या समूची अर्थव्यवस्था के विश्लेषण की यद्यपि समश्टि अर्थशास्त्र नया है (रैगनर फ्रिष ने 1933 में सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग किया) प्रयुक्त परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्राचीन समय में इसका विल्कुल प्रयोग नहीं होता था। प्राचीन समय में समश्टि अर्थशास्त्र पृथक शाखा के रूप में भले ही विद्यमान नहीं था इसके बावजूद विभिन्न अर्थशास्त्रियो द्वारा आर्थिक विश्लेषण में यह व्यष्टि अर्थशास्त्र के साथ मिलाकर प्रयुक्त किया गया है।

सन् 1930 की विश्वव्यापी मन्दी ने अर्थशास्त्रियो के दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। जे0 एम0 कीन्स ने स्पष्ट रूप से कहा कि "पूर्ण रोजगार" की स्थिति का अध्ययन करने के लिए समष्टिपरक विश्लेषण अपनाना चाहिए। कीन्स ने अपने क्रांतिकारी पुस्तक- **"General theory of employment, interesat and money"** में व्यष्टि भावी आर्थिक विश्लेषण को अनावश्यक नहीं कहा अपितु उसकी त्रुटियो पर उचित प्रकाश डाला। समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण में कीन्स के पश्चात जो भी विकास सिद्वान्त यथा-**हैराड डोमर का विकास मॉडल, कैल्डॉर का मॉडल** आदि विकसित हुए, वे सभी कीन्स के विचारो के विस्तृत तथा परिस्कृत स्वरूप है। यही कारण है कि बोल्ड़िग सम्पूर्ण समष्टिपरक विचारधारा के विकास का श्रेय जे0 एम0 कीन्स को देते है।

कीन्स के पूर्व के अर्थशास्त्रियो , जिन्हे "प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री" या "क्लासिकल अर्थशास्त्री" भी कहा जाता है, वे अर्थव्यवस्था में सदैव **"पूर्ण रोजगार"** की मान्यता स्वीकार करते थे। उनकी इस पूर्वकल्पना के अनुसार किसी भी समय अर्थव्यवस्था में स्वयंमेंव पूर्ण रोजगार होता है और इसलिए राष्ट्रीय आय भी पूर्ण रोजगार के अनुसार रहेगी, अतः न तो रोजगार सिद्वान्त प्रतिपादित करने का प्रश्न उठा और न ही किसी आय सिद्वान्त के निर्माण की। जबकि सिद्वान्त और अनुभव दोनो ही आधारो पर यह स्पष्ट होता है कि यह कदापि आवश्यक नहीं कि अर्थव्यवस्था में सदैव पूर्ण रोजगार की स्थिति रहती है। क्योकि प्रायः देखने में आता है कि देश में कई बार भीषण बेरोजगारी हो जाती है जिससे राष्ट्रीय आय बहुत कम हो जाती है तथा कई बार आय का स्तर बढ़ जाता है और बेरोजगारी भी समाप्त हो जाती है, इतना ही नहीं कई देशो में तो रोजगार का स्तर पूर्ण रोजगार के स्तर से काफी नीचे ही रहता है। अतः यह स्पष्टहै कि अब पूर्ण रोजगार की धारणा को सत्य बिल्कुल नहीं माना जाता और अर्थव्यवस्था में आय के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने हेतु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में आय तथा रोजगार के स्तर के निर्धारको का विश्लेषण अत्यन्त आवश्यक है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि 1930 की विश्वव्यापी मंदी, द्वितीय विश्वयुद्व, अल्प विकसित देशो के तीव्र विकास की आवश्यकता व व्यापार चक्रो को सुलझाने की आवश्यकता आदि समष्टि अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण कारक रहे है। कीन्स के अतिरिक्त अन्य अर्थशास्त्रियो यथा वालरस, विकसैल, फिशर आदि ने समष्टिपरक अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

2.4.1- परिभाषा

समष्टि परक अर्थशास्त्र, आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जो किसी एक व्यक्तिगत इकाई का नहीं अपितु समस्त इकाई के आर्थिक व्यवहार का सामूहिक अध्ययन करती है। अतः समष्टिगत अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित समूहों जैसे- राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय बचत, राष्ट्रीय विनियोग, कुल रोजगार, कुल उत्पादन व सामान्य कीमत स्तर का अध्ययन किया जाता है।
प्रो0 शेपिरो के अनुसार- 'समष्टिगत अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्यकरण से सम्बन्धित है।'
"Macro Economics deals with the functioning of the economics as a whole"- **Shapiro, E**.
प्रो0 बोल्डिंग भी स्पष्ट करते हैं कि- श्समष्टि परक अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत मात्राओं का अध्ययन नहीं किया जाता अपितु इनके योग का अध्ययन किया जाता है। इसका सम्बन्ध व्यक्तिगत आय से नहीं बल्कि राष्ट्रीय आय से हैं, व्यक्तिगत कीमतों से नहीं अपितु सामान्य कीमत स्तर से होता हैय व्यक्तिगत उत्पादन से नहीं बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन से होता है।श्

"Macro Economics deals not with individual qualitiesa as such but with aggregatesa of their quantitiesa, not with individual income but with national income, not with individual output but with national output."**Boulding, K.E.**
अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "**आर्थिक विश्लेषण**" में प्रो0 बोल्डिंग स्पष्ट कहते है कि समष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के विशाल समूहों व औसतों का अध्ययन किया जाता है। वह समूची व्यवस्था का अध्ययन करता है उसकी व्यक्तिगत इकाईयों का नहीं। आइए अब हम व्यष्टिपरक और समष्टि परक अर्थशास्त्र की परिभाषाओं पर गहराई से विचार करते है। व्यष्टि अर्थशास्त्र व समष्टि परक अर्थशास्त्र की परिभाषाओं से हमें एक महत्वपूर्ण तथ्य यह प्राप्त हो रहा है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र में भी समूहों का अध्ययन किया जाता है, परन्तु ये समूह समूहों से भिन्न होते हैं जिनका सम्बन्ध समष्टिपरक अर्थशास्त्र से है।

आइए इसे एक उदाहरण द्वारा सरलता पूर्वक समझने का प्रयास करें। यह तो आप जानते ही हैं कि व्यष्टि अर्थशास्त्र में बाजार मांग व पूर्ति की परस्पर क्रियाओं द्वारा किसी वस्तु या पदार्थ की कीमत निर्धारण का अध्ययन किया जाता है। परन्तु एक पदार्थ या वस्तु की बाजार मॉग वक्र उन विभिन्न उपभोक्तओं की व्यक्तिगत मॉगों का योग होता है जो उस पदार्थ को क्रय करने के लिए तैयार हैं। बाजार पूर्ति उसी पदार्थ का उत्पादन करने वाली विभिन्न फर्मो के उत्पादन का योग है। परन्तु समष्टि परक अर्थशास्त्र जिन समूहों का वर्णन करता है वे भिन्न प्रकृति के होते हैं और उनका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से होता है।

प्रो0 गार्डनर एक्ले इस विभेद को अत्यन्त सहजता से स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि- 'समष्टि अर्थशास्त्र में भी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से छोटे समूहों का प्रयोग किया जाता है परन्तु इसकी प्रकृति

इस प्रकार की होती है कि वे पूर्ण अर्थव्यवस्था के योग के उपविभाग बन जाते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र भी समूहों का प्रयोग करता है परन्तु पूर्ण अर्थव्यवस्था के योग के सन्दर्भ में नहीं।,

अतः यह कहा जा सकता है कि समष्टि परक अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जो समस्त अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित बड़े योगों एवं औसतों का तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है।

2.4.2 समष्टिपरक अर्थशास्त्र का क्षेत्र-

व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र के क्षेत्र से अवगत होने के पश्चात आप समष्टिपरक अर्थशास्त्र के क्षेत्र से भी अवगत होना चाहेंगें।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषा से स्पष्ट है कि समष्टिगत अर्थशास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के बड़े समूहों, भागों व औसतों का अध्ययन किया जाता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समष्टिपरक अर्थशास्त्र में निम्न प्रमुख शीर्षकों का विश्लेषण किया जाता है-

i. अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय तथा रोजगार का निर्धारण कैसे होता है?
ii. आर्थिक विकास के प्रमुख निर्धारक तत्व कौंन-कौंन से हैं तथा विकास की प्रमुख समस्याएं क्या हैं?
iii. मुद्रा स्फीति उत्पन्न होने के क्या कारण है? इसका अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है?
iv. उत्पादन के विभिन्न साधनों के कुल आय कैसे निर्धारित होता है?मजदूरी,लाभ आदि का सापेक्ष सिद्धांत क्या है?
v. अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार का निर्धारण किस प्रकार होता है?
vi. सरकार की आय- व्यय की क्या प्रकृति है? सम्पूर्ण समाज को दृष्टिगत रखकर आर्थिक नीतियों का स्वरूप क्या हों ? आदि।

2.4.3 - समष्टिपरक अर्थशास्त्र का अध्ययन क्यों आवश्यक है?

आर्थिक विश्लेषण की विधि के रूप में समष्टिपरक अर्थशास्त्र के सैद्धान्तिक तथा व्यापारिक महत्व को जानने के पश्चात हम सभी के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर समष्टिपरक अर्थशास्त्र का अध्ययन क्यों आवश्यक है? आइए निम्नांकित बिन्दुओं के संदर्भ में इसे जानने का प्रयास करते हैं-

i. आधुनिक आर्थिक प्रणाली अत्यन्त ही जटिल है। इसमें राष्ट्रीय आय, सकल राष्ट्रीय उत्पाद, राष्ट्रीय व्यय, सकल बचत व विनियोग जैसे जटिल समूहों का अध्ययन किया जाता है।

ii. अर्थशास्त्र का अन्तिम उद्देश्य व्यक्तिगत हितो का विश्लेषण करना नहीं अपितु सामान्य हितों का विश्लेषण करना है, जो समष्टिपरक अर्थशास्त्र द्वारा ही संभव है।

iii. किसी भी अर्थव्यवस्था में आर्थिक नीतियों का निर्माण केवल व्यक्तिगत व्यवहार के आधार पर संभव नहीं हैं इसके लिए समस्त अर्थव्यवस्था और आर्थिक समूहों के अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है।

iv. अर्थव्यवस्था के अनेक आधुनिक सिद्धांत यथा- राष्ट्रीय आय व रोजगार का सिद्धांत, सामान्य कीमत व मुद्रा स्फीति का सिद्धांत, आर्थिक विकास एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत जिनको समझने हेतु समष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण की आवश्यकता पड़ती है। अतः यह आधुनिक आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में उपयोगी है।

v. समष्टि परक विश्लेषण अर्थव्यवस्था में विद्यमान सामान्य बेरोजगारी के कारणो का विश्लेषण कर इन्हें दूर करने हेतु नीतियों के निर्माण में सहायक होता है। क्योंकि आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य समस्या बेरोजगारी ही है।

vi. राष्ट्रीय आय के रुप में अर्थव्यवस्था के समस्त कार्यों के मूल्यांकन हेतु समष्टि परक अर्थशास्त्र का अध्ययन उपयोगी है। इससे आर्थिक स्तर के पूर्वानुमान व जनसंख्या के श्रेणीवार-कार्यात्मक वितरण की जानकारी प्राप्त होती है।

vii. समष्टिपरक अर्थशास्त्र के द्वारा ही किसी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के संसाधनों व क्षमताओं का मूल्यांकन संभव हो पाता है। इससे अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय, उत्पादन व रोजगार की प्रभावकारी नीतियों का निर्माण व क्रियान्वयन सुनिश्चित हो पाता है।

viii. समष्टि परक अर्थशास्त्र का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय तुलना में सहायक होता है। जैसे दो या दो से अधिक अर्थव्यवस्थाओं के प्रति व्यक्ति आय के स्तर की तुलना करनी हो या उपभोग व बचत की तुलना करनी हो, इन सभी के लिए समष्टिपरक विश्लेषण अत्यन्त उपयोगी है।

ix. व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांतो के निर्माण व विकास के लिए भी समष्टि परक अर्थशास्त्र अनिवार्य है।

उपर्युक्त तथ्यों से हम यह समझ सकते हैं कि समष्टि परक अर्थशास्त्र किसी अर्थव्यवस्था के कार्य-करण के सम्बन्ध में राष्ट्रीय आय, उत्पादन, विनियोग, बचत तथा उपभोग आदि के व्यवहारों को सुस्पष्ट व सुपरिभाषित करता है। इसके साथ ही यह स्फीति, बेरोजगारी एवं आर्थिक विकास की समस्याओं के निवारणार्थ आवश्यक सिद्धांतो के निर्माण हेतु भी उपयोगी है।

2.4.4. समष्टिपरक अर्थशास्त्र के दोष एवं सीमाएं क्या है?

यद्यपि समष्टि परक अर्थशास्त्र महत्वपूर्ण है और दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होता जा रहा है, फिर भी इसकी कुछ सीमाएं या दोष है जिनको ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है-

1 **वैयक्तिक इकाईयों के आधार पर लिए गये निष्कर्ष समष्टि अर्थशास्त्र के लिए सदैव सत्य नहीं होते** - यह मान्यता कि व्यक्तिगत इकाईयों के व्यवहार का सम्पूर्ण जोड़ समग्र आर्थिक (समष्टिपरक) व्यवहार के समान ही होगा से भ्रान्ति की अवस्था उत्पन्न हो सकती है। यह आवश्यक नहीं कि जो बात एक व्यक्ति के विषय में सत्य हो वह सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली या समाज पर भी लागू हो। इस प्रकार के कुछ उदाहारण निम्नवत है-

a. यदि एक व्यक्ति बैंक से अपनी जमा निकालता है तो कोई खतरा नहीं हैं परन्तु यदि एक ही साथ सभी व्यक्ति बैंक से अपनी जमाएं निकालने लगें तो इसके परिणाम भंयकर होंगे और बैंकिंग व्यवस्था टूट जाने की सम्भावना होगी।

b. एक व्यक्ति की दृष्टि से बचत करना एक गुण माना जाता है परन्तु यदि सभी व्यक्ति बचत शुरू कर दें और उसका विनियोग न करें तो यह राष्ट्र के लिए एक अभिशाप सिद्ध होता है क्योंकि ऐसी बचत से उपभोग वस्तुओं की मॉग में कमी आएगी। इसका परिणाम यह होगा कि उत्पादन, रोजगार एवं आय में निरन्तर गिरावट आएगी।

c. एक व्यक्ति के पास मुद्रा की मात्रा बढ़ना लाभप्रद है, लेकिन समाज (चलन) में मुद्रा की मात्रा बढ़ना (उत्पादन में वृद्धि किये बिना) अर्थव्यवस्था के लिए घातक सिद्ध हो सकता है क्योंकि इससे मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

2 **वैयक्तिक इकाईयों की अवहेलना**-समष्टिपरक अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण समाज पर तो ध्यान दिया जाता है जबकि वैयक्तिक इकाईयों या छोटे-छोटे समूह जिनसे समाज या अर्थव्यवस्था की रचना होती हैं की अवहेलना की जाती है।

3 **समूह की माप सम्बन्धी कठिनाईयॉ** -आर्थिक समूह का निर्माण जिन इकाईयों से होता है वे विभिन्न स्वभाव वाली होती है। भिन्न - भिन्न मात्राओं की मापक इकाईयॉ भिन्न-भिन्न होती है। जैसे 5 क्विंटल गेहूं को 10 मी0 कपड़े या 10 मकानो के समूह के साथ नहीं जोड़ा जा सकता । समान्यतः इनको एक साथ जोडने हेतु मुद्रा का उपयोग किया जाता है परन्तु मुद्रा की कीमत स्वयं ही बदलती रहती है। इससे आर्थिक योगों की तुलना अत्यन्त कठिन हो जाती है।

4 **समूह में समरूपता की समस्या** -कभी-कभी ऐसे समूहों के सम्बन्धों की चर्चा शुरू हो जाती है जिनमें जरा भी समरूपता नहीं पायी जाती, यह अनुचित एवं भ्रामक है। आर्थिक विश्लेषण में हमें सदैव ऐसे समूहों का सम्मिलित करना चाहिए जिनमें एकरूपता अथवा सजातीयता हो।

5 **सामूहिक प्रवृत्ति अर्थव्यवस्था के सभी खण्डो को एक समान रूप से प्रभावित नहीं करती-** यह भी सम्भव है कि सामूहिक चर अर्थव्यवस्था के सभी खण्डों को आवश्यक रूप से प्रभावित न करें । उदाहरणार्थ- एक देश की राष्ट्रीय आय सब व्यक्तिगत आयों का जोड़

है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि का अर्थ यह नहीं हैं कि सभी व्यक्तियों की व्यक्तिगत आय भी बढ़ गई हैं। ऐसा भी संभव हैं कि कुछ धनी व्यक्तियों की आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई हो। स्पष्ट हैं कि राष्ट्रीय आय में ऐसी वृद्वि का समाज के दृष्टिकोण से कोई महत्व नहीं है। समष्टि परक अर्थशास्त्र की उपर्युक्त कमियों से हम इस तथ्य से अवगत होते हैं कि समष्टि अर्थशास्त्र की कठिनाईयाँ या तो व्यक्तिगत इकाईयों के योग के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष को लेकर है या सीधे योग के अध्ययन करने से होती हैं। क्योंकि इन दोनों क्रियाओं में प्रायः योग (समूह) के विभिन्न अंगो और उनके पारस्परिक सम्बंधों पर ध्यान नहीं दिया जाता।

स्पष्ट हैं कि समष्टि अर्थशास्त्र की उक्त मान्यताएं अकेले व्यक्ति के संदर्भ में तो सत्य होती हैं, परन्तु जब समग्र अर्थव्यवस्थों पर लागू की जाती है तो असत्य सिद्ध होते हैं। प्रो0 बोल्डिंग इन कठिनाईयों को ‘समष्टि आर्थिक विरोधामास’ संज्ञा देते है।

2.5 व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र और समष्टिपरक अर्थशास्त्र में अन्तरः

व्यष्टिपरक एवं समष्टिपरक अर्थशास्त्र की परिभाषा, क्षेत्र, महत्व व उनकी सीमाओं के व्यापक विश्लेषण से अर्थशास्त्र की इन दोनों शाखाओं के मध्य अन्तर से आप अब तक भली भॅाति अवगत हो चुकें होगें । संक्षेप में (एक दृष्टि में) व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र व समष्टिपरक अर्थशास्त्र के मध्य प्रमुख महत्वपूर्ण अन्तरों को निम्न सारिणी में उल्लेखित किया गया हैं-

क्र. सं.	व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र	समष्टिपरक अर्थशास्त्र
1.	इसमें व्यक्तिगत आर्थिक इकाई का अध्ययन होता है।	इसमें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का वृहत् एवं एक समग्र इकाई के रूप में अध्ययन होता है।
2.	यह वैयक्तिक कीमतों, उपभोग व वैयक्तिक उत्पादन का विश्लेषण करता है।	यह समग्र अर्थव्यवस्था के सामान्य मूल्य, कुल योग, कुल उत्पादन व राष्ट्रीय आय की बात करता है।
3.	यह वैयक्तिक समस्याओं का समाधान एवं नीति प्रस्तुत करता हैं।	यह सम्पूर्ण अर्थव्यस्था की समस्या का समाधान व उपयुक्त नीति प्रस्तुत करता हैं।
4.	इसका क्षेत्र सीमान्त विश्लेषण पर आधारित नियमों तक सीमित है।	इसका क्षेत्र राष्ट्रीय आय, पूर्ण रोजगार, राजस्व आदि समग्र अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित समस्याओं के विश्लेषण तक विस्तृत है।
5.	यह वैयक्तिक फर्मो, उद्योगो व उत्पादन इकाईयों में उतार चढ़ाव की व्या-ख्या	यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के उतार चढ़ाव, आर्थिक मन्दी, अवसाद व तेजी की व्याख्या

	करता है।	करता है।
6.	यह कीमत विश्लेषण से सम्बन्धित है।	यह आयविश्लेषण से सम्बन्धित है।-
7.	यह पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित हैं।	यह पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित नहीं है।
8.	इसका महत्व आजकज अपेक्षाकृत कम हैं।	इसका महत्व दिनों दिन बढता जा रहा है। -

अभ्यास प्रश्न 2

1. (सत्य/असत्य)

(ग) औद्योगिक नीति, राजकोषीय व मौद्रिक नीतियों का विश्लेषण समष्टि परक अर्थशास्त्र के अर्न्तगत संभव होता हैं। (सत्य/असत्य)

(घ) यह आवश्यक नहीं कि जो गुण एक व्यक्ति के लिए सत्य है वह सम्पूर्ण समाज या अर्थव्यवस्था के लिए भी सत्य हो। (सत्य/असत्य)

(ड) सामान्य बेरोजगारी के कारणों का मूल्याँकन व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र के अर्न्तगत सम्मिलित किया जाऐगा। (सत्य/असत्य)

(च) समष्टिपरक विचारधारा के विकास का श्रेय जे. एम. कीन्स को दिया जाता हैं। (सत्य/असत्य)

(ज) समष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिगत समस्याओं का अध्ययन करता है जबकि व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र समग्र अर्थव्यवस्था के अध्ययन से।

2.6 व्यष्टि परक अर्थशास्त्र और समष्टिपरक अर्थशास्त्र की पारस्परिक निर्भरता

व्यष्टिपरक एवं समष्टिपरक अर्थशास्त्र के व्यापक विश्लेषण से हम इस तथ्य से अवगत हो चुके हैं कि इन दोनों आर्थिक प्रणालियों में से कोई भी प्रणाली अपने में पूर्ण नहीं है, प्रत्येक की कुछ सीमाएं है। वास्तविकता यह है कि एक प्रणाली की सीमाएं तथा दोष दूसरी प्रणाली द्वारा दूर हो जाते है अतः दोनों रीतियॉ एक दूसरे पर निर्भर करती है। अर्थशास्त्र की ये दोनों विधियॉ परस्पर एक दूसरे की प्रतियोगी नहीं अपितु पूरक है। आर्थिक विश्लेषण की ये दोनो रीतियों की पारस्परिक निर्भरता को हम कुछ उदाहरण से समझ सकते है।

2.6.1 व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र की समष्टिपरक अर्थशास्त्र पर निर्भरता -

व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र को समष्टिपरक अर्थशास्त्र को सहारा आवश्यक है। यह बात आप निन्न उदाहरणों द्वारा समझ सकते हैं-

(अ) एक व्यक्तिगत फर्म या उद्योग श्रम, कच्चेमाल, मशीनों आदि के लिए जो कीमते देता है वे केवल उस फर्म या उद्योग की उन साधनों की स्वयं की मॉग पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि इस तथ्य पर निर्भर करती है कि इन साधनों की समस्त अर्थव्यवस्था में कुल मॉग कितनी है?

(ब) किसी एक वस्तु का मूल्य निर्धारण केवल उस वस्तु की मॉग एवम पूर्ति पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि अन्य वस्तुओं की कीमतो पर भी निर्भर करता हैं।

(स) एक फर्म को अपनी उत्पादन मात्रा निश्चित करते समय समाज की मॉग आय व रोजगार आदि को भी ध्यान में रखना पड़ता है। अर्थात प्रत्येक फर्म में कीमत, मजदूरी, उत्पादन स्वतंत्र रूप से निर्धारित नहीं हो सकती। इसके लिए समष्टि आर्थिक विश्लेषण का सहारा लेना पड़ता है।

2.6.2. समष्टिपरक अर्थशास्त्र की व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र पर निर्भरता -

समष्टिपरक अर्थशास्त्र के अध्ययन में व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता रहती है। यह बात निम्न उदाहरणों से समझी जा सकती है-

(अ) जिस प्रकार व्यक्तियों का समूह मिलकर समाज बनता है उसी प्रकार फर्मो का समूह एक ष्उद्योगष् और बहुत से उद्योगो को मिलाकर एक अर्थव्यवस्था का निर्माण होता है। अतः सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को समझने के लिए व्यक्तियों, परिवारों,फर्मो और उद्योगों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है।

(ब) माना कि समाज के सभी लोगों की आय बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई आय को लोग विभिन्न प्रकार से व्यय करते है। यदि लोग लकडी के फर्नीचर की अपेक्षा स्टील के फर्नीचर अधिक खरीदने लग जाते है तो स्टील फर्नीचर उद्योग का विकास अधिक होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था की सामान्य प्रवृत्ति को तभी अच्छी प्रकार समझा जा सकता है जब हमें उन सिद्वातों का ज्ञान हो जो कि व्यक्तियों, परिवारों और फर्मों के व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं।

व्यष्टिपरक तथा समष्टिपरक विश्लेषण के मध्य अर्न्तसम्बन्धो के अध्ययन से अब आप भलीभॉति अवगत हो चुके होगें कि आर्थिक विश्लेषण की दो पृथक विधियॉ होने के बावजूद भी व्यष्टि परक अर्थशास्त्र तथा समष्टि परक अर्थशास्त्र परस्पर स्वतंत्र न होकर एक दूसरे पर आश्रित हैं। दोनों ही पद्धतियॉ एक दूसरे की पूरक हैं। अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को सही ढंग से समझने के लिए हमें दोनों पद्वतियों की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में प्रख्यात अर्थशास्त्री प्रो0 सेम्युलसन का मत

उल्लेखनीय है कि वास्तव में व्यष्टि तथा समष्टि परक अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं हैं। दोनों अत्यन्त आवश्यक है। यदि आप एक को समझते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ रहते हैं तो आप केवल अर्द्धशिक्षित है।

अभ्यास प्रश्न 3-

1.निम्न में व्यष्टि परक तथा समष्टिपरक घटनाओं को पृथक-पृथक कीजिए।

(क) - मुद्रा की पूर्ति ,(ख) - विदेशी विनिमय का अंर्तप्रवाह या वर्हिप्रभाव ,(ग) - सेबों का बाजार मॉग ,(घ) - घरेलू व्यय ,(ड़) – गेहूं की आपूर्ति ,(च) - समग्र मॉग ,(छ) - उत्पाद कीमत

(ज) - साधन कीमत निर्धारण ,(झ) - सरकारी बजट ,(ञ) - विदेशी विनिमय दर ,(ट) - मुद्रा स्फीति की दर ,(ठ) - फिल्म उद्योग ,(ड) - भारत का कार उद्योग ,(ढ) - खाद्यान्नों का बफॅर स्टाक

(ण) - ओपेक देशों द्वारा तेल के मूल्यों में वृद्धि,(त) - संसाधनों का वितरण

2.7. सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत आपने व्यष्टिपरक अर्थशास्त्र तथा समष्टिपरक अर्थशास्त्र की परिभाषा, क्षेत्र, महत्व तथा उनके मध्य पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों के बारे में विस्तार से पढ़ा। इस इकाई के अन्तर्गत वर्णित अर्थशास्त्र के इन दोनो पद्धतियों के बारे में संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

अर्थशास्त्र के अध्ययन की दो पद्धतियॉ है- व्यष्टि परक तथा समष्टि परक विश्लेषण। व्यष्टि परक अर्थशास्त्र में अर्थव्यवस्था की सूक्ष्म इकाईयों यथा- उपभोक्ता, एक फर्म, एक श्रमिक आदि के संतुलन या मूल्य निर्धारण की बात की जाती है जबकि समष्टिपरक अर्थशास्त्र में अर्थव्यवस्था का सामूहिक या समग्र अध्ययन किया जाता है।

आधुनिक आर्थिक सिद्धांत की एक महत्वपूर्ण शाखा होने के बावजूद व्यष्टि अर्थशास्त्र की कई सीमाएं है। यह एक पक्षीय अध्ययन है, इसकी कई मान्यताएं अवास्तविक होतीं हैं। इसके निष्कर्ष सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से ठीक नहीं होते तथा यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन में असमर्थ है। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय, रोजगार व आर्थिक विकास के साथ ही साथ मुद्रा स्फीति तथा सामान्य बेरोजगारी जैसी ज्वलंत आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण करने वाला समष्टि परक अर्थशास्त्र भी दोषों से मुक्त नहीं है।

व्यष्टिपरक तथा समष्टिपरक प्रणालियों में से कोई भी अपने आप में पूर्ण नहीं है। व्यष्टिपरक की सीमाएं तथा दोष समष्टिपरक विश्लेषण से तथा समष्टिपरक की कमियॉ व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण

से दूर हो सकती हैं। अतः अर्थशास्त्र की ये दोनों पद्धतियॉ परस्पर एक दूसरे की प्रतियोगी नहीं अपितु पूरक हैं।

2.8. शब्दावली

पूर्ण रोजगार: पूर्ण रोजगार प्रत्येक अर्थव्यवस्था की एक वांछनीय आदर्श स्थिति है, जिसमें उत्पादन के सभी साधन पूर्णतया प्रयुक्त (नियोजित)हो चुके होते हैं।

स्फीति- अर्थव्यवस्था में उत्पादन में वृद्वि हुए बिना वस्तुओ की कीमतो का लगातार बढ़ते जाना मुद्रास्फीति कहलाती है।

फर्म- एक समान वस्तुओं का उत्पादन करने वाली इकाई फर्म कहलाती है।

उद्योग- एक समान वस्तुओं का उत्पादन करने वाली इकाई फर्मो का समूह उद्योग कहलाता है।

मौद्रिक नीतिः- मुद्रा की पूर्ति एवं कीमत स्थिरता से संबन्धित नीति जो मौद्रिक प्राधिकारी (भारतीय रिजर्ब बैंक) द्वारा निर्मित की जाती है, मौद्रिक नीति कहलाती है।

सार्वजनिक नीतिः- सरकार के व्यय, आय (करारोपण) व उधारी से सम्बन्धित नीति जो वित मंत्रालय द्वारा प्रस्तुत की जाती है, सार्वजनिक नीति कहलाती है।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1- 1(क) असत्य (ख) सत्य (ग) सत्य (घ) असत्य 2(क) रैगनर फ्रिश (ख)बाजार मॉग

अभ्यास प्रश्न 2- 1.(क) सत्य (ख) असत्य (ग) सत्य (घ) सत्य (ड़) असत्य

2.रिक्त स्थानों की पूर्ति-(क) समष्टिपरक अर्थशास्त्र (ख) प्रतिष्ठित या क्लासिकी (ग) व्यष्टि परक विश्लेषण(घ) 1936ई0

अभ्यास प्रश्न 3-1.निम्न में व्यष्टि परक तथा समष्टिपरक घटनाओं को पृथक - पृथक कीजिए।

व्यष्टिपरक घ्रटनाएं /कारक -(ग) - सेबों का बाजार मॉग (घ) - घरेलू व्यय (ड) - गेहू की आपूर्ति (छ) - उत्पाद कीमत (ज) - साधन-कीमत निर्धारण (ठ) - फिल्म उद्योग(ड) - भारत का कार उद्योग (त) - संसाधनों का वितरण

समष्टिपरक घ्रटनाएं /कारक - (क) - मुद्रा की पूर्ति (ख) - विदेशी विनिमय का अंर्तप्रवाह या वर्हिप्रभाव (च) - समग्र मॉग (ञ) - विदेशी विनिमय दर (ट) - मुद्रा स्फीति की दर (ढ) - खाद्यान्नों का बफॅर स्टाक (ण) - ओपेक देशों द्वारा तेल के मूल्यों में वृद्धि

2.10. संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Dwivedi, D. N. (2008): Micro Economics 7th edition vikas Publish House New Delhi.
- Koutsiyanniesa, A- (1997) –Microeconomics Analysis New Delhi.
- Mishra S.K & Puri V.K. (2003) – Modern micro economic theory Himalaya Publishing House.
- Sethi T. T (2006) – 'Principlesa of Economics' Lakshmi Narayan Agrawal agra
- Ahuza ,H.L (2010) – "Principlesa of Microeconomics", S.chand publishing house,new delhi.
- Seth,M.L.(2007),'Microeconomics'lakshmi naray agrawal,Agra

2.11.उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- आहूजा, एच0 एल0 (2003) उच्चतर आर्थिक सिद्वात (व्यष्टि परक आर्थिक विश्लेषण) एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
- सिन्हा, वी0 सी0 (1999) व्यष्टि अर्थशास्त्र, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- आहूजा, एच0 एल0(1999)उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र, एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस
- जैन, के0 पी0 (1987) व्यष्टि अर्थशास्त्र साहित्य भवन, आगरा
- लाल, एस0 एन0 (1999)व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद
- सिंह, देव नारायण (2004) व्यष्टिअर्थशास्त्र- अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए। आर्थिक विश्लेषण में समष्टि दृष्टिकोण की आवश्यकता को बताइए।

2. एक अर्थशास्त्री को समष्टि परक अर्थशास्त्र के साथ ही साथ व्यष्टि अर्थशास्त्र का भी अध्ययन करना होता है। ये दोनो एक दूसरे की वैकल्पिक अध्ययन विधि न होकर आपस में पूरक हैं। इस कथन की विवेचना कीजिए।

3. व्यष्टि परक अर्थशास्त्र तथा समष्टि परक अर्थशास्त्र के बीच भेद किजिए। समष्टि परक आर्थिक विश्लेषण की कठिनाईयों को बताइए।

4. अर्थशास्त्री को आर्थिक समस्याओं के हल में व्यष्टि तथा समष्टि दोनों प्रकार के विश्लेषण का उपयोग करना होता है। उनकी प्रकृति व सापेक्ष महत्व का विवेचन कीजिए।

इकाई - 3 आर्थिक स्थैतिकी तथा प्रावैगिकी एवं सामान्य सन्तुलन विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

3.1. प्रस्तावना
3.2. उद्देश्य
3.3 आर्थिक स्थैतिकी
    3.3.1. स्थैतिक विश्लेषण के प्रकार
    3.3.2. तुलनात्मक स्थैतिकी
    3.3.3. आर्थिक स्थैतिकी का महत्व
3.4 आर्थिक प्रावैगिकी
    3.4.1. आर्थिक प्रावैगिकी के प्रकार
    3.4.2. प्रावैगिकी का महत्व तथा क्षेत्र
    3.4.3. प्रावैगिकी की सीमाएं
3.5 सामान्य सन्तुलन विश्लेषण
3.6सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.10. सहायक/उपयोगी ग्रन्थ
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1. प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई में आर्थिक सिद्धांतो के दो प्रकारों- व्यष्टि परक विश्लेषण तथा समष्टि परक आर्थिक विश्लेषण की चर्चा की गयी। इसके अन्तर्गत आपने यह जाना कि वर्तमान समय में आर्थिक सिद्धातों को मुख्यतः इन्हीं दो शीर्षको के अन्तर्गत विभाजित किया जाता है।

अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किसी समस्या के फलनात्मक सम्बन्धो के विश्लेषण हेतु दो प्रकार की अध्ययन प्रविधि प्रयुक्त होती है- ष्स्थैतिक तथा प्रावैगिकष्। आधुनिक अर्थशास्त्र के विश्लेषण में स्थैतिक या आर्थिक स्थैतिकी तथा प्रावैगिक या आर्थिक गतिकी दोनों ही शब्दों की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही हैं। स्थैतिक तथा प्रावैगिक शब्दों का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांसीसी अर्थशास्त्री काम्टे ने किया परन्तु अर्थशास्त्र में इन शब्दों का प्रयोग सर्वप्रथम जे0 एस0 मिल द्वारा किया गया। यदि किसी आर्थिक माडल के सभी चर एक ही समयावधि से सम्बन्धित हों और जिनके तिथिकरण की कोई समस्या ही नहीं हो तो इन चरों के मध्य स्थैतिक सम्बन्ध होगा। जबकि यदि माडल के चर विभिन्न समयावधि से जुडे हो तथा उनका तिथिकरण भी हो, तो यह प्रावैगिक सम्बन्ध कहलाता है। आर्थिक स्थैतिकी ;स्थैतिक अर्थशास्त्रद्ध तथा आर्थिक प्रावैगिकी ;प्रावैगिक अर्थशास्त्रद्ध का प्रयोग व्यष्टिपरक तथा समष्टि परक दोनों ही क्षेत्रों में किया जा सकता हैं।

इस इकाई के अन्तर्गत आर्थिक स्थैतिकी तथा आर्थिक गतिकी की विस्तृत चर्चा की गई है। इसके साथ ही सामान्य सन्तुलन विश्लेषण को भी स्पष्ट किया गया है।

3.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. अर्थशास्त्र के स्थैतिक विश्लेषण व उसकी उपयोगिता को जान सकेगें।

2. प्रावैगिक विश्लेषण को भली भॉति जान पाऐंगे।

3.विकासशील अर्थव्यवस्था में प्रावैगिक विश्लेषण की महत्ता से अवगत हो सकेंगे।

4. सामान्य सन्तुलन विश्लेषण की एक संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 आर्थिक स्थैतिकी

सामान्यतः भौतिक शास्त्र में स्थैतिक शब्द विश्राम की अवस्था (state of resat)को व्यक्त करता है, परन्तु अर्थशास्त्र में इसका समबन्ध किसी मृतक या गतिहीन अर्थव्यवस्था से नहीं होता बल्कि ऐसी अर्थव्यवस्था से होता है जिसमें गति तो होती है परन्तु गति की दर (rate of movement) में कोई

परिवर्तन नहीं होता। यह गति निश्चित और नियमित रूप से होती हैं। उसमें कोई उतार - चढ़ाव या अनिश्चित ता नहीं होती हैं।

हैरॉड के अनुसार - "इस सक्रिय परन्तु अपरिवर्तनशील प्रक्रिया को ही स्थैतिक अर्थशास्त्र कहा जाता है।" स्थैतिक तथा प्रावैगिक के विचारों को अधिक सुस्पष्ट करते हुए **जे. आर. हिक्स**, कहते हैं कि- "आर्थिक सिद्धांत के उन भागो को में स्थैतिक अर्थशास्त्र कहता हॅू जिनमें हमें तिथिकरण की आवश्यकता नहीं पडती तथा उन भागो को प्रावैगिक अर्थशास्त्र कहता हॅू जिनमें प्रत्येक मात्रा का तिथिकरण करना आवष्यक है।"

हिक्स के कथन से स्पष्ट है कि वे स्थिर स्थितियों के विश्लेषण को ही स्थैतिक मानते है। उनके स्थिर स्थितियों का आशय ऐसी स्थितियों से हैं जहॉ मुख्य या आधारभूत बातों में कोई परिवर्तन नहीं होता। जहॉ भूतकाल तथा वर्तमान के मध्य सम्बन्ध पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसका कारण यह है कि परिवर्तन की अनुपस्थिति के कारण वर्तमान से सम्बन्धित तथ्य तथा विश्लेषण किसी भी अन्य समय पर लागू किये जा सकेगें।

हैराड, हिक्स की इस धारणा में थोडा संशोधन कर और स्पष्टता लाने का प्रयास करते हुए बताते है कि- स्थैतिक अर्थशास्त्र को परिवर्तनों की पूर्ण अनुपस्थिति वाली स्थिर अर्थशास्त्र का अध्ययन समझना पूर्णतया सही नहीं हैं। हैरॉड यह स्पष्ट करते है कि कुछ विशेष प्रकार के परिवर्तनों जैसे- मौसमों तथा फसलों में परिवर्तन, एकबारगी परिवर्तन आदि यदि सन्तुलन के स्थापित होने की प्रवृति नष्ट न करते हो तो वे स्थैतिक अर्थशास्त्र में सम्मिलित होंगें। हैरॉड इसी सन्दर्भ में यहॉ तक कहते है कि तिथिकरण के होने या न होने से आर्थिक विश्लेषण प्रावैगिक या स्थैतिक नहीं हो जाता है।

अब तक के विश्लेषण से आपयह समझ चुके होगे कि-

I. आर्थिक स्थैतिकी के लिए सन्तुलन या साम्य का विचार आधार है। अर्थात इसका सम्बन्ध एक क्षण या एक समय विशेष पर अर्थव्यवस्था अथवा किसी विशेष आर्थिक इकाई के केवल साम्य की स्थिति के अध्ययन से होता हैं।
II. स्थैतिक विश्लेषण एक समय-रहित विचार है। इसका अभिप्राय है कि स्थैतिक विश्लेषण समय की उपेक्षा करता है। स्थैतिक विश्लेषण मान लेता है कि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के साथ ही तुरन्त समायोजन हो जाता है और यह किसी विशेष आर्थिक इकाई के केवल एक स्थिर चित्र का ही अध्ययन करता हैं।

आपयह कह सकते है कि आर्थिक स्थैतिकी, आर्थिक विश्लेषण की एक तकनीकी है जिसके द्वारा किसी आर्थिक विश्लेषण में समय की उपेक्षा की जाती हैं अर्थात परिवर्तन की प्रक्रिया पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। आइए हम इसकी व्याख्या आर्थिक चरों के फलनात्मक सम्बन्ध के रुपमें करते है। आर्थिक विश्लेषण में आर्थिक चरों के मध्य फलनात्मक सम्बन्धो की व्याख्या की जाती हैं। यदि

विश्लेषण के अन्तर्गत हम फलनात्मक सम्बन्धों को उन चरों के मध्य स्थापित करते हैं जिनके मूल्यों का सम्बन्ध एक ही समय या समयावधि से जुड़ा है तो यह विश्लेषण स्थैतिक कहलाऐगा। अर्थात चरों में फलन सम्बन्धों को स्थैतिक तब माना जाऐगा जबकि विभिन्न आर्थिक चरों का सम्बन्ध उसी समय बिन्दु अथवा उसी समयावधि से हो। आइए हम आपको इसे एक उदाहरण से समझाते है- अर्थशास्त्र में मॉग का नियम है कि- ''अन्य बातें समान रहने पर किसी समय में वस्तु की मॉग मात्रा में कीमत परिवर्तन की विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है।'' स्पष्ट है कि यहॉ किसी वस्तु की एक समय विशेष की मॉग उस वस्तु की उसी समय की कीमत पर निर्भर करती है। अतः यह एक स्थैतिक सम्बन्ध कहलाऐगा।

इसे हम गणितीय रूप में निम्न प्रकार लिख सकते है-

$$Dt = f\,(Pt) ____ (i)$$

यहॉ Dt एक वस्तु की एक विशेष समय 't' पर मॉग को व्यक्त करती है।

Pt उसी समय विशेष 't' पर उस वस्तु की कीमत व्यक्त करती है तथा 'f ' फलनात्मक सम्बन्ध का प्रतीक है।

इसी प्रकार आपकिसी वस्तु की कीमत तथा उसकी पूर्ति मात्रा में स्थैतिक सम्बन्ध का भी विश्लेषण कर सकते हैं जिसे गणितीय रूप में हम निम्न प्रकार से लिखेगें ।

$$St = f\,(Pt) ______ (ii)$$

यहॉ St. एक समय विशेष 't' पर वस्तु की पूर्ति की जाने वाली मा़त्रा को व्यक्त करता है।

Pt एक समय विशेष 't' पर वस्तु के अलग-अलग मूल्यों को प्रदर्शित करता है।

अब आपसमझ गए होगें कि उपयुक्त दोनो गणितीय सम्बन्धों में चरों का सम्बन्ध एक ही समय 't' से जुडा होने के कारण इन सम्बन्धों का विश्लेषण स्थैतिक बन जाता हैं। अन्ततः संक्षेपमें हम कह सकते है कि-

i. आर्थिक स्थैतिकी का सम्बन्ध एक क्षण या एक समय विशेष पर अर्थव्यवस्था अथवा किसी आर्थिक इकाई के साम्य के स्थिति के अध्ययन से होता हैं।
ii. स्थैतिक का अर्थ ऐसी अर्थव्यवस्था से है जिसमें गति या हलचल तो होती है परन्तु गति सदा एक समान, नियमित एवं शांतिपूर्ण रहती है।
iii. स्थैतिक अर्थ व्यवस्था में न तो बचत होती है और न ही विनियोग, क्योंकि अर्थव्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता। स्थैतिक अवस्था में पूंजी का संचयन नहीं होता अतः विनियोग भी नहीं होगा। इस स्थिति में कुल बचत कुल विनियोग के बराबर होती है।

iv. स्थैतिक विश्लेषण एक समय रहित धारणा है क्योंकि इसमें एक दिये हुए क्षण या एक दिये हुए समय पर ही आर्थिक तत्वों पर विचार किया जाता हैं।

v. स्थैतिक विश्लेषण का सम्बन्ध केवल वर्तमान से हैं।

3.3.1 स्थैतिक विश्लेषण के प्रकार

स्थैतिक विश्लेषण के अन्तर्गत सन्तुलन का अध्ययन दो प्रकार से संभव है। पहला अर्थव्यवस्था के किसी एक इकाई के सन्तुलन या दूसरा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के सन्तुलन का विश्लेषण किया जाय। इस आधार पर स्थैतिक विश्लेषण के दो रूपहै।

I. व्यष्टि स्थैतिकी या व्यष्टिपरक स्थैतिक सन्तुलन

II. समष्टि स्थैतिकी या समष्टिपरक स्थैतिक सन्तुलन

आइए हम आपको दोनो सन्तुलन को और अधिक विस्तार पूर्वक स्पष्ट करते है।

1.व्यष्टि स्थैतिकी - व्यष्टि स्थैतिकी के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के किसी एक इकाई के सन्तुलन का विश्लेषण किया जाता हैं। इस विश्लेषण में मॉग और पूर्ति के फलनात्मक सम्बन्ध एक स्थिर समय पर कीमत का निर्धारण करते है। (ऊपर मॉग और पूर्ति फलनो के गणितीय स्वरूपको दर्शाया गया है) मॉग और पूर्ति वक्र के दिये हुए होने पर उनके व्यष्टिगत स्थैतिक सन्तुलन को निम्नलिखित चित्र 3.1 में स्पष्ट किया गया है।

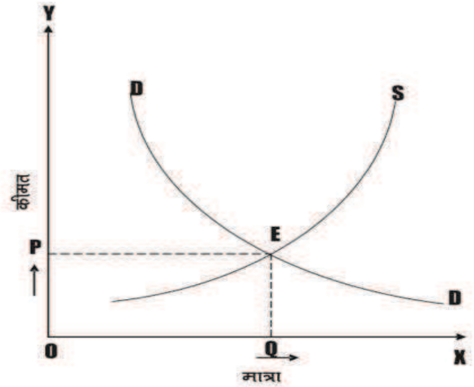

चित्र 3.1

रेखाचित्र के OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY पर वस्तु की कीमत प्रदर्शित हैं। DD रेखा मॉग फलन व SS रेखा पूर्ति वक्र को प्रदर्शित करती हैं। मॉग तथा पूर्ति का सन्तुलन बिन्दु E जिसके द्वारा वस्तु का मूल्य OP निर्धारित होता हैं। P स्थैतिक साम्य का बिन्दु है अतः यह कीमत निर्धारण का

स्थैतिक विश्लेषण है। क्योंकि इस विश्लेषण में समस्त आर्थिक चरों यथा मॉग मात्रा (Dx), पूर्ति मात्रा (Sx) तथा कीमत सभी एक ही समय बिन्दु से सम्बन्धित है।

2.**समष्टि स्थैतिकी या समष्टि परक स्थैतिक सन्तुलन** -समष्टि परक स्थैतिक सन्तुलन के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। प्रो. जे. एम. कीन्स ने इसे अधिक महत्व दिया (इकाई 2 में यह विस्तार से चर्चा कर चूके है कि समष्टि परक आर्थिक विश्लेषण को बढाने का मुख्य श्रेय कीन्स को ही है।) कीन्स के राष्ट्रीय आय के निर्धारण का विश्लेषण मुख्यतः स्थैतिक ही है। इस मॉडल के अनुसार राष्ट्रीय आय का स्तर उस बिन्दु पर निर्धारित होता हैं जहॉ समग्र पूर्ति (कुलपूर्ति) फलन, कुल मॉग फलन को प्रतिच्छेदित करता है। इसे हम चित्र 3.2 में स्पष्ट कर रहे है।

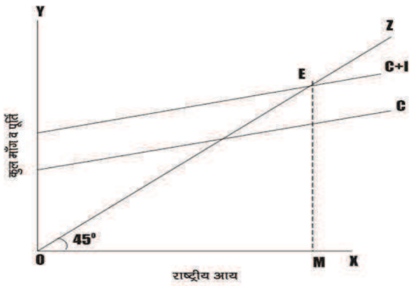

चित्र 3.2

चित्र 3.2 में Y अक्ष पर समस्त पूर्ति तथा समस्त मॉग {उपभोग मॉग तथा निवेश मॉग (C+I)} को मापा गया है तथा X अक्ष पर राष्ट्रीय आय के स्तर को दिखाया गया है। समस्त मॉग (C+I) तथा समस्त पूर्ति म् बिन्दु पर बराबर है और इसलिए राष्ट्रीय आय का सन्तुलन स्तर OM निर्धारित होता है। स्पष्ट है कि यह विश्लेषण पूर्णतया स्थैतिक है क्योंकि समस्त मॉग (C+I) तथा उत्पादन की समस्त पूर्ति का सम्बन्ध एक ही समय बिन्दु से है अर्थात विभिन्न चरों के विश्लेषण में समय तत्व पर ध्यान नहीं दिया गया है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सेम्युलसन स्पष्ट कहते है कि- स्थैतिकी का अभिप्राय निर्धारित नियमों के ढॉचे से है जो आर्थिक व्यवस्था के व्यवहार का निर्धारण करते हैं। वक्रों के जोड़े के परस्पर काटने से स्थापित सन्तुलन स्थैतिक होगा। सामान्यतः यह समय रहित होता है जिसमें प्रक्रिया की अवधि के विषय में कुछ भी नहीं बताया जाता परन्तु इसे किसी भी समय अवधि में सत्य होना कहा जाता है।

3.3.2 तुलनात्मक स्थैतिकी :- तुलनात्मक स्थैतिकी, स्थैतिक तथा प्रावैगिक विश्लेषणों के मध्य की अध्ययन विधि है। स्थैतिक विश्लेषण के अन्तर्गत दिये गये ऑकड़ो की सहायता से सन्तुलन मूल्यों के निर्धारण की व्याख्या की जाती है। जबकि प्रावैगिक विश्लेषण में यह व्याख्या की जाती है कि आधार सामग्री (आंकडों) में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था किस प्रकार एक सन्तुलन

अवस्था से दूसरी सन्तुलन अवस्था में पहुॅचती है। तुलनात्मक विश्लेषण के अर्न्तगत हम प्रारम्भिक सन्तुलन अवस्था की तुलना उस अन्य सन्तुलन अवस्था से करते है जो ऑकड़ो के परिवर्तित होने के फलस्वरुप प्राप्त होती है। अतः तुलनात्मक स्थैतिकी में प्रारम्भिक सन्तुलन अवस्था की तुलना अन्तिम सन्तुलन अवस्था से की जाती है न कि उस समस्त पथ का विश्लेषण किया जाता है जो कोई व्यवस्था एक सन्तुलन स्थिति से चलकर दूसरी स्थिति को प्राप्त करती है। अब आप समझ गये होंगें कि तुलनात्मक स्थैतिकी में विभिन्न सन्तुलन अवस्थाओं (जो ऑकड़ो में परिवर्तन के फलस्वरूप अलग-अलग प्राप्त होते है।) का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण के कई उदाहरण व्यष्टिपरक आर्थिक सिद्धांत में दृष्टिगोचर होते हैं। हम एक सामान्य उदाहरण लेते है- व्यष्टिपरक आर्थिक सिद्धात में किसी वस्तु की कीमत निर्धारण के लिए मॉग और पूर्ति फलन दिया हुआ होता है। मॉग और पूर्ति की परस्पर अन्तः क्रिया से प्रदार्थ या वस्तु की कीमत निर्धारित होती है। अन्य बातें समान रहने पर यदि उपभोक्ताओं की आयों में बृद्धि हो जाती है तो मॉग वक्र उपर की ओर विवर्तित होगा। मॉग में बृद्धि के कारण पूर्ति में भी परिवर्तन होगा और अन्ततः एक नई सन्तुलन अवस्था प्राप्त होगी । इस नई सन्तुलन अवस्था की व्याख्या करनें तथा यह प्रारम्भिक सन्तुलन अवस्था से किस प्रकार भिन्न है का अध्ययन ही तुलनात्मक स्थैतिकी का विषय है।

आइए इसे हम रेखाचित्र के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

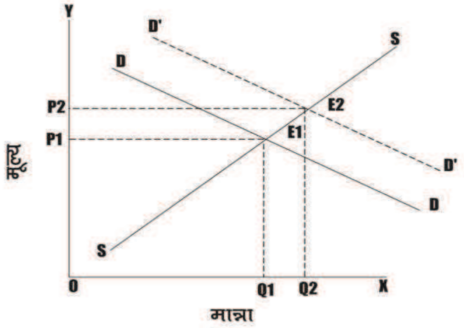

चित्र 3.3

चित्रानुसार (चित्र 3.3) माना प्रारम्भिक स्थिति में मॉग वक और पूर्ति वक्र क्रमशः DD और SS हैं। मॉग एवं पूर्ति वक्रों की परस्पर क्रिया द्वारा पदार्थ का संन्तुलन बिन्दु E_1 निर्धारित होता है। इस स्थिति में पदार्थ की कीमत OP_1 है। जब उपभोक्ताओं की आय में वृद्धि के कारण मॉग वक्र ऊपर की ओर विवर्तित होकर D^1D^1 हो जाती है तो नया सन्तुलन E_2 पर निर्धारित होता है। अब वस्तु की नई कीमत OP_2 है। आप जानते है कि E_1 प्रारम्भिक संतुलन बिन्दु है जबकि E_2 नया सन्तुलन है। अतः

तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण में हम नई सन्तुलन अवस्था E_2 की तुलना प्रारम्भिक सन्तुलन E_1 से करते है। ध्यान रखिए कि व्यवस्था किस पथ पर चलकर E_1 सन्तुलन अवस्था से E_2 सन्तुलन अवस्था तक पहुंचती है उसकी व्याख्या नहीं की जाती। संक्षेप में हम कहें तो तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण में दो सन्तुलनों की दशाओं का तुलनात्मक अध्ययन होता है इसमें परिवर्तन के मार्ग पर कोई विचार नहीं किया जाता।

3.3.3 आर्थिक स्थैतिकी का महत्व-

आर्थिक विश्लेषण में आर्थिक स्थैतिकी का प्रयोग निम्नांकित कारणों से अत्यन्त उपयोगी है-

i. परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था का वैज्ञानिक अध्ययन अत्यन्त कठिन होता है अतः इसके लिए स्थैतिक विश्लेषण की सहायता लेनी पड़ती है।
ii. स्थैतिक विश्लेषण अत्यन्त सरल है क्योंकि इसके लिए उच्च गणितीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती जबकि प्रावैगिक विश्लेषण में उच्च गणितीय ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। स्थैतिक विश्लेषण के द्वारा किन्हीं दो सन्तुलन स्थितियों की तुलना आसानी से की जा सकती है।
iii. अर्थशास्त्र की बहुत सी विषय सामग्री स्थैतिकी के अन्तर्गत आती है। जैसे- स्वतंत्र व्यापार, मूल्य व उत्पादन निर्धारण के सिद्धात, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आदि। इससे स्थैतिक विश्लेषण का महत्व बढ़ जाता है।
iv. स्थैतिक विश्लेषण के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि एक व्यक्ति अधिकतम संतुष्टि हेतु अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओं में किस प्रकार बॉटता है? उत्पादक अधिक लाभ कैसे प्राप्त करता है? कीमतें कैसे निर्धारित होती है? तथा राष्ट्रीय आय का वितरण कैसे होता है? यही कारण है कि जटिल समस्याओं के समाधान में स्थैतिक विश्लेषण अव्यन्त महत्वपूर्ण है।

इसके बावजूद स्थैतिकी की कुछ सीमाएं भी है। यथा-

i. स्थैतिक अर्थशास्त्र स्थिर अर्थव्यवस्था का अध्ययन करता है जबकि वास्तविक जगत परिवर्तनशील है। अतः वास्तविक जगत के सन्दर्भ में इसका प्रयोग बहुत सीमित हो जाता है।
ii. स्थैतिक अर्थशास्त्र पूर्ण प्रतियोगिता, पूर्ण गतिशीलता, अनिश्चितता की अनुपस्थिति, जनसंख्या का निश्चित आकार जैसी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। अतः व्यावहारिक जीवन में यह महत्वपूर्ण नहीं रह जाता।
iii. स्थैतिक विश्लेषण आर्थिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले विभिन्त तत्वों यथा- रूचि, फैशन, रीति-रिवाज, आदतों आदि को स्थिर मान लेता है जबकि वास्तविक जीवन में इनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है।

3.4 आर्थिक प्रावैगिकी

पिछले खण्ड 3.2 में आपने आर्थिक विश्लेषण की स्थैतिक पद्धति या स्थैतिक अर्थशास्त्र के बारे में विस्तार से पढ़ा। अब आप आर्थिक प्रावैगिकी के अर्थ व उसके महत्व के बारे में विस्तृत व सरल अध्ययन करेगें। आर्थिक प्रावैगिकी (प्रावैगिक अर्थशास्त्र) जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह अर्थव्यवस्था में होनं वाले निरन्तर परिवर्तनों तथा परिवर्तन की प्रकिया का अध्ययन करता है। ध्यान रखने योग्य मुख्य बात यह है कि स्थैतिक अर्थशास्त्र की भॉति आर्थिक प्रावैगिकी में आर्थिक तत्वों को स्थिर नहीं माना जाता। स्थैतिकी की भॉति प्रावैगिकी के सम्बन्ध में भी अर्थशास्त्रियों के मत भिन्न-भिन्न है।

जे0 आर0 हिक्स आर्थिक सिद्धांत के उन भागों को ही प्रावैगिकी के अर्न्तगत मानते है जिनमें प्रत्येक मात्रा का तिथिकरण करना आवश्यक हो। आपने पीछे पढ़ा है कि हिक्स उस भाग को स्थैतिक अर्थशास्त्र के अर्न्तगत मानते है जिनमें तिथिकरण की आवश्यकता नहीं होती। यद्यपि कई अर्थशास्त्री हिक्स की परिभाषा से सहमत नहीं है। उनका आरोप है कि तिथिकरण करने से ही आर्थिक विश्लेषण प्रावैगिक नहीं हो जाता और हिक्स की धारणा प्रावैगिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र को बहुत अधिक विस्तृत कर देती है। हैराड के अनुसार 'परिवर्तनशील अर्थशास्त्र का आशय आर्थिक आकड़ों में लगातार परिवर्तनों के अध्ययन से है जो एक साथ होने वाले परिवर्तनो से भिन्न है।'

अर्थशास्त्री रैगनर फ्रिश, हैरॉड की परिभाषा में परिवर्तन करते हुए कहते है कि प्रावैगिकी के अध्ययन के लिए निरन्तर परिवर्तन महत्वपूर्ण नहीं है अपितु परिवर्तन की प्रक्रिया अधिक महत्वपूर्ण है। प्रावैगिकी को स्पष्ट करते हुए फ्रिश पुनः कहते है कि- "एक प्रणाली प्रावैगिक होगी यहि समय के विभिन्न बिन्दुओ पर चर एक महत्वपूर्ण तरीके से सम्बन्धित हों।"

अब आप समझ गये होगे कि प्रावैगिकी विश्लेषण में परिवर्तन की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। अतः इस विश्लेषण में समय की स्पष्ट मान्यता स्वीकार की जाती है। चूँकि प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अर्न्तगत समय ही महत्वपूर्ण होता है। अतः इसके विश्लेषण में अलग-अलग समयों के आर्थिक चर महत्वपूर्ण तरीके से सम्बन्धित होते हैं। इसे हम एक उदाहरण से स्पष्ट करते है । जैसा कि स्थैतिक अर्थशास्त्र के अर्न्तगत आपने मॉग और पूर्ति फलनों के अर्न्तगत पढ़ा कि इसमें आर्थिक चर एक ही समयावधि से जुडे. हुए है, ठीक उसी फलन में यदि दोनों चर अलग-अलग समयावधि से जुडे हुए हो तो वह फलन स्थैतिक न रह कर प्रावैगिक हो जाऐगा। आइए हम आपको इसे फलनात्मक सम्बन्ध से स्पष्ट करते है।

यदि किसी वस्तु की मॉगी जाने वाली मात्रा और उसकी कीमत एक ही समय से जुड़े हुए होते है तो

वह फलन स्थैतिक कहलाता है। जैसे $Dt=f(Pt)$--------------(i)

परन्तु यदि किसी वस्तु की एक समय विशेष ;माना ज समय परद्ध पर मॉग, उस वस्तु की पिछले समय (माना t-1)की कीमत पर निर्भर करती है। तो इसे गणितीय रूप में निम्न प्रकार स्पष्ट किया जायेगा।

$$Dt = f(Pt - 1) \text{ ----------(ii)}$$

सभी (ii) में Dt = वस्तुकी t समय में मॉग की मात्रा तथा Pt –1वस्तु की (t- 1) अर्थात t समय से पिछली समयावधि की कीमत को व्यक्त करती है।

इसी प्रकार पूर्ति वक्र के लिए भी हम प्रावैगिक फलन लिख सकते है St=f (Pt-1)उक्त सभी (ii) में दोनो आर्थिक चर-मॉग और कीमत अलग-अलग समयावधि से जुडे है अत: यह फलन प्रावैगिक फलन कहलाऐगा। प्रावैगिक फलन की जानकारी के पश्चात अब आपको स्थैतिक फलन और प्रावैगिक फलन में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह स्पष्ट हो रहा होगा कि जहॉ स्थैतिक फलन में अर्थव्यवस्था में चरों के मध्य तुरन्त समायोजन की मान्यता स्वीकार करते हैं वहीं प्रावैगिक अर्थशास्त्र में अर्थव्यवस्था के तुरन्त समायोजन की मान्यता को स्वीकार न करके चरों के मध्य विलम्बित सम्बन्धों (Lagged Relatonship) का विश्लेषण किया जाता है। आइए हम आपको अर्थव्यवस्था में विलम्बित सम्बन्धो को स्पष्ट करते है। यदि आर्थिक चरों में परिवर्तन करने पर उसका प्रभाव तत्काल अर्थव्यवस्था में परिलक्षित होने लगे तो इसे तत्काल समायोजन कहा जाता है। परन्तु यदि आर्थिक चरों में परिवर्तन का प्रभाव अर्थव्यवस्था में कुछ समय के पश्चात महसूस हो तो इसे बिलम्बित समायोजन कहा जाता है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था को समायोजन में कुछ समय लगता है।

प्रावैगिक विश्लेषण में आपने जाना कि इसमें हम समय में विभिन्न बिन्दुओं पर परिवर्तन की प्रक्रिया का अध्ययन करते है तो इसका एक आशय यह भी है कि इसमें असन्तुलन की स्थिति पर प्रकाश डाला जाता है। चूॅकि समय के विभिन्न बिन्दुओ पर आर्थिक चर एक महत्वपूर्व तरीके से सम्बन्धित होते है तो इसका अभिप्राय यह है कि प्रावैगिक विश्लेषण के अन्र्तगत स्पष्ट होता है कि किस प्रकार से एक स्थिति का पिछली स्थिति में से विकास होता है।

आर्थिक चरों के समय निर्धारण के सन्दर्भ में यहॉ आपके समक्ष सेमुलसन की प्रावैगिकी की परिभाषा का उल्लेख करना आवष्यक है। सेम्युलसन ने कहा कि- ऐतिहासिक रूप से गतिमान स्थैतिक व्यवस्था में चरों का समय निर्धारण निश्चित रूप से आवश्यक है परन्तु इससे यह प्रावैगिक नहीं बन जायेगी । उनके अनुसार चरो की व्याख्या को प्रावैगिकी कहलाने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न चरों में फलन सम्बन्ध हो । अर्थात एक व्यवस्था तब प्रावैगिकी होती है जब इसका व्यवहार समय के साथ उन फलन समीकरणों द्वारा निर्धारित होता है। जिसमें विभिन्न समय बिन्दुओं के चर

अनिवार्य रूप से सम्मिलित हो। अर्थात बिभिन्न समय बिन्दुओं पर चरो के मध्य फलन सम्बन्ध होतें है। और प्रावैगिकी के लिए उनका होना आवश्यक है।

आर्थिक स्थैतिकी की भॉति आर्थिक प्रावैगिकी को भी व्यष्टिपरक व समष्टिपरक उदाहरणो से स्पष्ट किया जा सकता है।

1.व्यष्टिपरक प्रावैगिकी अर्थशास्त्र :- जिस प्रकार आर्थिक स्थैतिकी के व्यष्टि परक विश्लेषण को मॉग और पूर्ति वक्र के माध्यम से सरलता पूर्वक स्पष्ट किया गया उसी प्रकार हम व्यष्टिपरक प्रावैगिक विश्लेषण को भी मॉग और पूर्ति वक्र से स्पष्ट कर सकते है। माना DD और SS क्रमशः प्रारम्भिक मॉग और पूर्ति वक्र को प्रदर्शित कर रहे है। चित्र 3.4 के अनुसार-

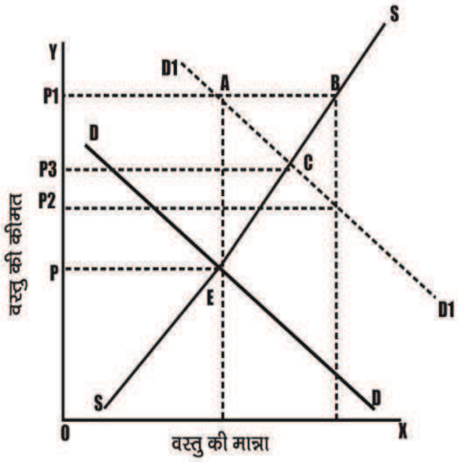

चित्र 3.4

दोनों वक्र एक दुसरे को E बिन्दु पर काटते है। इस सन्तुलन से वस्तु की कीमत OP तथा मात्रा OQ निर्धारित होती है। अब यदि मॉग अकस्मात् बढ़ जाती है। तो मॉग वक्र दाहिनी ओर विवर्तित होकर D_1D_1 हो जायेगी। चूँकि वस्तु की पूर्ति तत्काल नहीं बढ़ायी जा सकती अत: वस्तु की पूर्ति OQ ही रहती है। बेलोच होने के कारण पूर्ति वक्र लम्बवत रेखा AQ के रूप में होगा और इस स्थिति में कीमत बढ़कर OP_1 हो जाऐगी। कीमत में वृद्धि होने के कारण उत्पादक लाभ कमाने हेतु वस्तु का उत्पादन बढाऐगें अतः OP कीमत पर उत्पादक वस्तु की AB अतिरिक्त मात्रा का उत्पादन करके B बिन्दु पर पहुॅच जाऐगें। अतः इस स्थिति में कुल पूर्ति P1B होगी। वस्तु की पूर्ति में वृद्धि होने के कारण वस्तु की कीमत घटकर OP2 हो जाऐगी । यह असन्तुलन की क्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक नया सन्तुलन E1 बिन्दु पर स्थापित नहीं हो जाता। अतरू इस प्रारम्भिक सन्तुलन E से नए सन्तुलन बिन्दु E1 तक पहुॅचने का विश्लेषण ही आर्थिक प्रावैगिकी कहलाता है।

2.समष्टि परक प्रावैगिकी विश्लेषण-व्यष्टिपरक प्रावैगिक विश्लेषण के पश्चात अब हम समष्टिपरक प्रावैगिक सन्तुलन को रेखाचित्र के माध्यम से स्पष्ट करते है।

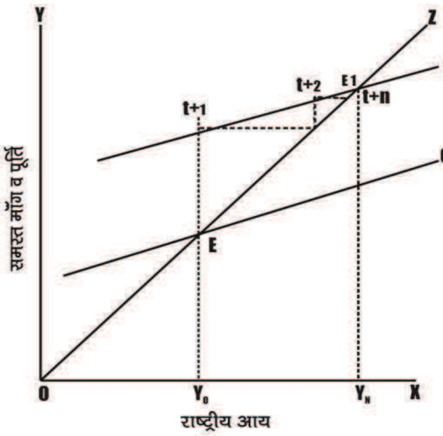

चित्र 3.5

रेखाचित्र 3.5 में राष्ट्रीय आय निर्धारण का एक सामान्य समष्टि परक मॉडल प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र में समस्त्र मॉग (C+I) वक्र द्वारा प्रदर्शित की गयी है। चित्रानुसार t समय में OY_0 राष्ट्रीय आय निर्धारित होती है। अब माना समस्त मॉग वक्र t समय के अर्न्तगत निवेश में वृद्धि के कारण ऊपर की ओर विवर्तित हो जाती है फलस्वरूप आय में वृद्धि होना प्रारम्भ हो जाती है। परन्तु इसको नई सन्तुलन स्थिति में पहुँचने में समय लगेगा t समय में हुई निवेश में वृद्धि के कारण t+1 समय में राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी। यही आय वृद्धि उपभोग की मॉग को बढ़ायेगी। इस बढ़ी हुई मॉग को पूरा करने हेतु उत्पादन में वृद्धि होगी। इसी प्रकार t+2 समय की उपभोग मॉग में वृद्धि के कारण t+3 समय में राष्ट्रीय आय में और अधिक वृद्धि होगी। इस प्रकार यह प्रक्रिया निरन्तर चलती जाती है। एक वृद्धि दूसरे वृद्धि को जन्म देती जायेगी और अन्ततः t+n (माना) समय में अंतिम संतुलन E1 को प्राप्त कर लिया जायेगा। इस स्थिति में राष्ट्रीय आय OYn निर्धारित होती है।

3.4.2. आर्थिक प्रावैगिकी का महत्व क्षेत्र -

अब तक के अध्ययन से आप यह जान चुके है कि वास्तविक परिवर्तनशील जगत की आर्थिक समस्याओ का अध्ययन करने के लिए प्रावैगिकी की महत्वपूर्व आवश्यकता है। इसकी महता निम्न सन्दर्भो में अत्यन्त प्रासंगिक है -

i. स्थैतिक अर्थशास्त्र आर्थिक व्यवहार के निर्धारकों यथा - रूचि, साधनो, तकनीकी स्तर आदि को स्थिर मान लेता है यह पूर्ण ज्ञान तथा पूर्णगतिशीलता जैसी अवास्तविक मान्यताओ पर आधारित होता हैं जबकि वास्तविक जगत में ऐसा नहीं होता। अतरू

प्रावैगिकी का महत्व इस बात में निहित है कि यह स्थैतिकी की अपेक्षा वास्तविकता के अधिक निकट है।

ii. विकास का अर्थशास्त्र गतिशील है क्योंकिआर्थिक विकास का एक चक्र होता है। जो निरन्तर गतिमान होता है। अतरू आर्थिक विकास के लिए भी प्रावैगिकी का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

iii. प्रावैगिक विश्लेषण की महत्ता इसलिए भी बढ़ जाती है कि यह लोचदार होती है। जिसके परिणाम स्वरूप यह विकासमान कल्याणकारी व नियोजन ;च्संददपदहद्ध की समस्याओ के विश्लेषण के लिए अधिक उपयोगी है।

iv. प्रावैगिक विश्लेषण का महत्व इस दृष्टि से भी बढ़ जाता है कि अर्थशास्त्र की अनेक समस्याओ यथा - व्यापार चक्र, मकड़ी के जाले का सिद्धात, जनसंख्या के विकास का सिद्धांत, लाभ, व्याज व विनियोग आदि के सिद्धात प्रावैगिक अर्थशास्त्र के अन्र्तगत आते है।

v. बहुत सी समस्याएं ऐसी है जिनका अध्ययन स्थैतिक नहीं कर सकता उनके अध्ययन के लिए प्रावैगिक अर्थशास्त्र की ही आवश्यकता पड़ती हैं -

(क) निरन्तर परिवर्तनो के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली समस्याएं

(ख) परिवर्तन उत्पन्न करने वाली मूल शक्तियो के अध्ययन में

(ग) मानवीय मनोविज्ञान पर आधारित आर्थिक समस्याओं के अध्ययन के लिए

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि आर्थिक जीवन की समस्याओं को वास्तविक रूप में समझने तथा हल करने के लिए प्रावैगिकी अर्थशास्त्र की महती आवश्यकता है।

3.4.3. प्रावैगिकी की सीमाएं -

यद्यपि प्रावैगिक अर्थशास्त्र अद्यतन तथा विकासमान समाज के सन्दर्भ में अत्यन्त आवश्यक है परन्तु प्रावैगिकी की कुछ सीमाएं अथवा दोष भी है। यथा -

I. प्रावैगिकी का अध्ययन बहुत जटिल भी है। इसके विश्लेषण के लिए उच्च गणित तथा इकोनोमेंट्रिक्स की आवश्यकता पड़ती है। इसे समझना बड़ा कठिन होता है।

II. प्रावैगिकी ‘परिवर्तन की प्रक्रिया’ का अध्ययन करता है परन्तु यदि परिवर्तन की गति बहुत तीव्र है तो समस्या का अध्ययन केवल शुद्ध प्रावैगिक दृष्टिकोण से करना कठिन हो जाता है। इसके लिए समस्या को कई स्थैतिक टुकड़ों में बॅाटकर ही अध्ययन किया जा सकता है।

III. यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रावैगिकी का अभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है जिसके कारण इसका प्रयोग कठिन हो जाता है।

स्थैतिकी तथा प्रावैगिकी के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्थैतिकी तथा प्रावैगिकी दोनो विश्लेषणों के अपने-अपने गुण तथा दोष दोनों है। कुछ आर्थिक समस्याएं ऐसी है जिनका अध्ययन प्रावैगिकी द्वारा ही हो सकता है जबकि कुछ समस्याओ का अध्ययन स्थैतिकी द्वारा ही किया जा सकता है। जबकि कुछ विवेचनो के लिए दोनो विश्लेषणों की साथ-साथ आवश्यकता पड़ सकती है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र के पूर्ण विकास तथा वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए दोनो प्रणालियों आवश्यक है।

1. निम्न कथनों में सत्य /असत्य चुनिए -

1. स्थैतिकी एक समय रहित विचार है जबकि प्रावैगिकी का सम्बन्ध समय से होता है। (सत्य/ असत्य)
2. स्थैतिक अर्थशास्त्र परिवर्तन की प्रक्रिया का अध्ययन नहीं करता। (सत्य/ असत्य)
3. प्रावैगिक अर्थशास्त्र आर्थिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले विभिन्न परिवर्तन षील तत्वो को स्थिर मान होता है। (सत्य/ असत्य)
4. तुलनात्मक स्थैतिकी प्रावैगिक विश्लेषण का ही स्परूप्ज्ञहैं। (सत्य/ असत्य)
5. वह आर्थिक विश्लेषण जिसमें आर्थिक चरों के मूल्य एक ही समयावधि से सम्बन्धित होते है स्थैतिक अर्थशास्त्र कहलाता है। (सत्य/ असत्य)
6. स्थैतिकी उस स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें अर्थव्यवस्था में कोई गति नहीं होती। (सत्य/ असत्य)
7. अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए स्थैतिकी और प्रावैगिकी दोनो आवष्यक है।(सत्य/ असत्य)

2. रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए-

(अ)जब आर्थिक चरों में परिवर्तन का प्रभाव अर्थव्यवस्था में कुछ समय पश्चात दिखाई पडता है तो यह समायोजन ....कहलाता है। (विलंवित समायोजन /तत्काल समायोजन)

(आ) एक उपभोग फलन निम्न प्रकार है (Ct =c (Yt -1)जहॅा C- उपभोग Y-आय की मात्रा को प्रदर्षित करता है। उपरोक्त फलन की प्रकृति ....है। (स्थैतिक/प्रावैगिकद्)

(इ) प्रावैगिक विश्लेषण.................................(सन्तुलन /असन्तुलन) का अध्ययन है।

(ई) अन्तिम सन्तुलन का अध्ययन ....(प्रावैगिकी /स्थैतिकी द्) के अर्न्तगत किया जाता है।

(उ) व्यापार चक्र, जनसंख्या के विकास, तथा मूल्य निर्धारण पर समय के प्रभाव का अध्ययन .... (स्थैतिक अर्थशास्त्र/प्रावैगिक अर्थशास्त्र) के अर्न्तगत किया जाता है।

3.5 सामान्य सन्तुलन विश्लेषण

सामान्य सन्तुलन विश्लेषण पर हम आप से चर्चा करे इससे पहले आवश्यक है कि आप सन्तुलन के आशय व अर्थशास्त्र में उसके महत्व से भली भॅाति अवगत हो । अतः संक्षेप में हम सन्तुलन के आशय पर आपसे चर्चा करेगें ।

आर्थिक विश्लेषण के अर्न्तगत 'सन्तुलन' या 'संस्थिति' की धारणा का बहुत व्यापक महत्व है। यदि यह कहा जाय कि अर्थशास्त्र सन्तुलन की ही समस्या का अध्ययन करता है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । अर्थशास्त्र में इसकी मंहत्ता को देखते हुए ही प्रख्यात अर्थशास्त्री प्रो0 स्ट्रिगलर अर्थशास्त्र को 'सन्तुलन विश्लेषण' का नाम देते है।

संन्तुलन का अंग्रेजी रूपान्तरण - Equilibrium शब्द दो लैटिन शब्द Acqur(जिसका अर्थ है समान) तथा libra (जिसका अर्थ है सन्तुलन) से मिलकर बना है। इस प्रकार Equilibrium का अर्थ समान सन्तुलन (Equal Balance) से हुआ। अतः यह एक ऐसी स्थिति है जिसके अर्न्तगत शक्तियों का ऐसा सन्तुलन होता है कि प्रणाली में परिवर्तन की कोई प्रवृति नहीं होती। अर्थशास्त्र में संन्तुलन का अभिप्राव गति का पूर्ण अभाव नहीं होता बल्कि ऐसी स्थिति से है जिसमें कार्यशील शक्तियॅा एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट कर देती है। स्पष्ट है कि इस अवस्था में गति की अनुपस्थिति नहीं है बल्कि गति के परिवर्तन की दर की अनुपस्थिति होती है।

प्रो0 सिटोवस्की संस्थिति को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति या फर्म संस्थिति या सन्तुलन की स्थिति में तब होगा जब तक वह यह समझे कि इन परिस्थितियों में जितना अधिक से अधिक सम्भव हो सकता है उतने उतम ढंग से उसने व्यवहार किया है। और जब तक परिस्थितियॅा अपरिवर्तित रहें उसे अपने व्यवहार को बदलने की इच्छा न हो। अतः कोई बाजारए व्यक्तियो तथा फर्मो का कोई समूह संस्थिति की स्थिति में तब होगा जब तक कि उसका कोई सदस्य अपने वर्तमान व्यवहार को बदलने के लिए बाध्य न हो । इस प्रकार स्पष्ट है कि सन्तुलन या साम्य की दशा में अर्थव्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। सभी क्रियाकलाप एक निश्चित गति से होते रहते है। प्रत्येक आर्थिक प्रयास करने वाले का उद्धेश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। जब तक इस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती तब तक वह अपने कार्य में परिवर्तन करता रहता है। जब उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो जाता है तो उसके प्रयास में पुनः परिवर्तन नहीं होगा बल्कि इस लक्ष्य को सदैव प्राप्त करते रहने के लिए वह अपने व्यवहार को उसी रूप में करेगा। यही सन्तुलन की स्थिति है। अतः सन्तुलन वह स्थिति है जिसे प्राप्त कर लेने पर अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। सामान्य सन्तुलन विश्लेषण की स्पषटता और सुगमता से इसे ग्रहण करने के लिए आवश्यक है कि हम इसके विश्लेषण के पूर्व संक्षिप्त रूप से आंशिक सन्तुलन की भी चर्चा कर ले।

अर्थशास्त्र में आंशिक सन्तुलन का प्रारम्भ फ्रांसीसी अर्थशास्त्री अग्टोयन अगस्टिन कानो ने तथा जर्मन अर्थशास्त्री हंस वान मेंकगोल्ड ने किया। परन्तु वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय प्रो0 अल्फ्रेड मार्शल को है। आंशिक सन्तुलन व्यष्टि इकाईयों के व्यवहार का अध्ययन करता है। जैसा कि आप जानते है कि व्यष्टि इकाईयों के अन्तर्गत एक उपभोक्ताए एक उत्पादक इकाई अथवा एक उद्योग आते है। अतः एक व्यक्ति का सन्तुलनए एक उद्योग का सन्तुलन या एक फर्म का सन्तुलन आंशिक सन्तुलन के उदाहरण है। आंशिक सन्तुलन जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है यह आंशिक विश्लेषण होता है अतःसमस्त अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण चित्र की जानकारी इसके द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकती। आंशिक सन्तुलन के अन्तर्गत हम केवल विशिष्ट इकाईयो का अध्ययन करते है। विशिष्ट इकाईयों के सम्बन्ध में विश्लेषण करते समय अन्य बातो को स्थिर मान लिया जाता है। अतः यह सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था के केवल एक अंग को प्रस्तुत करता है। अतः आंशिक सन्तुलन में अन्य बाते समान रहने की मान्यता महत्वपूर्ण हो जाती है। जिसके द्वारा अन्य प्रभावों व चरों को स्थिर माना जाता है।

सामान्य सन्तुलन विश्लेषण रीति का प्रयोग प्रारम्भ में वालरस ने किया। सामान्य सन्तुलन विश्लेषण के अन्तर्गत एक परिवर्तनशील तथ्य का अध्ययन नहीं किया जाता अपितु यह अनेक परिवर्तनशील तत्वों का एक साथ अध्ययन करती है एवं इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से होता है। सामान्य सन्तुलन विश्लेषण सीमित तथ्यों या ऑकड़ो पर ही आधारित नहीं होता बल्कि यह बहुत अधिक विस्तृत होती है। सामान्य सन्तुलन विश्लेषण के अन्तर्गत हम सम्पूर्ण आर्थिक निकाय के सन्तुलन का अध्ययन करते है। अर्थात अर्थव्यवस्था को सामान्य सन्तुलन की स्थिति में तब कहा जाऐगा जब अर्थव्यवस्था में प्रत्येक उपभोक्त, उत्पादन की प्रत्येक इकाई तथा प्रत्येक उद्योग एक साथ सन्तुलन की अवस्था में हों । इसका अभिप्राय यह भी है कि यदि प्रत्येक उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि की स्थिति में हो तथा प्रत्येक उत्पादक इकाई अधिकतम लाभ की स्थिति में हो तो अर्थव्यवस्था की इस स्थिति को सामान्य सन्तुलन की अवस्था कहेंगे। आप इसकी तुलना मानव शरीर से भी कर सकते है। जिस प्रकार मानव के सम्पूर्ण शरीर के सन्तुलन में रहने के लिए आवश्यक है कि उसका कोई अंग असन्तुलित अवस्था में न हो, अथति सम्पूर्ण शरीर का साम्य उसी अवस्था में सम्भव है जबकि शरीर के सभी अंगो में पृथक - पृथक सन्तुलन हो। उसी प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के साम्या के लिए आवष्यक है कि सभी अलग-2 भागो में एक साथ सन्तुलन हों ।

सामान्य सन्तुलन विश्लेषण को और अधिक सरलता से स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं। माना अर्थव्यवस्था जो कि सामान्य सन्तुलन की अवस्था में हैं, में एक वस्तु X की मॉग बढ जाती है। इस स्थिति में जब हम आंशिक सन्तुलन विश्लेषण विधि अपनाते है तो वस्तु X की मॉग में परिवर्तन का प्रभाव केवल ग वस्तु के बाजार तक ही सीमित मानते है और इस आधार पर यह निष्कर्ष् निकालते है कि - वस्तु X की मॉग बढने पर यदि X की पूर्ति अपरिवर्तित रहती है। तो वस्तु X की कीमत बढ जायेगी। परन्तु आंशिक सन्तुलन विश्लेषण का उपयोग तब प्रासंगिक नहीं रह

जाता जबकि वस्तु ग के बाजार एवं अन्य बाजारो के मध्य प्रबल अन्र्तसम्बन्ध हो। यदि वस्तु ग के बाजार में परिवर्तन से उन वस्तुओं की बाजार मांगो में भी परिवर्तन हो जाता हो जिसका प्रयोग X के साथ किया जाता हो तो इस स्थिति में X वस्तु की मॉग में होने वाला परिवर्तन समूची अर्थव्यवस्था में परिवर्तन उत्पन्न करेगें । आइए हम आपको इसे और स्पष्ट करते हैं। जब X वस्तु की मॉग बढ़ेगी तो उन वस्तुओ की भी मॉग बढ़ेगी जो X वस्तु के साथ प्रयुक्त की जाती है अतः उनका भी मूल्य बढ़ेगा। इसके विपरीत X की मॉग में वृद्धि के कारण अर्थव्यवस्था में उन वस्तुओ की मॉग कम होगी जो ग की स्थानापन्न (ऐसी वस्तुऐ जो X वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त हो सकती है) है, उनकी मॉग कम होगी फलस्वरूप उन (स्थानापन्न) वस्तुओं के भी मूल्य कम होगे। अब आप समझ रहे होगे कि X वस्तु की मॉग में परिवर्तन का केवल X वस्तु के बाजार पर ही प्रभाव नहीं पडता अपितु इसकी पूरक व स्थानापन्न वस्तुओ के बाजारों में भी सन्तुलन परिवर्तित होता है। वस्तु बाजारों में होने वाले ये पारस्परिक परिवर्तन साधनों के वितरण की स्थिति को भी प्रभावित करेगें । ग वस्तु की मॉग बढने के फलस्वरूप जब X वस्तु की पूरक वस्तुओं की मॉग बढ़ेगी तो उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से X वस्तु और X वस्तु की पूरक वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करेगें । इसके परिणामस्वरूप X और X वस्तु की पूरक वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों (श्रम, पूंजी आदि) की भी मॉग बढ़ेगी। अतः X वस्तु और उसकी पूरक वस्तुओं के उत्पादन में लगे साधनों की कीमते भी बढ़ेगी। इसके विपरीत X वस्तु की स्थानापन्न वस्तुओं की मॉग में कमी होगी ,फलस्वरूप उत्पादक X वस्तु की स्थानापन्न वस्तुओं के उत्पादन में कमी करेगे और इसका परिणाम यह होगा कि X वस्तु के स्थानापन्न वस्तुओ के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की मॉग कम होगी और उनकी कीमतें भी धट जाऐगी। अर्थात केवल X वस्तु की मॉग में वृद्धि का यह प्रभाव होगा कि X वस्तु की पूरक वस्तुओं का उत्पादन बढेगा, उनके उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की आय बढ़ेगी। इसके साथ ही X वस्तु की स्थानापन्न वस्तुओं की मॉग घटने के कारण उत्पादन घटेगा ,परिणामस्वरूप उनके उत्पादने में प्रयुक्त साधनो की भी आय घटेगी। आप समझ गए होगें कि किस तरह X वस्तु की मॉग में परिवर्तन, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में वस्तु बाजारो में (विशेष रूप में पूरक और स्थानापन्न वस्तुओ के बाजारों में) तथा साधनों के बाजारों में परिवर्तन उत्पन्न करता है। परिवर्तनो की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था (वस्तु बाजार तथा साधन बाजार दोनो) पुनः सन्तुलन की स्थिति को नहीं प्राप्त कर लेती। इस स्थिति में अर्थव्यवस्था पुनः सामान्य सन्तुलन की स्थिति को प्राप्त कर लेती है। अब आप यह भी समझ गये होगें कि सामान्य सन्तुलन विश्लेषण अर्थव्यवस्था के अन्तर सम्बन्धो का अध्ययन करता है। इसके विपरीत आंशिक सन्तुलन की पद्धति में यह मान लिया जाता है कि किसी वस्तु बाजार में होने वाले परिवर्तन केवल उस विशिष्ट वस्तु के बाजार को ही प्रभावित करते है, अन्य वस्तुओं के बाजारो विशेष रूप से उसकी स्थानापन्न व पूरक वस्वुओ के बाजारो को नहीं प्रभावित करते है।

दूसरे शब्दों में हम कहे तो सामान्य सन्तुलन विश्लेषण किसी एक बाजार में हुए परिवर्तन के सभी प्रभावो को ध्यान में रखते हुए सभी बाजारो के एक साथ सन्तुलन की मान्यता स्वीकार करता है। आंशिक सन्तुलन की रीति वहॉ ठीक कही जा सकती है जबकि एक बाजार की दशाओं में परिवर्तन से अन्य बाजारो पर लगभग नगण्य प्रभाव हो परन्तु यदि एक बाजार की दशाओं में परिवर्तन का अन्य बाजारों पर महत्चपूर्ण प्रभाव पड़ता है तो वहॉ सामान्य सन्तुलन विश्लेषण आवश्यक हैं हम आपको इसको एक उदाहरण देते हुए और स्पष्ट करना चाहते हैं - यदि पेट्रोल की कीमत में वृद्धि का प्रभाव हम गेद, कलाई घड़ी आदि पर देखेंगे तो पेट्रोल की कीमतों में परिवर्तनो के इन वस्तुओं पर बहुत कम प्रभाव पड़ते है अतः पेट्रोल की कीमत निर्धारण में आंशिक विश्लेषण सही हो सकता हैय परन्तु जब हम स्वचालित वाहनों के बाजार पर विचार करते हैं तो देखते है कि पेट्रोल की कीमत में वृद्धि का, वाहनो की मॉग तथा कीमत पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। क्योंकिपेट्रोल तथा स्वचालित वाहन एक दूसरे के पूरक है। अतः उनके बाजार परस्पर सम्बन्धित होगें तथा उनमें परस्पर निर्मरता भी होगी। अतः पारस्परिक निर्भरता तथा समंबन्धों वाले बाजारों के अर्न्तगत सामान्य सन्तुलन विश्लेषण का ही उपयोग करना चाहिए।

वास्तविक जगत में यदि आप सूक्ष्मता से विचार करें तो आपको आभास होगा कि वस्तुओं तथा साधनों के अलग- अलग बाजारों के बीच कुछ अंशों तक पारस्परिक संबंध तथा पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है। इसके अर्न्तगत बहुत अधिक संख्या में उपभोक्ता, उत्पादक, श्रमिक तथा अन्य साधनों के स्वामी जुड़े होते है, जो अपने लाभ को अधिकतम करते का प्रयास करते हैं। सामान्य सन्तुलन तभी होगा जब सभी वस्तुओं, साधनों तथा निर्णयकर्ता- उपभोक्ता, उत्पादक तथा साधन स्वामी आदि एक साथ सन्तुलन की स्थिति में हों। यहॉ आप इस तथ्य से भलीभॉति अवगत हो रहें होगें कि सामान्य सन्तुलन विश्लेषण के अर्न्तगत सभी कीमतों को परिवर्तनशील माना जाता है तथा सभी बाजारों में एक साथ सन्तुलन निर्धारण का अध्ययन किया जाता हैं।

यद्यपि सामान्य सन्तुलन विश्लेषण अत्यन्त जटिल है और इसे समझने के लिए सूक्ष्म गणितीय पद्धतियों की जानकारी आवश्यक है। (इसके विपरीत आंशिक सन्तुलन प्रणाली काफी सरल है।) तथापि अर्थशास्त्र के कई महत्वपूर्ण विश्लेषण सामान्य सन्तुलन के अस्तित्व से ही जुड़े है। इसका सबसे महत्वपूर्ण प्रयोग कल्याणकारी अर्थशास्त्र के अन्तगंत सम्मिलित होता है।

3.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह भलीभांति समझ चुके होगें कि किसी भी आर्थिक विश्लेषण के अर्न्तगत आर्थिक चरों के मध्य दो प्रकार के फलनात्मक सम्बन्धों - स्थैतिक तथा प्रावैगिक का अध्ययन किया जाता है । जब आर्थिक निकाय का अध्ययन एक समय बिन्दु पर या एक ही समयावधि में होता है तो यह स्थैतिक विश्लेषण कहलाता है। इसके विपरीत जब चरों का

सम्बन्ध अलग-2 समयावधियों से होता है तो उसका विश्लेषण प्रावैगिकी के अन्तर्गत किया जाता है। 1925 के पश्चात से आर्थिक प्रावैगिकी का महत्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। यद्यपि यह भी उल्लेखनीय है कि आर्थिक समस्याओं के क्रमबद्ध व वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए दोनों विधियॉ आवश्यक है। इसी प्रकार सन्तुलन के सन्दर्भ में स्पष्ट है कि विश्लेषण की दोनो रीतियॉ प्रतियोगी न होकर एक - दूसरे की पूरक है। अर्थव्यवस्था के समस्त चित्र को समझने के लिए जहॉ सामान्य विश्लेषण आवश्यक हैं वहीं निकाय के एक अंग के कार्यकरण को विस्तृत रूप से समझने के लिए आंशिक सन्तुलन आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1 निम्न कथनों में सत्य/असत्य को स्पष्ट कीजिए -

i. अर्थशास्त्र में सन्तुलन का अभिप्राय गति की अनुपस्थिति नहीं बल्कि गति की दर में परिवर्तन की अनुपस्थिति होती है। (सत्य/असत्य)
ii. सन्तुलन या साम्य एक लक्ष्य या उद्देश्य को व्यक्त करता है जिसे प्राप्त करने के लिए आर्थिक इकाईर्या गतिशील रहती है। (सत्य /असत्य)
iii. सामान्य सन्तुलन विश्लेषण सम्पूर्ण अर्थव्यवसथा का एक साथ चित्रण नहीं करता है। (सत्य / असत्य)
iv. सामान्य सन्तुलन विश्लेषण ,अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगो की परस्पर निर्भरता से मुक्त रहता है। (सत्य / असत्य)
v. सामान्य सन्तुलन विश्लेषण अर्थशास्त्र की एक जटिल प्रणाली है। (सत्य / असत्य)
vi. सामान्य सन्तुलन विश्लेषण का सर्वप्रथम प्रयोग वालरस ने किया था। (सत्य /असत्य)

3.7 शब्दावली

मॉग फलन: किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी उपभोक्ताओं द्वारा मॉगी जाने वाली मात्राओं का गणितीय सम्बन्ध व्यक्त करने वाला फलन मॉग फलन कहलाता है।

पूर्ति फलन: किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उत्पादको द्वारा उस वस्तु की पूर्ति की जाने वाली मात्राओं का गणितीय सम्बन्ध पूर्ति फलन कहलाता है।

मॉग का नियम: अन्य बातों के समान रहने पर किसी वस्तु या सेवा की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी मॉग घटती है तथा कीमत में कमी होने पर उसकी मॉग बढ़ती है। अर्थात किसी वस्तु की कीमत और उसकी मॉगी जाने वाली मात्रा में विपरीत सम्बन्ध होता है।

मॉग: एक दी हुई कीमत पर किसी वस्तु की मॉग, उस वस्तु की वह मात्रा है जो उस कीमत पर एक निश्चित समय में क्रेताओं द्वारा खरीदी जाऐगी।

पूर्तिः किसी वस्तु की पूर्ति वस्तु की उस मात्रा से है जिसे विक्रेता एक निश्चित समय में तथा एक निश्चित कीमत पर बाजार में बेचने को तैयार है।

3.8 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Dwivedi, D. N. (2008): Micro Economics 7th edition vikas Publish House New Delhi.
- Koutsiyanniesa, A- (1997) –Microeconomics Analysis New Delhi.
- Mishra S.K & Puri V.K. (2003) – Modern micro economic theory Himalaya Publishing House.
- Sethi T. T (2006) – 'Principlesa of Economics' Lakshmi Narayan Agrawal agra
- Ahuza ,H.L (2010) – "Principlesa of Microeconomics", S.chand publishing house,new delhi.
- Seth,M.L.(2007),'Microeconomics'lakshmi narayan agrawal,Agra

3.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- आहूजा, एच0 एल0 (2003) उच्चतर आर्थिक सिद्वात (व्यष्टि परक आर्थिक विश्लेषण) एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
- सिन्हा, वी0 सी0 (1999) व्यष्टि अर्थशास्त्र, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- आहूजा, एच0 एल0(1999)उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र, एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस
- जैन, के0 पी0 (1987)व्यष्टि अर्थशास्त्र साहित्य भवन, आगरा
- लाल, एस0 एन0 (1999) व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद
- सिंह, देव नारायण (2004) व्यष्टिअर्थशास्त्र- अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1.क - सत्य, ख - सत्य, ग - असत्य, घ – असत्य, ड. - सत्य ,च - असत्य ,छ - सत्य

2. रिक्त स्थानो की पूर्ति

क - विलंवित ,ख - प्रावैगिक ,ग - असन्तुलन ,घ - स्थैतिकी ,ड. - प्रावैगिक अर्थशास्त्र

अभ्यास प्रश्न - 2

1सत्य/ असत्य कथन -

क - सत्य ,ख - सत्य ,ग - असत्य ,घ - असत्य ,ड. - सत्य ,च - सत्य

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्थैतिक तथा प्रावैगिक अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए तथा इसके महत्व एवं सीमाओं को बताइए।
2. ‘स्थैतिक एक समय रहित विचार है जबकि प्रावैगिक का सम्बन्ध समय से होता है।‘ इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. अर्थशास्त्र में स्थैतिक व प्रावैगिक विश्लेषणों के अर्थ व उपयोगों को स्पष्ट कीजिए।
4. अर्थशास्त्र में सन्तुलन या साम्य से आप क्या समझते है? आर्थिक विश्लेषण में सामान्य सन्तुलन विश्लेषण के महत्व को एक उदाहरण देते हुए समझाइए।

इकाई - 4 - कल्याणकारी अर्थशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उदेद्श्य
4.3 कल्याणकारी अर्थशस्त्र -परिभाषा एवं प्रकृति
4.3.1 व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण
4.4 कल्याणकारी अर्थशास्त्र के सि़द्धान्त
4.4.1 प्राचीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र
4.4.2 परेटो का अनूकुलतम सिंद्वान्त
4.4.3 नया कल्याणकारी अर्थशास्त्र
4.4.4 सामाजिक कल्याण फलन
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
4.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
4.10 निबंधात्मकप्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई के अन्तर्गत आर्थिक स्थैतिकी व प्रावैगिकी के साथ ही साथ सामान्य संतुलन विश्लेषण पर व्यापक चर्चा की गई। अब तक आपने अर्थशास्त्र की विषयवस्तु और आर्थिक विश्लेषण की पद्धतियो के बारे में जाना। अब हम अर्थशास्त्र के उस पहलू पर चर्चा करेगे जो नीतियो की औचित्य से जुड़ा होता है।

कल्याणकारी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मुख्यतया सामाजिक कल्याण से होता है। यद्यपि कल्याणकारी अर्थशास्त्र की शुरूआत जे0 बेन्थम के "उपयोगितावाद" से मानी जाती है परन्तु इसे कल्याणकारी अर्थशास्त्र के रूप में नहीं जाना जाता था। कल्याणकारी अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण मोड़ 1920 में आया जब विख्यात अर्थशास्त्री प्रो0 पीगू की पुस्तक "Economics of welfare" प्रकाशित हुई। पीगू के सिंद्धान्त के साथ ही कल्याणकारी अर्थशास्त्र का अध्ययन आर्थिक विश्लेषण की पृथक शाखा के रूप में किया जाने लगा। पीगू के पश्चात् कल्याणकारी अर्थशास्त्र में हिक्स काल्डर सिटोवस्की तथा वर्गसन द्वारा अलग-अलग सिंद्वान्त प्रस्तुत किये गये।

इस इकाई के अन्र्तगत कल्याणकारी अर्थशास्त्र की परिभाषा, प्रकृति व उसके विकास से जुडे विभिन्न सिद्वान्तो का क्रमिक व तथ्यपूर्ण वर्णन किया गया है।

4.2 उदेद्श्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्नांकित तथ्यो से अवगत हो सकेगे-

1. कल्याणकारी अर्थशास्त्र से क्या आशय है तथा इसकी विषयवस्तु क्या है?
2. आर्थिक नीतियो के मूल्यांकन में कल्याणकारी अर्थशास्त्र की उपयोगिता क्या है?
3. समाज के कल्याण को अधिकतम करने के उपाय व साधन क्या है?
4. कल्याणकारी अर्थशास्त्र की सीमाएँ क्या है? आदि।

4.3 कल्याणकारी अर्थशास्त्र: परिभाषा एवं प्रकृति

कल्याणकारी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो समाज के कल्याण को अधिकतम करने को ध्यान में रखकर आर्थिक नीतियो का विश्लेषण करती है। अर्थात यह आर्थिक नीतियो के औचित्य निर्धारण करने का मानदण्ड प्रस्तुत करता है। इसका प्रमुख संबध सामाजिक कल्याण से है।

यह समाज के सदस्यो के समूह के रूप में उनके हितों (well-being)का अध्ययन करता है और हितो के लिए उपयोगिता या कल्याण का विचार प्रयुक्त होता है। सामाजिक कल्याण में वृद्धि की दृष्टि से आर्थिक नीतियो का निर्माण कुछ लक्ष्यो या आदर्शो के सन्दर्भ में किया जाता है। एक

आदर्शात्मक विज्ञान के रूप में कल्याणकारी अर्थशास्त्र किसी आर्थिक क्रिया या नीति की अच्छाई या बुराई के विषय में मूल्यगत निर्णय (Value Judgement) करता है। इसी कारण कल्याणकारी अर्थशास्त्र को आदर्शवादी अर्थशास्त्र भी कहा जाता है। अतः स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू का सम्बन्ध क्या होना चाहिए ? (What out to be) से होता है। अर्थशास्त्र का यही आदर्शात्मक पहलू ही कल्याणकारी अर्थशास्त्र का आधार है। इसके विपरीत वास्तविक अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओं की अच्छाई तथा बुराई के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता, केवल कारण - परिणाम सम्बन्धो पर प्रकाश डालते हुए आर्थिक घटनाओं की व्याख्या करता है। कल्याणकारी अर्थशास्त्र कुछ दिये हुए लक्ष्यो या बुराई की जॉच करके बताता है कि अमुक नीति समाज के लिए उचित है या नहीं। अर्थात यह दिये हुए वांछित लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए नीति-सुझावो को बताता है।

कल्याणकारी कथन भी वास्तविक कथनो की भाँति, मान्यताओ के एक समूह के आधार पर निकाले जाते है। इस मान्याताओ के आधार पर कल्याणकारी अर्थशास्त्र इस बात की जाँच करता है कि सामाजिक कल्याण में बृद्धि हुई है या नहीं। इन मान्याताओ के पूरा होने पर भी यदि सामाजिक कल्याण में वृद्धि नहीं होती तो इन मान्याताओ को उचित नहीं समझा जाता। कल्याणकारी निष्कर्ष मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक होते है। और इसलिए उनका कोई एक निश्चित मापन नहीं हो सकता है।

कल्याणकारी अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि यद्यपि यह स्वभाव में आदर्शात्मक है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि यह अवैज्ञानिक है। भले ही कल्याणकारी अर्थशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना होता है और इस प्रकार इसका स्वाभाव आदर्शात्मक है परन्तु लक्ष्यो का आदर्शो के दिये हुए होने पर यह समाज के लिए वांछित लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए निर्माण की जाने वाली नीति का अध्ययन करता है जो वास्तव में विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक है। आइए अब कल्याणकारी अर्थशास्त्र की परिभाषा पर चर्चा करते है।

कल्याणकारी अर्थशास्त्र को विभिन्न अर्थशास्त्रियो ने अपने अपने दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयास किया है-

प्रो0 पीगू के अनुसार- "कल्याणकारी अर्थशास्त्र उन प्रभावो की खोज से सम्बन्धित है जिनके द्वारा विश्व या किसी देश के आर्थिक कल्याण को बढ़ाया जाता है।" (Welfare economics is concerned to invesatigate the dominant influencesa througha which the economic welfare of the world or of a particular country is likely to be concerned.")-Pigou.

प्रो0 रेडर के अनुसार- "कल्याणकारी अर्थशास्त्र, आर्थिक विज्ञान की वह शाखा है जो आर्थिक नीतियो के औचित्य के मानदण्ड की स्थापना तथा प्रयोग करने का प्रयत्न करती है।" ("Welfare economics is the branch of economic science that attempts to esatablish and apply criteria of propriety to economic policiesa."-Reader, M.W.)

इसी प्रकार सिटोवस्की अपने दृष्टिकोण को निम्न शब्दों में व्यक्त करते है:-"कल्याणकारी अर्थशास्त्र, आर्थिक सिद्धान्त का वह भाग है जो मुख्यतया नीति से सम्बन्धित होता है।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से आप इस तथ्य से भली-भाँति अवगत हो रहे होगे कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मुख्यतया सामाजिक कल्याण से होता है और यह नीतिशास्त्र से घनिष्ठ रूप से परस्पर संबंधित है।

4.3.1 व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण

जैसा कि हम सभी जानते है कि व्यक्तिगत कल्याण मनुष्य के मस्तिष्क में स्थित होता है जो उपयोगिता अथवा संतुष्टि के रूप में होता है। पीगू के अनुसार- "कल्याण के तत्व चेतनता की अवस्थाएँ ओर सम्भवतः उनके सम्बन्ध होते है।"("The elements of welfare are statesa of consciousnesas and perhaps ntheir relations.")

किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री ग्राफ व्यक्तिगत कल्याण को व्यक्तिगत चुनाव से घनिष्ठ रूप से संबधित करते है। यदि कोई व्यक्ति वस्तुओ के X संयोग को Y संयोग की अपेक्षा अधिक पंसद करके चुनाव करता है तो X संयोग के उपभोग से व्यक्ति विशेष को अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि प्राप्त होगी। इस प्रकार व्यक्तिगत चुनावो को विभिन्न परिस्थितियो में उनको प्राप्त संतुष्टियो की तुलना के लिए एक वस्तुपरक परीक्षण के रूप में स्वीकार किया गया है। लेकिन सामाजिक या समूह कल्याण की माप अपेक्षाकृत कठिन समस्या है, क्योकि समाज का एक संयुक्त मस्तिष्क नहीं होता है। सामाजिक कल्याण वास्तव में विभिन्न व्यक्तियो के मस्तिष्क में निवास करता है। समाजिक चुनाव सर्वसम्मत नहीं होते। अतः सामाजिक कल्याण से हमारा अभिप्राय समाज के विभिन्न व्यक्तियो द्वारा प्राप्त की जाने वाली संतुष्टियो के योग से होता है।

पेरेटो के अनुसार- "यदि किसी नीति परिवर्तन से एक व्यक्ति की परिस्थिति श्रेष्ठतर हो जाय तथा अन्य व्यक्तियो की परिस्थिती पूर्ववत बनी रहे तो यह सामाजिक कल्याण में वृद्धि को प्रकट करता है।

4.4 कल्याणकारी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

कल्याणकारी अर्थशास्त्र से जुड़े हुए सिंद्धान्तो को दो भागो में बॉटा जा सकता है-

1. **प्राचीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र**
2. **नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र**

प्राचीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत वणिकवादी , प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री तथा नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री - प्रो0 मार्शल तथा पीगू को सम्मिलित किया जाता है। नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र के अन्तर्गत हिक्स-काल्डोर, सिटोविस्की के क्षतिपूर्ति सिद्धांत तथा बर्गसन-सेमुलसन के सामाजिक कल्याण फन को सम्मिलित किया जाता है। अब हम आपको कल्याणकारी अर्थशास्त्र के क्रमिक सिद्वान्तो से अवगत करायेंगें-

4.4.1 प्राचीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र

वणिकवादियो के समय से ही कल्याणकारी अर्थशास्त्र पर बल दिया गया था परन्तु उस समय कल्याण वृद्धि के विधियो में भिन्नता थी।निर्यात बढ़ाने-आयात घटाने वाली नीतियों पर जोर दिया जाता था। जिससे देश में सोना-चाँदी की वृद्धि हो और देश के कल्याण में भी वृद्धि हो। नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो-मार्शल और पीगू की घारणाएँ निम्न थी-

मार्शल का कल्याणकारी अर्थशास्त्र-प्रो0 मार्शल ने अपनी पुस्तक Principlesa of Economics में उपभोक्ता की बचत के विचार के आधार पर कल्याणकारी अर्थशास्त्र का विचार प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त उनका "राष्ट्रीय लाभांश" भी विचार की कल्याणकारी अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। मार्शल ने उपयोगिता की मापनीयता के आधार पर उपभोक्ता की बचत का विचार प्रस्तुत किया। मार्शल का मानना था कि उपभोक्ता की बचत में प्रत्येक वृद्धि समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि की द्योतक है। उनके अनुसार "किसी वस्तु के उपभोग से वांचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता जो मूल्य देने को तैयार रहता है और जो वह वास्तव में भुगतान करता है उसका आधिक्य ही अतिरिक्त संतुष्टि की आर्थिक माप है जिसे "उपभोक्ता की बचत" कहा जा सकता है।"

मार्शल की यह माप उपयोगिता की मापनीयता व मुद्रा के स्थिर सीमान्त दृष्टिकोणो के विचार पर आधारित है। किसी उपभोक्ता द्वारा प्राप्त किया जाने वाले अतिरेक उसकी आवश्यकता की तीव्रता तथा समकालीन, सामाजिक आर्थिक व तकनीकी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उपभोक्ता की बचत के विचार के आधार पर ही मार्शल ने अधिकतम संतुष्टि के विचार का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार- पूर्ण प्रतियोगी अर्थव्यवस्था की संतुलन अवस्था-अधिकतम (अनूकुलतम) संतुष्टि की अवस्था भी होती है। उनका मानना था कि वर्तमान दीर्धकालीन लागत उद्योगो पर करारोपण से प्राप्त धनराशि को ह्वासमान दीर्धकालीन लागत उद्योंगो को आर्थिक सहायता देकर सामाजिक कल्याण में वृद्धि की जा सकती है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप कुल अतिरेक में वृद्धि होगी और समाज का संतोष अधिकतम होगा फलस्वरूप कुल आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी।

पीगू का कल्याणकारी अर्थशास्त्रः- नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो में दूसरे प्रमुख अर्थशास्त्री प्रो0 पीगू ने अपनी पुस्तक "Welfare of Economics"में कल्याणकारी अर्थशास्त्र का एक वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया। उनके अनुसार-कल्याण व्यक्ति की मानसिक स्थिति में स्थित होता है जो उपयोगिता या संतुष्टि से निर्मित होता है। अतः कल्याण का आधार मनुष्य की आवश्यकताओ की संतुष्टि है। पीगू ने सामान्य कल्याण व आर्थिक कल्याण में अंतर भी स्पष्ट किया और आर्थिक कल्याण को समाज कल्याण का एक भाग बताया। पीगू ने कल्याणकारी अर्थशास्त्र को केवल आर्थिक कल्याण तक ही सीमिति किया। उनके अनुसार आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः मुद्रा के मापदण्ड से संम्बन्धित किया जा सकता है। इस प्रकार पीगू का आर्थिक कल्याण से आशय विनिमय योग्य बस्तुओ और सेवाओ के प्रयोग से प्राप्त संतोष से होता

है। वास्तव में पीगू कल्याणकारी अर्थशास्त्र के जन्मदाता या जनक माने जाते हैं। उन्होने कल्याणकारी अर्थशास्त्र का एक व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया।

पीगू का कल्याणकारी अर्थशास्त्र निम्नांकित मान्यताओं पर आधारित है-

i. विभिन्न वस्तुओ और सेवाओ पर किए गए व्यय से उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है।

ii. उपभोक्ता अपनी संतुष्टि की दूसरो से तुलना कर सकता है।

iii. ह्रासमान सीमान्त तुष्टिगुण नियम लागू होता है।

iv. सामाज के विभिन्न व्यक्ति समान वास्तविक आय से समान संतुष्टि प्राप्त कर सकते है।

उपर्युक्त मान्याताओ के आधार पर पीगू ने राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण को समानार्थी स्वीकार किया और आर्थिक कल्याण को अधिकतम करने हेतु उन्होने दो मानदण्डो की व्यवस्था की।

(अ) रूचियाँ और आय के विवरण के अपरिवर्तित रहने पर यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो जायेगी।

(आ) राष्ट्रीय आय के स्थिर रहने पर समाज के धनी वर्ग से निर्धन वर्ग की और आय का हस्तान्तरण होने से भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो जायेगी।

नव प्रतिष्ठित कल्याणकारी अर्थशास्त्र की आलोचना निम्नाकिंत बिन्दुओ के अर्न्तगत की जाती है।

i. उपयोगिता की गणनावाचक मापनीयता और अन्तवैयक्तिक तुलना की मान्यता अनुचित है।

ii. राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण का उचित मानदण्ड नहीं हो सकती क्योकि मूल्यो में परिवर्तन होने से राष्ट्रीय आय में परिवर्तन हो जाता है जबकि संभव है कि वस्तुओ और सेवाओ की मात्रा में कोई परिवर्तन न हुआ हो। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आय की सही गणना करना स्वयं एक कठिन कार्य है।

iii. मूल्यगत निर्णय की स्पष्ट व्याख्या पीगू ने नहीं की जो कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण है।

iv. ग्राफ का कहना है कि मुद्रा आर्थिक कल्याण को मापनें का उचित मानदण्ड प्रस्तुत नहीं करती है।

v. पीगू की विभिन्न व्यक्तियो की समान क्षमता की मान्यता वैज्ञानिक सिद्धान्तो पर आधारित न होकर नैतिक सिद्धान्तो पर आधारित है।

पीगूवियन कल्याणकारी अर्थशास्त्र की उपर्युक्त आलोचनाओ के परिणामस्वरूप कल्याणकारी अर्थशास्त्र के पुर्ननिर्माण के सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण विचारधाराओ का जन्म हुआ। इनमें से पहली विचाराधारा- ''नया कल्याणकारी अर्थशास्त्र'' के नाम से अस्तित्व में आई जो वास्तव में परेटो के कल्याणकारी विचार का विस्तार ही था। यह विचारधारा कल्याणकारी अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णयो से युक्त रखना चाहती है।

अस्तित्व में आई दूसरी महत्वपूर्ण विचारधारा:'- सामाजिक कल्याण फलन के नाम से जानी जाती है। इस विचारधारा के अनुसार कल्याणकारी अर्थशास्त्र एक आदर्शात्मक अध्ययन है। यह अर्थपूर्ण तभी होगा जब कल्याण विश्लेषण में नैतिक निर्णयो को स्पष्ट रूप से सम्मिलित किया जाय। इस हेतु नैतिक निर्णयो का बाहर से दिया हुआ मान लेना चाहिए और उसके बाद वैज्ञानिक विधि से नीतियो के कल्याण अभिप्रायों को निकालना चाहिए।

इसके पूर्व हम लोगो ने प्रतिष्ठित व नव प्रतिष्ठित कल्याणकारी अर्थशास्त्र का अध्ययन किया जिसकी कमियों को दूर करते हुए आधुनिक अर्थशास्त्रियो जैसे हिक्स, परेटो, केल्डर, वर्गसन, इल्यादि ने कल्याणकारी अर्थशास्त्र की नयी विचारधारा प्रस्तुत की जिसे नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र कहा जाता है। इसके अन्तर्गत इस खण्ड में हम परेटो के सामाजिक अनूकूलतम सिद्धान्त हिक्स - कैल्डर का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त व बर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन का अध्ययन मुख्य रूप से करेगे।

4.4.2 परेटो का सिद्धान्त

इटैलियन अर्थशास्त्री विल्फ्रेड परेटो को नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र का जन्मदाता कहा जाता है। वी0 परेटो पहले अर्थशास्त्री है जिन्होने उपयोगिता के क्रमवाचक विचार के आधार पर कल्याणकारी अर्थशास्त्र की नींव रखी। उन्होने तुष्टिगुण की मापनीयता व उसकी अन्तवैर्यक्तिक तुलना के विचार को अमान्य करते हुए स्पष्ट किया कि पूर्ण प्रतियोगिता समाज को अनुकूलतम कल्याण स्थिति को प्राप्त करने में सहायक होती है।

इस प्रकार उन्होने ''सामाजिक अनूकूलतम'' का विचार प्रस्तुत किया। परेटो की सामाजिक अनुकूलतम वह स्थिति है जिसके अन्तर्गत साधनों या उत्पादनो के पुनरावंटन द्वारा किसी व्यक्ति को हीनतर किए बिना किसी अन्य व्यक्ति को श्रेष्ठतर करना संभव नहीं होता है।

दूसरे शब्दो में - ''समुदाय का कुल कल्याण उस समय अधिकतम होता है जब समुदाय में किसी भी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति में किसी अन्य व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को खराब किए बिना सुधार करना असंभव होता है।''

परेटो के सिद्धान्त की मान्याताएँ निम्नांकित है-

आपने जाना कि परेटो ने अपने कल्याण सम्बन्धी दृष्टिकोण में सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने का वस्तुगत जाँच सिद्धात या कसौटी देने का प्रयत्न किया जिसे परेटो का ''सामाजिक

अनुकूलतम" या परेटो की अनुकूलतमता कहा जाता है। परेटो ने अपने विश्लेषण में निम्न मान्यताओं को स्वीकार किया-

i. परेटो ने उपयोगिता के क्रमवाचक विश्लेषण की मान्यता को माना न कि गणनावाचक विश्लेषण को।

ii. परेटो ने अपने कल्याण सम्बन्धी दृष्टिकोण को नैतिक निर्णयों से स्वतत्र रखने के लिए उपयोगिता की अन्तःवैयक्तिक तुलना की संम्भावना को त्याग दिया।

iii. परेटो ने माना कि प्रत्येक व्यक्ति अपने संतोष को अधिकतम करना चाहता हैं।

iv. सभी वस्तुएं पूर्णतया विभाज्य है और सभी व्यक्ति प्रत्येक वस्तु की एक निश्चित मात्रा का प्रयोग करते हैं।

v. एक उत्पादक किसी दी हुई लागत पर किसी वस्तु का अधिकतम उत्पादन करना चाहता है ताकि उसका लाभ अधिकतम हो सके।

vi. पूर्ण प्रतियोगिता के कारण उत्पादन के सभी साधन पूर्णतया गतिशील है।

परेटो अनुकूलतम मानदण्ड उपर्युक्त मान्यताओ को ध्यान में रखते हुए परेटो ने अपने मानदण्ड को विकसित किया। परेटो के समान्य अनुकूलतम को सेल्युलजन द्वारा प्रस्तुत उपयोगिता सम्भावना वक्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। उपयोगिता सम्भावना वक्र वस्तुओ के एक निश्चित समूह से दो व्यक्तियो द्वारा प्राप्त उपयोगिताओ के विभिन्न संयोगो का बिन्दुपथ होता है।

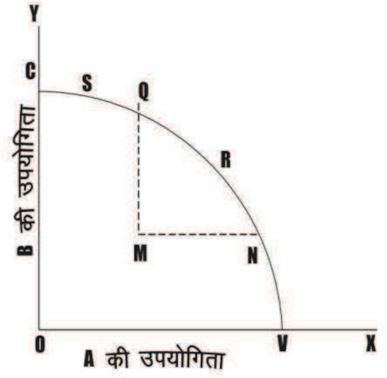

चित्रानुसार दो व्यक्तियों A व B की उपयोगिता को क्रमशः X व Y अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। CV वक्र दोनो व्यक्तियो द्वारा प्राप्त किये जाने वालो उपयोगिताओ के विभिन्न संयोगो को प्रदर्शित करता है जो इन्हे वस्तुओ के एक निश्चित मात्रा के सम्मिलित रूप से उपभोग के फलस्वरूप प्राप्त

होता है। परेटो के मानदण्ड के अनुसार M से Q,R तथा N बिन्दु की ओर कोई परिवर्तन सामाजिक कल्याण में वृद्धि को प्रदर्शित करता है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप A अथवा B दोनो की उपयोगिताओ में वृद्धि होती है। परन्तु M बिन्दु से QN भाग के बाहर की ओर किसी परिवर्तन के कल्याण पर प्रभावो को परेटो के मानदण्ड से ज्ञात नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार S बिन्दु परेटो अनुकूलतम की स्थिति को व्यक्त नहीं करता । CV वक्र के QN भाग पर स्थित सभी बिन्दु परेटो अनुकूलतम के बिन्दु होंगे परन्तु इनमें कौन सा बिन्दु श्रेष्ठतम है,परेटो मानदण्ड इसका उत्तर देने में असमर्थ रहता है।

परेटो कसौटी की आलोचना

यद्यपि वी0 परेटो के कल्याण की कसौटी की दशा के आधार पर ‘‘समाज के लिए अधिकतम कल्याण की स्थिति अर्थात सामाजिक अनुकूलतम’’ को ज्ञात किया जा सकता है, परन्तु यह भी अलोचनाओ से परे नहीं है। परेटो अनुकूलतम की मुख्य अलोचनाए निम्नलिखित हैः-

i. परेटो अनुकूलतम का कोई अकेला बिन्दु नहीं होता है, बल्कि अनेक बिन्दु होते है और उन बिन्दुओ में से कौन अनुकूलतम से अनुकूलतम है इसका निर्धारण करना मुश्किल है।

ii. परेटो अनुकूलतम की एक कमी यह भी है कि यह विश्लेषण वर्तमान दी हुई आय वितरण की मान्यता पर आधारित है अतः आय वितरण में परिवर्तन हो जाने पर भिन्न - भिन्न परेटो अनुकूलतम प्राप्त होगे, जिनमें विभिन्न पद्वार्थो की पहले से भिन्न मात्राएं उत्पादित की जाऐगी परिणामतः साघनो का आंबटन भी भिन्न होगा।

iii. परेटो अनुकूलतम सिद्धान्त भी नैतिक निर्णयो से स्वंतत्र नहीं है।

iv. परेटो ने ऐसा कोई मानदण्ड भी प्रतिपादित नहीं किया जिसके आधार पर यह निश्चित किया जा सके कि नया अनुकूलतम पहले के परेटो अनुकूलतम से श्रेष्ठ है या नहीं ? ऐसा निर्णय आय वितरण के नियम में कुछ नैतिक निर्णयों के आधार पर किया जा सकता है किन्तु नैतिक निर्णयो की परेटो मानदण्ड उपेक्षा करता है।

v. परेटो के मानदण्ड की एक बड़ी कमी यह है कि यह उन नीति प्रस्तावों की सामाजिक वांछनीयता अर्थात सामाजिक कल्याण पर उनके प्रभाव की जाँच नहीं करता जो समाज के एक वर्ग को लाभ, किन्तु दूसरे वर्ग को हानि पहुँचाते है। लेकिन ऐसे नीति परिवर्तन विरेल ही है जो समाज के कुछ लोगो को हानि पहुंचाये बिना दूसरो को लाभ पहुंचाये। इसलिए परेटो मानदण्ड का आर्थिक नीति निर्धारण में सीमित व्यवहारिक महत्व है। इन आलोचनाओ के बावजूद कल्याणकारी अर्थशास्त्र के क्षेत्र में परेटो मानदण्ड का अपना विशेष महत्व है।

4.4.2 नया कल्याणकारी अर्थशास्त्र (क्षतिपूर्ति सिद्धान्त)

वास्तविक रूप में नवीन कल्याणकारी अर्थशास्त्र की नीवं परेटो के सामाजिक अनुकूलतम के विचार से ही पड़ चुकी थी परन्तु यह केवल ऐसी स्थितियों का मूल्यांकन करती है जिसमें कोई नीति परिवर्तन बिना किसी अन्य व्यक्ति को हानि पहुंचाये कुछ व्यक्तियो की स्थिति में सुधार लाता है परेटो मानदण्ड ऐसी परिस्थितियो में समाज के कल्याण में परिवर्तन की माप करने में असमर्थ होता है जिसके अर्न्तगत किसी नीति परिवर्तन से समाज के एक वर्ग को हानि व दूसरे वर्ग को लाभ होता है। परेटो कसौटी के अत्यन्त सीमित प्रयोग के कारण कल्याणकारी अर्थशास्त्र के पुर्ननिर्माण के प्रयत्न किये गये। अतः इस प्रकार दो विचार धाराओ का जन्म हुआ।

i. हिक्स-काल्डर तथा साइटोवस्की द्वारा क्षतिपूर्ति सिद्धांत प्रस्तुत किया गया, इसे नया कल्याणकारी अर्थशास्त्र भी कहा जाता है।
ii. बर्गसन - सेम्युलसन आदि द्वारा "सामाजिक कल्याण फलन" प्रस्तुत किया गया।

सर्वप्रथम हम कल्याण के क्षतिपूर्ति सिद्धांत या नए कल्याणकारी अर्थशास्त्र पर चर्चा करेगे।

कल्याण के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की विवेचना दो भागो में की जाती है।

i. काल्डर-हिक्स की कसौटी
ii. सिटोवस्की की दोहरी कसौटी

1. **काल्डोर-हिक्स की कसौटी:-** काल्डोर तथा हिक्स ने क्षतिपूर्ति का सिद्धांत प्रस्तुत किया। इस सिद्धात के अनुसार यदि अर्थव्यवस्था में किसी आर्थिक या नीतिगत परिवर्तन से कुछ लोगो को लाभ व कुछ लोगों को हानि होती है तो ऐसी स्थिति में यह ज्ञात करना आवश्यक हो जाता है कि आय की पुर्नवितरण द्वारा क्या उनकी क्षतिपूर्ति की जा सकती है जिन्हे इस परिवर्तन से हानि होती है। क्षतिपर्ति के सन्दभों में यह सिद्धांत यह मानता है जिन लोगो को इस आर्थिक परिवर्तन से लाभ होता है यदि उनसे कुछ आय प्राप्त करके हानि उठाने वाले की क्षतिपूर्ति की जाए, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति यदि पहले की ही भॉति बनी रहे तथा जिन्हे आर्थिक परिवर्तन से लाभ हुआ है उनकी आर्थिक स्थिति यदि पहले से अच्छी होती है तो ऐसी स्थिति में सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है। क्योकि जिन लोगो को इस परिवर्तन से लाभ होता है वे जिन्हे इस परिवर्तन से हानि होती है उन्हें क्षतिपूर्ति कर सकते है।

काल्डोर की कसौटी को निम्न शब्दो में व्यक्त किया जा सकता है- "किसी नीति परिवर्तन से यदि समाज के एक वर्ग को हानि और दूसरे वर्ग को लाभ होता है तो ऐसी दशा में यदि लाभ प्राप्त करने वाला वर्ग अपने लाभों का मूल्यांकन, हानि सहन करने वाले वर्ग की हानि की अपेक्षा अधिक करता है तो यह सामाजिक कल्याण में वृद्धि को प्रदर्शित करता है।"

जे0आर0हिक्स भी कैल्डॉर के दृष्टिकोण को स्वीकार करते हुए अपना मापदण्ड प्रस्तुत करते है कि- "यदि किसी परिवर्तन द्वारा A को इतना अधिक श्रेष्ठतर बना दिया गया है कि वह B की क्षतिपूर्ति कर सके और फिर भी उसके पास कुछ अतिरिक्त शेष रह जाता है तो यह पुर्नव्यवस्था सुस्पष्तः एक सुधार है।"

हिक्स इस सम्बन्ध में पुनः स्पष्ट करते है कि- "कोई परिवर्तन तब सुधार या सामाजिक कल्याण में वृद्वि प्रदर्शित करता है जबकि परिवर्तित स्थिति में क्षतिग्रस्त व्यक्ति, लाभान्वित व्यक्तियो को मौलिक स्थिति से परिवर्तन रोकने हेतु घूस देकर भी प्रेरित करने में समर्थ नहीं होते।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि काल्डार -हिक्स के अनुसार एक नीति तब बांछनीय मान ली जायेगी यदि लाभ प्राप्तकर्ता, हानि प्राप्तकर्ताओ को क्षतिपूर्ति या अधिक क्षतिपूर्ति कर सके या घूस दे सके ताकि हानि प्राप्तकर्ता उस नीति को स्वीकार कर ले।

काल्डार-हिक्स की क्षतिपूर्ति कसौटी को आप एक उदाहरण से भली प्रकार आत्मसात कर सकते है। माना किसी आर्थिक नीति से समाज का एक वर्ग 500 रू0 के बराबर लाभ प्राप्त करने की प्रत्याशा करता है तथा समाज का हानि प्राप्तकर्ता वर्ग 200रू0 की हानि प्राप्त होने की आशा करते है। तो इस स्थिति में लाभ प्राप्तकर्ता वर्ग हानि प्राप्तकर्ता वर्ग को उसकी हानि के बराबर या अधिक क्षतिपूर्ति कर सकेगे। और इसके बावजूद भी लाभ प्राप्तकर्ता अच्छी स्थिति में रह सकेगे काल्डार हिक्स के अनुसार निश्चित रूप से यह स्थिति सामाजिक कल्याण में वृद्धि को प्रदर्शित करेगी।

एक ध्यान रखने योग्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि काल्डार हिक्स कसौटी यह नहीं कहती कि क्षतिपूर्ति भुगतान वास्तव में दिये जाने चाहिए। यदि भुगतान वास्तव में दिये जाते है तो ऐसा करने से आय के वितरण में परिवर्तन उत्पन्न हो जाएगा और वितरण पक्ष विश्लेषण में सम्मिलित हो जाऐगा जिसके कारण नीतियो के मूल्यांकन के लिए अन्तः वैयक्तिक तुलनाएं करनी पडेगी। वास्तविकता यह है कि कल्याणवादी अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णयो से मुक्त रखने के लिए इन अर्थशास्त्रियों ने बताया कि क्षतिपूर्ति भुगतान वास्तव में दिया जाता है या नहीं यह बात एक नैतिक या राजनीतिक निर्णय है जो सरकार या राजनीतिज्ञो द्वारा लिया जाना चाहिएं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लाभ प्राप्तकर्ता की, हानि प्राप्तकर्ताओ को पर्याप्त मात्रा में क्षतिपूर्ति कर सकने की सम्भावना एक नीति की सम्भवित श्रेष्ठता को स्थापित करती है।

2. **सिटोवस्की की दोहरा मापदण्ड:-** सिटोवस्की ने कैल्डर-हिक्स कसौटी पर सुधार किया है। उनका मानना है कि कैल्डार -हिक्स मानदण्डमें आंतरिक विरोध की स्थिति है, क्योकि इस मानदण्ड के अनुसार यह संभव है कि यदि A स्थिति B स्थिति की अपेक्षा अधिक सामाजिक कल्याण को व्यक्त करती है तो वही मानदण्ड यह स्पष्ट कर सकता है कि A स्थिति से पुनः B स्थिति को परिवर्तन भी अधिक सामाजिक कल्याण को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार एक समय A स्थिति B स्थिति की अपेक्षा श्रेष्ठ है तथा किसी अन्य समय में B स्थिति A स्थिति की

अपेक्षा श्रेष्ठ है जिसे वास्तव में अपेक्षाकृत हानि होना चाहिए। अतः कैल्डर-हिक्स मानदण्ड में अन्तर्विरोध की स्थिति है। चूकि इसका स्पष्टीकरण सिटोवस्की ने किया अतः इसे ‘‘सटोवस्की विरोधाभास’’ कहा जाता है

‘‘सटोवस्की विराधाभास’’की स्पष्ट व्याख्या उपयोगिता संभावना वक्र द्वारा सरलतापूर्वक की जा सकती है। इस विरोधाभास को दूर के लिए उन्होने दोहरा मापदण्ड प्रस्तुत किया जिसके अन्तर्गत कोई परिवर्तन सुधार होता है यदि परिवर्तित स्थिति को से लाभान्वित व्यक्ति परिवर्तित स्थिति स्वीकार करने के लिए हानिग्रस्त व्यक्तियो को प्रेरित करने में समर्थ है और साथ ही हानिग्रस्त व्यक्ति लाभान्वित व्यक्तियो को मौलिक स्थिति में बने रहने के लिए प्रेरित करने में असमर्थ है।’’ सरल शब्दो में इसका आशय है कि यदि B स्थिति A की अपेक्षा श्रेष्ठ है तो उसी मानदण्ड द्वारा B स्थिति से A स्थिति को श्रेष्ठ नहीं होना चाहिए।

सिटोवस्की मानदण्ड को निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है।

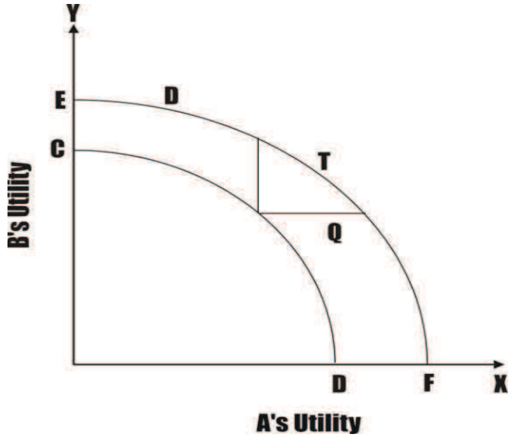

रेखाचित्रों में CD व EF दो उपयोगिता संभावना वक्र है जो एक दूसरे को कहीं भी प्रतिच्छेद नहीं करते।ऐसी स्थिति में बिंदू Q से D बिंदु को परिवर्तन कैल्डर-हिक्स मानदण्ड के अनुसार सुधार है। आपूर्ति सामाजिक कल्याण में वृद्वि को प्रदर्शित करता है। इसके विपरीत D बिंदु से पुनः Q बिंदु को परिवर्तन सुधार नहीं है।क्योकि वह R बिंदु कि अपक्षा दोनों व्यक्तियो की कम उपयोगिता का संयोग है जबकि D और T प्रदत्त वस्तुओ और सेवाओ के भिन्न-भिन्न वितरण से प्राप्त उपयोगिता के संयोग प्रदर्शित करते है।इस प्रकार कैल्डर-हिक्स मानदण्ड की पूर्ति हो जाती है।

क्षतिपूर्ति सिद्वान्त की आलोचनात्मक समीक्षा

कैल्डर-हिक्स व सिठोवस्की की द्वारा प्रतिपादित क्षतिपूर्ति सिद्धान्त, कल्याणकारी अर्थशास्त्रों में एक वाद विवाद का विषय रहा है। सर्वप्रथम कैल्डर ने बगैर अन्तर्वैयक्तिक के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त द्वारा उस दशा में समाजिक कल्याण में वृद्वि या कभी जॉचने का मानदण्ड प्रस्तुत किया बाद में हिक्स के ही शब्दों में उसका सर्मथन किया। सिठोवस्की ने क्षतिपूर्ति पर आधारित अपने दोहरे मानदण्ड के

प्रतिपादन द्वारा कैल्डर-हिक्स मानदण्ड में सुधार किया किन्तु फिर भी क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की आलोचना निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत की जाती है।

1-यह नैतिक निर्णय में स्वतंत्र नहीं है।

2-कैल्डर-हिक्स मानदण्ड वास्तविक समाजिक कल्याण पर विचार नहीं करता। यह निर्णय करना कि किन लोगों को हानि हुई है और उनका कितना भुगतान दिया जाय अत्यन्त कठिन है।

3-क्षतिपूर्ति सिद्धान्त उपभोग और उत्पाद के बाहरी प्रभावो पर ध्यान नहीं देता।

4-वितरण से स्वतंत्र उत्पादन में वृद्वि का कोई अर्थ नहीं है।

रेखाचित्रों में CD व Ef दो उपयोगिता संभावना वक्र है जो एक दूसरे को कहीं भी प्रतिच्छेद नहीं करते।ऐसी स्थिति में बिंदू Q से D बिंदु को परिवर्तन कैल्डर-हिक्स मानदण्ड के अनुसार सुधार है। आपूर्ति सामाजिक कल्याण में वृद्दि को प्रदर्शित करता है। इसके विपरीत D बिंदु से पुनः Q बिंदु को परिवर्तन सुधार नहीं है।क्योकि वह R बिंदु कि अपेक्षा दोनों व्यक्तियो की कम उपयोगिता का संयोग है जबकि D और T प्रदत्त वस्तुओ और सेवाओ के भिन्न-भिन्न वितरण से प्राप्त उपयोगिता के संयोग प्रदर्शित करते है।इस प्रकार कैल्डर-हिक्स मानदण्ड की पूर्ति हो जाती है।

क्षतिपूर्ति सिद्धात बाहरी प्रभावो की उपेक्षा करता है, क्योंकि यह मान लेता है कि एक व्यक्ति का कल्याण उसकी अपनी आर्थिक स्थिति पर ही निर्भर करता है, दूसरे व्यक्ति की आर्थिक स्थितियों से प्रभावित नहीं होता। यह मान्यता उचित नहीं कही जा सकती।

अतः स्पष्ट है कि क्षतिपूर्ति सिद्धान्त या नया कल्याणकारी अर्थशास्त्र एक ऐसी कल्याण कसौटी नहीं दे सका जो सार्वभौमिक रूप से सत्य हो। अर्थात इसके निर्माणकर्ता नैतिक निर्णयो से स्वतंत्र एक कल्याण कसौटी देने में असफल रहे।

4.4.3 सामाजिक कल्याण फलन

आपने अब तक यह जाना कि नये कल्याणकारी अर्थशास्त्र के निर्माताओ (काल्डर -हिक्स तथा सिटोवस्की) ने सम्भावित क्षतिपूर्ति के सिद्धांत के माध्यम से एक ऐसा कल्याणकारी मापदण्ड बनाना चाहा जो नैतिक निर्णयो से मुक्त भी हो परन्तु वे असफल रहे। इसके पूर्व के प्राचीन कल्याणकारी सिद्धांत भी नैतिक निर्णयो से स्वतंत्र नहीं रह सके थे। अतः बर्गसन, सैम्युलसन तथा अन्य अर्थशास्त्रियो द्वारा कल्याणकारी अर्थशास्त्र के पुर्ननिर्माण करने का प्रयत्न किया गया। इन अर्थशास्त्रियो द्वारा कल्याण की जो कसौटी प्रस्तुत की गयी उसे ‘‘सामाजिक कल्याण फलन’’ कहा जाता है।

सामाजिक कल्याण फलन से जुडे अर्थशास्त्रियो का मानना है कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र आवश्यक रूप से एक आदर्शात्मक अध्ययन है और नैतिक निर्णयो को स्पष्ट रूप से (बाहर से)शामिल कर

लेना चाहिए तभी कल्याणकारी अर्थशास्त्र अर्थपूर्ण कल्याण मापदण्ड प्रस्तुत कर सकता है। इसे आप इस तरह भी समझ सकते है कि जब अर्थव्यवस्था में किसी नीति परिवर्तन से कुछ लोगो की आर्थिक स्थिति सुधरती है (उन्हे लाभ होता है) तथा कुछ को हानि होती है तो ऐसी स्थिति में इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार सामाजिक कल्याण पर विचार करने हेतु मूल्य निर्णय की आवश्यकता होती है क्योकि इसके बिना अलग-अलग व्यक्तियो या समूहो की स्थिति पर विचार नहीं किया जा सकता है।

बर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन व्यक्तिगत उपभोक्ताओ के उपयोगिता फलन की ही भॉति है। सामाजिक कल्याण फलन की मान्यताएं निम्नाकित हैः-

i. यह उपयोगिता के क्रमवाचक विचार को मान्यता देता है।

ii. समाज का कल्याण वहॉ के व्यक्तियो के कल्याण पर निर्भर करता है और व्यक्ति का कल्याण न केवल उसकी व्यक्तिगत आय, अपितु समाज के अन्य व्यक्तियो के कल्याण व धन के वितरण पर निर्भर करता है।

iii. नैतिक निर्णयों को स्पष्ट रूप से शामिल करता है तथा उपयोगिता के अन्तः वैयक्तिक तुलनाओं को स्वीकार करता है।

iv. समाज में बाहय मितव्ययिताएं तथा अमितव्ययिताएं के प्रभाव मौजूद होते है।

वास्तव में सामाजिक कल्याण फलन उन सभी तत्वो या चरो को बताता है जिन पर समाज के सभी व्यक्तियो का कल्याण निर्भर करता है। क्योकि समाज के व्यक्तियो का कल्याण समाज के प्रत्येक सदस्य द्वारा वस्तुओ की मात्राओ के उपभोग पर तथा प्रत्येक सदस्य द्वारा की गई सेवाओ पर निर्भर करता है। अतः एक व्यक्ति का कल्याण केवल स्वयं के कल्याण पर ही नहीं अपितु उसकी दृष्टि में समाज के अन्य सदस्यो में कल्याण के वितरण भी निर्भर करता है। अतः यह स्पष्ट है कि सामाजिक कल्याण फलन उन सब तत्वो या चरो को व्यक्त करता है जिन पर समाज के सभी व्यक्तियो का कल्याण निर्भर करता है।

आइए यह जानने का प्रयास किया जाय कि सामाजिक कल्याण फलन क्या है? सामाजिक कल्याण फलन समाज के कल्याण का एक क्रमवाचक सूचक है। यह स्पष्ट नैतिक निर्णयो का एक समूह प्रदान करता है जिसके आधार पर व्यक्तियो की उपयोगिताओ को जोड़ा जा सकता है जिससे सामाजिक कल्याण फलन प्राप्त हो सके। अतः सामाजिक कल्याण फलन एक प्रकार का सामाजिक उपयोगिता फलन है। इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता हैः-

$$W=f(U1, U2, U3 \ldots\ldots\ldots\ldots Un)$$

जहॉ W सामाजिक कल्याण फलन है।

U1, U2, U3…………..Un समाज में 1 से लेकर n व्यक्तियों के उपयोगिता स्तरों अर्थात क्रमवाचक उपयोगिता को व्यक्त करते है।

f फलनात्मक सम्बन्ध का प्रतीक है।

सामाजिक कल्याण फलन के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इसका रूप उस व्यक्ति या संस्था के मूल्यगत निर्णय पर निर्भर करेगा जिसे सामाजिक कल्याण के विषय में निर्णय देने का अधिकार प्रदान किया गया है। बर्गसन मानते है कि वह व्यक्ति या संस्था कोई भी हो सकता है किन्तु वास्तविक स्थिति का निर्णय देने के लिये आवश्यक है कि वह निष्पक्ष हो क्योंकिउसके निर्णय पर ही सामाजिक कल्याण में परिवर्तन निर्भर करेगा और उस निर्णय को समाज के सभी व्यक्तियों को स्वीकार करना होता है।

बर्गसन सेम्युलसन ने इस प्रकार का मूल्यगत निर्णय करने के लिए एक ‘‘महापुरूष’’ की कल्पना की और यह भी माना कि उसके सभी मूल्यगत निर्णय परस्पर संगत होने चाहिए। इसका आशय यह है कि यदि वह किसी दी हुई परिस्थिति में X को Y की तुलना में अधिक अधिमान देता है और Y को Z की अपेक्षा अधिक वरीयता देता है तो उसे X को Z की अपेक्षा अधिक अधिमान देना चाहिये।

अब तक आप ने यह जाना कि सामाजिक कल्याण फलन स्पष्टतः नैतिक निर्णयों को स्वीकार करता है। तथा उपयोगिता के क्रमवाचक विचार का प्रयोग करता है।सामाजिक कल्याण फलन के निर्माण के लिये अर्थशास्त्री द्वारा नैतिक निर्णयो के किसी भी समूह का प्रयोग किया जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि सामाजिक कल्याण फलन स्वाभाव से अत्यन्त समान्य है क्योंकि इसमें प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण वस्तुओं व सेवाओं के केवल अपने स्वयं के उपभोग पर ही नहीं अपितु अन्य व्यक्तियों के उपभोग व समाज में सदस्यो के आय वितरण के प्रति उसके दृष्टिकोण पर भी निर्भर करता है।

स्पष्ट है कि सामाजिक कल्याण फलन में मूल्यगत निर्णयों का समावेश करने से यह अपने पूर्ववर्ती कल्याण संबंधी विचारों पर एक सुधार है किन्तु इस फलन की निम्नांकित आलोचनाएं भी की जाती है:-

1.लिटिल स्टीटेन व बॉमोल जैसे अर्थशास्त्री सामाजिक कल्याण फलन की यह कहकर आलोचना करते है कि- व्यावहारिक दृष्टि से इसका महत्व सीमित है। इसे एक लोकतांत्रिक राज्य में लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसी स्थिति में जितने लोग होगे उतने ही समाजिक कल्याण फलन होंगे। इस प्रकार यह पूर्णतया सामान्य फलन है जिसका व्यावहारिक महत्व बहुत कम है।

2.प्रो0 जे0 के0 मेंहता का मानना है कि ‘‘महापुरूष’’ अधिकृत संस्था या आधुलिक युग में प्रतिनिधि सरकारों को निष्पक्ष ढंग ये मूल्यगत निर्णय देना चाहिए। किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि संस्था का व्यक्तिगत स्वार्थ न हो और ऐसा होना आवश्यकताविहीनता की दशा में ही संभव है।

यदि आवश्यकताविहीनता की दशा भी असंभव है फलतः मूल्यगत निर्णय भी असंभव है। अतः कोइ भी सामाजिक कल्याण फलन कल्याण के परिवर्तन के विषय में पूर्णतया सत्य निर्णय नहीं दे पाता है।

अभ्यास प्रश्न -1

1- निम्न कथनों में से सत्य या असत्य छॉटिये:-

(क)कल्याणकारी अर्थशास्त्र कुछ दिये हुए लक्ष्यों या सामाजिक आदर्शो के सन्दर्भ में आर्थिक नीतियों की अच्छाई या बुराई के औचित्य का मूल्यांकन करता है। (सत्य/असत्य)

(ख)वास्तविक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत केवल घटना के कारण और परिणाम सम्बन्धो की अध्धयन किया जाता है। (सत्य/असत्य)

(ग)पीगू के अनूसार धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों की ओर आय का हस्तांतरण सामाजिक कल्याण में कमी को प्रदर्शित करेगा। (सत्य/असत्य)

(घ)प्रो0 पीगू क्षतिपूर्ति सिद्धान्त से जुडे अर्थशास्त्री है। (सत्य/असत्य)

(ड)सामाजिक अनुकूलतम का सि़द्धान्त काल्डर हिक्स की देन है। (सत्य/असत्य)

(च)कल्याणकारी अर्थशास्त्र के व्यवस्थित अध्ययप् की शुरूआत पीगू से मानी जाती है। (सत्य/असत्य)

(ज)कल्याण एक वयक्तिगत तथ्य है जो मस्तिष्क में निवास करती है। (सत्य/असत्य)

(झ)परेटो अनुकूलतम का केवल एक अकेला बिन्दु होता है। (सत्य/असत्य)

(ड)सामाजिक कल्याण फलन प्रत्येक वयक्ति के कल्याण का फलन है। (सत्य/असत्य)

(ट)कोल्डार हिक्स कटौती नैतिक निर्णयों से स्वतंत्र है। (सत्य/असत्य)

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

(क)अर्थशास्त्री--------ने सामान्य कल्याण तथा आर्थिक कल्याण में
विभेदकिया।(हिक्स/पीगू/राबिन्सन)

(ख)परेटो का सिद्धान्त उपयोगिता के ---------विचार पर आधारित है। (क्रमवाचक/ गणनावाचक)

(ग)हिक्स काल्डर तथा सिटोवस्की द्वारा ----------सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया। (क्षतिपूर्ति/सामाजिक कल्याण फलन(घ)क्षतिपूर्ति --------कल्याणकारी अर्थशास्त्र का अंश है। (पुराना /नया)

(ड)सेम्युल्सन द्वारा सामाजिक कल्याण फलन में नैतिक निर्णयो का निर्णय करने हेतु--------की कल्पना की गयी।(लाटरी/महापुरूष)

4 5 सारांश-

अब तक के अध्ययन से स्पष्ट है कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र समाज के आर्थिक कल्याण को अधिकतम करने के उपायों का अध्ययन करता है। यह उन दशाओं का भी अध्ययन करता है जिनके आधार पर यह मालूम किया जा सकता है कि एक समयावधि में दूसरी समयावधि की अपेक्षा समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हुयी अथवा कमी। कल्याणकारी अर्थशास्त्र के प्राचीन और नवीन दोनो सिद्धान्त किसी न किसी रूप में नैतिक मूल्य से जुडे हुए है। परेटो का सामाजिक अनुकूलतम सिद्धान्त जो कल्याणकररी अर्थशास्त्र में एक मील का पत्थर है वह भी नैतिक निर्णयो से स्वतन्त्र नहीं है। इसी प्रकार इसके विकल्प में प्रतिपादित क्षतिपूर्ति सिद्धान्त में भी नैतिक निर्णय की समस्या उत्पन्न होती है। परन्तु सामाजिक कल्याण फलन से जुडे अर्थशास्त्रीयों ने सामाजिक कल्याण के आदर्शात्मक व वैज्ञानिक अध्ययन हेतु अपने सिद्धांतो में नैतिक निर्णयो को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

4.5 शब्दावली

वास्तविक अर्थशास्त्रः- वास्तविक अर्थ्रशास्त्र के अन्तर्गत आर्थिक घटनाओं के कारण और परिणाम के सम्बन्घ में अध्ययन किया जाता है। यह आर्थिक घटनाओं के औचित्ये के बारे में कुछ नहीं बतलाता अपितु वो जैसी होती है उसका वैसा ही वर्णन करता है।

आदर्शात्मक अर्थशास्त्रः- आदर्शात्मक अर्थशास्त्र, आर्थ्रिक विश्लेषण की वह रीति हे जिसके अर्न्तगत आर्थिक नीतियों के औचित्य का प्रश्न उठाया जाता है। अर्थात इसमें मुख्य जोर क्या होना चाहिए पर रहता है।

नैतिक निर्णय या मूल्यगत निर्णयः- ऐसे नीति सम्बन्धी कथन जो विश्वासों व दृष्टिकोणों में परिवर्तन करके व्यक्तियों को प्रभावित करने की प्रवृति रखता है।

सामाजिक कल्याणः- समाज के व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली उपयोगिताओ या संतुष्टियों का योग सामाजिक कल्याण कहलाता है।

वाहय मितव्ययिताएं तथा अमितव्ययिताएं - जब एक आर्थिक इकाई दूसरे के लिए वह कोई भुगतान नहीं प्राप्त करती तो वाहय मितव्ययितायें पायी जाती है वाहय अमितव्ययिताये तब होती है जब एक आर्थिक इकाई दूसरो पर होती ऐसी हानि डाल देती है जिसके लिए उसे भुतान करने की आवश्यकता नहीं।

4.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

(1) (क) सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) असत्य (ड) असत्य (च) सत्य (छ) असत्य (ज) सत्य (झ)असत्य (ड) सत्य(ट) असत्य

(2) क- पीगू ख-क्रमवाचक ग- क्षतिपूर्ति घ- महापुरूष

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Dwivedi, D. N. (2008): Micro Economics 7th edition vikas Publish House New Delhi.
- Koutsiyanniesa, A- (1997) –Microeconomics Analysis New Delhi.
- Mishra S.K & Puri V.K. (2003) – Modern micro economic theory Himalaya Publishing House.
- Sethi T. T (2006) – 'Principlesa of Economics' Lakshmi Narayan Agrawal agra
- Ahuza ,H.L (2010) – "Principlesa of Microeconomics", S.chand publishing house,new delhi.
- Seth,M.L.(2007),'Microeconomics'lakshmi narayan agrawal,Agra

4.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

आहूजा, एच0 एल0 (2003) उच्चतर आर्थिक सिद्वात (व्यष्टि परक आर्थिक विश्लेषण) एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

सिन्हा, वी0 सी0 (1999) व्यष्टि अर्थशास्त्र, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद

आहूजा, एच0 एल0(1999)उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र, एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस

जैन, के0 पी0 (1987) व्यष्टि अर्थशास्त्र साहित्य भवन, आगरा

लाल, एस0 एन0 (1999) व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद

सिंह, देव नारायण (2004) व्यष्टिअर्थशास्त्र- अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली

4.10 निबन्धात्मक प्रश्नः-

प्रश्न 1- कल्याणकारी अर्थशास्त्र को परिभाषित कीजिए तथा वास्तविक अर्थशास्त्र से उसके अन्तर को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 2- आप कल्याणकारी अर्थशास्त्र से क्या समझते है ? कल्याणकारी अर्थशास्त्र में नैतिक निर्णयो की स्थान की विवेचना कीजिए?

प्रश्न 3- नये कल्याणकारी अर्थशास्त्र आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए ?

प्रश्न 4- सामाजिक कल्याण फलन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 5- निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये -

(1) बर्गसन मापदण्ड

(2) सटोवस्की का दोहरा मापदण्ड

(3) कॉल्डार हिक्स मापदण्ड

इकाई - 5 गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण
5.4 उपभोक्ता की संस्थिति तथा मार्शल का समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण
5.5 सिद्धान्त की आलोचनायें
5.6 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्त्व
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्न
5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

विगत खण्ड में आप ने अर्थशास्त्र की परिभाषा, स्वरूप व उसके क्षेत्र के बारे में जानने के साथ ही आर्थिक सिद्धांतो के दो प्रकारों- व्यष्टि परक विश्लेषण तथा समष्टि परक आर्थिक विश्लेषण को जाना। आप आर्थिक स्थैतिकी व प्रावैगिकी के साथ ही साथ सामान्य संतुलन विश्लेषण और कल्याणकारी अर्थशास्त्र की परिभाषा, प्रकृति व उसके विकास से जुडे विभिन्न सिद्धान्तो का क्रमिक अध्ययन आप कर चुके है।

किसी वस्तु का मूल्य जिसकी माँग, या उपभोग के सम्बन्ध में हम अध्ययन करना चाहते हैं, उपभोक्ता की आय, अन्य वस्तुओं का मूल्य, रुचि तथा फैशन, उपभोक्ता की सम्पत्ति, भविष्य में आय प्रवाह तथा उसकी निश्चितता आदि ऐसे प्रमुख चर हैं जो किसी उपभोक्ता के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। कोई उपभोक्ता किसी वस्तु की मांग (या क्रय) इसलिए करता है क्योंकि वस्तु में उसकी आवश्यकता की संतुष्टि की यह क्षमता होती है। आवश्यकता की संतुष्टि की किसी वस्तु की यह क्षमता ही उस वस्तु की उपयोगिता कहलाती है। स्पष्ट है किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता ही उपभोक्ता के व्यवहार के विश्लेषण की मूल कड़ी होगी। किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता को व्यक्त करने या मापने को लेकर अर्थशास्त्रियों में मतभेद रहा है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह माना कि किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता का संख्यात्मक माप या उपयोगिता को 30, 40, 5 आदि रूपों में व्यक्त करना संभव है तो कुछ ने यह माना कि उपयोगिता को संख्या के रूप में नहीं व्यक्त किया जा सकता, उपयोगिता का क्रम वाचक माप ही सम्भव है अर्थात विभिन्न वस्तुओं या किसी वस्तु की विभिन्न इकाइयों को उपयोगिता की दृष्टि से केवल क्रमबद्ध किया जा सकता है जैसे चौथी, पहली, तीसरी आदि।

इन दोनों ही समस्याओं के समाधान के सम्बन्ध में दिये गये सिद्धान्तों को हम दो वर्गों में रख सकते हैं -

(क) नियोक्लासिकल सीमान्त उपयोगिता दृष्टिकोण या उपयोगिता के संख्यात्मक माप पर आधारित सिद्धांत - मार्शल का सम सीमान्त उपयोगिता दृष्टिकोण।

(ख) उपयोगिता के क्रम वाचक माप पर आधारित सिद्धांत-

i. हिक्स-एलेन का अनधिमान वक्र (या तटस्थता वक्र) दृष्टिकोण।

ii. सेमुएलसन का व्यक्त अधिमान दृष्टिकोण।

इस इकाई में आप किसी वस्तु के क्रय या उसकी माँग या उसके उपभोग की मात्रा के सम्बन्ध में कोई उपभोक्ता विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार से व्यवहार करता है, इसका अध्ययन

करेगें। आप समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण एवं उपभोक्ता की संस्थिति तथा मार्शल का समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण और सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्त्व को बता सकेगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण को जान सकेंगे।
2. उपभोक्ता की संस्थिति तथा मार्शल का समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण सिद्धान्त की आलोचनायें को समझा सकेंगे।
3. सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्त्व को जान सकेंगे।

5.3 समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण

संख्यात्मक विश्लेषणः मार्शल का यह मत है कि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक तथ्य होने के बावजूद भी मुद्रा के द्वारा नापी जा सकती है। हम किसी वस्तु के लिए मुद्रा के रूप में मूल्य क्यों देते हैं? क्योंकि उसमें उपयोगिता है। किसी भी वस्तु का मूल्य हम उसकी उपयोगिता से अधिक देने के लिए तैयार नहीं होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु के बदले दिये जाने वाले मूल्य के बराबर इुई। मार्शल द्वारा बताई गई उपयोगिता के माप की इस विधि को संख्यात्मक विधि कहते हैं। इस विधि के अनुसार किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को 10, 15, 50, 65 .... आदि संख्याओं के रूप में व्यक्त किया जा सकता है जैसे रोटी की पहली इकाई से 25, दूसरी से 15, तीसरी से 10 उपयोगिता आदि।

इसके पूर्व कि हम मार्शल द्वारा प्रतिपादित संस्थिति निर्धारण सिद्धान्त की व्याख्या करें, यह उचित होगा कि हम इसमें प्रयुक्त होने वाली कुछ धारणाओं को पहले स्पष्ट कर दें।

5.3.1 औसत उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिताः उपयोगिता को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है- कुल उपयोगिता, सीमान्त उपयोगिता तथा औसत उपयोगिता।

उपभोग की क्रिया में पहली इकाई के उपभोग से लेकर अन्तिम इकाई के उपभोग तक प्रत्येक इकाई से मिलने वाली उपयोगिता का योग ही कुल उपयोगिता होगी, यदि कुल उपयोगिता को उपभोग की गयी इकाइयों की संख्या से भाग दें तो हमें औसत उपयोगिता प्राप्त हो जायेगी तथा इस उपभोग की क्रिया में वस्तु की किसी इकाई से मिलने वाली उपयोगिता अथवा इस इकाई के उपभोग के कारण कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि ही सीमान्त उपयोगिता है। गणितीय भाषा में सीमान्त उपयोगिता को इस प्रकार स्पष्ट किया जाता है किसी भी इकाई से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता उससे प्राप्त होने

वाली कुल उपयोगिता तथा उस संख्या से 1 कम इकाई से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता का अन्तर है। इस प्रकार n वीं की सीमान्त उपयोगिता $MU_n = TU_n - TU_{n-1}$। चूँकि प्रत्येूक इकाई के उपभोग के कारण कुल उपयोगिता में होने वाली वृद्धि सीमान्त उपयोगिता है, इसलिए कुल उपयोगिता वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर ढाल उससे सम्बधित उपभोग की गयी वस्तु के लिए सीमान्त उपयोगिता प्रदर्शित करेगा।

5.3.2 कुल उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता के बीच सम्बन्ध

निम्न सारिणी को यदि ध्यान से देखें तो पायेंगे कि कुल उपयोगिता में बढ़ने की प्रवृत्ति तीसरी इकाई तक है तथा उपयोगिता का अधिकतम स्तर वहाँ आ जाता है जब चौथी इकाई से मिलने वाली उपयोगिता शून्य हो जाती है। पाँचवीं इकाई से मिलने वाली उपयोगिता अनुपयोगिता में परिवर्तित हो गई है, क्योंकि पाँचवीं से मिलने वाली उपयोगिता ऋणात्मक है।

सारिणी

कलम की इकाइयाँ	उपयोगिता	कुल उपयोगिता	औसत उपयोगिता	सीमान्त उपयोगिता
1	8	8	8	8
2	5	8+5 = 13	6.5	13-8 = 5
3	1	13+1 = 14	4.67	14-13 = 1
4	0	14+0 = 14	3.5	14-14 = 0
5	.1	14-1 =13	2.6	13-14 = -1

यदि हम विचार करें तो पायेंगे कि कुल उपयोगिता क्रमशः बढ़ती जाती है। इसमें घटने की प्रवृत्ति अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति के बाद प्रारम्भ होती है। पर यह ऋणात्मक नहीं है। दूसरी ओर, सीमान्त उपयोगिता उपभोग की क्रिया के साथ क्रमशः घटती जाती है और अधिकतम सन्तुष्टि के स्तर पर पहुँच कर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है। सीमान्त उपयोगिता शून्य तथा ऋणात्मक भी हो सकती है। दोनों के बीच एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध यह है कि सन्तुष्टि के अधिकतम स्तर पर सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है तथा इस बिन्दु के बाद जब कुल उपयोगिता घटने लगती है तो सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है। इस सम्बनध को रेखाचित्र नं. 5.1 में प्रदर्शित किया गया है।

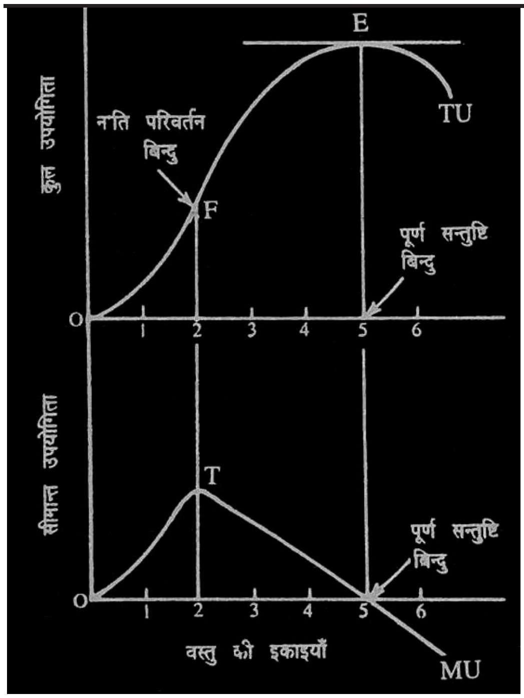

चित्र 5.1

इस रेखाचित्र में TU वक्र कुल उपयोगिता तथा MU वक्र सीमान्त उपयोगिता प्रदर्शित करती है। TU के देखने से स्पष्ट है कि बिन्दु E पर कुल उपयोगिता अधिकम है। इसके बाद इसमें गिरावट प्रारम्भ हो जाती है। रेखाचित्र से स्पष्ट है E बिन्दु पर TU का ढाल शून्य है। इसलिए सीमान्त उपयोगिता (MU), उस स्थिति में शून्य है। स्पष्ट है अब TU अधिकतम होगी उस समय MU न्यूनतम होगी। यदि पूर्ण सन्तुष्टि का बिन्दु होगा। वक्र के देखने से एक बात और स्पष्ट है। शुरू में दूसरी इकाई तक या नति परिवर्तन बिन्दु (F) तक तो MU बढ़ रही है उसके बाद उसमें गिरावट प्रारम्भ हो गयी है। उल्लेखनीय है कि यदि TU वक्र F बिन्दु से शुरू हो, अर्थात् वक्र का OF भाग नहीं हो तो MU वक्र केवल नीचे गिरती हुई होगी अर्थात् T से शुरू होगी, OT भाग नहीं प्रदर्शित होगा।

TU वक्र के देखने से यह भी स्पष्ट है कि F बिन्दु तक कुल उपयोगिता बढ़ती दर से बढ़ रही है इसके बाद कुल उपयोगिता गिरती दर से बढ़ रही है। F बिन्दु को नति-परिवर्तन बिन्दु कहते हैं।

5.3.3 सीमान्त उपयोगिता-ह्रास-नियम

सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास-नियम उपभोग का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम फ्रेंच अर्थशास्त्री गॉसेन ने किया। इसलिए इस सिद्धान्त को जेवेन्स ने गॉसेन का प्रथम नियम कहा है। विलियम स्टेनले जेवेन्स पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में इस नियम का प्रयोग किया पर बाद में प्रो0 मार्शल ने इसका समर्थन किया तथा उसे और

विकसित किया। प्रो0 मार्शल के अनुसार ”अन्य बातों के समान रहने पर, किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु के स्टॉक की वृद्धि होने से जो उपयोगिता प्राप्त होती है वह वस्तु की मात्रा की प्रत्येक इकाई के साथ घटती जाती है।“ ("The additional benefit which a person derives from a given increase of his stock of a thing diminishes with every increase in the stock that he already has." - Marshall.)या जैसे-जैसे हम किसी वस्तु का उपभोग करते जाते हैं, उसकी उत्तरोत्तर इकाइयों से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है।

सीमान्त उपयोगिता में घटने की प्रवृत्ति के प्रमुख रूप से निम्नांकित कारण हो सकते हैं -

(1) **मनोवैज्ञानिक आधार**: सीमान्त उपयोगिता-ह्रास-नियम प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वेबर के सिद्धान्त पर आधारित है जो यह प्रतिपादित करता है कि बाहरी उत्तेजकों के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रियाओं की तीव्रता क्रमशः कम होती जाती है। उपभोग की क्रिया में उपभोग में लायी जाने वाली वस्तु बाहरी उत्तेजक है तथा उससे मिलने वाली उपयोगिता, (उसकी प्रतिक्रिया) जिसका घटना उक्त नियम के अनुसार स्वाभाविक है।

(2) प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ण सन्तुष्टि की सम्भावना: बोल्डिंग ने इस बात का उल्लेख किया कि सीमान्त उपयोगिता के घटने की प्रवृत्ति का आधार यह है कि प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ण संतुष्टि सम्भव है। अब यदि हम किसी आवश्यकता को पूर्णतया सन्तुष्ट करने की क्रिया में आगे बढ़ें और जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि पूर्ण सन्तुष्टि का द्योतक शून्य उपयोगिता होती है तो शून्य की ओर बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता क्रमशः घटे।

(3)वस्तुओं का परस्पर पूर्ण स्थानापन्न न होना: बोल्डिंग के अनुसार सीमान्त उपयोगिता में घटने की प्रवृत्ति का एक और कारण यह है कि उपभोग की वस्तुयें एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न नहीं हैं, वस्तुओं को एक निश्चित अनुपात में ही प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए यदि एक को स्थिर कर दिया जाये और दूसरे को ही निरन्तर बढाया जाये तो उचित अनुपात के अभाव में दूसरी वस्तु की उपयोगिता घटनी शुरू हो जायेगी।

मान्यतायें- अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की ही भाँति यह नियम भी कुछ मान्यताओं पर आधारित है जिनका उल्लेख करना आवश्यक है। ये निम्नांकित है -

i. उपभोग की क्रिया निरन्तर चलनी चाहिये, ऐसा नहीं है कि फल की एक इकाई प्रातःकाल ली जाये तथा उसकी दूसरी इकाई रात्रि में।

ii. उपभोग में आने वाली वस्तु की प्रत्येक इकाई गुण, परिमाण, स्वाद, बनावट आदि में समान होनी चाहिए।

iii. उपभोग की लम्बी अवधि में उपभोग की आय, रुचि, आदत आदि में परिवर्तन नहीं होना चाहिये।

iv. उपभोग की अवधि में उपभोक्ता की मानसिक स्थिति समान रहनी चाहिये।

v. उपभोग की क्रिया की अवधि में वस्तु के मूल्य में परविर्तन नहीं होना चाहिए।

vi. वस्तु की स्थानापन्न वस्तु का मूल्य भी अपरिवर्तित रहना चाहिए।

vii. चैपमैन ने यह कहा कि नियम के लागू होने के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु की उचित इकाईयों का प्रयोग होना चाहिए।

5.4 उपभोक्ता की संस्थिति तथा मार्शल का समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण

प्रत्येक उपभोक्ता के सामने सबसे प्रमुख समस्या अपने सीमित साधनों को विभिन्न प्रयोगों या विभिन्न वस्तुओं के क्रय के सम्बन्ध में इस प्रकार से बँटवारे की होती है जिससे उसे अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति प्राप्त हो सके। यह अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति ही उपभोक्ता की संस्थिति की स्थिति होगी। वह किस प्रकार से व्यवहार करता है अथवा अपने सीमित साधनों को विभिन्न उपयोगों में लगाता है जिससे संस्थिति की स्थिति प्राप्त हो जाय, मार्शल ने उपयोगिता के संख्यात्मक माप पर आधारित समसीमान्त उपयोगिता नियम का प्रतिपादन किया। उपभोग के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त की सर्वप्रथम व्याख्या गॉसेन ने किया। इसीलिए इसे गॉसेन का दूसरा नियम कहते हैं। पर चूँकि इस सिद्धान्त का अधिक परिष्कृत तथा वैज्ञानिक विश्लेषण प्रो. मार्शल से ही प्राप्त हुआ, इसलिए इसके प्रतिपादक के रूप में हम मार्शल को ही स्वीकार करते हैं। अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति को प्राप्त करने में उपभोक्ता कम उपयोगिता देने वाले उपयोग के स्थान पर अधिक उपयोगिता देने वाले उपयोग को तब तक प्रतिस्थापित करता है जब तक उसे संस्थिति की स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती, इसलिए इस सिद्धान्त को उपभोग में प्रयुक्त प्रतिस्थापन का सिद्धान्त भी कहते हैं, जिन पर यह सिद्धान्त आधारित है वे मान्यतायें निम्नवत् हैं -

1. विवेक पूर्णताः उपभोक्ता विवेकपूर्ण है।
2. सीमित साधन या सीमित मौद्रिक आयः उपभोक्ता के पास साधन सीमित है।
3. उपयोगिता का संख्यात्मक मापः मार्शल का समसीमान्त उपयोगिता नियम इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को मापा जा सकता है।
4. संख्यात्मक मापा विश्लेषणः विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली उपोगिता योगात्मक मानता है अर्थात वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली उपोगिता को जोड़ा जा सकता है।

5. क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम का क्रियाशीलनः किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयां के उपभोग से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः गिरती हुई होगी।

6. मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता के स्थिर रहने की मान्यताः उपभोग के दौरान उपभोक्ता जेसे-जैसे मुद्रा खर्च करता जायेगा उसके पास मुद्रा के स्टॉक में कमी होती जायेगी, फलस्वरूप मुद्रा की उत्तरोत्तर इकाई की सीमान्त उपयोगिता बढ़नी चाहिए पर मार्शल ने यह माना कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहेगी। कोई भी वस्तु यदि मापक इकाई के रूप में स्वीकार की जाय तो उसके मूल्य में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

7. विभिन्न वस्तु समूह से प्राप्त होने वाली उपयोगिता, अलग-अलग वस्तुओं की मात्रा पर निर्भर करेगी। वस्तुओं की जितनी ही अधिक मात्रा उपभोग की जायेगी कुल उपयोगिता उतनी ही अधिक होगी।

8. यह दृष्टिकोण आत्मदर्शन पद्धति पर आधारित है।

मार्शल के अनुसार यदि किसी व्यक्ति के पास कोई एक ऐसी वस्तु हो जो विभिन्न प्रयोगों में लायी जा सके तो वह उस वस्तु को विभिन्न प्रयोगों में इस प्रकार बाँटेगा कि उसकी सीमान्त उपयोगिता सभी प्रयोगों में समान रहे क्योंकि यदि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता एक प्रयोग में दूसरे की अपेक्षा अधिक है तो वह दूसरे प्रयोग से वस्तु की मात्रा हटाकर तथा उसका प्रयोग पहले से करके लाभान्वित हो सकता है।

इस प्रकार जहाँ X वस्तु पर खर्च की गयी रूपये की अन्तिम इकाई की सीमान्त उपयोगिता Y वस्तु पर खर्च की गयी रुपये की अन्तिम इकाई की सीमान्त उपयोगिता के बराबर है, वहीं संस्थिति की स्थिति प्राप्त होगी। अर्थात् वस्तु पर रुपये की अन्तिम इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता वास्तव में X वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा उसके मूल्य अनुपात के द्वारा या $\frac{MU_x}{P_x}$ से प्रदर्शित होता है। $\frac{MU_x}{P_x}$, X पर मूल्य के रूप में व्यय की गयी मुद्रा की प्रति इकाई X की सीमान्त उपयोगिता प्रदर्शित करता है। इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि उपभोक्ता X की सीमान्त उपयोगिता तथा उसके मूल्य के अनुपात अर्थात् X की सीमान्त उपयोगिता या X का मूल्य (MU_x/P_x) की तुलना Y की सीमान्त उपयोगिता तथा उसके मूल्य के अनुपात अर्थात् Y की सीमान्त उपयोगिता या Y का मूल्य (MU_y/P_y) के साथ करता है और जब तक MU_x/P_x का मान MU_y/P_y से अधिक होगा, व मुद्रा की इकाई Y वस्तु से हटाकर X वस्तु पर लगायेगा, इस क्रिया में MU_x/P_x का मान कम होगा (क्योंकि X पर अधिक व्यय के कारण X की सीमान्त उपयोगिता घटेगी) दूसरी ओर MU_y/P_y का मान बढ़ेगा (क्योंकि जैसे-जैसे Y पर कम व्यय होगा उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता बढ़ेगी) मूल्य स्थिर मान लिया गया है। इस प्रकार MU_x/P_x घटेगा तथा MU_y/P_y बढ़ेगा

और Y के स्थान पर X के प्रतिस्थापन की क्रिया तब तक चलती जायेगी जब तक कि वह स्थिति नहीं मिल जाती जबकि

$$\text{या} \quad \frac{MU_x}{P_x} = \frac{MU_y}{P_y}$$

यहाँ एक बात और महत्वपूर्ण है। कोई भी उपभोक्ता जब कोई वस्तु क्रय करता है तो वह न केवल मुद्रा की प्रति इकाई से प्राप्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता को ध्यान में रखता है बल्कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता को भी ध्यान में रखता है जिसे उसे वस्तुओं के क्रय पर खर्च करना है इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोक्ता अपने व्यवहार के दौरान MU_x/P_x , MU_y/P_y तथा मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता की तुलना करता है, और जैसा मार्शल ने माना कि उपभोग के दौरान मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहेगी तो हम यह भी कह सकते हैं कि उपभोक्ता संस्थिति की स्थिति वहाँ प्राप्त करेगा, जहाँ

$$\frac{MU_x}{P_x} = \frac{MU_y}{P_y} = MUm \text{ (जो स्थिर है)} \quad \text{या} \quad \frac{MU_x}{MU_y} = \frac{P_x}{P_y}$$

सिद्धान्त से प्राप्त जो निष्कर्ष दो वस्तुओं के सम्बन्ध में लागू होगा वही अनेक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी लागू होगा।

यदि x से लेकर n वस्तुयें हो तो हम कह सकते हैं कि संस्थिति की स्थिति में

$$\frac{MU_x}{P_x} = \frac{MU_y}{P_y} = \ldots\ldots\ldots\ldots \frac{MU_n}{P_n} = MU_m$$

चूँकि अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति प्राप्त करने के लिए उपभोगता x के स्थान पर y तथा y के स्थान पर x को तब तक प्रतिस्थापित करता है जब $\frac{MU_x}{P_x} = \frac{MU_y}{P_y} = \ldots\ldots = MU_m$ की स्थिति न

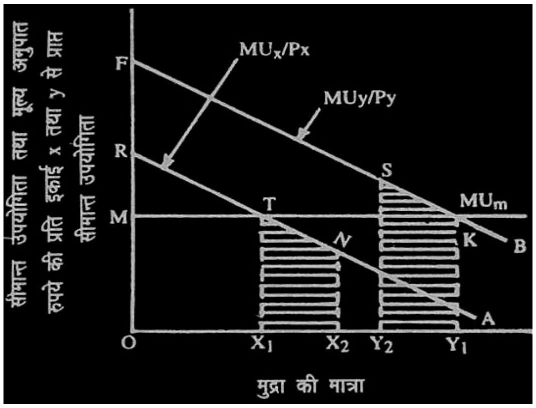

चित्र 5.2

प्राप्त हो जाय इसलिए इसे उपभोग में प्रयुक्त प्रतिस्थापन का सिद्धान्त कहते हैं और जैसा हम लोगों ने देखा, यदि मूल्य को बराबर मान लिया जाय, तो उपभोक्ता संस्थिति की स्थिति वहां प्राप्त करेगा जहाँ

विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता बराबर हो, इसलिए उपभोग के इस सिद्धान्त को '**समसीमान्त उपयोगिता नियम**' भी कहते हैं।

उपभोक्ता की संस्थिति की व्याख्या रेखाचित्र 5.2 के माध्यम से की गयी है। इस रेखाचित्र में RA रेखा $\frac{MU_x}{P_x}$ या मुद्रा की प्रति इकाई प्राप्य x की सीमान्त उपयोगिता तथा FB रेखा $\frac{MU_y}{P_y}$ या मुद्रा की प्रति इकाई प्राप्य y की सीमान्त उपयोगिता प्रदर्शित करता है, यह मानकर कि उपभोक्ता की आय दी हुई है, रेखाचित्र में यह मान लिया गया है कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता OM है जो स्थिर है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि $\frac{MU_x}{P_x}$ मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता (OM) के तब बराबर है जबकि उपभोक्ता X पर OX_1 मुद्रा व्यय करें। इसी प्रकार $\frac{MU_y}{P_y}$ मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता OM के बराबर तब होगी जबकि उपभोक्ता Y पर OY_1 मुद्रा व्यय करें। इस स्थिति में उपभोक्ता को X से $ORTX_1$ तथा Y से $OFKY_1$ कुल उपयोगिता प्राप्त होती है। अब यदि हम X पर X_1X_2और व्यय कर दें तथा $X_1X_2 = Y_2Y_1$ को Y पर कम खर्च करें तो इस स्थिति में Y पर अतिरिक्त इकाई लगाने से उपयोगिता में वृद्धि X_1 TNX_2 होगी जबकि Y पर कमी के कारण उपयोगिता में जो कमी होगी वह Y_2Y_1KS होगी। चूँकि उपयोगिता की हानि उपयोगिता की प्राप्ति से अधिक है, इसलिए हम आवंटन से पहले से उत्तम स्थिति नहीं प्राप्त होगी। इसी प्रकार हम Y पर बढ़ाकर तथा X पर घटाकर भी देख सकते हैं, पहले से अच्छी स्थिति नहीं प्राप्त होगी। इस प्रकार अधिकतम उपयोगिता तभी प्राप्त होगी जबकि उपभोक्ता X पर OX_1 तथा Y पर YX_1 व्यय करें।

5.5 सिद्धान्त की आलोचनायें

1. **उपयोगिता का संख्यातमक माप सम्भव नहीं-** आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने विशेष रूप से प्रो0 हिक्स ने इस सिद्धान्त की आलोचना की। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि उपयोगिता का संख्यात्मक माप सम्भव नहीं तथा उपभोक्ता की संस्थिति को व्यक्त करने के लिए अनधिमान-वक्रों का प्रतिपादन किया।

2. **मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता के स्थिर रहने की त्रुटिपूर्ण मान्यता**:- यह मान्यता सैद्धान्तिक आधार पर ठीक नहीं है क्योंकि एक ओर तो हम यह मान लेते हैं कि जैसे-जैसे हम किसी वस्तु की इकाई क्रय करते जाते हैं उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है। पर दूसरी ओर हम इस तथ्य की अवहेलना करते हैं कि जैसे-जैसे उपभोक्ता मुद्रा की मात्रा व्यय करता जायेगा, मुद्रा से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जायेगी। दोनों का ही आधार क्रमागत सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम है।

3. **उपभोक्ता के विवेकपूर्ण होने की मान्यता**:- सिद्धान्त की यह मान्यता कि प्रत्येक उपभोक्ता एक विवेकशील उपभोक्ता है जो सदैव अपनी अधिकतम सन्तुष्टि का ध्यान रखता है तथा व्यय करते समय प्रत्येक वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता की गणना करता है, व्यावहारिक नहीं। प्रायः उपभोक्ता उपयोगिता की तुलना नहीं करता है।

4. **इकाई-इकाई करके द्रव्यको व्यय करने की त्रुटिपूर्ण मान्यता**:- इस सिद्धान्त का एक और दोष मार्शल की इस मान्यता में निहित है कि उपभोक्ता अपनी व्यय की जाने वाली राशि की इकाई-इकाई करे व्यय करेगा, तभी वह विभिन्न उपयोगों से मलने वाली द्रव्य की सीमान्त इकाई से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता की गणना कर सकेगा तथा संस्थिति-स्थिति का ज्ञान कर सकेगा अन्यथा नहीं। पर व्यवहार में यह सम्भव नहीं है।

5. **वस्तु की अविभाज्यता**:- व्यावहारिक जीवन में ऐसी अनेक वस्तुयें हैं जिनको विभाजित नहीं किया जा सकता है, इसलिए उनकी उपयोगिता की तुलना भी नहीं की जा सकती है।

6. **वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन**:- किसी वस्तु से मिलने वाली उपोगिता उस वस्तु के मूल्य से बहुत अधिक सम्बन्धित होती है। वस्तुओं के मूल्य प्रायः परिवर्तित होते रहते हैं, फलस्वरूप उनकी उपयोगिता भी बदलती है, जिसके कारण उनकी सीमान्त उपयोगिताआं का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो पाता।

7. **कुछ वस्तुओं का अधिक टिकाऊ होना**:- इस नियम के अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली सीमानत उपयोगिता की तुलना हम एक निश्चित अवधि में करते हैं जिसे हम बजट अवधि कहते हैं, पर कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो अधिक टिकाऊ होती है और उन पर व्यय बजट अवधि में किया जाता है पर उनसे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता उसी बजट अवधि तक सीमित नहीं रहती है बल्कि आने वाली बजट-अवधि तक भी चलती है क्योंकि उनका प्रयोग आगे तक किया जाता है।

8. **रीति-रिवाज, फैशन तथा आदत**:- प्रायः मनुष्य वस्तुओं पर व्यय करते समय उनसे मिलने वाली उपयोगिता पर ध्यान नहीं देता है और ऐसी वस्तुयें भी क्रय करता है जिनसे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता भले ही कम हो पर वे या तो उसकी आदत बन चुकी होती हैं या रीति-रिवाज अथवा फैशन के कारण उसके बजट की अभिन्न अंग बन चुकी होती है।

9. **कुछ वस्तुओं का न मिलना**:- ऐसा हो सकता है कि कोई ऐसी वस्तु हो जिससे उपभोक्ता को उपयोगिता अधिक मिले तथा उसे वह क्रय करना भी चाहे पर जो बाजार में वह उपलब्ध न हो, ऐसी परिस्थिति में वह कम उपयोगी वस्तु भी उसके स्थान पर खरीदने के लिए बाध्य हो जायेगा।

5.6 सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्त्व

सम-सीमान्त उपयोगिता-नियम अर्थशास्त्र का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण तथा व्यापक सिद्धान्त है। अनेक आलोचनाओं के बावजूद भी इस सिद्धांत का व्यावहारिक या सैद्धान्तिक महत्व कम नहीं हुआ। उपभोग तथा उत्पादन के क्षेत्र में हम लोगों ने इस नियम के क्रियाशीलन तथा महत्व की व्याख्या की। अब हम कुछ और क्षेत्रों में इस नियम के प्रयोग पर विचार करेंगे।

क.कृषि क्षेत्र में- किसान अपने विभिन्न खेतों में इस प्रकार के फसल उगाता है जिससे प्रत्येक से मिलने वाला सीमान्त उत्पादन बराबर हो तथा वह विभिन्न उपयोगों में अपना साधन इस प्रकार से लगायेगा कि द्रव्य की अन्तिम इकाई से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता प्रत्येक उपयोग में बराबर हो।

ख.मुद्रा तथा वस्तु का वर्तमान तथा भावी प्रयोगः- इस नियम के आधार पर उपभोक्ता वर्तमान तथा भावी प्रयोग कके बीच अपनी आय अथवा वस्तुओं को इस प्रकार बाँटेगा कि उनसे मिलने वाली वर्तमान की सीमान्त उपयोगिता उनसे मिलने वाली भविष्य की सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो जाय।

ग.राजस्व के संदर्भ में नियम का प्रयोगः- राजस्व का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त अधिकम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त भी समसीतान्त उपयोगिता नियम पर आधारित है। कर के सम्बन्ध में नीति निर्धारित करते समय सरकार को कर इस प्रकार लगाना चाहिए जिससे कर से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता उससे होने वाली सीमान्त त्याग के बराबर हो। सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में भी सरकार अपनी नीति का निर्धारण इस सिद्धान्त के आधार पर कर सकती है।

अन्त में रॉबिन्स के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ’’यह नियम अर्थशास्त्र का आधार है। सीमित साधनों का असीमित उद्देश्यों की संतुष्टि के प्रयोग के सम्बन्ध में इस नियम की आवश्यकता होती है। इसे हम अर्थशास्त्र का मुख्य नियम कहते हैं। अन्य नियम तो उपनियम मात्र है। यह नियम उपभोग उत्पत्ति, विनिमय तथा वितरण में प्रमुख है।

5.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण मार्शल द्वारा प्रतिपादित किया गया है जो संख्यात्मक माप दृष्टिकोण पर आधारित है। कोई उपभोक्ता किसी वस्तु की मांग (या क्रय) इसलिए करता है क्योंकि वस्तु में उसकी आवश्यकता की संतुष्टि की यह क्षमता होती है। आवश्यकता की संतुष्टि की किसी वस्तु की यह क्षमता ही उस वस्तु की उपयोगिता कहलाती है। इस इकाई में कुल उपयोगिता, औसत उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता

को स्पष्ट किया गया है साथ ही कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता के परस्पर सम्बन्ध की भी व्याख्या की गई है। तत्पश्चात् सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को स्पष्ट किया गया है। उपभोग की क्रिया में पहली इकाई के उपभोग से लेकर अन्तिम इकाई के उपभोग तक प्रत्येक इकाई से मिलने वाली उपयोगिता का योग ही कुल उपयोगिता होगी, यदि कुल उपयोगिता को उपभोग की गयी इकाइयों की संख्या से भाग दे दें तो हमें औसत उपयोगिता प्राप्त हो जायेगी तथा इस उपभोग की क्रिया में वस्तु की किसी इकाई से मिलने वाली उपयोगिता अथवा इस इकाई के उपभोग के कारण कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि ही सीमान्त उपयोगिता है। सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास-नियम उपभोग का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। प्रो0 मार्शल के अनुसार ''अन्य बातों के समान रहने पर, किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु के स्टॉक की वृद्धि होने से जो उपयोगिता प्राप्त होती है वह वस्तु की मात्रा की प्रत्येक इकाई के साथ घटती जाती है।'' मार्शल के समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण के माध्यम से उपभोक्ता की संस्थिति की व्याख्या की गई है एवं सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण भी प्रस्तुत किया गया है। अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति को प्राप्त करने में उपभोक्ता कम उपयोगिता देने वाले उपयोग के स्थान पर अधिक उपयोगिता देने वाले उपयोग को तब तक प्रतिस्थापित करता है जब तक उसे संस्थिति की स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती, इसलिए इस सिद्धान्त को उपभोग में प्रयुक्त प्रतिस्थापन का सिद्धान्त भी कहते हैं। अंततः समसीमान्त उपयोगिता नियम के महत्व की व्याख्या की गई है।

5.8 शब्दावली

- **संख्यात्मक माप**: उपयोगिता के संख्यात्मक दृष्टिकोण के अनुसार उपयोगिता को मुद्रा के रूप में संख्याओं को मापा जा सकता है।

- **उपयोगिता**: किसी वस्तु के बदले दिया जाने वाला मूल्य ही उस वस्तु की उपयागिता का माप होगा।

- **कुल उपयोगिता**: पहली इकाई के उपभोग से लेकर अंतिम इकाई के उपभोग तक प्रत्येक इकाई से मिलने वाली उपयोगिता का योग ही कुल उपयोगिता होगी।

- **सीमान्त उपयोगिता**: वस्तु की कुल मात्रा में इकाई वृद्धि होने के हेतु कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि सीमान्त उपयोगिता होती है।

- **ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता**: प्रति समय इकाई वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है। इसे ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता कहते हैं।

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. मार्शल का समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण .... माप दृष्टिकोण है।
2. नति परिवर्तन बिन्दु के उपरान्त कुल उपयोगिता .... हुई दर से बढ़ती है।
3. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम सर्वप्रथम .... ने प्रतिपादित किया।
4. समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण .... पद्धति पर आधारित है।
5. समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण में संस्थिति की स्थिति में
   $\frac{MUx}{Px} = \frac{MUy}{Py} = \ldots\ldots \frac{MUn}{Pn} = \ldots\ldots$
6. समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण को .... का सिद्धान्त भी कहते हैं।
7. मार्शल के अनुसार किसी वस्तु के स्टॉक में वृद्धि से जो उपयोगिता प्राप्त होती है वह वस्तु की प्रत्येक इकाई के साथ .... जाती है।
8. प्रत्येक इकाई के उपभोग के कारण कुल उपयोगिता में होने वाली वृद्धि .... उपयोगिता है।
9. कोई उपभोक्ता किसी वस्तु की मात्रा इसलिए क्रय करता है क्योंकि वस्तु में उसकी आवश्यकता की .... होती है।
10. कुल उपयोगिता को उपभोग की गई इकाईयों की संख्या से भाग दें तो हमें .... उपयोगिता प्राप्त हो जायेगी।

उत्तर:(1) संख्यात्मक, (2) बढ़ती, (3) गॉसेन, (4) आत्मदर्शन, (5) MUm, (6) प्रतिस्थापन, (7) घटती, (8) सीमान्त, (9) संतुष्टि, (10) औसत।

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Dwivedi, D. N. (2008): Micro Economics 7th edition vikas Publish House New Delhi.
- Koutsiyanniesa, A- (1997) –Microeconomics Analysis New Delhi.
- Mishra S.K & Puri V.K.   (2003) – Modern micro economic theory Himalaya Publishing House.
- Sethi T. T (2006) – 'Principlesa of Economics' Lakshmi Narayan Agrawal agra
- Ahuza ,H.L (2010) – "Principlesa of Microeconomics", S.chand publishing house,new delhi.

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- आहूजा, एच0 एल0 (2003) उच्चतर आर्थिक सिद्वात (व्यष्टि परक आर्थिक विश्लेषण) एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
- सिन्हा, वी0 सी0 (1999) व्यष्टि अर्थशास्त्र, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- जैन, के0 पी0 (1987) व्यष्टि अर्थशास्त्र साहित्य भवन, आगरा
- लाल, एस0 एन0 (1999) व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपयोगिता का अर्थ स्पष्ट करते हुए सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपोगिता का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. रेखाचित्र की सहायता से सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की व्याख्या कीजिए।
3. समसीमान्त उपयोगिता नियम क्या है। इस नियम की सीमाओं का वर्णन कीजिए।
4. उपयोगिता विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता किस प्रकार संतुलन की अवस्था को प्राप्त करता है? स्पष्ट कीजिए।
5. उन आर्थिक क्षेत्रों का वर्णन कीजिए जहाँ समसीमान्त उपयोगिता नियम लागू होता है।

इकाई – 6 माँग का नियम

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 माँग से आशय
6.4 माँग का नियम
6.5 माँग सारणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र
6.6 माँग का स्वरूप
6.7 बाजार माँग वक्र
6.8 माँग के नियम के विभिन्न रूप
6.9 माँग में परिवर्तन
6.10 माँग के निर्धारक तत्व
6.11 सारांश
6.12 शब्दावली
6.13 अभ्यास प्रश्न
6.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.16 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण से सम्बन्धित यह छठवी इकाई है,इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन में आपने समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण एवं उपभोक्ता की संस्थिति तथा मार्शल का समसीमान्त उपयोगिता विश्लेषण और सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्त्व का अध्ययन किया है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- माँग से आशय ,नियम तथा माँग सारिणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र को जान सकेंगे।
- माँग वक्र का स्वरूप ,बाजार माँग वक्र तथा माँग के नियम विभिन्न रूप को समझा सकेंगे।
- माँग में परिवर्तन तथा माँग के निर्धारक तत्व को बता सकेंगे।

6.3 माँग से आशय

मार्शल के माँग के नियम की व्याख्या प्रस्तुत करने से पूर्व 'माँग' से क्या आशय है, पर विचार करना उचित होगा। किसी दिये गये समय में दिये हुए मूल्य पर कोई उपभोक्ता, बाजार में किसी वस्तु की जो विभिन्न मात्रायें क्रय करता है, उसे वस्तु की माँग कहते हैं। बिना मूल्य के माँग का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि मूल्य के परिवर्तन का प्रभाव माँग पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त मूल्य ही वह तत्व है जो माँग को उस वस्तु की इच्छा तथा उस वस्तु की आवश्यकता से अलग कर देता है।

माँग विश्लेषण उपभोक्ता के व्यवहार या किसी वस्तु के सम्बन्ध में उपभोक्ता की माँग में होने वाले परिवर्तन के विश्लेषण से सम्बन्धित है, जबकि उसके व्यवहार को प्रभावित करने वाला चर परिवर्तित हो। किसी वस्तु की माँग वस्तु के मूल्य (P_x), उपभोक्ता की आय (Y), अन्य वस्तुओं के मूल्य (P_y), रूचि तथा फैशन (T), सम्पत्ति (W) आदि पर निर्भर करती है। इसके बीच एक आश्रितता या फलनात्मक सम्बन्ध होगा जिसे हम माँग-फलन कहते हैं। इसे फलन के रूप में हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं -

$$P_x = f(P_x, Y, P_y, T. \ldots\ldots)$$

माँगफलन यह स्पष्ट करता है कि यदि हम इन चरों में परिवर्तन करें तो इसका प्रभाव X वस्तु की माँग पर पड़ेगा। चरों में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप वस्तु की माँग के परिवर्तन के सम्बन्ध में जो

हम कथन देते हैं, जैसे यदि X की कीमत गिरे तो उसकी माँग बढ़ेगी, उसे माँग का नियम कहते हैं। इस प्रकार माँग फलन पर आधारित उपभोक्ता के व्यवहार या वस्तु की माँग के सम्बन्ध में दिया गया कथन माँग का नियम कहलाता है। पर यदि हम माँग को प्रभावित करने वाले सभी चरों को एक साथ परिवर्तित करके इसके माँग पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना चाहें तो हमारा विश्लेषण अत्यन्त ही कठिन तथा उलझनपूर्ण हो जायेगा और हम माँग के नियम की सरल रूप में व्याख्या नहीं कर सकेंगे, इसलिए हम सरल अध्ययन की दृष्टि से एक-एक चर में परिवर्तन करते हैं। जब एक चर में परिवर्तन करते हैं तो अन्य चरों को स्थिर मान लेते हैं, और देखते हैं कि इसका क्या प्रभाव वस्तु की माँग पर पड़ेगा। यदि हम वस्तु का मूल्य (P_x) उपभोक्ता की आय (Y) तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य (P_y) तीन चरों को लें तथा एक-एक में परिवर्तन के बाद माँग में परिवर्तन जानना चाहें तो हमारे सामने निम्नांकित तीन रूप आयेंगे -

(क) वस्तु की माँग तथा वस्तु के मूल्य के बीच सम्बन्ध जबकि आय तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य स्थिर हों - फलनात्मक रूप में $D_x = f(P_x)$ जबकि Y तथा Py स्थिर हों। इस स्थिति में जबकि हम केवल मूल्य (P_x) में परिवर्तन का वस्तु की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं इसे हम मूल्य-माँग का नियम कहते हैं।

(ख) वस्तु की माँग (D_x) तथा आय (Y) के बीच सम्बन्ध जबकि x वस्तु का मूल्य (P_x) तथा अन्य वस्तुओं का मूल्य (P_y) स्थिर हो, फलनात्मक रूप में $D_x = f(Y)$ होगा। इसे हम 'आय-माँग का नियम' कहते हैं।

(ग) वस्तु की माँग (D_x) तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य (P_y) के बीच सम्बन्ध, जबकि वस्तु का मूल्य (P_x) तथा आय (Y) स्थिर हों, फलनात्मक रूप में $D_x = f(P_y)$ होगा। इस सम्बन्ध को हम तिर्यक माँग या आड़ी माँग सिद्धांत कहते हैं।

वास्तव में माँग सिद्धान्त माँग से सम्बन्धित इन तीनों ही सिद्धान्तों - मूल्य माँग सिद्धान्त, आय-माँग सिद्धान्त तथा तिर्यक माँग सिद्धान्तों का सम्मिलित रूप है, यद्यपि सामान्यतया मूल्य-माँग का नियम ही माँग के नियम के रूप में जाना जाता है। इसके पूर्व कि हम मार्शल के माँग के नियम की व्याख्या प्रस्तुत करें यह उचित होगा कि हम इस पर विचार कर लें कि 'माँग' से क्या आशय है।

6.4 माँग का नियम

मार्शल ने माँग का नियम प्रतिपादित करते हुए कहा कि किसी वस्तु की माँगी गई मात्रा तथा उस वस्तु के मूल्य के बीच विलोमात्मक सम्न्ध पाया जाता है तथा जैसे-जैसे किसी वस्तु का मूल्य गिरता जाता है, उसकी माँग बढ़ती जाती है तथा इसके विपरीत जैसे-जैसे वस्तु का मूल्य बढ़ता जाता है, उसकी माँग घटती जाती है। मार्शल के शब्दों में 'माँग का एक सामान्य नियम है - किसी वस्तु की

अधिक मात्राओं में बिक्री के लिए उसके मूल्य में निश्चित रूप से कमी होनी चाहिए ताकि उसके अधिक क्रेता मिल सकें। दूसरे शब्दों में मूल्य के बढ़ने से माँग घटती है और मूल्य के गिरने से माँग बढ़ती है।" इस प्रकार मार्शल के अनुसार वस्तु की माँगी गई मात्रा (D_x) तथा वस्तु के मूल्य (P_x) के बीच विपरीत फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है जिसे माँग का नियम कहते हैं।

$Dx = f(P_x)$ . . . अन्य बातें समान रहें

जहाँ P_y तथा Y समान हैं।

माँग के नियम की व्याख्या हम माँग-सारिणी के द्वारा कर सकते हैं।

6.5 माँग-सारिणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र

माँग-सारिणी किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की सूची है जो विभिन्न मूल्यों पर माँगी या क्रय की जाती है। हमें विदित है कि वस्तु के मूल्य तथा माँग में विलोम फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है। माँग-सारिणी दो प्रकार की होती है:

1. व्यक्तिगत माँग-सारिणी

2. सामूहिक माँग सारिणी

जब हम समाज के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किसी मूल्य पर माँगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं की सूची तैयार करते हैं तो उसे व्यक्तिगत माँग-सारिणी कहते हैं। परन्तु जब हम विभिन्न व्यक्तियां की माँग की सारिणियों को मिला देते हैं तो सामूहिक माँग सारिणी तैयार हो जाती है।

सारिणी-1

मूल्य प्रति इकाई रू.	वस्तु की माँगी गई इकाईयां
25	30
20	40
15	50
10	60
05	70

माँग सारिणी-1 से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे वस्तु का मूल्य घटता है वस्तु की माँगी गई मात्रा में वृद्धि होती है। इसी प्रकार विपरीत क्रम में जब वस्तु का मूल्य बढ़ता है तो वस्तु की माँगी गई मात्रा में कमी होती है। माँग-सारिणी के माध्यम से व्यक्तिगत माँग-वक्र का निर्माण किया जा सकता है जो कि वस्तु की माँग तथा मूल्य के सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है।

रेखाचित्र-6.1 में प्रदर्शित DD वक्र, माँग वक्र है जो वस्तु की माँग तथा मूल्य के मध्य सम्बन्ध को दर्शाता है। स्पष्ट है कि यह वक्र ऊपर से नीचे गिरता हुआ है। रेखाचित्र में प्रदर्शित DD वक्र, माँग वक्र है जो वस्तु की माँग तथा उसके मूल्य के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। स्पष्ट है कि

यह वक्र बायें गिरता हुआहै। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि जब मूल्य OP (20) है तो माँगी गयी मात्रा OQ (30) है, पर जब मूल्य घटकर OQ_1 (15) हो जाता है तो माँग बढ़कर OQ_1(40) हो जाती है।

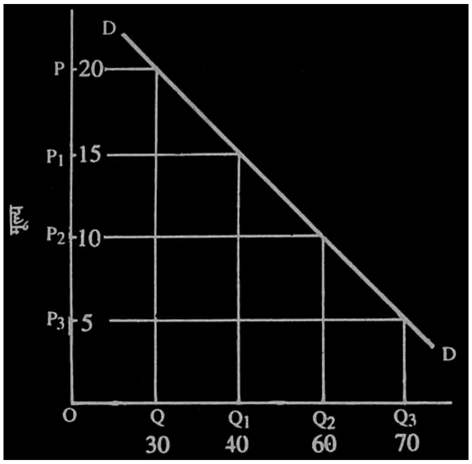

चित्र 6.1

नियम की मान्यतायें- माँग-नियम कुछ मान्यताओं पर आधारित है क्योंकि यह नियम तभी सत्य होगा जब अन्य बातें स्थिर रहें। ये निम्नलिखित हैं -

i. लोगों की आय यथास्थिर रहें।
ii. अन्य वस्तुओं के मूल्य स्थिर रहें।
iii. लोगों की स्वाद एवं अभिरूचि में परिवर्तन न हो।

6.6 माँग वक्र का स्वरुप

माँग-वक्र सामान्यतया नीचे दाहिनी ओर झुकता हुआ होता है जिसके निम्नांकित कारण हैं:

(1)सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियमः माँग-वक्र के नीचे दाहिने ओर गिरने का कारण सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम है जो माँग के नियम का आधार है। इस नियम के अनुसार कोई उपभोक्ता जैसे-जैसे किसी वस्तु की अधिक इकाईयाँ क्रय करता जायेगा उससे मिलने वाली उपयोगिता क्रमशः होती जाएगी। इस प्रकार उपयोगिता की कमी होने के कारण कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक मात्रा तभी क्रय करेगा जब उस वस्तु से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता वस्तु के मूल्य के बराबर होनी चाहिए। इसे रेखाचित्र 6.2 में स्पष्टीकृत किया गया है। इस रेखाचित्र में D माँग वक्र है, मान लीजिए वस्तु का मूल्य OP है। चूँकि कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए उसकी सीमान्त उपयोगिता से अधिक मूल्य नहीं देगा, इसलिए A बिन्दु पर OP = MU आवश्यक रूप से होगा। इस प्रकार A बिन्दु संस्थिति बिन्दु होगा। इसी प्रकार OP_1 मूल्य पर भी OP_1 = MU होगा पर चूँकि जैसे-जैसे वह X की अधिक मात्रा क्रय करेगा X की सीमान्त उपयोगिता गिरेगी, इसलिए B बिन्दु

पर संस्थिति की स्थिति तभी होगी जबकि मूल्य में गिरावट हो, OP_1 मूल्य OP मूल्य से आवश्यक रूप से कम होगा। इस प्रकार उत्तरोत्तर गिरती हुई सीमान्त उपयोगिता के साथ मूल्य का गिरना आवश्यक है, तभी अधिक वस्तु का क्रय हो सकेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि जैसे-जैसे मूल्य गिरता जायेगा, वस्तु की माँगी गयी मात्रा बढ़ती जायेगी और इनके बीच सम्बन्ध व्यक्त करने वाला माँग-वक्र नीचे दाहिनी ओर झुकता जायेगा।

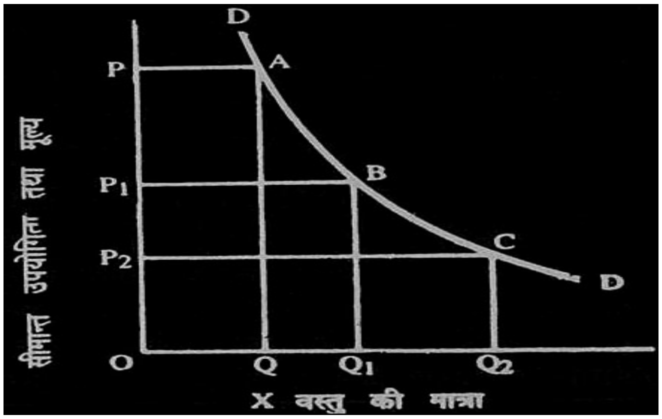

चित्र 6.2

(2)समसीमान्त उपयोगिता नियम तथा माँग वक्र का नीचे दाहिनी ओर गिरना:- मार्शल के अनुसार उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि या संस्थिति की स्थिति में वहाँ होगा, जहाँ $MU_x/P_x = MU_m$ अर्थात् वस्तु की सीमांत उपयोगिता तथा उसके मूल्य का अनुपात मुद्रा की सीमांत उपयोगिता (जो स्थिर है) के बराबर हो जाय।

सामान्यतया माँग: -वक्र नीचे दाहिनी ओर गिरता हुआ होगा अर्थात् (ऋणात्मक मूल्य-माँग सम्बन्ध प्रदर्शित करेगा) पर कुछ ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं जबकि माँग वक्र नीचे दाहिनी ओर गिरता हुआ न हो, ऐसी स्थिति में मूल्य-माँग सम्बन्ध धनात्मक होगा। ये परिस्थितियाँ निम्नांकित होंगी -

(क)प्रतिष्ठा सूचक वस्तुयें:- बहुत सी ऐसी वस्तुयें होती हैं जिनको व्यक्ति या तो प्रतिष्ठा के लिए खरीदता है अथवा अपने को दूसरे वर्ग के लोगों से अलग करने के लिए जैसे हीरा, आभूषण आदि। इन वस्तुओं का मूल्य जितना ही ऊँचा होता है लोग इसे उतना ही प्रतिष्ठा के लिए रखते हैं।

(ख)गिफेन वस्तुयें:- ऐसी अत्यन्त ही निकृष्ट कोटि की वस्तुयें जिनके सम्बन्ध में आय प्रभाव इतना अधिक धनात्मक हो कि वे ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव को समाप्त कर दे तथा फलस्वरूप मूल्य-माँग सम्बन्ध धनात्मक हो जाय तो माँग वक्र दाहिनी ओर गिरेगा नहीं।

(ग)मूल्य में वृद्धि का डर तथा कमी की आशा:- यदि किसी वस्तु का मूल्य बढ़ रहा हो तथा यदि उपभोक्ता यह आशा करने लगे कि भविष्य में मूल्य और बढ़ेगा तो मूल्य में वृद्धि के बावजूद भी अधिक वस्तुयें खरीद कर रख लेना चाहेगा। इसी प्रकार यदि उसे यह आशा हो जाये कि भविष्य में मूल्य गिरेगा तो मूल्य में थोड़ी कमी के बाद भी उसकी माँग में वृद्धि नहीं हो सकती है।

(घ)अज्ञान तथा भ्रम:- कुछ व्यक्तियों में ऐसा भ्रम होता है कि यदि किसी वस्तु का मूल्य कम है तो वह निकृष्ट कोटि की है, इसलिए उसकी माँग कम करते हैं तथा ऊँचा मूल्य उसकी अच्छी किस्म का प्रतीक है, इसलिए माँग अधिक करते हैं।

(ङ)जीवन-निर्वाह: - (अनिवार्य वस्तुएँ) ऐसी वस्तुयें जो जीवित रहने के लिए आवश्यक हैं उनके मूल्य में वृद्धि, एक निश्चित सीमा के बाद माँग में कमी नहीं लायेगी। इन वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने पर लोग अन्य वस्तुओं की माँग कम कर देंगे।

6.7 बाजार माँग वक्र

अन्य बातों के समान रहने पर किसी वस्तु की कुल मात्रा जो विशिष्ट समयावधि में सभी उपभोक्ता किसी मूल्य पर क्रय करने के लिए इच्छुक हैं, वह उस वस्तु की बाजार माँग होगी। उदाहरण के लिए यदि उपभोक्ता द्वारा P_1 मूल्य पर X वस्तु की माँग d_1, d_2, d_3 .... d_n है तो P_1 मूल्य पर बाजार माँग d_1, d_2, d_3 .... d_n का योग ही होगी । इसे सारिणी-2 में स्पष्ट किया गया है।

सारिणी-2

X मूल्य का मूल्य (रू.)	X वस्तु की माँग		बाजार माँग (A+B)
	उपभोक्ता A	उपभोक्ता B	
20	5	3	8
18	8	5	13
16	12	10	22
14	16	15	31
12	25	20	45

यदि हम अन्तिम खाने में प्रदर्शित आँकड़ों को वक्र के रूप में प्रदर्शित करें तो हमें बाजार माँग वक्र प्राप्त हो जायेगी। रेखा-चित्रीय रूप में बाजार माँग वक्र व्यक्तिगत माँग वक्रों की क्षैतिजीय योग होगी, जैसा रेखाचित्र 6.3 में प्रदर्शित है। रेखाचित्र के भाग (3) में D_M बाजार माँग प्रदर्शित करती है। D_M वस्तुतः प्रत्येक मूल्य स्तर पर D_A तथा D_B का क्षैतिजीय योग है। जैसे OP_3 मूल्य मूल्य

पर A की माँग OX_1 तथा B की माँग OX_5 है। OX_1 तथा OX_5 को जोड़कर भाग (3) में यह प्रदर्शित किया गया है कि OP_3 पर बाजार माँग OQ_1 होगी।

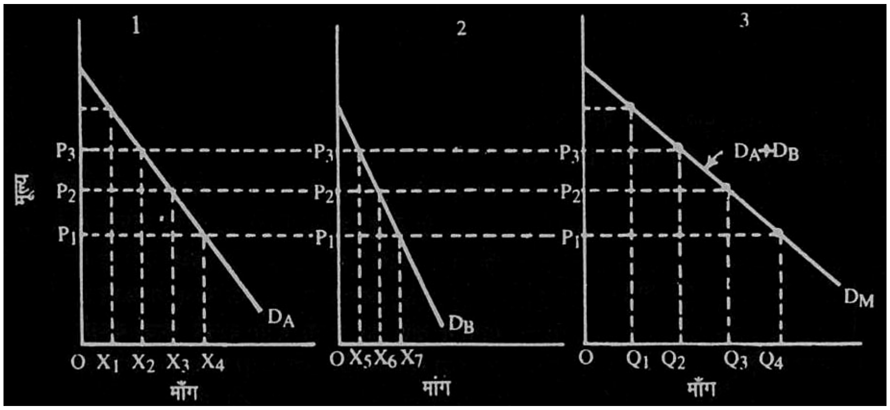

चित्र 6.3

6.8 माँग के नियम के विभिन्न रूप

माँग के नियम के तीन रूप हो सकते हैं। मूल्य माँग, आय माँग तथा आड़ी या तिर्यक माँग। अब तक हम मूल्य माँग की व्याख्या की अब आगे हम आय माँग तथा आड़ी माँग की व्याख्या करेंगे।

(1)माँग तथा उसी वस्तु के मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या $[D_x = f(P_x)]$, जिसे मूल्य-माँग कहते हैं।

(2)माँग तथा उस वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के मूल्यों के बीच फलनाम्क सम्बन्ध की व्याख्या $[D_x = f(P_y)]$ जिसे आड़ी माँग या तिर्यक माँग कहते हैं।

(3)माँग तथा उपभोक्ता की आय के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या $[D_x = f(Y)]$, जिसे आय-माँग कहते हैं।

(1)आड़ी माँग: किसी वस्तु की माँग तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य के बीच दो प्रकार के सम्बन्ध पाये जा सकते हैं-

(क)एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की माँग में कमी ला दे तो ऐसी वस्तुयें परस्पर स्थानापन्न कहलायेंगी। X तथा Y वस्तुयें उस समय स्थानापन्न कहलायेंगी जबकि Y वस्तु के मूल्य में वृद्धि होने पर उपभोक्ता X वस्तु की माँग बढ़ा दे तथा इसी प्रकार Y वस्तु के मूल्य में कमी होने पर उपभोक्ता X वस्तु की माँग क्रम कर दें। ऐसी वस्तुओं के रूप में चाय तथा काफी को उदाहरण-स्वरूप रखा जा सकता है। यदि चाय का मूल्य बढ़ जाय तो अन्य बातों के समान रहने पर लोग चाय के स्थान पर

काफी पीने लगेंगे। इसका स्पष्टीकरण रेखाचित्र 6.4 में किया गया है। इस रेखाचित्र में DD माँग वक्र दो स्थानापन्न वस्तुओं Y तथा X के क्रमशः मूल्य तथा माँग के बीच फलनात्मक सम्बन्ध व्यक्त करता है। इस प्रकार DD वक्र $D_x = f(P_y)$ को प्रदर्शित करता है। DD वक्र से यह स्पष्ट है कि जब Y का मूल्य बढ़कर OP से OP_1 हो जाता है तो X वस्तु की माँग बढ़कर OQ से OQ_1 हो जाता है।

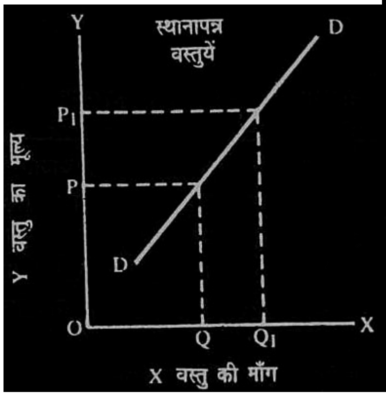

चित्र 6.4

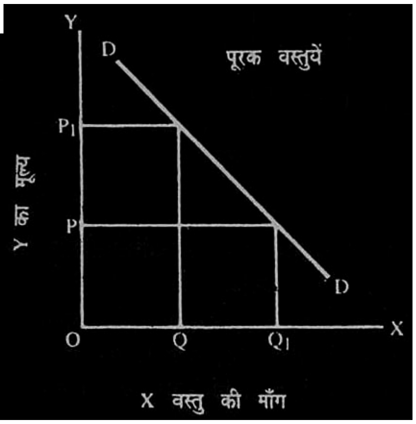

चित्र 6.5

(ख)जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की माँग में वृद्धि ला दे तो ऐसी वस्तुयें पूरक वस्तुयें कहलायेंगी। X तथा Y वस्तुयें परस्पर पूरक कहलायेंगी जबकि Y वस्तु के मूल्य में कमी X वस्तु की माँग में वृद्धि ला दे। ऐसी वस्तुओं के उदाहरण के रूप में कलम तथा स्याही को लिया जा सकता है। इस प्रकार वस्तुओं की माँग तथा मूल्य के बीच विलोम सम्बन्ध होता है। इसका प्रदर्शन रेखाचित्र 6.5 में किया गया है। इसमें DD वक्र Y वस्तु के मूल्य तथा X वस्तु की माँग के बीच फलनात्मक सम्बन्ध स्पष्ट करता है। यह वक्र भी $D_x = f(P_y)$ सम्बन्ध ही स्पष्ट करता है। DD से स्पष्ट है कि जब Y का मूल्य OP_1 से घटकर OP हो जाता है तो X वस्तु की माँग OQ से बढकर OQ_1 हो जाती है।

(2)आय माँगः आय माँग से अभिप्राय वस्तु की उन मात्राओं से है, जिन्हें अन्य बातों के स्थिर रहने पर, एक उपभोक्ता, एक निश्चित समय में आय के विभिन्न स्तरों पर क्रय करने के लिए तैयार है। आय माँग-वक्र आय तथा वस्तुओं की विभिन्न मात्राओं में सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। वस्तुयें दो प्रकार की हो सकती है, सामान्य किस्म तथा निम्न किस्म की। जहाँ तक उत्तम किस्म की वस्तुओं का प्रश्न है इनकी माँग आय की वृद्धि के साथ बढ़ती जाती है पर जो निम्नकोटि की वस्तुयें होती हैं इनकी माँग आय की वृद्धि के साथ बढ़ने के स्थान पर कम होती है।

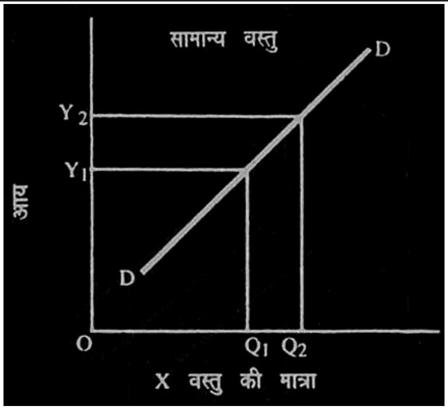

चित्र 6.6

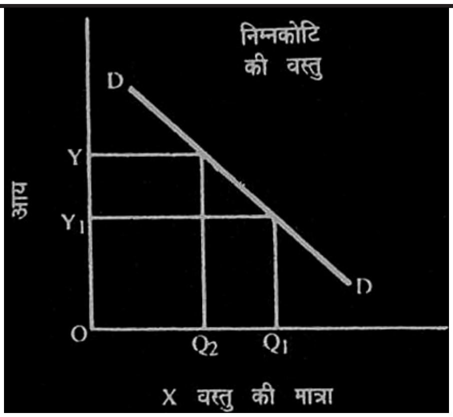

चित्र 6.7

रेखाचित्र 6.6 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर आय की मात्रा प्रदर्शित है। DD सामान्य वस्तु की आय-माँग-वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है कि जब आय OY_1 से बढ़कर $0Y_2$ हो जाती है तो वस्तु की माँग OQ_1 से बढ़कर OQ_2 हो जाती है।

रेखाचित्र 6.7 में भी आधार अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर आय की मात्रा प्रदर्शित है। DD निम्नकोटि की वस्तु की आय-माँग-वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है कि जब आय OY_1 से बढ़कर OY हो जाती है तो वस्तु की माँग OY_1 से घटाकर OY_2 हो जाती है।

6.9 माँग में परिवर्तन

माँग में होने वाले परिवर्तन (वृद्धि तथा कमी) दो प्रकार के होते हैं -

(क)माँग में विस्तार तथा संकुचन: अन्य मान्यताओं के समान रहने पर जब मूल्य में कमी के कारण माँग बढ़ जाती है तो इसे माँग का विस्तार कहते हैं और जब मूल्य में वृद्धि के कारण माँग कम हो जाती है तो इसे माँग का संकुचन कहते हैं। इस प्रकार एक ही माँग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर चलने की क्रिया माँग में विस्तार या संकुचन प्रदर्शित करेगी। माँग वक्र पर नीचे दाहिनी ओर चलना, माँग में विस्तार तथा ऊपर बायीं ओर चलना संकुचन प्रदर्शित करेगा। इसे रेखाचित्र 6.8 में स्पष्टीकृत किया गया है। इस रेखाचित्र में DD माँग वक्र है। मान लीजिए मूल स्थिति में मूल्य OP_1 तथा माँगी गयी वस्तु की मात्रा OQ_1 है । DD माँग रेखा पर ही विभिन्न बिन्दुओं पर चलना विस्तार तथा संकुचन प्रदर्शित करेगा। यदि आप E से दाहिनी ओर E_2 पर आयें तो मूल्य OP_1 से गिरकर OP_2 होगा तथा माँग बढ़कर OP_3 हो जायेगा। इसी प्रकार यदि आप E से E_1 या बायीं ओर चलें तो माँग में संकुचन होगा, माँग घटकर OQ_1 हो जायेगी, मूल्य OP_3 होगा।

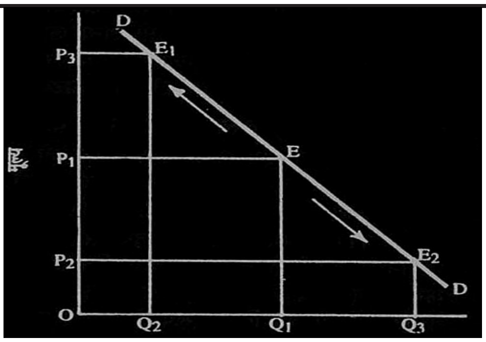

वस्तु की मात्रा

चित्र 6.8

(ख) माँग वक्र का विवर्तन, माँग में वृद्धि अथवा प्रकर्षण तथा माँग में कमी अथवा विकर्षणः यदि माँग के अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के कारण, एक ही मूल्य पर माँग अपेक्षाकृत अधिक हो जाये तो माँग वृद्धि (प्रकर्षण) कहेंगे। पर इसके विपरीत जब एक ही मूल्य पर माँग पहले की अपेक्षा कम हो जाये तो इसे माँग में कमी या विकर्षण कहेंगे। यदि $D_x = f(P_x, P_y, Y, T......)$ हो, और यदि हम मूल्य माँग $[D_x = f(P_x)]$ की व्याख्या कर रहे हों तो हम कह सकते हैं कि यदि P_y, Y, T....... आदि चर अपरिवर्तित हों केवल P_x में परिवर्तन हो तो यह परिवर्तन माँग में विस्तार या संकुचन प्रदर्शित करेगा पर यदि इन चरों में ही परिवर्तन हो जाय तो प्रकर्षण तथा विकर्षण प्रदर्शित होगा। परिणामस्वरूप माँग-वक्र दूसरा बनता है। प्रकर्षण तथा विकर्षण को रेखाचित्र 6.9 में स्पष्ट किया गया है। रेखाचित्र में मूल माँग D_2D_2 तथा मूल्य OP है। किसी अन्य कारक में परिवर्तन के कारण माँग D_2D_2 से बढ़कर D_3D_3 हो जाये तो इसे प्रकर्षण कहा जायेगा। पर यदि किसी कारण से माँग D_2D_2 से D_1D_1 हो जाये तो वस्तु की माँग उसी मूल्य पर OQ_2 से घटकर OQ_1 हो जाती है। इसे विकर्षण कहते हैं।

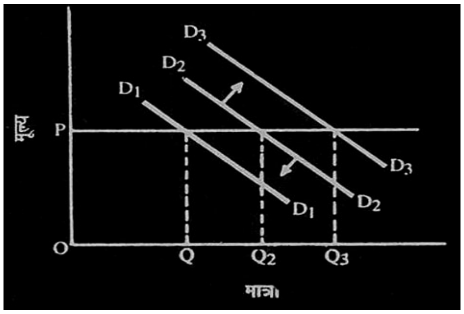

चित्र 6.9

6.10 माँग के निर्धारक तत्व

जो तत्व माँग में प्रकर्षण और विकर्षण को जन्म देते हैं वे इस प्रकार हैं:

(1)उपभोक्ता की आय तथा संचित धन की मात्राः किसी भी उपभोक्ता की माँग उसकी क्रय-शक्ति पर निर्भर करती है तथा यह क्रयशक्ति उसकी आय तथा उसके पास संचित धन एवं सम्पत्ति पर निर्भर करती है। यदि किसी व्यक्ति के पास आय अधिक हो तो वह अधिक वस्तुओं की माँग करेगा।

(2)रूचि, फैशन तथा रीति-रिवाजः उपभोक्ता की रूचि, प्रचलित फैशन तथा समाज के रीति-रिवाज का प्रभाव माँग पर पड़ता है। यदि किसी स्थान पर व्यक्तियों की रूचि ही ऐसी हो कि वे चाय पीना अधिक पसन्द करते हैं तो उसकी माँग बढ़ जायेगी। इसी तरह यदि कोई चीज फैशन में आ जाये तो उसकी माँग बढ़ जायेगी। कुछ वस्तुओं की माँग रीति-रिवाज द्वारा प्रभावित होती है।

(3)आय तथा धन का असमान वितरणः यदि आय का वितरण असमान हो तथा धन कुछ व्यक्तियों के ही हाथों में केन्द्रित हो तो विलासिता की वस्तुओं की माँग अधिक होगी।

(4)बाजार में उपभोक्ता की संख्याः वस्तु की माँग उस वस्तु की माँग करने वाले उपभोक्ताओं की संख्या पर निर्भर करती है। यदि उपभोक्ताओं की संख्या अधिक हो तो वस्तु की माँग अधिक होगी तथा कम होने पर कम होगी।

(5)भविष्य में वस्तु के मूल्य में परिवर्तन की आशाः यदि भविष्य में किसी वस्तु की मूल्य में वृद्धि की आशा हो तो उसकी माँग बढ़ जायेगी तथा इसके विपरीत यदि भविष्य में मूल्य के गिरने की उम्मीद हो तो माँग घट जायेगी।

(6)जनसंख्याः जनसंख्या में वृद्धि के कारण भी माँग प्रभावित होती है। जनसंख्या बढ़ने से अनेक वस्तुआं की माँग बढ़ जाती है जैसे खाद्यान्नों की माँग।

(7)मुद्रा की मात्रा में परिवर्तनः किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा उस अर्थव्यवस्था की क्रयशक्ति निर्धारित करती है। यदि मुद्रा की मात्रा बढ़ जाय तो वस्तुओं की माँग बढ़ जायेगी, पर मुद्रा की मात्रा कम होने पर माँग में कमी होगी।

(8)स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं की कीमतः इसके प्रभाव की चर्चा आड़ी या तिर्यक माँग के सम्बन्ध में की गयी है।

(9)जलवायुः जाड़े के दिनों में ऊनी कपड़ों की माँग, बरसात में छाते की माँग तथा गर्मी में शीतलता देने वाली वस्तुओं की माँग में वृद्धि जलवायु द्वारा माँग को प्रभावित करने के स्पष्ट उदाहरण हैं।

(10)व्यापार की दशाः अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्रीय परिवर्तनों का प्रभाव माँग के ऊपर पड़ता है। समृद्धि-काल में रोजगार में वृद्धि होती है, लस्वरूप आय में वृद्धि तथा माँग में वृद्धि होती है पर मन्दी में वस्तु की माँग कम रहती है।

(11) बचत तथा उपभोग की प्रवृत्तिः यदि लोगों में उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ जाय फलस्वरूप बचत कम हो जाय तो व्यय अधिक होगा और वस्तुओं की अधिक माँग होगी। इसके विपरीत यदि लोग बचत अधिक करने लगें तो व्यय कम तथा माँग कम होगी।

(12) औद्योगिक विकासः किसी भी देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास का भी माँग पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि औद्योगिक विकास के कारण लोगों की आय बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप क्रयशक्ति में वृद्धि तथा माँग में वृद्धि होती है।

6.11 सारांश

उपरोक्त इकाई में सर्वप्रथम माँग को परिभाषित करने के पश्चात् माँग के नियम, माँग के सारिणी, व्यक्तिगत माँग वक्र, बाजार माँग वक्र की व्याख्या की गई है। वस्तु की माँगी गई मात्रा तथा वस्तु के मूल्य के बीच विपरीत फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है जिसे माँग का नियम कहते हैं। माँग-सारिणी किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की सूची है जो विभिन्न मूल्यों पर माँगी या क्रय की जाती है। जब हम समाज के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किसी मूल्य पर माँगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं की सूची तैयार करते हैं तो उसे व्यक्तिगत माँग-सारिणी कहते हैं। अन्य बातों के समान रहने पर किसी वस्तु की कुल मात्रा जो विशिष्ट समयावधि में सभी उपभोक्ता किसी मूल्य पर क्रय करने के लिए इच्छुक हैं, वह उस वस्तु की बाजार माँग होगी। माँग वक्र का स्वरूप ऊपर से नीचे गिरता हुआ क्यों होता है, के कारणों को भी इकाई में स्पष्ट किया गया है। माँग-वक्र के नीचे दाहिने ओर गिरने का कारण सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम है जो माँग के नियम का आधार है। माँग में परिवर्तन अर्थात् माँग में विस्तार तथा संकुचन एवं माँग में प्रकर्षण एवं विकर्षण को भी व्याख्यित किया गया है और अंत में माँग के निर्धारक तत्वों की व्याख्या की गई है। अन्य मान्यताओं के समान रहने पर जब मूल्य में कमी के कारण माँग बढ़ जाती है तो इसे माँग का विस्तार कहते हैं और जब मूल्य में वृद्धि के कारण माँग कम हो जाती है तो इसे माँग का संकुचन कहते हैं। यदि माँग के अन्य धिरिक तत्वों में परिवर्तन के कारण, एक ही मूल्य पर माँग अपेक्षाकृत अधिक हो जाये तो माँग वृद्धि (प्रकर्षण) कहेंगे। पर इसके विपरीत जब एक ही मूल्य पर माँग पहले की अपेक्षा कम हो जाये तो इसे माँग में कमी या विकर्षण कहेंगे।

6.12 शब्दावली

माँग: किसी दिये गये समय में दिये हुए मूल्य पर कोई उपभोक्ता बाजार में किसी वस्तु की जो विभिन्न मात्रायें क्रय करता है उसे उस वस्तु की माँग कहते हैं।

माँग का नियमः वस्तु की माँगी गई मात्रा तथा उसके निर्धारक तत्वों के मध्य फलनात्मक सम्बन्ध को माँग का नियम कहते हैं।

स्थानापन्न वस्तुएँ: जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की माँगी गई मात्रा में कमी ला दे तो ऐसी वस्तुएँ परस्पर स्थानापन्न होंगी।

पूरक वस्तुएँ: जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मात्रा में वृद्धि ला दे तो ऐसी वस्तुएँ एक दूसरे की पूरक होंगी।

निम्न कोटि की वस्तुएँ: ये वे वस्तुएँ हैं जिनकी माँग उपभोक्ता की आय में वृद्धि के साथ घटती जाती है।

6.13 अभ्यास प्रश्न

1. दिये गये मूल्य पर कोई उपभोक्ता, बाजार में किसी वस्तु की जो विभिन्न मात्रायें क्रय करता है उसे वस्तु की .... कहते हैं।
2. मार्शल के अनुसार वस्तु की माँग तथा उसके मूल्य के बीच .... फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है।
3. माँग वक्र का नीचे दाहिनी ओर गिरना .... नियम के कारण होता है।
4. गिफेन वस्तुओं के सम्बन्ध में मूल्य-माँग सम्बन्ध .... होता है।
5. बाजार माँग वक्र व्यक्तिगत माँग वक्रों का .... योग है।
6. माँग के नियम के तीन रूप - मूल्य माँग, आय माँग तथा .... माँग होते हैं।
7. जब मूल्य में कमी के कारण माँग बढ़ जाती है तो उसे माँग का .... कहते हैं।
8. जब एक ही मूल्य पर माँग पहले की अपेक्षा कम हो जाय तो इसे माँग में .... कहते हैं।
9. उपभोग की प्रवृत्ति में वृद्धि होने से वस्तु की माँग .... जाती है।
10. जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की माँग में वृद्धि ला दे तो ऐसी वस्तुयें .... वस्तुएं कहलाती हैं।

उत्तरः(1) माँग, (2) विपरीत, (3) सीमान्त उपयोगिता ह्रास, (4) धनात्मक, (5) क्षैतिजीय, (6) आड़ी, (7) विस्तार, (8) विकर्षण, (9) बढ़, (10) पूरक।

6.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Dwivedi, D. N. (2008): Micro Economics 7th edition vikas Publish House New Delhi.
- Koutsiyanniesa, A- (1997) –Microeconomics Analysis New Delhi.
- Mishra S.K & Puri V.K. (2003) – Modern micro economic theory Himalaya Publishing House.
- Sethi T. T (2006) – 'Principlesa of Economics' Lakshmi Narayan Agrawal agra
- Ahuza ,H.L (2010) – "Principlesa of Microeconomics", S.chand publishing house,new delhi.

6.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- आहूजा, एच0 एल0 (2003) उच्चतर आर्थिक सिद्वात (व्यष्टि परक आर्थिक विश्लेषण) एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
- सिन्हा, वी0 सी0 (1999) व्यष्टि अर्थशास्त्र, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- जैन, के0 पी0 (1987) व्यष्टि अर्थशास्त्र साहित्य भवन, आगरा
- लाल, एस0 एन0 (1999) व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद

6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. माँग वक्र ऊपर से नीचे दाहिनी ओर गिरता हुआ क्यों होता है? व्याख्या कीजिये।
2. माँग का नियम तभी सत्य होता है जब माँग में परिवर्तन न हो। विवेचना कीजिए।
3. माँग के नियम के विभिन्न रूपों की व्याख्या कीजिये।
4. माँग में परिवर्तन के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
5. माँग वक्र क्या है? माँग को निर्धारित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए।

इकाई - 7 माँग एवं पूर्ति की लोच

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 माँग की लोच
7.4 माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व
7.5 माँग की लोच का महत्व
7.6 माँग की आय लोच
7.7 माँग आड़ी की लोच
7.8 पूर्ति की लोच
7.9 पूर्ति की लोच की माप
7.10 पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व
7.11 सारांश
7.12 शब्दावली
7.13 अभ्यास प्रश्न
7.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.16 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण से सम्बन्धित यह सातवी इकाई है,इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन में आपने माँग से आशय ,नियम तथा माँग सारिणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र को जान सकेंगे।माँग वक्र का स्वरूप ,बाजार माँग वक्र तथा माँग के नियम विभिन्न रूप को समझा सकेंगे।माँग में परिवर्तन तथा माँग के निर्धारक तत्व को बता सकेंगे।

इस इकाई में आप मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग एवं पूर्ति में परिवर्तन कितना होगा, किस अनुपात में होगा, यह विभिन्न मूल्यों पर माँग एवं पूर्ति के बदलने की क्षमता पर क्या प्रभाव होगा का अध्ययन करेगें।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- माँग की लोच का आशय एवं लोच को प्रभावित करने वाले तत्व को जान सकेंगे।
- माँग की लोच का महत्व को समझ सकेंगे।
- माँग की लोच के प्रमुख प्रकार को बता सकेगे।
- पूर्ति की लोच आशय एवं लोच को प्रभावित करने वाले तत्व को जान सकेंगे।

7.3 माँग की लोच

माँग की लोच के तीन प्रकार होंगे - माँग की मूल्य लोच, माँग की आय लोच तथा माँग की आड़ी तथा तिर्यक।

7.3.1 माँग की मूल्य लोच

किसी वस्तु के मूल्य में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँगी गयी मात्रा में होने वाली सापेक्षिक अनुक्रिया की माप ही माँग की लोच है। श्रीमती जोन रॉबिन्सन के अनुसार माँग की लोच अथवा मूल्य में थोड़े परिवर्तन के परिणाम स्वरूप खरीदी गयी वस्तु की मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को मूल्य के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है। सूत्र के रूप में इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

$$\text{माँग की लोच } (e_p) = (-) \frac{\text{माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

इसमें, माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन = $\dfrac{\text{माँग में परिवर्तन}}{\text{पूर्व माँग की मात्रा}}$

मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन = $\dfrac{\text{मूल्य में परिवर्तन}}{\text{पूर्व मूल्य की मात्रा}}$

यदि हम माँग एवं मूल्य के परिवर्तनों को Δq, एवं Δ p के द्वारा क्रमशः व्यक्त करें, तो इसे हम संक्षेप में इस रूप में भी लिख सकते हैं-

$$e_p = \left(\frac{\Delta q}{q} \quad \frac{\Delta p}{p}\right) = -\left(\frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p}\right)$$

अथवा $e_p = -\left(\frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}\right)$

7.3.2 माँग की लोच की श्रेणियाँ

वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाले परिवर्तन की सापेक्षता के आधार पर माँग की मूल्य लोच को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है-

1.पूर्णतया लोचदार माँग (ep = ∞):- किसी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार तब होगी जब उसके मूल्य में अल्प वृद्धि होते ही उस वस्तु की माँग शून्य हो जाये और अल्प कमी उसकी माँग में अपरिमित वृद्धि ला दे। इसका स्पष्टीकरण रेखाचित्र 7.1 में किया गया है।

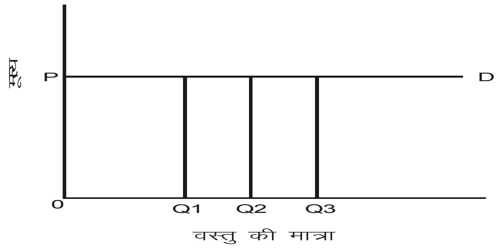

चित्र 7.1

2.पूर्णतया बेलोच माँग (ep = 0):- यदि किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के बाद भी उसकी माँग ज्यों की त्यों रहे उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हो तो उसकी माँग को पूर्णतया बेलोच कहेंगे। पूर्णतया लोचदार माँग की ही तरह पूर्णतया बेलोच माँग सैद्धान्तिक सत्य है, व्यवहारिक जीवन में इसका उदाहरण नहीं मिलता है। कुछ ऐसी वस्तुएं जो जीवन के लिए आवश्यक हैं, उनकी माँग बेलोच तो हो सकती है पर फिर भी इनकी माँग पूर्णतया बेलोच नहीं होगी। पूर्णतया बेलोच माँग-वक्र लम्ब-अक्ष के समानान्तर अथवा आधार अक्ष पर लम्ब होगा जैसा चित्र 7.2 में दिखाया गया है।

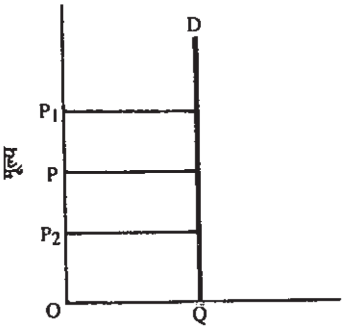

चित्र 7.2

3.समलोच माँग या पूर्णतया बेलोच माँग (e = 1):- जब किसी वस्तु की माँग में सापेक्षित परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन के बराबर हो तो उस वस्तु की माँग को समलोच माँग कहेंगे, जैसे किसी वस्तु के मूल्य में कमी या 10% हो और उसकी माँग में वृद्धि भी 10% ही हो। समलोच माँग का स्पष्टीकरण रेखाचित्र 7.3 में किया गया है।

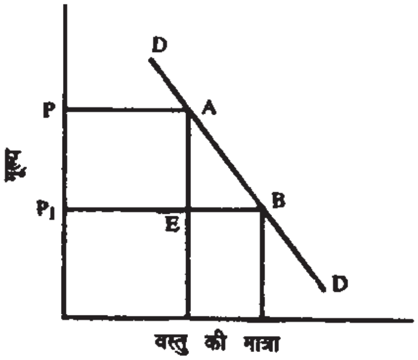

चित्र 7.3

4.अधिक लोचदार माँग (e > 1):-जब किसी वस्तु की माँग में सापेक्षित परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन से अधिक हो तो उस वस्तु की माँग अधिक लोचदार कही जायेगी जैसे किसी वस्तु के मूल्य में 10% की वृद्धि के कारण वस्तु की माँग में 30% की कमी आ जाये। अधिक लोचदार माँग का प्रदर्शन रेखाचित्र 7.4 में किया गया है।

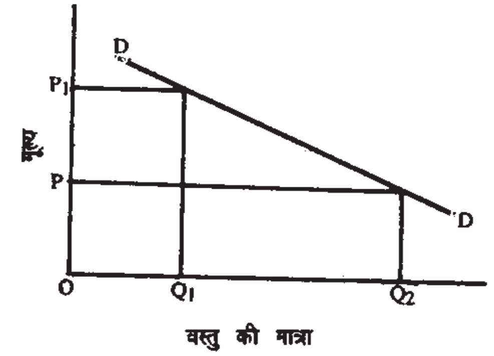

चित्र 7.4

5.बेलोच माँग ($e_p < 1$) :-जब किसी वस्तु की माँग में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन में कम हो तो उस वस्तु की मांग बेलोच कही जायेगी, जैसे मूल्य में 10 प्रतिशत की कमी माँग में 5 प्रतिशत की वृद्धि लाये। इसका स्पष्टीकरण रेखाचित्र 7.5 में किया गया है।

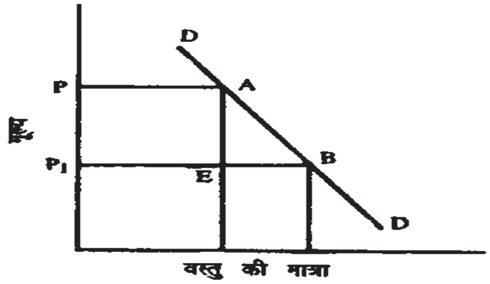

चित्र 7.6

7.3.3 माँग की लोच की माप

माँग की लोच को मापने की तीन विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं जिनका स्पष्टीकरण विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है।

(क) कुल व्यय विधि:-मार्शल ने मूल्य में परिवर्तन के कारण किसी वस्तु पर होने वाले कुल व्यय के आधार पर माँग की लोच की माप की जिसे व्यय विधि कहा जाता है। मार्शल ने यह प्रतिपादित किया कि यदि मूल्य में कमी के बाद व्यय बढ़े तो माँग की लोच इकाई से अधिक $e_p > 1$, यदि स्थिर रहे तो माँग की लोच इकाई के बराबर $e_p = 1$ तथा यदि कम हो जाय तो माँग की लोच इकाई से कम $e_p < 1$ होगा।

किसी वस्तु पर होने वाला कुल व्यय त्= वस्तु की माँगी गयी मात्रा X प्रति इकाई मूल्य

नीचे दी गयी सारिणी में व्यय विधि के आधार पर माँग मूल्य लोच को स्पष्ट किया गया है-

सारिणी: माँग, व्यय तथा माँग की लोच

मूल्य (रूपये)	माँगी गयी मात्रा (इकाई)	कुल व्यय	माँग की मूल्य लोच
3	250	750	मूल्य में गिरावट के साथ व्यय में वृद्धि (लोचदार माँग) e > 1
2	450	900	
1	1,000	1,000	
3	500	1,500	मूल्य में गिरावट के बाद व्यय स्थिर इकाई लोच e = 1
2	750	1,500	
1	1,500	1,500	
3	925	2,775	मूल्य में गिरावट के बाद व्यय में कमी (बेलोच माँग e > 1)
2	950	1,900	
1	1,000	1,000	

(ख) चाप माँग की लोच

इस विधि का प्रयोग माँग वक्र पर दो बिन्दुओं के बीच चलने की स्थिति में माँग की लोच ज्ञात करने के लिए किया जाता है। दो बिन्दुओं के मध्य माँग वक्र के भाग को 'चाप' कहा जाता है, तथा सम्बन्धित माँग की लोच को 'चाप माँग की लोच' कहा जाता है। इस विधि से माँग की लोच का सूत्र इस प्रकार होगा-

ep =	$\frac{\text{मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$
ep = -	$\frac{q_2 - q_1}{\frac{q_2 + q_1}{2}} \div \frac{p_2 - p_1}{\frac{p_2 + p_1}{2}}$ या $- \frac{q_2 - q_1}{\frac{q_2 + q_1}{2}} \times \frac{\frac{p_2 + p_1}{2}}{p_2 - p_1}$
ep = -	$\frac{q_2 - q_1}{q_2 + q_1} \div \frac{p_2 + p_1}{p_2 + p_1} = - \frac{q_2 - q_1}{p_2 + p_1} \times \frac{p_2 - p_1}{p_2 + p_1}$
ep = -	$- \frac{\square q}{\square p} \times \frac{p_1 + p_2}{q_1 + q_2}$

(ग) माँग की बिन्दु लोच

माँग की बिन्दुलोच को चित्र 7.6 की सहायता से दर्शाया गया है। चित्र में PL माँग रेखा एक सीधी रेखा है जिसके बिन्दु R पर हम माँग की लोच ज्ञात करना चाहते हैं। माँग की लोच का सूत्र इस प्रकार है -

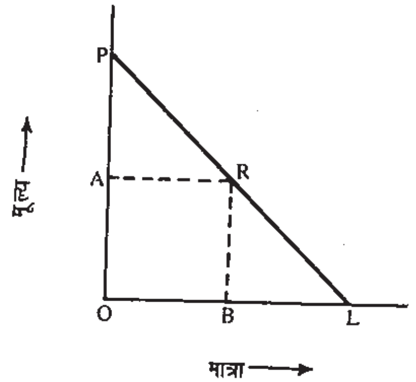

चित्र 7.6

$\frac{BL}{AR} = \frac{RL}{RL} = \frac{\text{माँग वक्र का निचला भाग}}{\text{माँग वक्र का ऊपरी भाग}}$

रेखाचित्र में R, माँग रेखा tT का मध्य बिन्दु है। विभिन्न बिन्दुओं पर माँग की मूल्य लोच की गणना को निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

i. बिन्दु t पर ep = $\frac{\text{t बिन्दु के नीचे का भाग}}{\text{t बिन्दु के नीचे का भाग}}$

अब t, बिन्दु के ऊपर, माँग वक्र का भाग शून्य के बराबर है, तथा t बिन्दु के नीचे माँग वक्र के भाग tT के बराबर है।

अतः $e_p = \frac{tT}{0} = \infty$ (अनन्त)

ii. बिन्दु A पर $e_p = \frac{AT}{tA}$

चूँकि बिन्दु A मध्य बिन्दु R के ऊपर स्थित है अतः AT का मान tA से अधिक होगा-

अर्थात $e_p > 1$

बिन्दु R पर $e_p = \frac{RT}{tR}$

चूँकि R माँग रेखा का मध्य बिन्दु है अतः RT= tR अर्थात $e_p = 1$

इस प्रकार बिन्दु B पर $e_p = \frac{BT}{tB}$ अर्थात $e_p < 1$ तथा

बिन्दु T पर $e_p = \frac{0}{tT} = 0$

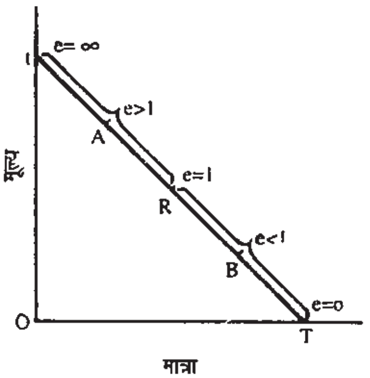

चित्र 7.7

(ग) माँग वक्र के किसी बिन्दु पर माँग की लोच

यदि माँग फलन का ग्राफ एक वक्र के रूप में है तो माँग वक्र के किसी बिन्दु **R** पर माँग की लोच ज्ञात करने के लिए , हम वक्र के सम्बद्ध बिन्दु पर वक्र की एक स्पर्श रेखा खींचते हैं। रेखाचित्र 7.8

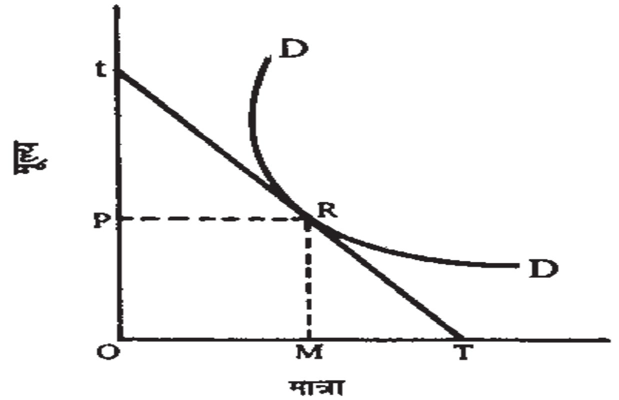

चित्र 7.8

बिन्दु R पर वक्र की स्पर्श रेखा को tT के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। माँग वक्र के बिन्दु R पर माँग की लोच, बिन्दु R पर स्पर्श रेखा tT की माँग लोच के बराबर होगी।

7.4 माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

इनका अध्ययन हम निम्नांकित शीर्षकों में करेंगें-

1.वस्तु की प्रकृतिः अनवार्य आवश्यकता की वस्तुएं माँग बेलोच होती है जैसे नमक। आराम सम्बन्धी वस्तुओं की माँग न तो अधिक लोचदार होती है और न बेलोचदार। विलासिता की वस्तुओं की माँग अधिक लोचदार होती है।

2.वस्तु के विभिन्न उपयोगः मार्शल के अनुसार यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसके अनेक प्रयोग होते हैं तो उसकी माँग लोचदार होगी।

3.वस्तु के उपयोग का स्थगित किया जानाः यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसके उपयोग को स्थगित किया जा सकता है तो उसकी माँग की लोच अधिक होगी पर यदि वस्तु ऐसी है जिसका प्रयोग स्थगित नहीं किया जा सके तो उसकी माँग बेलोच होगी।

4.स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धिः यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसकी स्थानापन्न वस्तुएं हैं तो उस वस्तु की माँग की लोच अधिक होगी पर यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसका कोई स्थानापन्न नहीं है तो उसकी माँग की लोच कम होगी।

5.उपभोक्ता की आयः एक ही वस्तु की माँग की लोच अधिक आय तथा कम आये वाले व्यक्ति के लिए अलग-अलग होती है। धनी व्यक्ति की मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम रहती है, इसलिए मूल्य के बढ़ने पर भी अधिक रूपया खर्च करने में उसे हिचक नहीं होती है। वस्तु की माँग बेलोच होती है पर निर्धन की माँग अधिक लोचदार होती है।

6.वस्तु पर व्यय किया जाने वाला आय का भागः यदि आय का अधिकांश भाग किसी वस्तु के प्रयोग पर व्यय होता है तो उस वस्तु की माँग लोचदार होगी पर यदि किसी वस्तु पर आय का अल्प भाग ही व्यय हो रहा हो तो उस वस्तु की मांग बेलोच होगी।

7.समाज में आय का वितरणः टाजिंग का मत है कि समाज में धन के असमान वितरण होने पर माँग बेलोच होती है तथा आय के समान वितरण होने पर माँग की लोच अधिक होती है।

8.वस्तु के प्रयोग के सम्बन्ध में आदतें तथा रीति-रिवाजः यदि वस्तु ऐसी है जिसके प्रयोग की उपभोक्ता में आदत पड़ गई है जैसे सिगरेट, शराब आदि तो उसकी माँग बेलोच होगी।

9.समय का प्रभावः मार्शल का मत है कि माँग की लोच के ऊपर समय का प्रभाव पड़ता है। वस्तु की मांग अल्पकाल की अपेक्षा दीर्घकालीन में अधिक लोचदार होती है।

10.संयुक्त माँग की वस्तुएं : ऐसी वस्तुएं जिनकी माँग संयुक्त होती हैं अर्थात् जो एक दूसरे की पूरक हैं जैसे कलम तथा स्याही, उसकी माँग बेलोच होती है।

11.मूल्य स्तरः महंगे मूल्य पर माँग बेलोच तथा सस्ते मूल्य पर अधिक लोचदार होती है।

12.वस्तु के उपभोक्ताओं का वर्गः यदि वस्तु का प्रयोग करने वाले लोग धनी वर्ग के हैं तो उसकी माँग बेलोच होगी, इसके विपरीत खुले बाजार में मिलने वाली वस्तु की माँग की लोच अधिक होती है।

7.5 माँग की लोच का महत्व

माँग की लोच का महत्व निम्नांकित है-

1. मूल्य निर्धारण में
2. उत्पादन के साधनों के पारिश्रमिक-निर्धारण में
3. सरकार की आर्थिक तथा वित्तीय नीतियों के निर्धारण में

7.6 माँग की आय लोच

किसी उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाले सापेक्ष परिवर्तन की माप या क्षमता ही माँग की आय लोच है, यदि वस्तु का मूल्य अपरिवर्तित रहे।

$$\text{किसी वस्तु की माँग की आय लोच } (e_y) = \frac{\text{वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{उपभोक्ता की आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$e_y = - \frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta y}{y}$$

$$e_y = - \frac{\Delta q}{q} \times \frac{y}{\Delta y} = \frac{\Delta q}{\Delta y} \times \frac{y}{q}$$

सामान्यता किसी वस्तु की माँग की आय लोच धनात्मक होती है अर्थात उपभोक्ता की आयु में वृद्धि के फलस्वरूप उस वस्तु की माँग में वृद्धि होती है तथा आय में कमी वस्तु की माँग में कमी लाती है पर कुछ स्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें वस्तु की माँग की आय लोच ऋणात्मक भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में माँग एवं आय के परिवर्तन विपरीत दिशा में होंगे। इस प्रकार की स्थिति निम्न कोटि अथवा 'गिफेन वस्तुओं के सम्बन्ध में मिल सकती है। इस स्थिति में आय में वृद्धि के बाद उपभोक्ता इन वस्तुओं की कम माँग करता है अथवा इन वस्तुओं पर कम व्यय करता है।

माँग की मूल्य लोच की तरह ही माँग की आय लोच के पाँच प्रकार हो सकते हैं-

(क)माँग की शून्य लोचः माँग की आय लोच शून्य तब होती है जब किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि होने के बाद भी किसी वस्तु की क्रय की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं हो।

(ख)माँग की ऋणात्मक आय लोचः माँग की आय लोच तथा ऋणात्मक होगी जब उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि होने के बाद किसी वस्तु की माँग में कमी आय (जैसा घटिया या निकृष्ट कोटि की वस्तुओं के सम्बन्ध में होता है)।

(ग)माँग की आय लोच इकाई के बराबरः माँग की आय लोच इकाई के तब बराबर कही जायेगी जब उपभोक्ता की मौद्रिक आय का अनुपात जो वह किसी वस्तु पर व्यय करता था, आय की वृद्धि के बाद वही बना रहे जो आय की वृद्धि के पहले था। उदाहरण के लिए यदि उपभोक्ता ग् वस्तु पर अपनी आय का 10 प्रतिशत व्यय करता है तथा यदि आय में वृद्धि के बाद भी वह उस वस्तु पर 10 प्रतिशत का ही व्यय करे तो माँग की आय लोच इकाई के बराबर होगी।

(घ)माँग की आय लोच इकाई से अधिकः माँग की आय लोच इकाई से अधिक तब कही जायेगी जबकि उपभोक्ता की मौद्रिक आय का अनुपात जो किसी वस्तु पर व्यय करता था, मौद्रिक आय की वृद्धि के बाद अपेक्षाकृत बढ़ जाये। प्रायः विलासिता की वस्तुओं के सम्बन्ध में माँग की आय लोच इकाई से अधिक पायी जाती है।

(ड.)माँग की आय लोच इकाई से कमः माँग की आय लोच इकाई से कम तब होगी जबकि मौद्रिक आय में वृद्धि के बाद उपभोक्ता अपनी मौद्रिक आय का अपेक्षाकृत कम अनुपात किसी वस्तु ग् के ऊपर व्यय करता है।

7.7 माँग आड़ी की लोच

वस्तुएं दो प्रकार की हो सकती हैं- (क) अनाश्रित या स्वतन्त्र वस्तुयें तथा (ख) आश्रित वस्तुंए अर्थात् पूरक अथवा स्थानापन्न वस्तुएं। यदि किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन से किसी अन्य वस्तु की माँग परिवर्तित होती है तो हम कहते हैं कि वस्तुएं परस्पर सम्बन्धित है। सम्बन्धित वस्तुंए दो प्रकार की हो सकती हैं- स्थानापन्न व पूरक। यदि किसी वस्तु का मूल्य बढ़ने (घटने) पर किसी अन्य वस्तु की माँग बढ़ती (घटती) है तो वस्तुएं एक दूसरे की स्थानापन्न होंगी। अर्थात् किसी वस्तु के मूल्य एवं स्थानापन्न वस्तु की मांग में धनात्मक सम्बन्ध होता है। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु का मूल्य एवं स्थानापन्न वस्तु की मांग घटती (बढ़ती) है तो वस्तुएं परस्पर पूरक कहलायेंगी। किसी वस्तु के मूल्य एवं इसकी पूरक वस्तु की माँग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध होता है। माँग की आड़ी लोच इस प्रकार की वस्तुओं की सापेक्षिक सम्बद्धता की माप है।

$$\text{माँग की आड़ी लोच } (e_{AB}) = \frac{\text{A वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{B वस्तु के मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$e_{AB} = - \frac{\Delta q_A}{q_A} \div \frac{\Delta P_B}{p_B} = \frac{\Delta q_A}{\Delta p_B} \text{ x } \frac{P_B}{q_A}$$

माँग-मूल्य लोच की तरह ही इसके सम्बन्ध में भी औसत विधि का प्रयोग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में माँग की चाप आड़ी लोच का सूत्र इस प्रकार होगा-

$$e_{AB} = - \frac{(q_2 - q_1)}{\frac{(q_2 + q_1)}{2}} \div \frac{(p_2 - p_1)}{\frac{(p_2 + p_1)}{2}} = \left(\frac{q_2 - q_1}{q_2 + q_1}\right) \text{ x } \left(\frac{p_2 + p_1}{p_2 - p_1}\right)$$

$$= \left(\frac{(q_2 - q_1)}{(p_2 + p_1)}\right) \div \left(\frac{(p_2 + p_1)}{(q_1 + q_2)}\right) = \frac{\Delta q}{\Delta p} \text{ x } \left(\frac{p_2 + p_1}{q_2 - q_1}\right)$$

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यदि A तथा B दोनों परस्पर स्थानापन्न हैं तो माँग की आड़ी लोच धनात्मक होगी पर यदि A तथा B एक दूसरे की पूरक वस्तुएं हैं तो माँग की आड़ी लोच ऋणात्मक होगी।

माँग की आड़ी लोच से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं-

1.यदि माँग की आड़ी लोच का मान शून्य है ($e_{AB} = 0$) तो ऐसी स्थिति में वस्तुएं न तो पूरक होंगी और न स्थानापन्न बल्कि अनाश्रित या स्वतंत्र होंगी।

2.यदि माँग की आड़ी लोच का मान 'ऋणात्मक' हो अर्थात् $e_{AB} < 0$ तो दोनों वस्तुयें परस्पर पूरक वस्तुयें होंगी।

3.यदि माँग की आड़ी लोच का मान धनात्मक हो या $e_{AB} > 0$ तो दोनों वस्तुएं स्थानापन्न वस्तुएं होंगी।

4.स्पष्ट है कि यदि म।ठ का मान बहुत अधिक धनात्मक हो तो दोनों वस्तुएं परस्पर निकटतम स्थानापन्न होंगी और यदि आड़ी लोच कम धनात्मक हुई तो परस्पर कम स्थानापन्न होंगी।

7.8 पूर्ति की लोच

माँग के नियम की भाँति पूर्ति का नियम भी एक गुणात्मक कथन है अर्थात् यह नियम पूर्ति में होने वाले परिवर्तन की दिशा को बताता है न कि मात्रा को। इस नियम के अनुसार जब किसी वस्तु की कीमत बढ़ (घट) जायेगी। परन्तु कितना अधिक बढ़ेगी (घटेगी) यह नियम नहीं बताता। इसकी माप के लिए हम पूर्ति की लोच का प्रयोग करते हैं।

पूर्ति की लोच का विचार यह बताता है कि कीमत में वृद्धि या कमी होने पर पूर्ति की मात्रा में कितनी या किस गति से वृद्धि या कमी होगी। पूर्ति की लोच ;मेद्ध कीमत में थोड़े से परिवर्तन के फलस्वरूप पूर्ति की मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है। इसे जानने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है-

$$e_S = \frac{\text{वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

यहाँ e_s पूर्ति की लोच को बताता है।

पूर्ति की लोच को हम निम्नलिखित पाँच श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं –

1.पूर्णतया लोचदार पूर्तिः पूर्णतया लोचदार पूर्ति की स्थिति में पूर्ति-वक्र X अक्ष के समानान्तर होता है अर्थात् कीम में थोड़ा भी परिवर्तन होने पर पूर्ति की मात्रा घटकर शून्य हो जाती है। ऐसी स्थिति में एक निश्चित कीमत पर कितनी भी वस्तु की मात्रा बेची जा सकती है। इसे रेखाचित्र 7.9 में दिखाया गया है। पूर्णतया लोचदार पूर्ति वक्र की लोच अनन्त $e_s = \infty$ होती है। यह स्थिति केवल काल्पनिक स्थिति है। व्यावहारिक जीवन में ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती।

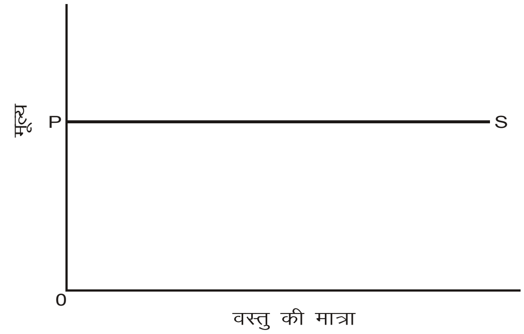

चित्र 7.9

2.अधिक लोचदार पूर्ति: जब किसी वस्तु की कीमत में होने वाला आनुपातिक परिवर्तन उसकी पूर्ति में होने वाले आनपातिक परिवर्तन से कम होता है तो उसे अत्यधिक लोचदार पूर्ति कहते हैं। इस प्रकार की पूर्ति की लोच को इकाई में अधिक लोच $e_s > 1$ भी कहते हैं। इसे रेखाचित्र 7.10 में दिखाया गया है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से अधिक है अतः पूर्ति की लोच इकाई से अधिक होगी।

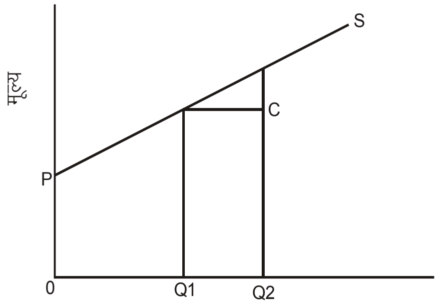

चित्र 7.10

3.इकाई के बराबर पूर्ति लोच: जब कीमत में होने वाला आनपातिक परिवर्तन पूर्ति में होने वाले आनपातिक परिवर्तन के बराबर होता है तो उसे इकाई के बराबर लोच की संज्ञा देते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कीमत में 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो पूर्ति में भी 20 प्रतिशत की ही वृद्धि होगी। इस प्रकार की वस्तुओं के लिए पूर्ति की लोच इकाई के बराबर होती है। इसे रेखाचित्र 7.11 में दिखाया गया है।

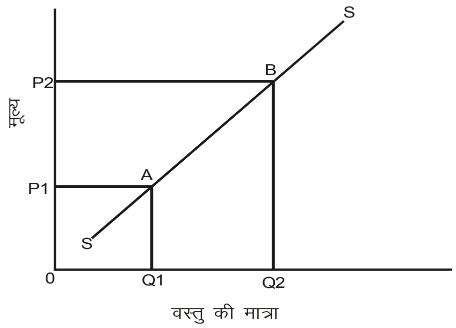

चित्र 7.11

4.अधिक बेलोचदार पूर्ति: जब कीमत में होने वाला आनपातिक परिवर्तन वस्तु की पूर्ति में होने वाले आनपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो उसे हम अधिक बेलोचदार पूर्ति कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कीमत में 50 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो वस्तु की पूर्ति में केवल 30 प्रतिशत की ही वृद्धि होगी। अतः पूर्ति की लोच इकाई से कम कहलायेगी। इसे रेखाचित्र 7.12 में दिखाया गया है।

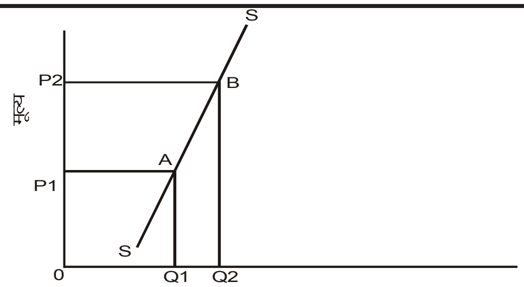

चित्र 7.12

5.पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति: जब किसी वस्तु की कीमत में होने वाला परिवर्तन उस वस्तु की पूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं डालता तो उसे हम पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति कहते हैं। यहाँ पूर्ति की लोच शून्य के बराबर होगी। इसे रेखाचित्र 7.13 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

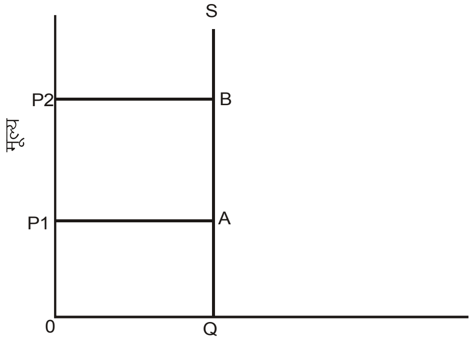

चित्र 7.13

7.9 पूर्ति की लोच की माप

1.आनुपातिक विधि: इसे अन्तर्गत पूर्ति में आनुपातिक (या प्रतिशत) परिवर्तन का कीमत में आुनपातिक (या प्रतिशत) परिवर्तन से भाग दिया जाता है। इसमें निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$e_S = \frac{\text{वस्तु की पूर्ति में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\frac{\Delta Q}{Q}}{\frac{\Delta P}{P}} = \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P}$$

$$= \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

2.बिन्दु-विधिः इसके द्वारा पूर्ति की लोच पूर्ति-वक्र के किसी बिन्दु पर मापी जाती है। उदाहरण के लिए, रेखाचित्र 11.14 में SS पूर्ति रेखा है जिसे P बिन्दु पर पूर्ति की लोच ज्ञात करनी है। इस पूर्ति वक्र SS को नीचे की ओर बढ़ाया जाता है। जिसमें कि वह X अक्ष को R बिन्दु पर काटती है। पुनः P बिन्दु से X अक्ष पर एक लम्ब PX डाला जाता है। अब पूर्ति की लोच को हम निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात कर सकते हैं - $= \frac{RQ}{OQ}$

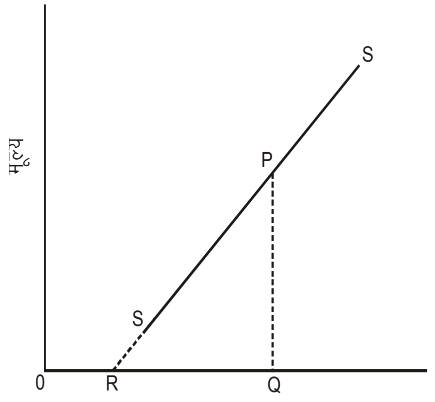

चित्र 7.14

परन्तु यदि पूर्ति-वक्र की स्थिति मोड़ लेकर होगी तो पूर्ति लोच निम्नांकित रेखाचित्र 7.15 के माध्यम से स्पष्ट की जा सकती है। रेखाचित्र 7.15 में देखा जा सकता है कि इसमें पूर्ति-वक्र SS है जिसके । बिन्दु पर पूर्ति की लोच ज्ञात करनी है तो हम A बिन्दु से होती हुई एक स्पर्श रेखा बनाते हैं जो X अक्ष को R बिन्दु पर मिलती है। अब पूर्ति की लोच निम्न प्रकार होगी -

$$e_s = \frac{RQ}{OQ}$$

चूँकि रेखाचित्र 11.15 में $RQ < OQ$ है अतः $Es < 1$

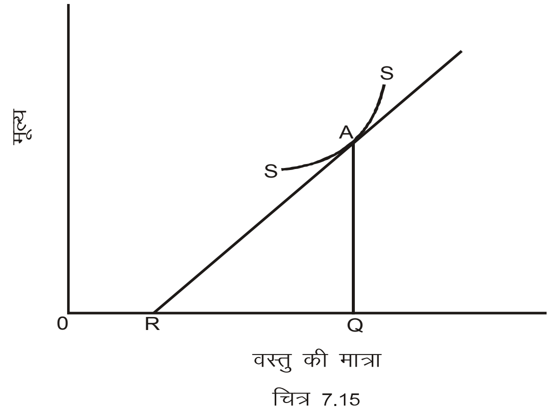

चित्र 7.15

7.10 पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित तत्व हैं:

1.वस्तु की प्रकृति: पूर्ति की लोच वस्तु-विशेष प्रकृति पर निर्भर करती है। यदि वस्तुएँ नाशवान हैं तो उसकी पूर्ति लोच बेलोचदार होती है। इसके विपरीत टिकाऊ वस्तुओं की पूर्ति की लोच लोचदार होती है।

2.उत्पादन-तकनीक: प्रायः सरल उत्पादन-विधि एवं कम पूँजी की आवश्यकता वाली विधि के अन्तर्गत वस्तु की पूर्ति लोचदार होती है। इसके विपरीत यदि उत्पादन प्रणाली जटिल है अथवा उसमें पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है तो ऐसी वस्तुओं के लिए पूर्ति की लोच बेलोचदार होती है।

3.उत्पादन लागत: यदि किसी वस्तु का उत्पादन उत्पत्ति ह्रास नियम या लागत वृद्धि नियम के अन्तर्गत हो रहा हो तो उसकी पूर्ति बेलोचदार होती है क्योंकि कीमत बढ़ने पर उनकी पूर्ति को बढ़ाना कठिन है।

4.समय: पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्वों में समय का भी महत्व है। जितना अधिक समय होगा उतनी ही वस्तु की पूर्ति की लोच अधिक होगी क्योंकि उस समय में पूर्ति को आसानी से मात्रा के अनुरूप समायोजित किया जा सकता है। इसके विपरीत जितना कम समय होगा उस वस्तु की पूर्ति उतनी ही कम लोचदार होगी।

7.11 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त इकाई में हमने माँग एवं पूर्ति लोच की व्याख्या की। सर्वप्रथम माँग की लोच के अन्तर्गत माँग की लोच से आशय, माँग की लोच की श्रेणियाँ, माँग की लोच को मापने की विधियाँ, माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्वों एवं माँग की लोच के महत्व की व्याख्या की गई।किसी वस्तु के मूल्य में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँगी गयी मात्रा में होने वाली सापेक्षिक अनुक्रिया की माप ही माँग की लोच है। मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में परिवर्तन कितना होगा, किस अनुपात में होगा, यह विभिन्न मूल्यों पर माँग के बदलने की क्षमता पर निर्भर करता है। यह क्षमता ही माँग की मूल्य लोच है। वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाले परिवर्तन की सापेक्षता के आधार पर माँग की मूल्य लोच को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है- पूर्णतया लोचदार माँग, पूर्णतया बेलोच माँग , पूर्णतया बेलोच माँग , अधिक लोचदार माँग तथा बेलोच माँग। तदुपरान्त पूर्ति की लोच के अन्तर्गत पूर्ति लोच से आशय, पूर्ति की लोच की श्रेणियाँ, पूर्ति की लोच की माप तथा पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या की गई है।पूर्ति की लोच का विचार यह बताता है कि कीमत में वृद्धि

या कमी होने पर पूर्ति की मात्रा में कितनी या किस गति से वृद्धि या कमी होगी। पूर्ति की लोच कीमत में थोड़े से परिवर्तन के फलस्वरूप पूर्ति की मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।

7.12 शब्दावली

1.माँग की लोचः वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के कारण वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाली सापेक्षिक अनुक्रिया माँग की लोच कहलाती है। इसे मूल्य-लोच भी कहते हैं।

2.आय लोचः उपभोक्ता की आय में आनुपातिक परिवर्तन में कारण वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाला आुनपातिक परिवर्तन आय लोच होती है।

3.आड़ी लोचः अन्य वस्तुआं के मूल्य में परिवर्तन के कारण वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाला आनुपातिक परिवर्तन आड़ी लोच होती है।

4.चाप माँग की लोचः माँग-वक्र के दो बिन्दुओं के बीच माँग की लोच को चाप माँग की लोच कहते हैं।

5.बिन्दु माँग की लोचः माँग-वक्र के किसी एक बिन्दु पर माँग की लोच को बिन्दु माँग की लोच कहते हैं।

6.पूर्ति की लोचः वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के कारण वस्तु की पूर्ति की गई मात्रा में होने वाली सापेक्षिक अनुक्रिया पूर्ति की लोच कहलाती है।

7.13 अभ्यास प्रश्न

1. एक सीधी रेखा के रूप में माँग-वक्र के मध्य बिन्दु पर माँग की लोच .... होगी।
2. दो पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं की माँग की लोच .... होगी।
3. यदि वस्तु की माँग आय लोच इकाई से अधिक है तो वस्तु सामान्यतया .... वस्तु होगी।
4. दो बिन्दुओं के मध्य सम्बन्धित माँग की लोच को .... लोच कहते हैं।
5. दीर्घकाल में वस्तु की माँग की लोच .... लोचदार होती है।
6. धनी व्यक्ति के लिए माँग की लोच .... होती है।

7. नमक की माँग की लोच .... होती है।

8. वस्तु का मूल्य बढ़ने पर वस्तु की पूर्ति .... जायेगी।

9. जब कीमत में आनुपातिक परिवर्तन के कारण पूर्ति में भी आुनपातिक परिवर्तन हो तो पूर्ति लोच .... होती है।

10. नाशवान वस्तुआं की पूर्ति लोच .... होती है।

उत्तरः(1) एक, (2) अनन्त, (3) विलासिता, (4) चाप, (5) अधिक, (6) कम, (7) बेलोचदार, (8) बढ़, (9) ऐकिक, (10) बेलोचदार।

7.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Dwivedi, D. N. (2008): Micro Economics 7th edition vikas Publish House New Delhi.
- Koutsiyanniesa, A- (1997) –Microeconomics Analysis New Delhi.
- Mishra S.K & Puri V.K. (2003) – Modern micro economic theory Himalaya Publishing House.
- Sethi T. T (2006) – 'Principlesa of Economics' Lakshmi Narayan Agrawal agra
- Ahuza ,H.L (2010) – "Principlesa of Microeconomics", S.chand publishing house,new delhi.

7.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- आहूजा, एच0 एल0 (2003) उच्चतर आर्थिक सिद्वात (व्यष्टि परक आर्थिक विश्लेषण) एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
- सिन्हा, वी0 सी0 (1999) व्यष्टि अर्थशास्त्र, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- जैन, के0 पी0 (1987) व्यष्टि अर्थशास्त्र साहित्य भवन, आगरा
- लाल, एस0 एन0 (1999) व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद

7.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. माँग की लोच से आप क्या समझते हैं? इस बात को सिद्ध कीजिए कि एक माँग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर माँग की लोच भिन्न-भिन्न होती है?

2. माँग की कीमत लोच की श्रेणियों को स्पष्ट कीजिए। माँग की कीमत लोच की माप करने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं?

3.माँग की लोच को परिभाषित कीजिए तथा बिन्दु विधि एवं चाप विधि के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

4. माँग की लोच से क्या तात्पर्य है? इसको प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन कीजिए।

5.पूर्ति की विभिनन लोचों का वर्णन कीजिए। इसको मापने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं?

इकाई – 8 उपभोक्ता बचत

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 उपभोक्ता की बचत की व्याख्या
8.4 उपभोक्ता की बचत का रेखाचित्रीय प्रदर्शन
8.5 सिद्धान्त की आलोचनायें
8.6 उपभोक्ता की बचत सिद्धान्त का आधुनिक रूप
8.7 मूल्य तथा आय में परिवर्तनों का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव
8.8 उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त का महत्व
8.9 सारांश
8.10 शब्दावली
8.11 अभ्यास प्रश्न
8.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.14 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण से सम्बन्धित यह आठवी इकाई है,इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन में आपने माँग से आशय ,नियम तथा माँग सारिणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र को जान सकेंगे।माँग वक्र का स्वरूप ,बाजार माँग वक्र तथा माँग के नियम विभिन्न रूप को समझा सकेंगे।माँग में परिवर्तन तथा माँग के निर्धारक तत्व को बता सकेंगे। मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग एवं पूर्ति में परिवर्तन कितना होगा, किस अनुपात में होगा, यह विभिन्न मूल्यों पर माँग एवं पूर्ति के बदलने की क्षमता पर क्या प्रभाव होगा का अध्ययन किया।

इस इकाई में आप अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त का अध्ययन करेगें। विशेषतया कल्याणकारी अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की बचत का विचार बहुत महत्वपूर्ण है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने का श्रेय प्रायः डॉ. मार्शल को दिया जाता है लेकिन वास्तविकता यह है कि इस सिद्धान्त की कल्पना प्रसिद्ध अंग्रेजी अर्थशास्त्री विलियम स्टेनले जैवन्स तथा फ्रांसीसी अभियन्ता-अर्थशास्त्री आरस्ने जूल्स ड्यूपिट ने 1844 ई. में की थी। मार्शल ने अपनी "Pure Theory of Domestic Values" शीर्षक पुस्तक में 1879 ई. में इस प्रत्यय का पूर्ण रूप से विश्लेषण किया था और उन्होंने इसका नाम 'उपभोक्ता का अधिशेष' रखा था। तत्पश्चात् अपनी "Principles of Economics" शीर्षक अद्वितीय पुस्तक में मार्शल ने इस प्रत्यय की पूर्ण रूप से व्याख्या की थी और इसको 'उपभोक्ता की बचत' का नाम दिया था।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- उपभोक्ता की बचत की व्याख्या एवं बचत का रेखाचित्रीय प्रदर्शन कर सकेंगे।
- उपभोक्ता की बचत सिद्धान्त का आधुनिक रूप समझ सकेंगे।
- मूल्य तथा आय में परिवर्तनों का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव को जान सकेंगे।
- उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त का महत्व जान पायेगें।

8.3 उपभोक्ता की बचत की व्याख्या

उपभोक्ता के बचत सिद्धान्त की व्याख्या दो रूपों में की जा सकती है-

क. वस्तु की उपयोगिता के संख्यात्मक माप पर आधारित मार्शल का दृष्टिकोण

ख. वस्तु की उपयोगिता के क्रम वाचक माप पर आधारित हिक्स का दृष्टिकोण

(क)वस्तु की उपयोगिता के संख्यात्मक माप पर आधारित मार्शल का दृष्टिकोणः मार्शल ने उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त का प्रतिपादन दैनिक जीवन में होने वाले इस अनुभव पर किया कि प्रायः जब हमें किसी वस्तु के उपभोग की अत्यन्त तीव्र इच्छा रहती है अथवा जब कोई वस्तु कम मात्रा में उपलब्ध रहती है तो हम उस वस्तु को क्रय करने के लिए उससे अधिक पैसा खर्च करने के लिए तत्पर हो जाते हैं जितने मूल्य में वह वस्तु हमें मिल जाती है इन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत है।

मार्शल ने उपभोक्ता की बचत की परिभाषा इस प्रकार की हैः ''किसी वस्तु को बिना प्राप्त किये हुए रहने की अपेक्षा वह मूल्य, जो एक व्यक्ति उस वस्तु के लिए देने के लिए तैयार रहता है और जो मूल्य वह वास्तव में देता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत कहलाती है।'' ("The excess of price which a person would be willing to pay, rather than go without the thing over that which he actually does pay, is the economic measure of this surplus of satisfaction. It may be called consumer's surplus" Marshall.) अर्थात् ''उस मूल्य की, जिसे उपभोक्ता किसी वस्तु को खरीदने के लिए देने के लिए तैयार हुआ होता तथा उस मूल्य, जिसे उपभोक्ता वास्तव में वस्तु को प्राप्त करने के लिए देता है, की बेशी (अन्तर) उपभोक्ता को प्राप्त हुए अतिरिक्त संतोष की आर्थिक माप है। इसे उपभोक्ता की बचत का नाम दिया जा सकता है।'' मान लीजिए आपको बहुत तेज प्यास लगी है और आप एक गिलास पानी के लिए 5 रूपये तक देने के लिए तैयार हैं, पर उसी समय यदि एक गिलास पानी केवल 50 पैसे में मिल जाय तो 5 रूपया जो आप देने के लिए तैयार थे तथा 50 पैसा जो आप वास्तव में देते हैं, इन दोनों का अन्तर 4.50 रूपया, उपभोक्ता की बचत कहलायेगी।

उपभोक्ता बचत की धारणा सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है। हम जानते हैं कि किसी वस्तु का स्टॉक हमारे पास जितना ही कम होगा, हम उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए अधिक देने के लिए तैयार होंगे क्योंकि वस्तु की वह इकाई हमारे लिए उतनी ही अधिक उपयोगी होगी और जैसे-जैसे हम किसी वस्तु को अधिक प्राप्त करते जायेंगे, उसकी सीमान्त उपयोगिता घटती जायेगी। किसी वस्तु के बाजार मूल्य पर उस वस्तु की उपयोगिता का आधिक्य ही उपभोक्ता की बचत है अर्थात् कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए जितना मूल्य देने को तत्पर होगा वह उस वस्तु से मिलने वाल उपयोगिता के बराबर होगा क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु के बदले उससे मिलने वाली उपयोगिता से अधिक देने को तैयार नहीं होगा और दूसरी ओर वास्तव में जो मूल्य वह उस वस्तु के लिए देता है, वही उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए उसका त्याग हुआ। अतः यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता तथा उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए त्यागी गई उपयोगिता का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत है। सूत्र रूप में -

(क)उपभोक्ता की बचत (उपयोगिता के रूप में) = वस्तु से मिलने वाली कुल उपयोगिता - उस वस्तु पर व्यय किये हुए द्रव्य के रूप मं कुल उपयोतिता का त्याग।

(ख)उपभोक्ता की बचत (द्रव्य के रूप में) = द्रव्य की वह मात्रा जो उपभोक्ता देने के लिए तत्पर है- वस्तु के क्रय पर खर्च की गई द्रव्य की कुल मात्रा।

(ग)उपभोक्ता की बचत = सीमान्त उपयोगिता का योग - (खरीदी गई वस्तुओं की संख्या x कीमत)

उपभोक्ता की बचत हमेशा धनात्मक होगी, कभी ऋणात्मक नहीं क्योंकि उपयोगिता से अधिक मूल्य वह देगा ही नहीं।

8.4 उपभोक्ता की बचत का रेखाचित्रीय प्रदर्शन

(क)उपयोगिता के रूप में: उपयोगिता के रूप में उपभोक्ता की बचत की धारणा को रेखाचित्र 8.1 में प्रदर्शित किया गया हैं रेखाचित्र में प्रत्येक इकाई से प्राप्त उपयोगिता विभिन्न आयतों के रूप में व्यक्त है। कुल उपयोगिता O A B C D E F G H J K क्षेत्र तथा त्यागी गयी उपयोगिता गैर छायांकित भाग के रूप में प्रदर्शित है। दोनों का अन्तर उपभोक्ता की बचत है जो छायांकित भाग के रूप में प्रदर्शित है ।

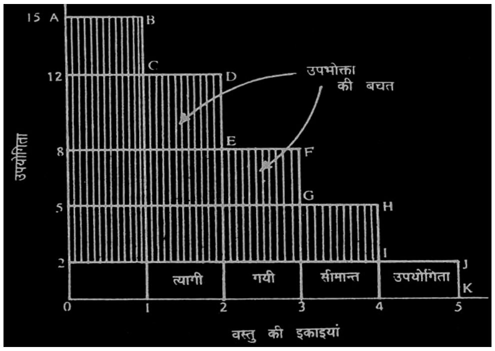

चित्र 8.1

(ख) मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचतः मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत की माप को रेखाचित्र 8.2 में प्रदर्शित किया गया है। रेखाचित्र में खींची गयी DD रेखा वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली सीमान्त उपयोतिा पर आधारित ‘व्यय की तत्परता’ प्रदर्शित करती हैं चूँकि विभिन्न इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता गिरती हुई होती है, इसलिए यह नीचे गिरती हुई है। इस रेखा के विभिन्न बिन्दु यह प्रदर्शित करते हैं कि किसी वस्तु की विभिनन इकाइयों के लिए कोई उपभोक्ता जितना मूल्य देने के लिए तैयार है। DD रेखा से स्पष्ट है जब X की कोई इकाई उसके पास नहीं है उस समय X_1 मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता OD है और इसलिए मुद्रा के रूप में इस इकाई के लिए वह OD देने के लिए तैयार है । अब यदि हम आरेखीय प्रदर्शन के लिए बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता मान लें अर्थात् यह मान लें कि एक दिए हुए मूल्य पर उपभोक्ता वस्तु की जितनी मात्रा चाहे क्रय कर सकता

है और यह मान लें कि बाजार में x का प्रचलित मूल्य प्रति इकाई OP है तो उपभोक्ता को OB - OP = DD उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी।

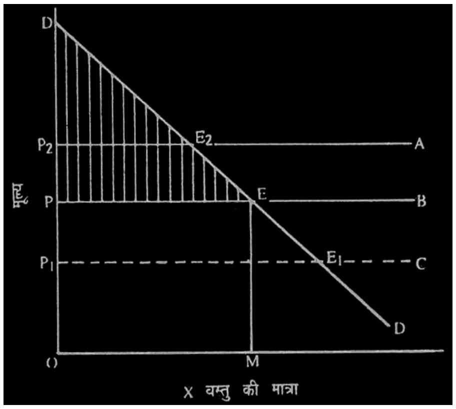

चित्र 8.2

वस्तु की दूसरी इकाई अब कम सीमान्त उपयोगिता देगी, इसलिए उसके लिए व्यय की तत्परता भी कम होगी। इसी प्रकार जैसे-जैसे वह X की अधिक इकाई प्राप्त करता जायेगी उसकी सीमान्त उपयोगिता तथा फलस्वरूप उसे प्राप्त करने की व्यय की तत्परता कम होती जायेगी, जैसा गिरते हुए DD से प्रदर्शित है। मूल्य के OP पर स्थिर रहने के कारण DD लम्बीय दूरी से प्रदर्शित है, क्रमशः कम होती गयी है। यदि हम देखें तो पायेंगे कि यह वह लम्बीय दूरी, जो हर एक इकाई पर उपभोक्ता को प्राप्त होने वाली उपभोक्ता की बचत प्रदर्शित करती है, घटती हुई OM इकाई पर OP मूल्य के बराबर हो जाती है अर्थात् वस्तु की सीमान्त उपयोगिता मूल्य के बराबर है, उपभोक्ता की बचत शून्य है। इस प्रकार OM वस्तुओं के क्रय पर सीमान्त उपयोगिता का योग या कुल उपयोगिता या व्यय की तत्परता =ODEM कुल व्यय या OP x OM = OPEM

उपभोक्ता की बचत = ODEM - OPEM = DPE

चूँकि उपभोक्ता की बचत मूल्य के ऊपर निर्भर तरती है, इसलिए उपभोक्ता की बचत मूल्य के परिवर्तन के अनुसार परिवर्तित होगी। यदि मूल्य घटकर OP_1 हो जाय तो उपभोक्ता की बचत बढ़कर DP_1 E_1 तथा यदि मूल्य बढ़कर OP_2हो जाये तो उपभोक्ता की बचत घटकर DD_2 E_1 हो जायेगी।

8.5 सिद्धान्त की आलोचनायें

इस सिद्धान्त की प्रायः जो आलोचनायें मिलती हैं उनमें से कुछ तो ऐसी हैं जो यह मानती हैं कि यह एक सैद्धान्तिक सत्य नहीं है। इस सिद्धान्त की आलोचनाओं का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के रूप में किया जा सकता है।

(1) वस्तु की उपयोगिता का माप सम्भव नहीः मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत-सिद्धान्त की नींव ही इस मान्यता पर खडत्री है कि वस्तु की उपयोगिता को नापा जा सकता है। पर वस्तुस्थिति यह है कि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है। इसे मुद्रा के द्वारा नापना सर्वथा असम्भव है।

(2) द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता बदलती रहती हैः उपयोगिता की बचत को नापते समय मार्शल ने यह मान लिया कि द्रव्य से मिलने वाली उपयोगिता में सम्पूर्ण विनिमय-क्रिया की अवधि में कोई परिवर्तन नहीं होगा। पर यह मान्यता ठीक नहीं क्योंकि जैसे-जैसे किसी वस्तु का क्रय बढ़ता जाता है, उपभोक्ता के पास मुद्रा की मात्रा कम होती जाती है। परिणामस्वरूप मुद्रा की उपयोगिता क्रमशः बढ़ती जाती है।

(3) स्थानापन्न वस्तुओं के कारण कठिनाईः मार्शल ने यह भी मान्यता रक्खी कि वस्तुयें प्रतिस्थापित नहीं की जा सकतीं पर व्यावहारिक जीवन में ऐसा मिलता नहीं। इन वस्तुओं के कारण उपभोक्ता पर मूल्य में होने वाले परिवर्तन के प्रभाव का अध्ययन ठीक-ठीक नहीं हो पाता। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत की ठीक-ठीक माप सम्भव नहीं है।

(4) माँग की सारिणी का अनिश्चित होनाः उपभोक्ता की बचत का अनुमान माँग-रेखा के द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि मांग की सारिणी निश्चित हो। आलोचकों का यह कहना है कि मांग की सारिणी केवल काल्पनिक होती है तथा इसके सम्बन्ध में अनुमान लगना सम्भव नहीं है।

(5) उपभोक्ताओं की आय तथा रुचियों में भिन्नताः आलोचकों का यह भी कहना है कि विभिन्न उपभोक्ताओं की आय तथा रुचियों में भिन्नता होती है जिसके कारण एक ही वस्तु की उपयोगिता भिन्न-भिन्न हुआ करती है।

(6) जीवन रक्षक, परम्परागत तथा प्रतिष्ठात्मक वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत का माप सम्भव नहीं इस प्रकार की वस्तुओं की उपयोगिता अमापनीय होती है।

(7) उपभोक्ता की बचत परिवर्तित होती रहती हैः कुछ आलोचकों का यह मत है कि उपभोक्ता की बचत बाजार-मूल्य पर आधरित है पर बाजार-मूल्य में बहुत अधिक परिवर्तन होता रहता है।

(8) वस्तुओं के क्रय की वृद्धि के साथ-साथ पहले क्रय की गई इकाइयों की उपयोगिता में कमीः पैटन का कहना है कि जैसे-जैसे वस्तुओं की मात्रा उपभोक्ता के पास बढ़ती जायेगी वैसे-वैसे पहले क्रय की गई वस्तुओं की उपयोगिता में कमी होती जायेगी।

(9) काल्पनिक तथा अव्यावहारिक विचारः निकोलसन ने इस सिद्धान्त को एक काल्पनिक तथा अव्यावहारिक सिद्धान्त कहा। उनके मत में यह सिद्धान्त एक कोरी कल्पना है तथा व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित नहीं है।

सेमुएलसन के अनुसार ''उपभोक्ता की बचत का महत्व सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक है और गणित की पहेली के समान कुछ आकर्षक है।'' श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने इसे 'उपयोगिताहीन बेकार धरणा' कहा है। पर विभिन्न आलोचनाओं के बावजूद भी प्रो. पीगू ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया।

8.6 उपभोक्ता की बचत सिद्धान्त का आधुनिक रूप

अनधिमान वक्र द्वारा उपभोक्ता की बचत की मापः आधुनिक अर्थशास्त्री हिक्स अनधिमान वक्र के माध्यम से इसे व्यक्त करने का दूसरा ढंग स्पष्ट किया तथा मार्शल के तरीके में व्याप्त दोषों को दूर करने का प्रयास किया। पर जहाँ तक उपभोक्ता की बचत के मौलिक विचार अथवा परिभाषा का प्रश्न है, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की बचत की माप उसकी आय की बचत के रूप में करना चाहिये। अनधिमान-वक्र के माध्यम से उपभोक्ता की बचत की परिभाषा देते हुए प्रो. हिक्स ने इस प्रकार कहा- ''उपभोक्ता की बचत मुद्रा की वह मात्रा है जो उसकी आर्थिक दशा में कुछ परिवर्तन के बाद या तो उपभोक्ता को दी जानी चाहिये अथवा उससे ले ली जानी चाहिये जिससे उपभोक्ता या तो ऊपर उठ जाये अथवा नीचे आ जाये तथा उसी अनधिमन-वक्र पर बना रहे जिस पर वह इस प्रकार के परिवर्तन के पहले था।''

(क) मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की मापः दिये गये रेखाचित्र 8.3 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY पर मुद्रा की मात्रा प्रदर्शित है। इस रेखाचित्र में IC_1 मुद्रा (Y) तथा वस्तु (X) के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। यदि उपभोक्ता वस्तु की ON मात्रा खरीदना चाहता है तो वह IC_1 वक्र पर T बिन्दु पर होगा, यह T बिन्दू यह प्रदर्शित करता है कि उपभोक्ता ON वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए PF या TK मुद्रा देने को तैयार है।

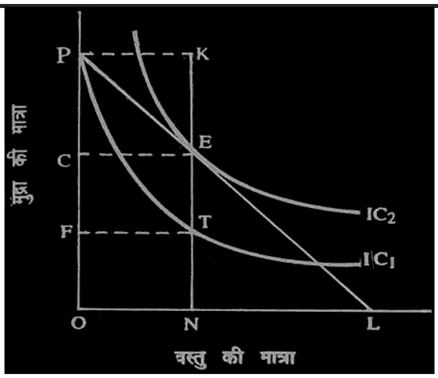

चित्र 8.3

उपभोक्ता की बचत को ज्ञात करने के लिए अब हमें यह जानना है उसे वास्तव में कितना देना पड़ता है। रेखाचित्र में PL बजट रेखा प्रदर्शित है। यह IC_2 वक्र को E बिन्दु पर स्पर्श करती है। इस रेखा का ढाल वस्तु की प्रति इकाई मूल्य प्रदर्शित करता है। अब यदि दिये गये रेखाचित्र में उपभोक्ता ON वस्तुयें खरीदना चाहे तो मूल्य-रेखा के आधार पर उसकी संस्थिति IC_2 वक्र के E बिन्दु पर होगी। वह ON वस्तुओं के लिए ON मुद्रा देगा। स्पष्ट है कि पहले वह PF देने के लिए तत्पर था अब उसे केवल PC देना पड़ रहा है। अतः PF - PC = CF मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत हुई।

यहाँ एक बात और सामने आती है, और वह यह कि मूल्य के ज्ञान के अभाव में वह IC_1 पर है जबकि मूल्य के ज्ञान के बाद IC_2 पर हैं IC_2 का सन्तुष्टि का स्तर निश्चय ही IC_1 के संतुष्टि के स्तर से अधिक हैं दोनों के सन्तुष्टि के स्तरों के बीच का अन्तर उपभोक्ता की बचत है।

(ख)वस्तु के रूप में उपभोक्ता की बचत की मापः रेखाचित्र 8.4 में आधार अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर मुद्रा की मात्रा प्रदर्शित है। उपभोक्ता AC मुद्रा व्यय करना चाहता है तथा वह IC_1 के D बिन्दु पर है जिस पर वह AC मुद्रा के बदले OM वस्तुयें प्राप्त कर सकने को सोचता है। पर जब वह बाजार में जाता है तब उसे AB मूल्य-रेखा ज्ञात होती है । ऐसी परिस्थिति में वह AC मुद्रा से IC_2 वक्र के E बिन्दु पर होगा अर्थात अब जहाँ वह AC से OM वस्तुयें खरीदने को तत्पर था अब उसे बाजार में ON वस्तुयें मिल जाती हैं। फलस्वरूप ON - OM = MN वस्तु के रूप में उपभोक्ता की बचत हुई।

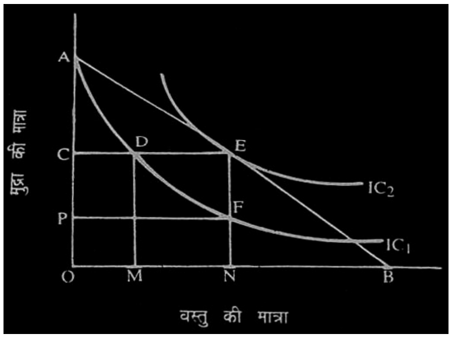

चित्र 8.4

8.7 मूल्य तथा आय में परिवर्तनों का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव

वस्तु के मूल्य तथा आय में परिवर्तन का क्या प्रभाव उपभोक्ता की बचत पर पड़ता है इसे निम्नांकित रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

(क) मूल्य में कमी पर आय स्थिर रहेः रेखाचित्र 8.5 में आधार अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर आय की मात्रा प्रदर्शित है। मूल मूल्य-रेखा ST है तथा उपभोक्ता I_2 वक्र के E_2 बिन्दु पर है तथा उपभोक्ता की बचत E_1 E_2 या Y_1 Y_2 है। यदि मूल्य गिर जाये जैसा ST_1 मूल्य-रेखा से स्पष्ट है तो उपभोक्ता अब उसी आय से अधिक वस्तुयें क्रय कर सकेगा। फलस्वरूप वह I_3 वक्र के E_3 बिन्दु पर है। फलस्वरूप अब उपभोक्ता की बचत बढ़कर E_1 E_3 या Y_1 Y_2 हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसे-जैसे मूल्य में कमी होती जायेगी, उपभोक्ता की बचत में वृद्धि होती जोयगी। इसी प्रकार यह भी प्रदर्शित किया जा सकता है कि जैसे-जैसे मूल्य में वृद्धि होती जोयगी उपभोक्ता की बचत में कमी होती जायेगी। रेखाचित्र 8.5 में यदि हम ST_1 को मूल मूल्य रेखा मान लें तथा ST बढ़ा हुआ मूल्य प्रदर्शित करे तो देखा जा सकता है कि मूल्य रेखा ST होते ही उपभोक्ता की बचत कम हो जायेगी।

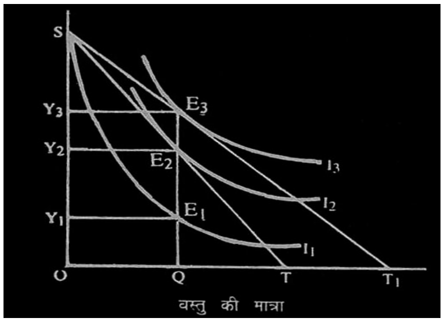

चित्र 8.5

(ख) आय में वृद्धि पर वस्तु का मूल्य यथास्थिर रहेः रेखाचित्र 8.6 में आधार अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर मुद्रा के रूप में आय प्रदर्शित है। मूल अवस्था में उसकी आय OS है। वह ST मूल्य-रेखा पर है जो IC_2 के E_2 बिन्दु पर स्पर्श करती है। उपभोक्ता की बचत E_1 E_2 है। पर यदि उसकी आय OS से बढ़कर OS_1 हो जाये तो नयी मूल्य-रेखा S_1 T_1 होगी जो ST के समानान्तर है तथा यह प्रदर्शित करती है कि वस्तु का मूल्य यथास्थिर है। आय में वृद्धि होने के कारण, अब उसके लिए IC_1 वक्र बेकार हो जाता है और अब वह IC_3 के आधार पर अपनी उपभोक्ता की बचत का विश्लेषण करता है। आय में वृद्धि के कारण अब वह IC_4 के E_4 पर होगा तथा उपभोक्ता की बचत अब E_3 E_4 होगी। यह E_3 E_4 बचत पहली बचत E_1 E_2 से अधिक होगी, कम अथवा बराबर होगी, यह सब IC_1 तथा IC_2 के ढाल पर निर्भर करेगा।

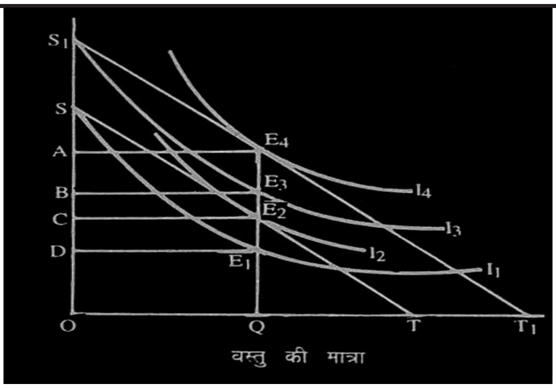

चित्र 8.6

8.8 उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त का महत्व

अनेक अर्थशास्त्रियों ने उपभोक्ता के बचत-सिद्धान्त की आलोचना की। निकोलसन की आपत्ति का प्रत्युत्तर देते समय मार्शल द्वारा दिये गये जिन उदाहरणों की चर्चा की गई है उससे इस सिद्धान्त के व्यावहारिक महत्व की झलक मिलती है। प्रो0 टामस के अनुसार उपभोक्ता की बचत का विचार वास्तविकता से सम्बन्ध रखता है यद्यपि इसको मापने की पद्धति नितान्त काल्पनिक है, पर हम इसका अनुभव प्रतिदिन के संसार में करते हैं। विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त के महत्व का अध्ययन दिया जा सकता है:

(क) सैद्धान्तिक महत्वः इस सिद्धान्त का सैद्धान्तिक महत्व यह है कि इसके द्वारा किसी वस्तु के उपयोग-मूल्य तथा विनियम-मूल्य का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

(ख) व्यावहारिक महत्वः उपभोक्ता की बचत का व्यावहारिक महत्व उसके सैद्धान्तिक महत्व की अपेक्षा बहुत अधिक है। इस सिद्धान्त का प्रयोग अनेक आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिये किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं -

i. **विभिन्न देशों तथा स्थानों और भिन्न-भिन्न समयों की आर्थिक स्थितियों की तुलना**ः इस सिद्धान्त की सहातया से सरलतापूर्वक की जा सकती है। उपभोक्ता की बचत के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किस देश में आर्थिक विकास अधिक है तथा किसमें कम, किस जगह जीवन-स्तर नीचा है तथा किस जगह ऊँचा। जो देश आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नत होगा, जहाँ सुविधायें अधिक हांगी वहाँ दूसरे देश की अपेक्षा जिसमें सुविधायें न हों, समान आय से अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होगी।
ii. **राजस्व तथा आर्थिक नीति के निर्धारण में महत्व**ः राजस्व के क्षेत्र में इस सिद्धान्त का प्रयोग कर नीति के निर्धारण तथा विभिन्न उद्योगों को दिये जाने वाले अनुानों के सम्बन्ध से किया जा सकता है। सरकार को कर लगातेसमय इस दिशा में दो बातों पर रध्यान देना

चाहिये। पहली बात यह है कि उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाया जाय जिनसे उपभोक्ता की बचत मिल रही हो जिससे कर के कारण मूल्य की वृद्धि के बाद भी उपभोक्ता का आकर्षण उस वस्तु में बना रहे। दूसरी बात यह है कि सरकार को उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाना चाहिय जिन पर कर के कारण होने वाले उपभोक्ता की बचत के त्याग से अधिक आय सरकार को मिले। तभी सामाजिक कयाण अधिकतम होगा।

iii. **एकाधिकार के मूल्य-निर्धारण में सहायकः** मूल्य-निर्धारण करते समय एकाधिकारी वही मूल्य रखता है जिससे उसका लाभ अधिकतम हो। मूल्य निश्चित करते समय उस वस्तु से मिलने वाली उपभोक्ता की बचत का ध्या रखना चाहिये। उसे मूल्य ऐसा रखना चाहिये जिसमें उपभोक्ता को कुछ-न-कुछ उपभोक्ता की बचत मिलती रहे जिससे वह उस वस्तु को खरीदने के लिए तत्पर रहे।

iv. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सिद्धान्त का महत्वः** प्रो0 मार्शल ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में उपभोक्ता के बचत-सिद्धान्त के महत्व पर बल दिया। इस सन्दर्भ में हम यह कह सकते हैं कि जो व्यय हम किसी वस्तु को अपने देश में बनाने में करते तथा जो हम उसे दूसरे देश से मँगाने पर करते, इन दोनों का अन्तर ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उपभोक्ता की बचत कहलायेगी। इस प्रकार जिस वस्तु के आयात से उपभोक्ता की बचत अधिक होगी उसी वस्तु का आयात होगा अन्यथा नहीं। यह बचत जिस देश में जितनी अधिक होती है उतना ही वह देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभान्वित होता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त कोरी कल्पना नहीं है बल्कि इसका व्यावहारिक महत्व भी है।

8.9 सारांश

उपरोक्त इकाई में सर्वप्रथम मार्शल द्वारा उपभोक्ता की बचत की धारणा को व्याख्यित करने का प्रयास किया गया हैं तत्पश्चात् उपभोक्ता की बचत को रेखाचित्रों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है जिसमें उपयोगिता के रूप में तथा मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत को सम्मिलित किया गया है। अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है। मार्शल ने उपभोक्ता की बचत की परिभाषा इस प्रकार की हैः ”किसी वस्तु को बिना प्राप्त किये हुए रहने की अपेक्षा वह मूल्य, जो एक व्यक्ति उस वस्तु के लिए देने के लिए तैयार रहता है और जो मूल्य वह वास्तव में देता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत कहलाती है।“ उपभोक्ता बचत की धारणा सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है। उपभोक्ता की बचत हमेशा धनात्मक होगी, कभी ऋणात्मक नहीं क्योंकि उपयोगिता से अधिक मूल्य वह देगा ही नहीं। मार्शल के उपभोक्ता की बचत सिद्धांत की आलोचना के पश्चात् उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त के आधुनिक रूप की व्याख्या की गई है। आधुनिक अर्थशास्त्री हिक्स अनधिमान वक्र के माध्यम से इसे व्यक्त करने का दूसरा ढंग स्पष्ट किया तथा मार्शल के तरीके में व्याप्त दोषों को दूर करने का प्रयास किया। पर जहाँ

तक उपभोक्ता की बचत के मौलिक विचार अथवा परिभाषा का प्रश्न है, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की बचत की माप उसकी आय की बचत के रूप में करना चाहिये। मूल्य तथा आय में परिवर्तनों का उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव तथा उपभोक्ता की बचत के सिद्धांत का महत्व को भी इकाई में स्पष्ट किया गया है। इस सिद्धान्त का प्रयोग अनेक आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिये किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं- (1) विभिन्न देशों तथा स्थानों और भिन्न-भिन्न समयों की आर्थिक स्थितियों की तुलना, (2) राजस्व तथा आर्थिक नीति के निर्धारण में महत्व, 3. एकाधिकार के मूल्य-निर्धारण में सहायक, तथा 4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सिद्धान्त का महत्व। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त कोरी कल्पना नहीं है बल्कि इसका व्यावहारिक महत्व भी है।

8.10 शब्दावली

उपभोक्ता की बचत- किसी वस्तु को बिना प्राप्त किये हुए रहने की अपेक्षा वह मूल्य जो एक व्यक्ति उस वस्तु के लिए देने को तत्पर रहता है और जो मूल्य वह वास्तव में देता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत कहलाती है।

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. उपभोक्ता की बचत की धारणा का सर्वप्रथम प्रयोग .... ने किया।
2. उपभोक्ता की बचत की धारणा .... नियम पर आधारित है।
3. मूल्य में कमी के बाद उपभोक्ता की बचत ....।
4. किसी वस्तु को मिलने वाली उपयोगिता तथा उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए त्यागी गई .... का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत है।
5. उपभोक्ता की बचत सदैव .... होगी।
6. उपभोक्ता की बचत का आधुनिक स्वरूप .... ने दिया।
7. हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की बचत की माप उसकी .... के बचत के रूप में करनी चाहिए।
8. आय में वृद्धि में परिणामस्वरूप उपभोक्ता की बचत ....।
9. जिस वस्तु के आयात से उपभोक्ता की बचत .... होगी, उसका आयात होगा।
10. जिस देश में आर्थिक विकास अधिक होगा वहाँ उपभोक्ता की बचत .... होगी।

उत्तरः(1) मार्शल, (2) समसीमान्त उपयोगिता, (3) बढ़ेगी, (4) उपयोगिता, (5) धनात्मक, (6) जे.आर. हिक्स, (7) आय, (8) बढ़ेगी, (9) अधिक, (10) अधिक।

8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Dwivedi, D. N. (2008): Micro Economics 7th edition vikas Publish House New Delhi.
- Koutsiyanniesa, A- (1997) –Microeconomics Analysis New Delhi.
- Mishra S.K & Puri V.K.   (2003) – Modern micro economic theory Himalaya Publishing House.
- Sethi T. T (2006) – 'Principlesa of Economics' Lakshmi Narayan Agrawal agra
- Ahuza ,H.L (2010) – "Principlesa of Microeconomics", S.chand publishing house,new delhi.

8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- आहूजा, एच0 एल0 (2003) उच्चतर आर्थिक सिद्वात (व्यष्टि परक आर्थिक विश्लेषण) एस0 चन्द पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
- सिन्हा, वी0 सी0 (1999) व्यष्टि अर्थशास्त्र, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- जैन, के0 पी0 (1987) व्यष्टि अर्थशास्त्र साहित्य भवन, आगरा
- लाल, एस0 एन0 (1999) व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद

8.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपभोक्ता की बचत से आप क्या समझते हैं? इसके मापने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं?
2. उपभोक्ता की बचत की अवधारणा स्पष्ट कीजिए तथा आर्थिक विश्लेषण में इसका महत्व बताइये।
3. उपभोक्ता की बचत के विचार का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. उपभोक्ता की बचत को मापने में क्या कठिनाईयाँ है? इसके माप की हिक्स विधि का वर्णन कीजिए।
5. उपभोक्ता की बचत के स्वभाव की व्याख्या कीजिए तथा समसीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के साथ इसका सम्बन्ध बताइये।

इकाई-9: अनधिमान वक्र विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 उपभोक्ता के संतुलन अध्ययन में प्रो0 मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण के दोष
9.4 नवीन तकनीकि-अनधिमान वक्र विश्लेषण
9.4.1 विश्लेषण का उद्गम एवं विकास
9.4.2 विश्लेषण की मान्यताएं
9.4.3 अनधिमान वक्र-अर्थ, परिभाषाएं एवं स्वरूप
9.5 सीमान्त प्रतिस्थापन दर: महत्वपूर्ण उपकरण
9.6 अनधिमान वक्रों की विशेषताएं
9.7 उपभोक्ता का सन्तुलन
9.8 तटस्थता वक्र विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन
9.8.1 तटस्थता वक्र-विश्लेषण के गुण तथा उसकी श्रेष्ठता
9.8.2 तटस्थता वक्र-विश्लेषण के दोष
9.8.3 तटस्थता वक्र विश्लेषण के निष्कर्ष
9.9 सारांश
9.10 शब्दावली
9.11 अभ्यास प्रश्न
9.12 संदर्भ ग्रन्थ-सूची
9.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.14 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के बाजार संरचना एवं कीमत निर्धारण से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के पहले आप बता सकते है कि उत्पादन फलन क्या है ? उपभोक्ता सन्तुलन कैसे होता है।

अनधिमान वक्र विश्लेषण के अध्ययन में आपका स्वागत है। आप स्वयं एक उपभोक्ता है। क्या आप जानना नहीं चाहेंगे कि किसी वस्तु के उपयोग से उपयोगिता मिलती है कि नहीं? अगर मिलती है तो कितनी? यहां ''कितनी'' का संख्यात्मक मापन अगर संभव नहीं तो उसका विकल्प क्या है? इस रूप में यह अर्थशास्त्र सिद्धान्त का रूचिकर एवं सरस विषय है। इस विश्लेषण के द्वारा उपभोक्ता सन्तुलन को कैसे प्राप्त करेगा? अनधिमान वक्र कैसे किस तरह बनेगा और इसका स्वरूप क्या होगा इस इकाई के द्वारा आप जानने में सक्षम हो जायेंगे। अर्थशास्त्र में रेखाचित्रों का महत्व अत्यधिक है । इस इकाई में रेखाचित्रों का प्रयोग विषय को और सहज एवं सरल बना देता है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप अनधिमान वक्र की विशेषताएं एवं अनधिमान वक्र की सहायता से उपभोक्ता का सन्तुलन का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- अनधिमान वक्र विश्लेषण, उद्गम विकास समझ सकेंगे ।
- अनधिमान वक्र का अर्थ, मान्यताएं एवं परिभाषा समझ सकेंगे ।
- सीमान्त प्रतिस्थापन दर जानना सकेंगे ।
- अनधिमान वक्र की सहायता से उपभोक्ता का सन्तुलन जानना सकेंगे ।

9.3 नवीन तकनीकी अनधिमान वक्र विश्लेषण

उपभोक्ता के संतुलन के लिए प्रो0 मार्शल द्वारा प्रस्तुत किया गया विश्लेषण उपयोगिता के 'संख्यात्मक दृष्टिकोण' पर आधारित है जिसके अनुसार उपभोग की जाने वाली वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता की ठीक-ठीक माप करना संभव है। मार्शल के विचार के अनुसार उपयोगिता का मुद्रा रूपी मापदण्ड से मापा जा सकता है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री उपयोगिता के संख्यात्मक दृष्टिकोण को अयथार्थवादी मानते हैं। इस अर्थशास्त्रियों के अनुसार उपयोगिता की ठीक-ठीक माप करना संभव नहीं है क्योंकि -

आप स्वयं का एक उपभोक्ता भी है। आप समझ गये होंगे कि उपयोगिता एक व्यक्तिनिष्ठ धारणा है। किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता का अनुभव किया जा सकता है लेकिन क्या उसे आप संख्यात्मक रूप में व्यक्त कर सकते है? उपयोगिता का संख्यात्मक माप संभव नहीं है।

इस प्रकार उपयोगिता की माप में उत्पन्न होने वाले दोषों के कारण उसे अन्य राशियों की तरह ठीक-ठीक मापा नहीं जा सकता। वास्तव में आप स्वयं किसी उपभोक्ता से यह पूछें कि आपको सेब की दूसरी इकाई के उपभोग में पहली इकाई की तुलना में कितने रूपये की उपयोगिता कम या अधिक मिली अर्थहीन प्रश्न पूछना लगेगा। मार्शल के सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण में प्रयुक्त ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता नियम, सम-सीमान्त उपयोगिता नियम और आनुपातिकता के नियम में जिनका उदाहरण देते हैं वे सभी उपयोगिता के संख्यावाचक दृष्टिकोण के स्पष्ट उदाहरण हैं। अतः उपभोक्ता के संतुलन की व्याख्या हेतु मार्शल द्वारा प्रयुक्त सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण दोषपूर्ण तथा निरर्थक हो जाता है। इस कारण से आधुनिक अर्थशास्त्री उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन हेतु विकल्प स्वरूप अनधिमान वक्र विश्लेषण तकनीकि का प्रयोग करते हैं।

अनधिमान वक्र विश्लेषण उपयोगिता के क्रम वाचक दृष्टिकोण पर आधारित है जिसमें यह तथ्य निहित है कि उपयोगिता मापनीय नहीं अपितु तुलनीय है। इसके अन्तर्गत उपभोक्ता को एक स्थिति में प्राप्त होने वाली उपयोगिता की तुलना दूसरी स्थिति में प्राप्त होने वाली उपयोगिता से की जाती है। इस विश्लेषण का आधार क्रम सूचक संख्याएं हैं जिसमें उपभोक्ता अपने अधिमान के अनुसार वस्तुओं के संयोगों को प्राप्त उपयोगिता के आधार पर क्रमबद्ध करता है और प्रत्येक क्रम सन्तुष्टि या उपयोगिता के एक निश्चित स्तर का सूचक होता है। इस प्रकार संतुष्टि के विभिन्न स्तरों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ आदि क्रम सूचक संख्याओं में रखा जाता है। इसी आधार पर उपभोक्ता यह बता सकता है कि उसे वस्तुओं के संयोग A की तुलना में संयोग B अधिक पसन्द है या कम, या वह दोनों से समान सन्तुष्टि प्राप्त कर रहा है और इसलिए उनके बीच तटस्थ है। इसी तटस्थता स्वभाव के कारण अनधिमान वक्र को तटस्थता वक्र भी कहते हैं। उपभोक्ता यह बता सकता है कि B से उसे A की तुलना में अधिक या कम उपयोगिता मिलती है लेकिन कितनी यह मात्रा व्यक्त नहीं कर सकता।

क्या आप सन्तुष्टि की मात्रा व्यक्त कर सकते है? निश्चित ही नहीं क्योंकि ऐसा कोई पैमाना ही आपके मस्तिष्क में आपके नहीं हैं।

9.4.1 विश्लेषण का उद्गम एवं विकास

अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में क्या आप इस तथ्य से परिचित हैं कि इधर हाल के वर्षों में उपभोक्ता की मांग का अनधिमान वक्र विश्लेषण अर्थशास्त्रियों में लोकप्रिय होता जा रहा है। इसका प्रतिपादन सर्वप्रथम सन् 1881 में ब्रिटिश अर्थशास्त्री प्रो0 एफ0वाई0 एजवर्थ द्वारा किया गया था। बाद में इस विचार को अमेरिकी अर्थशास्त्री प्रो0 इरविंग फिशर ने ग्रहण कर सन् 1892 में मूर्त रूप प्रदान किया।

आगे चलकर प्रो0 विलफ्रेडोपेरिया ने इस विचार का अधिकाधिक विकास किया। इसके बाद रूसी अर्थशास्त्री प्रो0 स्लट्स्की ने सन् 1915 में अनधिमान वक्र की तकनीकि परिष्कृत किया। सन् 1934 में प्रो0 जे0आर0 हिक्स एवं प्रो0 आर0जी0डी0 एलन । A Reconstruction of the theory of value शीर्षक लेख में अनधिमान वक्र विश्लेषण को वैज्ञानिक रूप दिया। बाद में प्रो0 हिक्स ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ Value and Capital में इसकी विस्तृत विवेचना की। तब तक इस विश्लेषण का विभिन्न क्षेत्रों में पर्याप्त विकास हो चुका था। अनधिमान वक्र को तटस्थता वक्र या उदासीनता वक्र भी कहते हैं।

9.4.2 विश्लेषण की मान्यताएं

जे0आर0 हिक्स और आर0जी0डी0 एलन द्वारा प्रतिपादित अनधिमान वक्र विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है-

1.विवेकपूर्ण व्यवहार . अनधिमान वक्र विश्लेषण में यह मान्यता की गयी है कि उपभोक्ता विवेक पूर्ण ढंग से व्यवहार करता है। इसका अभिप्राय यह है कि वह वस्तुओं के विभिन्न संयोगों में से उस संयोग को चुनता है जो उसके सीमित साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करते हों।

2.वरीयताक्रम . इस विश्लेषण की एक मान्यता यह है कि उपभोक्ता वस्तुओं के उपलब्ध संयोगों को अपनी वरीयता के अनुसार क्रम प्रदान कर सकता है। वस्तुओं के दो संयोगों के मध्य उपभोक्ता या तो तटस्थ रहेगा या किसी एक संयोग पर दूसरे की वरीयता देगा।

3.दुर्बल क्रमबद्धता . अनधिमान वक्र विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता की क्रमबद्धता दुर्बल होती हैं। इसका अर्थ यह है कि उपभोक्ता स्पष्ट कर सकता है कि किन संयोगों से अधिक तो किन संयोगों से क्रम सन्तुष्टि मिलेगी या किन उपलब्ध संयोगों में से किसी एक को चुन नहीं सकता।

4.वरीयता क्रम कीमत से स्वतंत्र- इसमें यह मान्यता है कि विभिन्न वस्तु संयोगों के प्रति अपना अनधिमान अथवा अनधिमान निर्धारित करते समय उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों पर विचार नहीं करता है और इसलिए वह कीमतों से प्रभावित नहीं होता है।

5.संगत व्यवहार - यह मान्यता की गयी है कि उपभोक्ता का व्यवहार संगत होता है। इसका अर्थ है कि यदि एक उपभोक्ता वस्तुओं के संयोग A और संयोग B के बीच तटस्थ या उदासीन रहता है तो वह संयोग A और C के मध्य भी तटस्थ रहेगा।

6.सकर्मकता की मान्यता - इसके अनुसार उपभोक्ता वस्तुओं के एक समूह में संयोगों का जो वरीयता क्रम निर्धारित करता है वही वरीयता क्रम उन संयोगों को अलग-अलग प्रस्तुत करने पर भी निर्धारित करता है।

7.ह्वासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर . यह विश्लेषण ह्वास मान सीमान्त प्रतिस्थापन दर की मान्यता पर भी आधारित है। इसका अभिप्राय यह है कि जैसे-जैसे उपभोक्ता के पास एक वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे-वैसे वह उस वस्तुक की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए दूसरी वस्तु की घटती मात्राओं का त्याग करने को तैयार होता है।

8.वस्तुओं की समरूप और विभाज्य इकाइयां- इस विश्लेषण में यह मान्यता निहित है कि प्रत्येक वस्तु की सभी इकाइयां समरूप और पूर्ण रूप से विभाज्य होती हैं। इसके कारण वस्तु की प्रत्येक इकाई से मिलने वाली सन्तुष्टि समान होती है।

9.4.3 अनधिमान वक्र - अर्थ, परिभाषाएं एवं स्वरूप

यहॉ अब हम आपको हिक्स और एलन के प्रमुख अवधारणा अनधिमान का अर्थ समझायेंगे। अनधिमान वक्र वह वक्र है जिस पर स्थित प्रत्येक बिन्दु दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि मिलती है। इस वक्र पर अंकित प्रत्येक संयोग उपभोक्ता की दृष्टि में न तो एक दूसरे से अच्छे होते है न ही खराब। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समान अनुराग प्रदर्शित करने वाले वक्र अनधिमान वक्र कहलाते हैं। चूंकि इस वक्र पर प्रदर्शित दो वस्तुओं के सभी संयोग समान संतुष्टि (या उपयोगिता) प्रदान करने वाले होते हैं अतः इन वक्रों को ''सम-संतुष्टि वक्र', भी कहा जाता है। पुनः चूँकि विभिन्न संयोगों से समान संतुष्टि मिलती है अतः उपभोक्ता का किसी संयोग के प्रति विशेष लगाव नहीं होता है वह विभिन्न संयोगों के प्रति तटस्थ या उदासीन रहता है। अतः इन संयोगों को प्रदर्शित करने वाले वक्रों को का 'तटस्थता वक्र' या 'उदासीनता वक्र' भी कहा जाता है।

आइए, अनधिमान वक्र की प्रमुख परिभाषाओं पर दृष्टि डालते हैं।

1.जे0के0 ईस्थम के अनुसार ''यह मात्राओं के उन जोड़ों को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओं का मार्ग हाता है जिनमें व्यक्ति उदासीन होता है, इसी कारण इसे उदासीनता वक्र कहते हैं।''

2.वाटसन के अनुसार ''अनधिमान अनुसूची दो वस्तुओं के संयोगों की अनुसूची है जिसको इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उपभोक्ता इन संयोगों के प्रति तटस्थ रहता है और किसी एक को अन्य की तुलना में प्राथमिकता नहीं देता।''

अनधिमान वक्रों की सम्यक् जानकारी में लिए अनधिमान तालिका की जानकारी आवश्यक है। प्रो0 मेयर्स के अनुसार ''अनधिमान तालिका वह तालिका है जो दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे किसी व्यक्ति को समान संतोष प्राप्त होता है।'' निम्नलिखित तटस्थता सूची या अनधिमान तालिका में समान संतुष्टि प्रदर्शित करने वाले X और Y वस्तु के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित किया गया है। विश्लेषण की सुविधा के लिए हम यहां केवल दो ही वस्तुएं लेंगे।

तटस्थता सूची या अनधिमान तालिका

संयोग	(X)	(Y)	X **को प्राप्त करने के लिए** Y **की छोड़ी गयी मात्रा या** Y **के लिए** X **की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर** (MRSxy)
A	1	15	-
B	2	8	1x=7y
C	3	5	1x=3y
D	4	3	1x=2y
E	5	2	1x=1y

यह सूची दो वस्तुओं X तथा Y के उन विभिन्न संयोग को बताती है जिसमें उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है। प्रारम्भ में हम संयोग A को लेते हैं जबकि उपभोग के पास X की 1 तथा Y की 15 मात्रा है। अब यदि उपभोक्ता से पूछा जाय कि X की मात्र एक-एक इकाई बढ़ायी जाय तो आप Y की कितनी मात्रा छोड़ेगे जिससे संतुष्टि का स्तर वही रहे जो (1x+15y) से प्राप्त होता था तो हमें निम्नांकित संयोग प्राप्त हो सकते हैं। (2x+8y), (3x+5y), (4x+3y), (5x+2y), तथा इसी प्रकार स्पष्ट है कि जैसे-जैसे उपभोक्ता के पास X की मात्रा बढ़ती जाती है वह X की एक अतिरिक्त मात्रा की प्राप्ति के लिए Y की कम ही मात्रा छोड़ता है पहले x की 1 इकाई के लिए 7y छोड़ता है, X की दूसरी इकाई के लिए 3y, तीसरी के लिए 2y तथा चौथी के लिए 1y ही छोड़ता है क्योंकि एक ओर जैसे-जैसे x की मात्रा बढ़ती जाती है उसकी सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है, दूसरी ओर जैसे-जैसे y की मात्रा कम होती जाती है उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः बढ़ती जाती है। चूँकि ये सभी संयोग समान सन्तुष्टि व्यक्त करते हैं इसलिए उपभोक्ता इनके बीच चुनाव करने में तटस्थ हो जाता है। ऊपर दी गयी सारिणी में दिये गये विभिन्न संयोगों को रेखाचित्र सं0 9.1 में वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

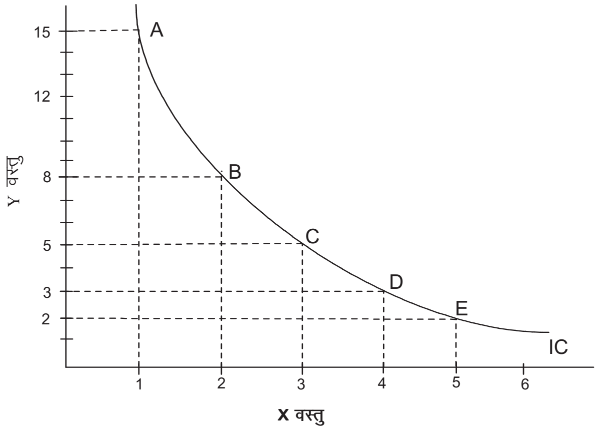

रेखाचित्र 9.1 में अनाधिमान तालिका के आंकड़ों को प्रदर्शित किया गया है। उन संयोगों को अंकित करने पर A,B,C,D तथा E उन संयोगों को प्रदर्शित करते है जो उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। रेखाचित्र में प्रदर्शित IC वक्र से स्पष्ट है। A बिन्दु पर उपभोक्ता को जो सन्तुष्टि 1x+15y से प्राप्ति होती है वही सन्तुष्टि B बिन्दु 2x+8y से तथा........ E पर 5x+2y से प्राप्त होती है।

जिस प्रकार X तथा Y वस्तुओं के समान संतुष्टि देने वाले विभिन्न संयोगों के आधार पर तटस्थता सारिणी का निर्माण किया गया उसी प्रकार X तथा Y दोनों की और अधिक मात्रा से समान सन्तुष्टि देने वाले संयोगों के आधार पर तटस्थता सारिणियों तथा अनधिमान वक्रों के साथ **अनधिमान वक्र मानचित्र** का निर्माण किया जा सकता है।

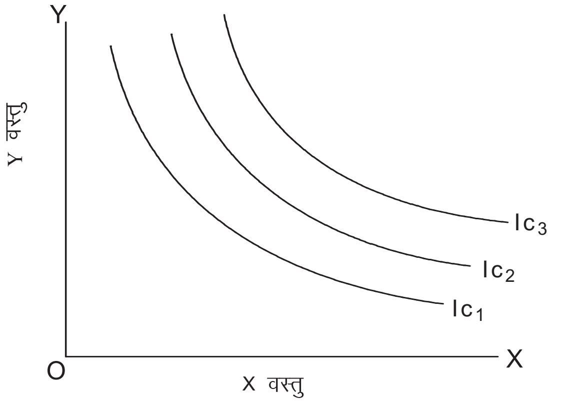

जैसा रेखाचित्र 9.2 में प्रदर्शित है। प्रत्येक अनधिमान वक्र पर तो सन्तुष्टि का स्तर एक होगा पर रेखाचित्र में प्रदर्शित IC_1 की अपेक्षा IC_2 तथा IC_2 की अपेक्षा IC_3 सन्तुष्टि के ऊँचे स्तर के प्रतीक हैं। चित्र में प्रदर्शित IC सामान्य या IC_1 IC_2 IC_3 IC इस मान्यता पर खींची गयी है कि X तथा Y दूसरे के आंशिक रूप से स्थानापन्न हैं, पर पूर्ण स्थानापन्न नहीं हैं। इस प्रकार अनधिमान वक्र मानचित्र पर

खींचे गये समोच्च रेखा (contour lines)का समान हैं जो समुद्र की सतह की ऊँचाई को प्रदर्शित करते हैं। ऊँचाई व्यक्त करने के स्थान पर प्रत्येक अनधिमान वक्र सन्तुष्टि का स्तर प्रदर्शित करता है।

9.5 सीमान्त प्रतिस्थापन दर

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर, तटस्थता वक्र विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसका तटस्थता वक्र विश्लेषण में वही महत्व है जो उपयोगिता विश्लेषण में सीमान्त उपयोगिता का है। अतः इसकी व्याख्या के अभाव में तटस्थता वक्र विश्लेषण का अध्ययन अधूरा है।

सीमान्त प्रतिस्थापन से अभिप्राय उस दर से होता है जिस पर कोई उपभोक्ता एक वस्तु को निश्चित मात्रा के बदले दूसरी वस्तु को लेने अथवा परित्याग करने के लिए तैयार हो जाता है। y के लिए x की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर से आशय y की उस मात्रा से है जिसे छोड़ने के लिए उपभोक्ता तैयार है जिससे कि वह x की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त कर सके तथा सन्तुष्टि के उसी स्तर पर बना रहे।

प्रतिस्थापन की सीमान्त द्रर को स्पष्ट करते हुए प्रो0 हिक्स कहते हैं कि मान लीजिए हम x वस्तु की दी हुई मात्रा से वृद्धि प्रारंभ करते हैं और y की मात्रा में इस प्रकार से कमी करते जाते हैं कि उपभोक्ता अपनी पूर्ववत् स्थिति में बना रहता है तब y की मात्रा जो कि x की एक अतिरिक्त इकाई की प्राप्ति के लिए घटायी या छोड़ी जाती है वही y के लिए x के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर होगी। अनधिमान तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है। हम 1x तथा 15 y से प्रारम्भ करते हैं। 1x की मात्रा में 1x की वृद्धि के बाद y में कमी 7y के बराबर है, x की मात्रा में जब हम एक और वृद्धि करते है तो 3y छोड़ना पड़ता है। यही 1x=7y, 1x=3y - - - y के लिए x की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर है जो तालिका में प्रदर्शित है।

> x वस्तु की अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता y वस्तु की कितनी इकाई छोड़ेगा जिससे वह सन्तुष्टि के उसी स्तर पर बना रहे इस बात पर निर्भर करेगा कि x की वृद्धि से उपभोक्ता का कितनी उपयोगिता प्राप्त होती है। तथा y की कितनी मात्रा छोड़ी जाय जिससे y की कमी से जो उपयोगिता में हानि हो वह x के कारण हुयी उपयोगिता की प्राप्ति के ठीक-ठीक बराबर हो। सन्तुष्टि का स्तर तभी वही बना रहेगा जबकि x के कारण उपयोगिता की वृद्धि = y के कारण उपयोगिता में कमी। मान लीजिए उपभोक्ता y के स्थान पर x प्रतिस्थपित करता हैं तब इस क्रिया में x में वृद्धि के कारण उसकी उपयोगिता में वृद्धि होगी जो इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है- $\Delta x \times M \cup x$

दूसरी ओर जब y को छोड़ेगा तो y की कमी के कारण उसकी उपयोगिता में कमी होगीं, जिसे इस रूप व्यक्त किया जा सकता है – $\Delta y \times M \cup y$

चूँकि इस प्रक्रिया में सन्तुष्टि का स्तर सदैव एक ही बना रहता है इसलिए

$\Delta X \times M \cup x = -\Delta Y \times M \cup y$

या $-\frac{\Delta y}{\Delta x} = \frac{M \cup x}{M \cup y} =$ प्रतिस्थापन की सीमान्त दर MRS को स्पष्ट करने के लिए आप निम्न चित्र का सहारा ले सकते हैं। रेखा चित्र में तटस्थता वक्र (IC) x तथा y के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिससे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त हो। मान लीजिए आप IC के A बिन्दु पर है जो $0x_1$तथा $0y_5$ का संयोग प्रदर्शित करता है। अब मान लीजिए आप y की एक इकाई बढ़ाते है अर्थात् x_1x_2 बढ़ाते है और आप बिन्दु B पर है। सन्तुष्टि का स्तर पूर्ववत् है पर B बिन्दु संयोग $0y_3$ तथा $0x_2$ का है, अर्थात् x_1x_2 की वृद्धि के लिए आपने y_5y_3 छोड़ा जिससे सन्तुष्टि का स्तर पूर्ववत् बना रहा। यह y_5y_3 तथा x_2x_1 का अनुपात या $\frac{y_5y_3}{x_2x_1}$ ही प्रतिस्थापन की सीमान्त दर है। चूँकि y_5y_3, y में परिवर्तन या Δy तथा x_2x_1, x में परिवर्तन Δx प्रदर्शित करता है, इसलिए $\frac{y_5y_3}{x_2x_1}$ के स्थान पर $\frac{\Delta y}{\Delta x}$ लिख सकते है। यही y के लिए x की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर है। यदि y तथा x में होने वाले परिवर्तन अत्यन्त ही कम हो तो IC पर A तथा बिन्दु अत्यन्त ही नजदीक होंगे।

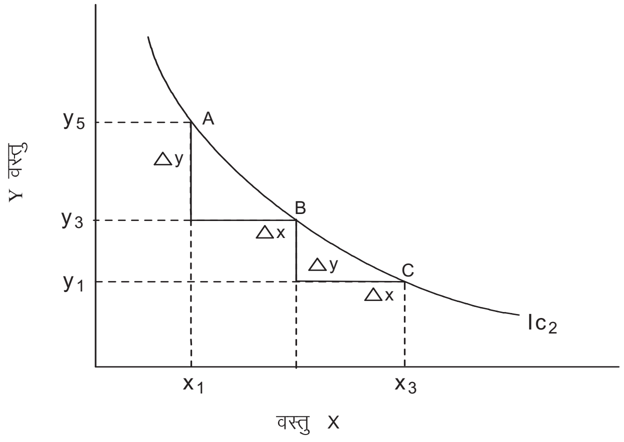

रेखाचित्र 9.3

ऐसी स्थिति में $\frac{\Delta y}{\Delta x}$ जो प्रतिस्थापन की सीमान्त दर है, IC के किसी बिन्दु पर IC का ढाल प्रदर्शित करेगा। इस प्रकार प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRSxy) = $\frac{\Delta y}{\Delta x}\ \frac{MUx}{MUy}$ = अनधिमान वक्र का ढाल। इसमें - $\frac{\Delta y}{\Delta x}$ किसी बिन्दु पर अनधिमान वक्र के ढाल का ऋणात्मक मान है, और यही y के

लिए x की MRSxy है। चूँकि MRSxy अनधिमान वक्र की किसी बिन्दु पर ढाल प्रदर्शित करता है इसलिए IC के किसी बिन्दु पर स्पर्श रेखा खींच कर उस बिन्दु पर ढाल या MRSxy ज्ञात किया जा सकता है। जैसा कि रेखा चित्र 9.4 में प्रदर्शित है।

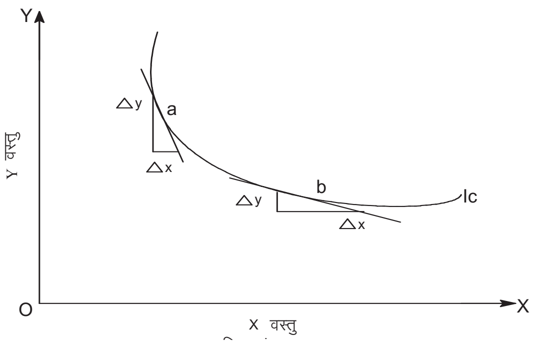

रेखाचित्र 9.4

घटती प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का सिद्धान्त -रेखाचित्रों में आपने देखा कि x की मात्रा की वृद्धि के लिए y की छोड़ी गयी ये मात्रा उत्तरोत्तर कमी, घटती प्रतिस्थापन की सीमान्त दर व्यक्त करता है। घटती हुई प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का सिद्धान्त क्रमागत उपयोगिता ह्वास नियम के सिद्धान्त पर आधारित है। अनधिमान तालिका से स्पष्ट है कि जहॉ x की पहली इकाई के लिए y की छोड़ी गयी मात्रा 7 है वही दूसरी x के लिए y की छोड़ी गयी मात्रा 3 है जो घटती हुई 2 तथा 1 हो गयी है। इसको रेखाचित्र से अधिक समझ सकते हैं।

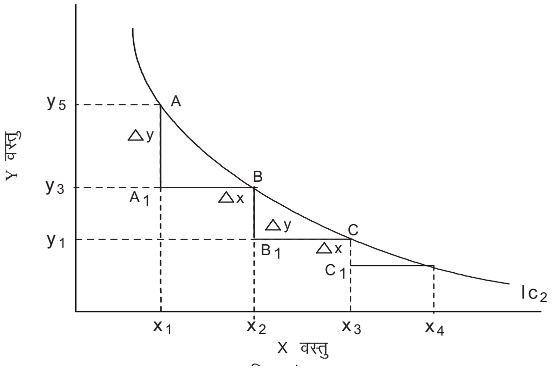

रेखाचित्र 9.5

चित्र से स्पष्ट है कि शुरू की स्थिति में A बिन्दु है जहॉ उपभोक्ता के पास $0x_1$ तथा 0y5 का संयोग है। अब यदि x में x1x2 की या x2x3 की वृद्धि हो तो y की छोड़ी गयी मात्रा यथा AA_1, BB_1, CC_1 में उत्तरोत्तर कमी ही होती गयी है।

आप क्या बता सकते है कि घटती हुई MRS का क्या कारण है? क्यों उपभोक्ता x की बराबर मात्रा की प्राप्ति के लिए उत्तरोत्तर y की कम मात्रा छोड़ना चाहता है ?

इसके प्रमुख कारण निम्नवत् हैं -

1.यदि उपभोक्ता को उसी अनधिमान वक्र पर बने रहना है तो यह आवश्यक है कि जब एक वस्तु की मात्रा में वृद्धि की जाय तो दूसरी वस्तु की मात्रा में कमी लाया जाय।

2.क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार जैसे-जैसे x की मात्रा बढ़ती जाती है प्राप्त सीमान्त उपयोगिता क्रमशः घटती जाती है पर दूसरी ओर जैसे-जैसे y के स्टॉक में कमी हो जाती है y की उपयोगिता बढ़ने पर y की कम मात्रा ही छोड़नी पड़ेगी।

3.घटती हुई प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का एक प्रमुख कारण यह है कि वस्तुएँ परस्पर पूर्ण प्रतिस्थानापन्न नहीं होती हैं।

9.6 अनधिमान वक्रों की विशेषतायें

अनधिमान वक्र की कुछ महत्वपूर्ण विशेषतायें ऐसी होती हैं जिनका अध्ययन इन वक्रों की प्रकृति समझने के लिए आवश्यक होता है। इनकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1.अनधिमान वक्र ऊपर से नीचे, बायी से दाहिनी ओर गिरते हुए होते हैं अर्थात् इनका ढाल ऋणात्मक होता है। इसका सरल कारण यह है कि एक संयोग से दूसरे संयोग पर जाने से उपभोक्ता की सन्तुष्टि तभी समान रह सकती है जब वह एक वस्तु के उपयोग में वृद्धि करने के साथ-साथ दूसरी वस्तु के उपभोग में कमी करें। दिए हुए चित्र सं0 9.6 में यह प्रदर्शित किया गया है कि उपभोक्ता जब संयोग R से S पर जाता है तब वह x अक्ष पर प्रदर्शित वस्तु B के उपभोग को OM से बढ़ाकर OM1 करता है तो साथ ही वह वस्तु A के उपभोग को OP से घटकार OP1 कर देता है। इसी प्रकार संयोग S से T पर जाने पर वस्तु B के उपभोग में वृद्धि होती है और A के उपभोग में कमी होती है। एक वस्तु की अधिक मात्रा दूसरी वस्तु की कुछ मात्रा का त्याग किये बिना नहीं प्राप्त हो सकती है। इसीलिए अनधिमान वक्र बायी से दाहिनी ओर नीचे गिरते हुए होते हैं।

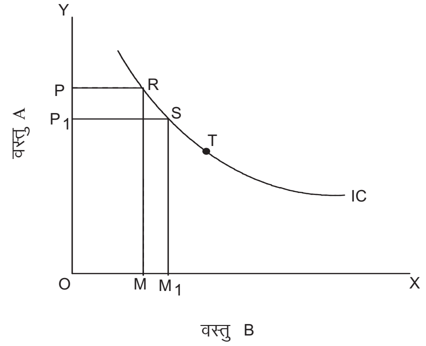

रेखाचित्र 9.6

यदि अनधिमान वक्रों का स्वरूप इससे भिन्न हुआ तो वक्र द्वारा प्रदर्शित सभी संयोगों से समान सन्तुष्टि की संकल्पना सत्य नहीं होगी। उदाहरण के लिए, यदि अनधिमान वक्र का स्वरूप X अक्ष के समान्तर है तो इसका अर्थ है कि एक वस्तु का उपभोग स्थिर है और दूसरी वस्तु के उपभोग में वृद्धि हो रही है। रेखाचित्र 9.7 के अनुसार जब उपभोक्ता IC के बिन्दु R से S पर जाता है तो एक समान सन्तुष्टि के स्थान पर एक वस्तु से स्थिर तो दूसरे से अधिक सन्तुष्टि मिलती है। ऐसी स्थिति में आप कह सकते हैं कि यह वक्र संकल्पना के प्रतिकूल है फलतः अनधिमान वक्र X अक्ष के समान्तर नहीं हो सकते।

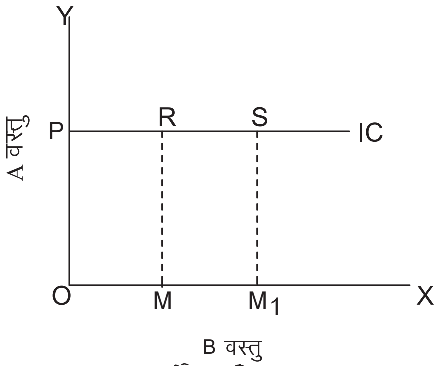

रेखाचित्र 9.7

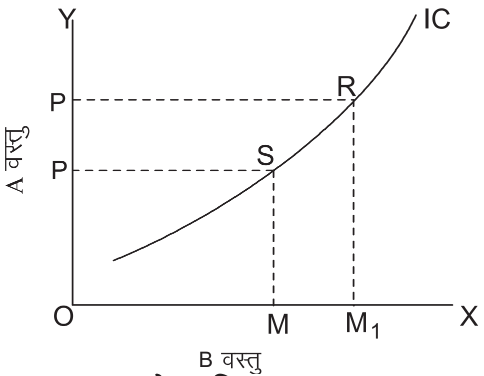

रेखाचित्र 9.8

इसी प्रकार अनधिमान वक्र y अक्ष के समान्तर भी नहीं हो सकते। इसी आधार पर अनधिमान वक्रों का स्वरूप ऊपर उठता हुआ नहीं हो सकता। ऐसा होने पर उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की बढ़ती हुई मात्रा का उपभोग करेगा। फलतः समान सन्तुष्टि नहीं प्राप्त होगी। इसे चित्र 9.8 में स्पष्ट किया गया है। बिन्दु S से बिन्दु R पर जाने पर अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि मिलेगी जो संकल्पना के विरूद्ध है। अतः अनधिमान वक्र बायी से दायीं ओर ऊपर की ओर उठता हुआ नहीं हो सकता।

2.किसी अनधिमान वक्र के ऊपर दाहिनी ओर स्थित अनधिमान वक्र अपेक्षाकृत अधिक सन्तुष्टि प्रदर्शित करते हैं इसे रेखाचित्र 9.9 में प्रदर्शित किया गया है।

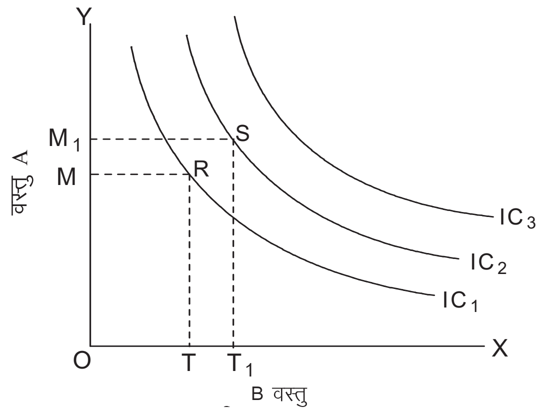

रेखाचित्र 9.9

रेखाचित्र 9.9 में तीन अनधिमान वक्र IC_1, IC_2, IC_3प्रदर्शित किये गये हैं। बिन्दु R अनधिमान वक्र IC_1 पर और बिन्दु S अनधिमान वक्र IC_2 पर स्थित है। चित्र से स्पष्ट है कि बिन्दु S पर R की तुलना में अधिक संतुष्टि मिल रही है। इसी प्रकार IC_3 के प्रत्येक बिन्दु पर सन्तुष्टि IC_1 एवं IC_2 की तुलना में अधिक प्राप्त होगी। अतः हम जैसे जैसे दाहिने बढ़ते जायेंगे वैसे-वैसे प्रत्येक अनधिमान वक्र सन्तुष्टि के ऊँचे स्तर को प्रदर्शित करेगा।

3. दो अनधिमान वक्र कभी एक दूसरे को काटते नहीं हैं। हम जानते है कि प्रत्येक अनधिमान वक्र सन्तुष्टि के भिन्न स्तर को प्रदर्शित करता है। इसलिए यदि दो अनधिमान वक्र एक दूसरे को किसी भी बिन्दु पर काटेगें तो दोनों वक्रों पर समान सन्तुष्टि की स्थिति को सिद्ध किया जा सकता है। परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए दो IC एक दूसरे को काट नहीं सकते। इसे निम्न चित्र सं0 9.10 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

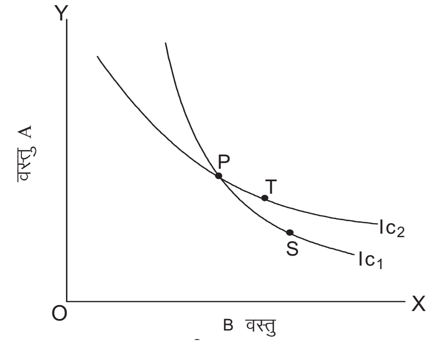

रेखाचित्र 9.10

रेखाचित्र में दो अनधिमान वक्र IC_1 तथा IC_2 एक दूसरे को P बिन्दु पर काटते हैं। IC_1 पर P तथा S दोनों स्थित हैं जो समान सन्तुष्टि को व्यक्त करते है। इसी प्रकार IC_2 पर P तथा T पर सन्तुष्टि का स्तर समान होगा। इसलिए S और T का सन्तुष्टि स्तर समान होगा। परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि S और T के दोनों संयोग सन्तुष्टि के भिन्न स्तर को बताते है। T पर सन्तुष्टि का स्तर S से अधिक होगा। अतः दो अनधिमान एक दूसरे को कभी काट नहीं सकते।

4.अनधिमान वक्र एक मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते हैं। इसका तात्पर्य है कि मूल बिन्दु की ओर से देखें तो यह वक्र उभरा हुआ प्रतीत होगा। अनधिमान वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होने का कारण प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर है।

प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर के अनुसार उपभोक्ता के पास जैसे-जैसे किसी वस्तु की इकाइयां बढ़ती है वैसे-वैसे वह दूसरी वस्तु की घटती हुई मात्रा का त्याग करता है। प्रतिस्थापन की

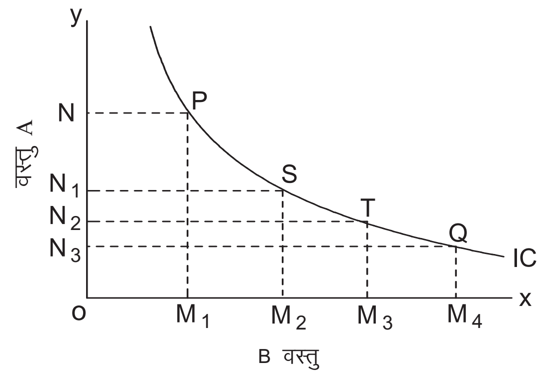

रेखाचित्र 9.11

घटती हुई सीमान्त दर को पूर्व में अनधिमान तालिका एवं प्रतिस्थापन की सीमान्त दर: महत्वपूर्ण उपकरण में स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह चित्र सं0 9.11 में भी प्रदर्शित है। चित्र में अनधिमान वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर के साथ-साथ घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन की दर को भी प्रदर्शित करता है।

9.7 उपभोक्ता का सन्तुलन

उपभोक्ता के अनधिमान मानचित्र और कीमत रेखा की सहायता से उपभोक्ता के संतुलन का बिन्दु ज्ञात किया जा सकता है। उपभोक्ता अपनी दी हुई आय का व्यय करके उस बिन्दु पर संतुलन में होगा जिस पर उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी। दी हुई आय के व्यय से उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि उस बिन्दु पर मिलेगी जहाँ कीमत रेखा उसके अनधिमान मानचित्र में सर्वोच्च संभव अनधिमान वक्र पर स्पर्श करेगी। यह स्पर्श बिन्दु ही उपभोक्ता के संतुलन का बिन्दु होगा।

उपभोक्ता के संतुलन की इस स्थिति को नीचे दिये रेखाचित्र 9.12 में दिखाया गया है। रेखाचित्र में Y अक्ष पर वस्तु A और अक्ष X पर वस्तु B प्रदर्शित की गयी है। ST कीमत रेखा है तथा विभिन्न अधिमान स्तरों को सूचित करने वाले IC_1, IC_2, IC_3 तथा IC_4 अनाधिमान वक्र हैं। उपभोक्ता अपनी दी हुई आय और चालू कीमत स्तरों पर ST कीमत रेखा पर दिखाये गये किसी भी एक संयोग को खरीद सकता है।

यह यह जानते हैं कि किसी अनधिमान वक्र के दाहिनी ओर स्थित अनधिमान वक्र क्रमशः अधिक संतुष्टि के सूचक होते हैं। अनधिमान वक्र जितना ऊँचा होगा, उतने ही ऊँचे सन्तुष्टि स्तर का द्योतक होगा। अतः अधिक सन्तुष्टि प्राप्त करने के निमित्त उपभोक्ता ऊँचे से ऊँचे अनधिमान वक्र पर पहुचने का प्रयास करेगा। परन्तु सीमित आय और बाजार में वस्तुओं की प्रचलित कीमत रेखा उसकी क्रय सामर्थ्य को सीमित करती हैं। रेखाचित्र 9.12 में ST कीमत रेखा उपभोक्ता के क्रय सामर्थ्य की द्योतक है। इस रेखाचित्र में अनधिमान वक्र IC_4 सर्वाधिक सन्तुष्टि का द्योतक है परन्तु उपभोक्ता अपने सीमित क्रय सामर्थ्य के कारण अनधिमान वक्र प्ब्4 तक पहुचने में असमर्थ होगा। अतः उपभोक्ता अपनी सीमित आय और दी हुई कीमतों द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर ही अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करेगा।

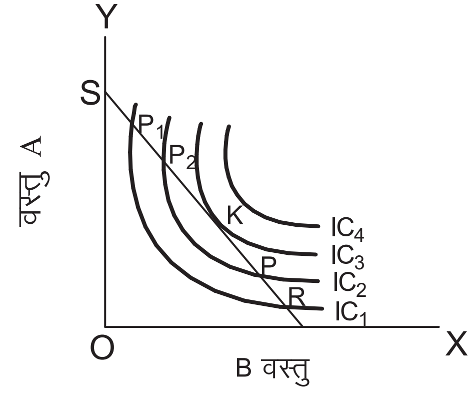

रेखाचित्र 9.12

रेखाचित्र 9.12 में ST कीमत रेखा पर दिखाये गये R संयोग को खरीदने पर उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_1 और P संयोग को खरीदने पर अनधिमान वक्र IC_2 पर होगा। इस प्रकार, संयोग P संयोग R की तुलना में श्रेयस्कर होगा। पुनः यदि उपभोक्ता K संयोग खरीदता है तो वह अनधिमान वक्र IC_3 पर होगा जो ऊँचे अनधिमान वक्र पर स्थापित होने के कारण R और P की तुलना में अधिक सन्तुष्टि का सूचक है। दी हुई आय और चालू कीमतों की स्थिति में संयोग K उपभोक्ता को ST कीमत रेखा पर दिखाये गये अन्य सभी संयोगों की तुलना में अधिक सन्तुष्टि देने वाला है क्योंकि उपभोक्ता का संयोग K से कीमत रेखा पर दाहिनी ओर या बाई ओर विचलन सन्तुष्टि के अपेक्षपाकृत निम्न स्तर का सूचक है। स्पष्टतः उपभोक्ता कीमत रेखा ST पर संयोग K से भिन्न P_2

या P_1 या कोई अन्य संयोग नहीं चुनेगा। यदि कीमत रेखा पर K संयोग के अतिरिक्त किसी अन्य संयोग को चुन भी लेता है तो भी उसकी प्रवृत्ति K संयोग की ओर लौटने की होगी, क्योकि उसका व्यवहार विवेकपूर्ण है और वह अपनी दी हुई आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करता है। अनधिमान वक्र IC_4 कीमत रेखा के बाहर दाहिनी ओर स्थित है। अतः अनधिमान वक्र IC_4 पर दिखाया गया कोई भी संयोग उपभोक्ता की क्रय शक्ति के सामर्थ्य के बाहर है, अतः उनको खरीदने में वह असमर्थ है। इस प्रकार दी हुई आय और वर्तमान कीमत स्तर के आधार पर उपभोक्ता K संयोग खरीदेगा।K बिन्दु पर अनधिमान वक्र IC_3 कीमत रेखा ST को स्पर्श करता है। अन्य संयोगों पर अनधिमान वक्र कीमत रेखा को स्पर्श नहीं करता, अपितु काटता है (यथा बिन्दु R,P.P_2 P_1पर)। K संयोग उसे अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने वाला है। अब जब तक उपभोक्ता की आय व वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन नहीं होगा, उपभोक्ता A और B वस्तु के संयोग K से प्रदर्शित मात्रायें ही खरीदता रहेगा, उसमें परिवर्तन नहीं करेगा और परिवर्तन का अभाव ही संतुलन है।

अनधिमान वक्र प्रतिस्थापन की ह्वासमान सीमान्त दर को प्रदर्शित करता है। दूसरी ओर कीमत रेखा का ढाल दोनों वस्तुओं के कीमत अनुपात को प्रदर्शित करता है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि उपभोक्ता उस बिन्दु पर संतुलन में होगा जहाँ दोनों वस्तुओं की ह्वासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर, उसके कीमत के बराबर होती है। उपर्युक्त रेखाचित्र में K बिन्दु पर, जहॉ अनधिमान वक्र IC_3 कीमत रेखा को स्पर्श करता है, वह शर्त पूरी होती है। K बिन्दु पर अनधिमान वक्र IC_3 के ढाल से प्रदर्शित ह्वासमान प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ST कीमत रेखा के ढाल द्वारा प्रदर्शित A और B वस्तुओं के कीमत अनुपात के बराबर है।

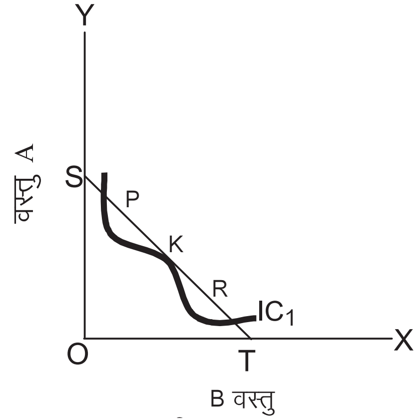

रेखाचित्र 9.13

इस विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सन्तुलन के लिए अनधिमान वक्र का कीमत रेखा से स्पर्श होना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु यह भी आवश्यक है कि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ह्वासमान हो अथवा अनधिमान वक्र मूल बिन्दू के प्रति उन्नतोदर हो। रेखाचित्र 9.13 में K बिन्दु पर अनधिमान वक्र कीमत रेखा को स्पर्श करता है। लेकिन कीमत रेखा ST पर K बिन्दु से

दाहिनी ओर बिन्दु R या बायीं ओर बिन्दु P पर विचलन अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि का द्योतक होगा। क्योंकि बिन्दु R और P अनधिमान वक्र IC_1 के आगे की ओर स्थित है जो अपेक्षाकृत ऊँचे अनधिमान वक्र पर पड़ेगे। अतः यहाँ स्पर्श बिन्दु अधिकतम सन्तुष्टि का सूचक नहीं है। अतः यह सन्तुलन की अवस्था नहीं होगी। यहॅा स्पर्श बिन्दु K पर अनधिमान वक्र मूल बिन्दु व् के प्रति उन्नतोदर नहीं, अपितु नतोदर है या यहॅा अनधिमान वक्र में प्रतिस्थापन के सीमान्त दर वृद्धिमान है।

अतः सन्तुलन के लिए दोहरी शर्तो का पूरा होना आवश्यक है। प्रथम अनधिमान वक्र कीमत रेखा को स्पर्श करे और द्वितीय, प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ह्रासमान हो या अनधिमान वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर है।

9.8 तटस्थता वक्र विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन

हम आय प्रभाव, कीमत प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव के समझने के बाद ही तटस्थता वक्र विश्लेषण

का समुचित मूल्यांकन करने में सक्षम होंगे। हिक्स के तटस्थता वक्र विश्लेषण ने मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण के दोषों को दूर किया तथा पुराने निष्कर्षों का पुनर्निमाण करते हुए उन्हें अधिक निश्चित तथा वैज्ञानिक रूप दिया। यदि आपसे यह प्रश्न पूछा जाय कि क्या तटस्थता-विश्लेषण उपयोगिता-विश्लेषण के ऊपर सुधार है अथवा उससे श्रेष्ठ है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए यह आवश्यक है कि हम तटस्थता विश्लेषण के गुण तथा दोष दोनों का अध्ययन करें और तत्पश्चात एक निष्कर्ष पर पहुंचें।

9.8.1 तटस्थता वक्र-विश्लेषण के गुण तथा उसकी श्रेष्ठता

1.मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन पर आधारित है, जबकि तटस्थता विश्लेषण के अन्तर्गत उपयोगिता जैसे मनोवैज्ञानिक विचार को मापने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह विश्लेषण तो केवल यह बताता है कि एक उपभोक्ता दो वस्तुओं के एक संयोग को, दूसरे संयोग की अपेक्षा कम, बराबर या अधिक पसन्द करता है, परन्तु उपभोक्ता यह नहीं कह सकता कि वह एक संयोग को दूसरे की अपेक्षा परिमाणात्मक रूप से कितना पसन्द करता है।

2.प्रो0 हिक्स ने दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक नया नाम दिया जिसे कि वे प्रतिस्थापन की सीमान्त-दर कहते हैं। यह विचार उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन से स्वतंत्र है। यह विचार मार्शल के अस्पष्ट विचार को अधिक निश्चित रूप में रखता है और इसलिए प्रो0 हिक्स अपने विचार को अधिक श्रेष्ठ बताते हैं।

3.मार्शल की उपयोगिता-विश्लेषण उपभोक्ता के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानकर चलती है, जबकि तटस्थता विश्लेषण ऐसी मान्यता पर आधारित नहीं है। दूसरे शब्दों में, तटस्थता विश्लेषण कम मान्यताओं पर आधारित है और उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ हैं।

4.तटस्थता विश्लेषण किसी वस्तु की कीमत में कमी होने से उस वस्तु की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करने में 'आय प्रभाव' (जिसका अध्ययन मार्शल ने नहीं किया था) तथा 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' दोनों को ध्यान में रखता है। अतः यह उपयोगिता-विश्लेषण से श्रेष्ठ है। वास्तव में, आर्थिक सिद्धान्त के विश्लेषण में 'प्रतिस्थापन' को प्रमुख स्थान देने का श्रेय हिक्स को है।

5.तटस्थता-विश्लेषण सम्बन्धित वस्तुओं ए अर्थात् प्रतिस्पर्द्धात्मक तथा पूरक वस्तुओं का भी अध्ययन करता है, जबकि मार्शल ने ऐसा नहीं किया। अतः यह अधिक वास्तविक तथा श्रेष्ठ है। मार्शल ने केवल एक वस्तु का ही अध्ययन किया, जैसे कि एक वस्तु की उपयोगिता केवल उस वस्तु की पूर्ति पर ही निर्भर करती हो, वास्तव में, वस्तु विशेष की उपयोगिता अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की पूर्ति पर भी निर्भर करती है।

6.तटस्थता विश्लेषण का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र में भी किया जाता है। अतः प्रो0 हिक्स ने तटस्थता विश्लेषण के रूप में सभी क्षेत्रों के लिए एक एकीकृत सिद्धान्त प्रस्तुत किया। यह सिद्धान्त की श्रेष्ठता को बताता है।

9.8.2 तटस्थता वक्र-विश्लेषण के दोष

1.प्रो0 हिक्स के अनुसार एक उपभोक्ता दो वस्तुओं पर अपनी आय को व्यय करते समय एक वस्तु में थोड़ी वृद्धियों की सापेक्षिक तुलना दूसरी वस्तु में थोड़ी वृद्धियों से करता है। परन्तु प्रो0 नाइट तथा अन्य आलोचकों का कहना है कि व्यवहार में उपभोक्ता तो परिमाणात्मक उपयोगिता तथा कुल सन्तुष्टि की वृद्धि के शब्दों में सोचता है, इसलिए माँग-सिद्धान्त को इन बातों पर आधारित न करके हिक्स ने गलती की।

2.आलोचकों द्वारा बताया गया है कि तटस्थता विश्लेषण भी उपयोगिता विश्लेषण की भाँति बहुत-सी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है, जैसे:

i. उपभोक्ता पूर्ण विवेकशील से प्रभावित होता है तथा सोच-समझ कर व्यय करता है। परन्तु व्यवहार में उपभोक्ता व्यय करते समय प्रायः आदतों, रीति रिवाजो, परिस्थितियों द्वारा भी प्रभावित होता है न कि केवल विवेकशीलता से।

ii. उपभोक्ता को अपने तटस्थता मानचित्र की पूर्ण जानकारी होती है। परन्तु ऐसा मानना भी गलत है। उपभोक्ता एक या दो संयोगों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी रख सकता है परन्तु उसके लिए बहुत-से संयोगों के बीच चुनाव करना बहुत कठिन तथा अव्यावहारिक है। प्रो0

बोल्डिंग ने ठीक ही कहा है कि ''हम कुछ निश्चित स्थितियों में चुनाव कर सकते हैं परन्तु हमारे लिए स्थितियों को बहुत अधिक संख्या के बीच चुनाव करना सम्भव नहीं है।'

iii. अन्य मान्यताएं हैः वस्तु का प्रमापित होना, पूर्ण प्रतियोगिता का पाया जाना, बाजार में उपभोक्ता के चुनाव पर संस्थात्मक नियंत्रण का न होना। परन्तु ये सब मान्यताएं अवास्तविक हैं।

3. तटस्थता विश्लेषण के बारे में एक मुख्य आलोचना यह की जाती है कि कोई आधारभूत नवीनता लिये हुए नहीं है, पुराने विचारों को केवल नये शब्दों में व्यक्त कर दिया गया है, पुरानी शराब नयी बोतलों में भर दी गयी है। उदाहरणार्थ, 'परिमाणवाचक प्रणाली' के एक, दो, तीन, इत्यादि के स्थान पर 'क्रमवाचक प्रणाली' के पहला, दूसरा, तीसरा, इत्यादि का प्रयोग, 'उपयोगिता' के स्थान पर 'अनधिमान क्रम' 'सीमान्त उपयोगिता' के स्थान पर 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर तथा 'क्रमागत उपयोगिता ह्वास नियम' के स्थान पर 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' का प्रयोग किया गया है। उपयोगिता विश्लेषण रीति में उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति $\frac{M.U.of\ X}{Price of\ X}=\frac{M.U.of\ Y}{Price of\ Y}=\frac{M.U.of\ Z}{Price of\ Z}$ इत्यादि, समीकरण द्वारा बतायी जाती है, जबकि तटस्थता विश्लेषण के अनुसार, उपभोक्ता के सन्तुलन के लिए, दो वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर = वस्तुओं का कीमत अनुपात का यह समीकरण दिया जाता है। अतः कहा जाता है कि तटस्थता विश्लेषण रीति पुरानी रीति को केवल नये शब्दों में व्यक्त कर देती है।

परन्तु प्रो0 हिक्स इस विचार से सहमत नहीं है। सीमान्त उपयोगिता के बिना परिमाणात्मक मापन के ही प्रो0 हिक्स दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक निश्चित अर्थ प्रदान करते हैं और इसे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर कहते है, जबकि दोनों वस्तुओं की मात्राएँ दी हुई होती हैं।

4. जब व्यय दो से अधिक वस्तुओं पर किया जाता है तो तटस्थता रेखाएं अपनी सरलता को खो देती हैं। तीन वस्तुओं के लिए हमें तीन माप चाहिए, तीन वस्तुओं से अधिक होने पर रेखागणित विफल हो जाती है तथा हमें बीजगणित का सहारा लेना पड़ता है।

5. वास्तव में, तटस्थता वक्र विश्लेषण रीति बहुत जटिल होती है। इसका प्रयोग केवल वे ही अर्थशास्त्री कर सकते हैं जिनका गणित का ज्ञान तथा अध्ययन बहुत अधिक हो।

6. शुम्पीटर तथा अन्य आलोचकों का कहना है कि तटस्थता विश्लेषण रीति का प्रयोग व्यावहारिक अनुसंधान नहीं किया जा सकता है। यद्यपि काल्पनिक तटस्थता वक्र रेखाएं खीचीं जा सकती हैं परन्तु वास्तविक तटस्थता रेखाओ को खींचना सम्भव नहीं है।

9.8.3 तटस्थता वक्र विश्लेषण के निष्कर्ष:- उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि तटस्थता विश्लेषण रीति, उपयोगिता विश्लेषण रीति से एकदम नयी या सर्वथा भिन्न नहीं हैं। यदि उपयोगिता विश्लेषण के अनेक दोष हैं तो तटस्थता विश्लेषण भी दोषों से मुक्त नहीं है। परन्तु फिर भी

यह कहना ठीक ही होगा कि कई दृष्टियों से तटस्थता विश्लेषण, उपयोगिता विश्लेषण पर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है। इसका प्रयोग अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका है।

9.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि अर्थजगत् में उपभोक्ता का व्यवहार अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। उपभोक्ता के संतुलन को जानने के लिए मार्शल के उपयोगिता के मापन सम्बन्धी विचारों की आलोचना के बाद एक नयी तकनीकी 'अनधिमान वक्र विश्लेषण' वर्तमान समय में अति विशिष्ट विश्लेषण माना जाता है। क्योंकि इस विश्लेषण में मापन सम्बन्धी समस्या की कठिनाई को दूर कर दिया जाता है। इस वक्र पर उपभोक्ता को दो वस्तुओं के उपभोग करने में समान संतुष्टि मिलती है। वह किसी भी संयोग को चुन सकता है। यदि एक का उपभोग बढ़ाना चाहता है तो दूसरे का उपभोग उसे कम करना पड़ेगा। इस रूप में बायें से दायें, नीचे की ओर गिरती हुई वक्र जो मूल बिन्दु के ओर उन्नतोदर है अनधिमान वक्र विश्लेषण का रूप ग्रहण कर लेता है। विश्लेषण में घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करता है। उपभोक्ता का संतुलन जानने के लिए बजट रेखा या कीमत रेखा महत्वपूर्ण है। जहां कीमत रेखा, अनधिमान वक्र को स्पर्श करती है वही उपभाक्ता का संतुलन बिन्दु निर्धारित होगा। संतुलन बिन्दु ही सुनिश्चित करता है कि दो वस्तुओं में से उपभोक्ता X वस्तु की कितनी मात्रा और Y वस्तु की कितनी मात्रा का वास्तव में उपभोग करता है। उपयोगिता विश्लेषण के अनेक दोष हैं तो तटस्थता विश्लेषण भी दोषों से मुक्त नहीं है। परन्तु फिर भी यह कहना ठीक ही होगा कि कई दृष्टियों से तटस्थता विश्लेषण, उपयोगिता विश्लेषण पर सुधार है तथा उससे श्रेष्ठ है। इसका प्रयोग अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका है।

9.10 शब्दावली

उपयोगिता - किसी वस्तु अथवा सेवा की आवश्यकता संतुष्टि की शक्ति।

तटस्थता वक्र . दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करने वाला वह वक्र जिसके सभी बिन्दुओं पर समान संतुष्टि प्राप्त होता है।

उपभोक्ता संतुलन . वह बिन्दु जहां उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो रही हो।

उपयोगिता का संख्यात्मक दृष्टिकोण . उपभोग की जाने वाली वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता की संख्यात्मक माप करना संभव है का विचार।

उपयोगिता की क्रमवाचक दृष्टिकोण . उपयोग की जाने वाली वस्तु की विभिन्न इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता को मात्र क्रम दे सकते है का विचार।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर . वह दर जिस पर कोई उपभोक्ता एक वस्तु की निश्चित मात्रा के बदले दूसरी वस्तु को लेने अथवा परित्याग करने के लिए तैयार हो जाता है।

कीमत रेखा या बजट रेखा . उपभोक्ता का क्रय सामर्थ की द्योतक रेखा जो दो वस्तुओं के कीमत अनुपात को प्रदर्शित करता है।

9.11 अभ्यास प्रश्न

लघु प्रश्न

1. अनधिमान वक्र क्या होते हैं ?
2. उपभोक्ता के सन्तुलन बिन्दु से आप क्या समझते है ?
3. तटस्थता मानचित्र क्या है?
4. सीमान्त प्रतिस्थापन दर क्या है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1मार्शल समर्थक थे

क. गणनावाचक उपयोगिता दृष्टिकोण के   ख. क्रमवाचक उपयोगिता दृष्टिकोण के

ग. क और ख दोनों के   घ. उपर्युक्त में से किसी के नहीं

2उपयोगिता विश्लेषण के प्रतिपादक थे-

क. मार्शल   ख. हिक्स

ग. परेटो   घ. एलन

3उपभोक्ता की तटस्थता वक्र का ढाल होता है -

क. धनात्मक   ख. ऋणात्मक

ग. समानान्तर   घ. लम्बवत्

4उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है इसलिए इसकी -

क. गणना वाचक माप की जा सकती है।

ख. गणना वाचक माप नहीं की जा सकती है।

ग. क्रम वाचक माप नहीं की जा सकती है।

घ. तुलनात्मक माप के साथ साथ गणना वाचक माप की जा सकती है।

5जब दो वस्तुएं पूर्ण प्रतिस्थानापन्न होती है तो तटस्थता वक्र -

क. मूल बिन्दु के उन्नतोदर होता है

ख. मूल बिन्दु के नतोदर होता है

ग. एक सरल रेखा के रूप में होता है

घ. नीचे से ऊपर धनात्मक ढाल लिये होता है

उत्तर 1. क 2. क 3. ख 4. ख 5. ग

9.12सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Demiel R. Fusfeld - Economics : Principles of Political Economy 3rd Ed. - 1998.
- C.E. Ferguson and Gould - Micro Economic theory 5th Ed. 1988 Ruffin Roy and Gregory.
- एम0एल0 सेठ - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
- एच0एल0 आहूजा - उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- एस0पी0 दुबे, वी0सी0 सिन्हा - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, 1988 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

9.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जे0पी0 मिश्र, व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण, मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी।
2. एस0एन0 लाल, व्यष्टि अर्थशास्त्र शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
3. डॉ0 बद्री विशाल त्रिपाठी - डॉ0 अमिताभ तिवारी - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल, इलाहाबाद।

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्र0.1. अनधिमान वक्र क्या होते हैं ? इनकी सहायता से यह स्पष्ट कीजिए कि उपभोक्ता सन्तुलन अवस्था को कैसे प्राप्त होता है ?

प्र0.2. तटस्थता वक्र विश्लेषण को सचित्र समझाइये। तटस्थता वक्रों के स्वरूप एवं विशेषताओं की व्याख्या करें।

प्र0.3. सीमान्त प्रतिस्थापन दर से क्या आशय है? अनधिमान वक्र विश्लेषण में यह एक महत्वपूर्ण उपकरण है, समझाइये।

इकाई 10 आय प्रभाव , प्रतिस्थापन प्रभाव तथा कीमत प्रभाव एवं अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 आय प्रभाव का आशय तथा आय उपभोग वक्र
10.3.1 आय प्रभाव की प्रकृति
10.4 प्रतिस्थापन प्रभाव का आशय
10.4.1 हिक्स का प्रतिस्थापन प्रभाव
10.4. 2 स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव
10.5 कीमत प्रभाव का आशय तथा कीमत उपभोग वक्र
10.6 कीमत प्रभाव, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग है
10.7 गिफेन पदार्थ
10.8 अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग
10.9 सांराश
10.10 शब्दावली
10.11 अभ्यास प्रश्न
10.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.14 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र से सम्बन्धित यह दसवीं इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि उत्पादन फलन क्या है ? उपभोक्ता सन्तुलन कैसे होता है। बाजार संरचना, फर्म के संतुलन की शर्तें तथा पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में बता सकते हैं।

इस खण्ड की पहली दो इकाईयों पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार बाजार की दो चरम बाजार स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, और वास्तविक जगत में बाजार की स्थितियों से मेल नहीं खाती हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इन दो चरम स्थितियों के बीच की बाजार स्थिति एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताओं तथा उसके अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- आय प्रभाव का आशय तथा आय उपभोग वक्र को जान सकेंगे।
- प्रतिस्थापन प्रभाव के आशय को समझ सकेंगे।
- कीमत प्रभाव का आशय तथा कीमत उपभोग वक्र को जान सकेंगे।
- कीमत प्रभाव, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग को समझ सकेंगे।

10.3 आय प्रभाव का आशय तथा आय उपभोग वक्र

वस्तुओं की कीमतें यथास्थिर रहने पर उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तुओं की माँग में जो परिवर्तन होता है उसे आय-प्रभाव कहते हैं। आय प्रभाव माँगी गयी मात्रा में परिवर्तन को बताता है, जोकि वस्तुओं की कीमतें स्थिर हैं।

इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि आय प्रभाव उपभोक्ता की आय में परिवर्तन से उसकी माँग पर प्रभाव को व्यक्त करता है। जिसे-चित्र सं0 10.1 में प्रदर्शित किया गया है। वस्तुओं की कीमतें तथा आय दी हुई होने पर जोकि बजट रेखा P_1L_1 में प्रकट होती है तो उपभोक्ता अनधिमान IC_1 के Q_1 बिन्दु पर संतुलन में है। वह X वस्तु की OM_1 और Y वस्तु की ON_1 मात्रा का उपभोग कर रहा है। अब आप कल्पना करें कि आय में वृद्धि होती है। अपनी आय में वृद्धि होने से वह दोनों वस्तुओं का अधिक उपभोग करेगा। फलतः बजट रेखा सरक कर P_2L_2 होगी। इस प्रकार बजट रेखा P_2L_2 उपभोक्ता IC_2 के बिन्दु Q_2 पर संतुलन में है। यहां OM_2 वस्तु X का और ON_2 वस्तु Y का उपभोग कर रहा है। आय में वृद्धि होने से वह ऊंचे सन्तुष्टि वक्र पर पहुंच जाता है। इसी प्रकार आय में

वृद्धि होने पर उपभोक्ता नयी बजट रेखा, ऊँचे अनधिमान वक्र एवं नये सन्तुलन बिन्दु को क्रमशः प्राप्त करता जाता है। फलतः उसकी सन्तुष्टि में वृद्धि होती जाती है।अब यदि विभिन्न बिन्दुओं Q_1, Q_2, Q_3, Q_4 आदि को मिलायें जो कि विभिन्न आय के स्तरों पर उपभोक्ता के संतुलन को व्यक्त करते हैं तो हमें एक वक्र प्राप्त होता है जिसे आय उपभोग वक्र कहते हैं।

आय उपभोग रेखा उपभोग के संतुलन बिन्दुओं का रास्ता है, जबकि केवल आय में परिवर्तन होता है। अथवा ,यदि दो वस्तुओं X तथा Y की कीमतें स्थिर रहती हैं, तो आय उपभोग वक्र उपभोग या माँग में परिवर्तनों को बताती है जोकि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के परिणामस्वरुप होते हैं।

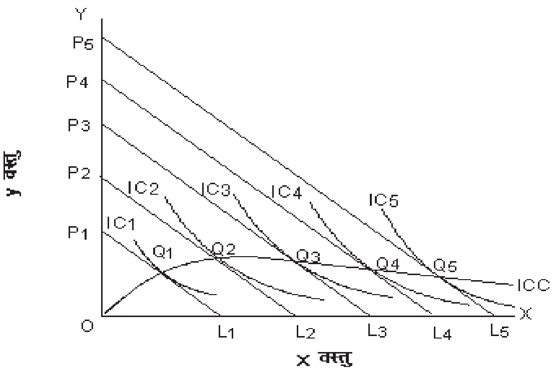

रेखाचित्र 10.1

10.3.1आय प्रभाव की प्रकृति - आय प्रभाव धनात्मक भी हो सकता है और ऋणात्मक भी। आय प्रभाव किसी वस्तु के लिए धनात्मक तब होता है जब उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने से उसके द्वारा वस्तु का उपभोग अथवा माँग बढ़ जाती है। इसलिए एक वस्तु को सामान्य या श्रेष्ठ तब कहा जायेगा जबकि आय प्रभाव धनात्मक हो । जब रेखाचित्र के दोनों अक्षों पर व्यक्त की गई वस्तुओं के लिए आय प्रभाव धनात्मक होता है तो आय उपभोग वक्र ऊपर को चढ़ेगा। जैसा कि रेखाचित्र 10.2 में दिखाया गया है। किन्तु कुछ वस्तुओं के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होता है। किसी वस्तु के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होता है जब उसकी आय में वृद्धि होने पर उसके द्वारा वस्तु की माँग में कमी अथवा उपभोग घट जाता है। **ऐसी वस्तुओं को जिनके लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होता है, निम्न अथवा हीन पदार्थ कहते हैं।**

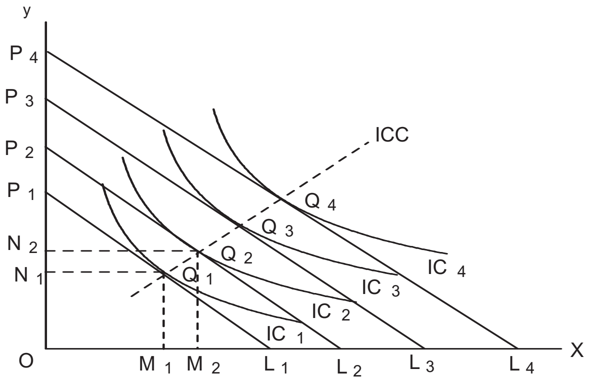

रेखाचित्र 10.2

निम्न वस्तुओं की दशा में अनधिमान मानचित्र इस प्रकार का होगा जिससे हमें ऐसा आय उपभोग वक्र प्राप्त होगा जो **पीछे को मुड़ता हुआ अर्थात् बायीं ओर ऊपर को चढ़ता हुआ** होगा जैसा कि चित्र 10.3 में दिखाया गया है।

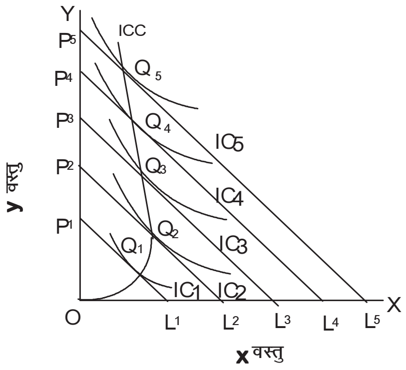

चित्र सं0 **10.3** (निम्न पदार्थ)

अथवा आय उपभोग वक्र दायीं ओर नीचे को गिरता हुआ होगा जैसा कि चित्र 10.4 में दिखाया गया हैं। रेखाचित्र 10.3 में आय उपभोग वक्र पीछे की ओर मुड़ता हुआ दिखाया गया है। यह आय उपभोग वक्र बिन्दु Q_2 के बाद वस्तु X के हीन वस्तु होने को दर्शाता है। इसमें वस्तु X के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक है और परिणामस्वरूप आय बढ़ने पर इसकी माँग मात्रा घटती है ।रेखाचित्र 10.4 में आय उपभोग वक्र दायीं ओर को नीचे झुका हुआ है और बिन्दु Q_2 के पश्चात् अक्ष-X की ओर गिरता है जो कि वस्तु Y के हीन वस्तु होने को प्रकट करता है क्योंकि बिन्दु Q_2 के बाद आय प्रभाव वस्तु Y के लिए ऋणात्मक होता है जिससे आय में वृद्धि होने से इसकी माँग-मात्रा घटती है। स्पष्ट है कि आय उपभोग वक्र की कई विभिन्न आकृतियाँ हो सकती हैं। यदि आय प्रभाव दोनों के लिए धनात्मक हो तो आय वक्र दायीं ओर ऊपर को चढ़ता हुआ होगा जैसा कि रेखाचित्र 10.1 में दिखाया गया है। परन्तु ऊपर को चढ़ता हुआ आय उपभोग वक्र कई विभिन्न आकृतियों का

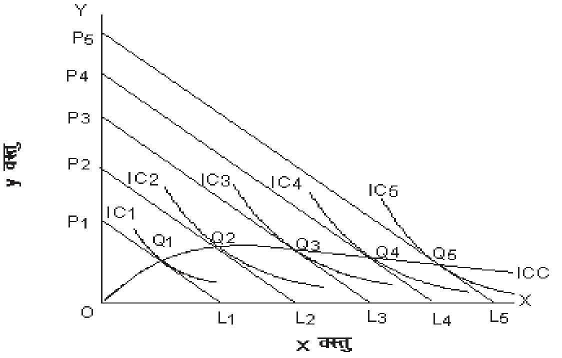

चित्र सं0 10.4

हो सकता है जैसा कि रेखाचित्र 10.5 में दिखाया गया है जिसमें कि आय उपभोग वक्र जो कि एक दूसरे से ढाल में भिन्न-भिन्न है और सभी दायीं ओर ऊपर को चढ़ रहे हैं और इसलिए ये दोनों वस्तुओं के लिए आय प्रभाव का धनात्मक होना प्रकट करते हैं।

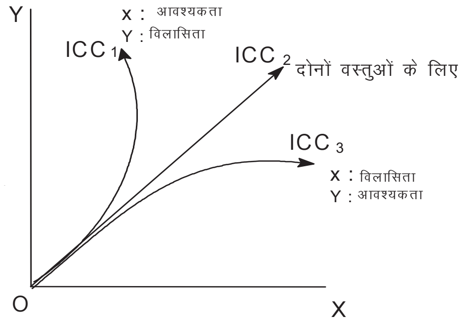

x वस्त

यदि आय प्रभाव वस्त x के लिए ऋणात्मक है तो आय उपभोग वक्र रेखाचित्र 10.6 में ICC की तरह बायीं ओर पीछे को मुड़ रहा होगा। यदि वस्तु Y के लिए आय प्रयोग ऋणात्मक है और इसलिए वस्तु Y हीन वस्तु है तो ऐसी दशा में आय उपभोग वक्र दायीं ओर नीचे को गिरता हुआ होगा अर्थात् यह अक्ष-X की ओर झुका होगा जैसा कि रेखा चित्र 10.6 में ICC द्वारा दिखाया गया है।

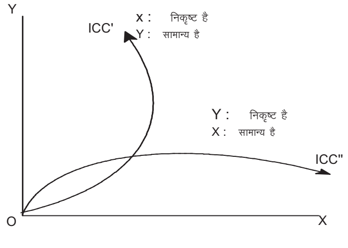

यहाँ पर विशेष … नहीं है जो कि किसी वस्त के हीन वस्तु होने की व्याख्या करते हैं अर्थात् अनधिमान वक्र इस बात की व्याख्या नहीं करते कि किसी वस्तु के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक क्यों है। अनधिमान वक्र तो केवल हीन पदार्थों को दर्शाते हैं उसकी व्याख्या नहीं करते।

10.4 प्रतिस्थापन प्रभाव का आशय

केवल सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन के परिणामस्वरुप किसी वस्तु के उपभोग परिवर्तन को प्रतिस्थापन प्रभाव कहा जाता हैं, जबकि उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रहे। प्रतिस्थापन प्रभाव के विषय में दो प्रकार की धारणाएँ वस्तुत की गयी हैं। प्रथम धारणा जे0आर0 हिक्स द्वारा प्रतिपादित की गयी है। प्रतिस्थापन प्रभाव की दूसरी धारणा ई0स्लटृस्की द्वारा विकसित की गयी है। प्रतिस्थापन प्रभाव को इन दो धारणाओं में अन्तर द्राव्यिक आय की उस मात्रा से सम्बन्धित है जोकि कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरुप उपभोक्ता की वास्तविक आय में परिवर्तन को समाप्त करने के लिए जरुरी है।

10.4.1 हिक्स का प्रतिस्थापन प्रभाव

हिक्स के अनुसार प्रतिस्थापन प्रभाव में वस्तु की केवल सापेक्ष कीमत में परिवर्तन का उपभोक्ता का द्वारा वस्तु की माँग पर प्रभाव जानने के लिए उसकी मौद्रिक आय में उतनी मात्रा में परिवर्तन किया जाता है जिससे उसकी सन्तुष्टि पूर्वस्तर पर स्थिर रहे। इस प्रकार प्रतिस्थापन प्रभाव समान अनधिमान वक्र पर क्रियाशील होता है। मुद्रा आय की उस मात्रा जिसके घटाने पर उपभोक्ता समान सन्तुष्टि के स्तर पर रखा जाता है, को **आय में क्षतिपूरक परिवर्तन** कहते हैं। **आय में क्षतिपूरक परिवर्तन उपभोक्ता की आय में वह परिवर्तन है, जोकि किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उपभोक्ता की सन्तुष्टि में हुयी वृद्धि को नष्ट कर देता है।**

प्र्रतिस्थापन प्रभाव को चित्र सं0 10.7 में दर्शाया गया है। दो वस्तुओं की दी हुई कीमतों तथा उपभोक्ता की दी हुई आय को बजट रेखा PL व्यक्त करती है। उपभोक्ता अनधिमान वक्र के बिन्दु Q पर सन्तुलन में है और वह वस्तु X की OM मात्रा खरीद रहा है । अब कल्पना कीजिए कि वस्तु X की कीमत घट जाती है (जबकि वस्तु Yकी कीमत स्थिर रहती हैं) जिससे बजट रेखा अब परिवर्तित होकर हो जाती है। वस्तु X की कीमत घटने से उपभोक्ता की वास्तविक आय अथवा क्रयशक्ति बढ़ जाएगी। प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की वास्तविक आय में हुयी वृद्धि को समाप्त करने के लिए उसकी मुद्रा-आय में इतनी कमी की जाए जिससे कि वह अपने पहले अनधिमान वक्र जिस पर कि वह कीमत के कम होने से पूर्व था, पर ही रहने को बाध्य हो जाय। जब उपभोक्ता से उसकी वास्तविक आय में वृद्धि को समाप्त करने के लिए कुछ आय अथवा मुद्रा ले ली जाती है तो बजट रेखा जो कि PL' हो गई थी, अब नीचे सरक कर AB हो जाएगी जोकि PL' के समानान्तर है। चित्र सं0 10.7 में बजट रेखा AB को बजट रेखा के समानान्तर इतनी दूरी पर खींचा गया है जिससे यह अनधिमान वक्र IC के किसी बिन्दु को स्पर्श करे अर्थात् उपभोक्ता की आय में, वस्तु X की मात्रा में के समान अथवा वस्तु Y की मात्रा में PA के समान कमी की गई है जिससे कि वह पहले अनधिमान वक्र IC के बिन्दु T पर सन्तुलन में हैं। स्पष्ट है कि बजट रेखा AB वस्तु X और Y की परिवर्तित सापेक्ष कीमतों को व्यक्त करती है क्योंकि यह बजट रेखा PL' के समानान्तर है जिसको कि हमने वस्तु X की कीमत घट जानें के पश्चात् प्राप्त किया था। अतः बजट रेखा AB

बजट रेखा PL की तुलना में X की घटी हुई सापेक्ष कीमत को व्यक्त करती है। अतः उपभोक्ता वस्तु X और वस्तु Y की कम मात्राओं में परिवर्तन करेगा और इस परिवर्तन में वह वस्तु X को वस्तु Yके स्थान पर प्रयोग करेगा अर्थात् चूँकि वस्तु X अपेक्षाकृत सस्ती हो गयी है और वस्तु Y पहले की तुलना में अपेक्षाकृत महंगी, वह वस्तु X को अधिक मात्रा में खरीदेगा और वस्तु Y को कम मात्रा में।

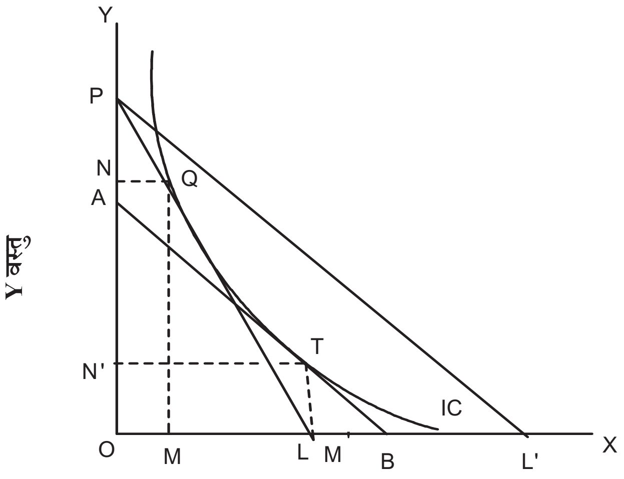

X वस्तु चित्र सं0 10.7

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि बजट रेखा AB से उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC के बिन्दु T पर सन्तुलन में है और उस स्थिति में वह वस्तु X की OM मात्रा और वस्तु Y की ON मात्रा क्रय कर रहा है। इस प्रकार वस्तु X की अधिक मात्रा खरीदने के लिए वह समान अनधिमान वक्र IC के बिन्दु Q से चलकर बिन्दु T पर आ जाता है। वस्तु X की खरीद में MM^1 की वृद्धि और वस्तु Y की खरीद में NN^1 की कमी वस्तु X और Y की केवल सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के कारण हुई है क्योंकि कीमत के घटने से वास्तविक आय में वृद्धि को आय में क्षतिपूरक कमी द्वारा समाप्त कर दिया गया है। इसलिए बिन्दु Q से बिन्दु T तक उपभोक्ता की गति प्रतिस्थापन प्रभाव को प्रकट करती है।

10.4.2 स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव

स्लट्स्की ने प्रतिस्थापन प्रभाव की धारणा में जब वस्तु की कीमत बदलती है और फलस्वरूप उपभोक्ता की क्रय-शक्ति में परिवर्तन होता है तो उपभोक्ता की आय को भी क्रय शक्ति में परिवर्तन के समान बदला जाता है। उसकी क्रय-शक्ति में परिवर्तन की मात्रा वस्तु की कीमत में परिवर्तन तथा उसके द्वारा पूर्व कीमत पर वस्तु की क्रय-मात्रा के गुणा के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में स्लट्स्की की पद्धति में उपभोक्ता की आय में परिवर्तन इतनी मात्रा में किया जाता है जिससे उपभोक्ता, यदि वह चाहे तो वस्तुओं का वह संयोग क्रय कर सकता है जो वह पूर्व कीमत पर क्रय कर रहा अर्थात् उपभोक्ता की आय में परिवर्तन पूर्व-कीमत पर वस्तु X की क्रय की जा रही मात्रा की लागत तथा नई

कीमत पर उसी मात्रा की लागत में अन्तर में समान किया जाता हैं। आय को तब **लागत-अन्तर** से बदलना कहा जाता है। इस प्रकार स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव में, आय में परिवर्तन लागत-अन्तर के बराबर किया जाता है न कि क्षतिपूरक परिवर्तन के समान।

10.4.2.1 कीमत में कमी का स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव

स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव को चित्र सं0 10.8 एवं 10.9 में प्रदर्शित किया गया है। चित्र सं0 10.8 में एक दी हुई निश्चित मुद्रा आय तथा दो वस्तुओं X और Y की दी हुई कीमतों (जोकि बजट रेखा PL द्वारा व्यक्त की गई हैं) से उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु Q पर संतुलन में है तथा इस स्थिति में वस्तु X की OM मात्रा ओर वस्तु Y की ON मात्रा खरीद रहा है। अब कल्पना कीजिए कि वस्तु की कीमत घट जाती है जबकि वस्तु की कीमत पूर्ववत् ही रहती है। वस्तु की कीमत घटने के कारण बजट रेखा हो जाएगी और उपभोक्ता की वास्तविक आय अथवा क्रयशक्ति बढ़ जाएगी। स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की मुद्रा आय को लागत-अंतर के बराबर अथवा इतनी मात्रा से घटाया जाए जिससे कि वह दो वस्तुओं के अपने पूर्व संयोग Q को, यदि वह चाहे, तो खरीद सके।

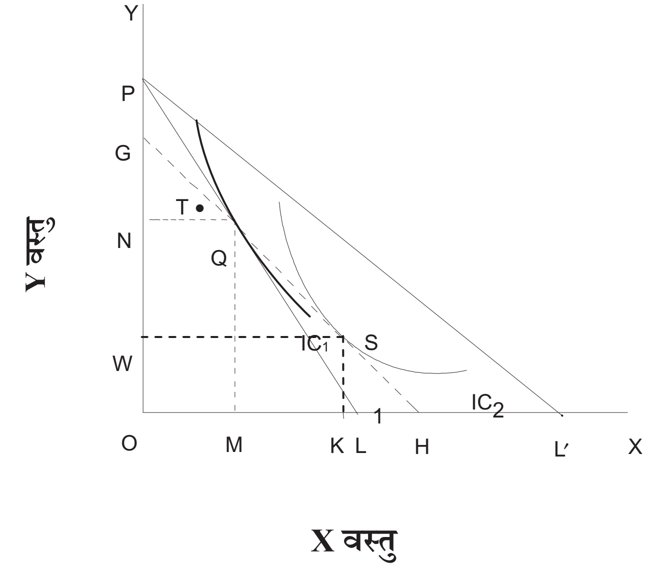

X वस्तु

चित्र सं0 10. 8 X की कीमत घटने पर प्रतिस्थापन प्रभाव

ऐसा करने के लिये एक नई कीमत रेखा GH जोकि PL' के समानान्तर है खींची गई है जोकि बिन्दु Q से गुजरती है अर्थात् Y के रूप में PG के समान तथा वस्तु X के रूप में $L'H$ के समान आय को उपभोक्ता से ले लिया गया है और फलस्वरूप वह वस्तुओं के संयोग Q को यदि वह चाहे तो क्रय कर सकता है क्योंकि बिन्दु Q बजट रेखा GH पर भी स्थित है। वास्तव में , वह वस्तुओं के पहले संयोग Q को नहीं खरीदेगा क्योंकि वस्तु X अब पहले से अधिक सस्ती हो गई है और Y

पहले से अधिक महंगी। वस्तु X और Y की इन सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन उपभोक्ता को वस्तु और की क्रय-मात्राओं को बदलने के लिए प्रेरित करता है जिससे वह वस्तु X को Y के स्थान पर प्रयोग करता है। परन्तु स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव में उपभोक्ता की गति एक समान अनधिमान वक्र IC_1 पर ही नहीं होती क्योंकि बजट रेखा GH जिस पर कि उपभोक्ता को अब दी हुई कीमत और आय परिस्थितियों में सन्तुलन में होना है, अनधिमान वक्र IC_1 को कहीं पर स्पर्श नहीं करती। बजट रेखा अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु S को स्पर्श करती है। उपभोक्ता की बिन्दु Q से बिन्दु S की गति स्लट्स्की प्रभाव को व्यक्त करती है जिसके अनुसार उपभोक्ता एक समान अनधिमान वक्र पर न चल कर एक अनधिमान वक्र से दूसरे अनधिमान वक्र को जाता है। उल्लेखनीय बात यह है कि स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव के फलस्वरूप बिन्दु Q से बिन्दु S तक की गति केवल सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के कारण हुई है क्योंकि कीमत में कमी के कारण क्रयशक्ति में वृद्धि को उपभोक्ता की आय लागत-अन्तर के सामन घटा कर रद्द कर दिया गया है। बिन्दु S पर उपभोक्ता वस्तु X की MK मात्रा और वस्तु Y की NW मात्रा का क्रय कर रहा है अर्थात् प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उसने वस्तु X की MK मात्रा को वस्तु Y की NW मात्रा के स्थान पर प्रयोग किया है। अतएव स्लट्स्की प्रतिस्थापन के प्रभाव में उपभोक्ता वस्तु X की MK मात्रा अधिक और वस्तु Y की NW मात्रा कम खरीदता है।

10.4. 2.2 कीमत में वृद्धि की दशा में स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव

हमने ऊपर वस्तु X में कमी होने पर स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभाव की व्याख्या की है। इसको वस्तु की कीमत में वृद्धि की दशा में भी समझना लाभप्रद होगा। इसको हमने चित्र सं0 10.9 में प्रदर्शित किया है। प्रारम्भ में उपभोक्ता दी हुई कीमतों तथा मुद्रा-आय से अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु Q पर सन्तुलन में है। यदि अब वस्तु X की कीमत बढ़ जाती है, जबकि वस्तु Y की स्थिर रहती है तो बजट रेखा बदल कर PL'' हो जाएगी। वस्तु की कीमत बढ़ जाने के फलस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय अथवा क्रयशक्ति धट जाएगी। इसके अतिरिक्त, इस कीमत परिवर्तन से वस्तु X पूर्व से अपेक्षाकृत महँगी और वस्तु Y की अपेक्षाकृत सस्ती हो जाएगी। इस वर्तमान दशा में स्लट्स्की का प्रतिस्थापन प्रभाव मालूम करने के लिए उपभोक्ता की मुद्रा-आय को X की कीमत में वृद्धि के कारण उत्पन्न लागत-अन्तर के समान बढ़ाया जाना होगा। दूसरे शब्दों में, उसकी मुद्रा आय इतनी बढ़ाई जाए जिससे वह यदि चाहे तो वस्तुओं के संयोग Q (जोकि वह Y की कीमत बढ़ने से पहले खरीद रहा था) को क्रय कर सके।

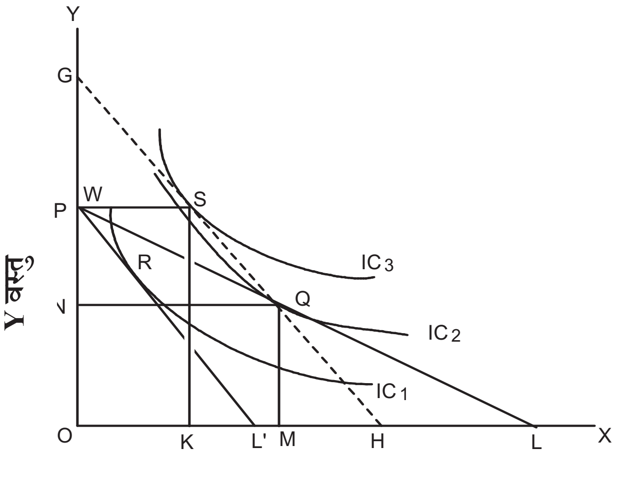

चित्र सं0 10.9 X की कीमत बढ़ने पर प्रतिस्थापन प्रभाव

इसके लिए, एक बजट रेखा GH जोकि बिन्दु Q से गुजरती हैं खींची गई है। रेखाचित्र 10.9 से स्पष्ट है कि इस स्थिति में वस्तु Y के रूप में PG अथवा वस्तु X के रूप में $L''H$ वस्तु X की कीमत में वृद्धि के कारण उत्पन्न लागत-अन्तर को व्यक्त करता है। बजट रेखा GH से वह यदि चाहे तो अपने पहले संयोग Q को खरीद सकता है जोकि वह कीमत-वृद्धि से पूर्व क्रय कर रहा था। लेकिन वास्तव में वह नई स्थिति में संयोग Q क्रय नहीं करेगा क्योंकि बजट रेखा GH पर वस्तु X बजट रेखा PL की अपेक्षा अधिक महँगी है। इसलिए उपभोक्ता वस्तु X के स्थान पर वस्तु Y का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग करेगा। रेखाचित्र में देखा जाएगा कि बजट रेखा GH से उपभोक्ता ऊँचे अनधिमान वक्र IC_2 के बिन्दु S पर संतुलन में है जिस पर वह वस्तु X की OK मात्रा तथा वस्तु Y की OW मात्रा खरीद रहा है। वस्तु X की मात्रा MK का वस्तु Y की NW मात्रा द्वारा प्रतिस्थापन हुआ है। उपभोक्ता का बिन्दु Q से चल कर बिन्दु S को जाना स्लटूस्की के प्रतिस्थापन प्रभाव का परिणाम हैं क्योंकि वस्तु X की कीमत में वृद्धि के कारण क्रयशक्ति में कमी उपभोक्ता को अतिरिक्त मुद्रा (जोकि वस्तु Y के रूप में PG तथा वस्तु X के रूप में $L''H$ के समान है) देकर रद्द कर दी गई है। वस्तु X की कीमत बढ़ने पर स्लटूस्की का प्रतिस्थापना प्रभाव वस्तु X के क्रय में MK के बराबर गिरावट होना है तथा वस्तु Y के क्रय में NW के समान वृद्धि होना है।

10.5 कीमत प्रभाव: कीमत उपभोग वक्र

अब हम उपभोक्ता की आय, उसकी रूचियाँ और अन्य वस्तुओं की कीमतें समान रहने पर एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उपभोक्ता द्वारा माँग मात्रा में परिवर्तन की व्याख्या करेंगे।

कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरुप उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु की मॉगी गयी मई मात्रा पर 'कुल प्रभाव' को कीमत प्रभाव मापता है। कीमत प्रभाव दो विभिन्न शक्तियों अर्थात्

प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव का परिणाम है। दूसरे शब्दों में, कीमत प्रभाव को दो विभिन्न भागों-प्रतिस्थापन प्रभाव और आय प्रभाव-में विभाजित किया जा सकता है।

कीमत प्रभाव को आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव में विभाजित करने की मुख्यतः दो पद्धतियाँ हैं। प्रथम हिक्स द्वारा प्रस्तुत पद्धिति जिसमें **आय में क्षतिपूर्वक परिवर्तन** तथा **आय में समान परिवर्तन** द्वारा कीमत प्रभाव को उसके दो घटक-आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव में विभक्त किया जाता है। द्वितीय, स्लटूस्की द्वारा **लागत- अन्तर** की विधि द्वारा कीमत में परिवर्तन के प्रभाव को उसके दो भागों में विभाजित किया जाता है।

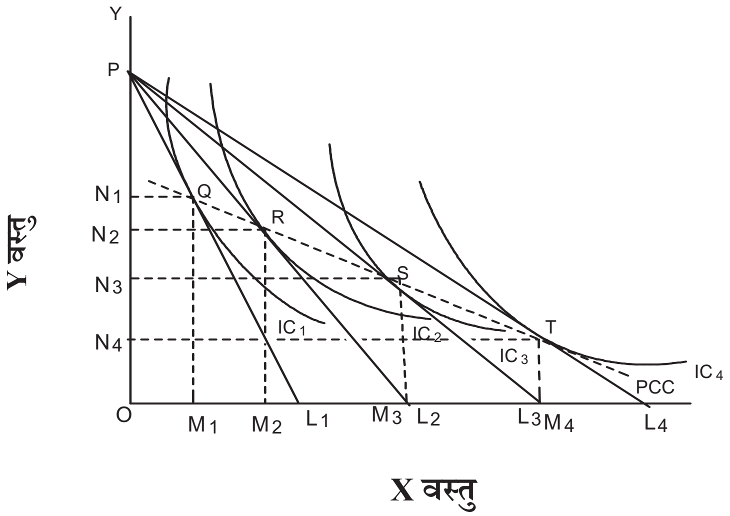

चित्र सं0 10.10 नीचे की ओर झुकता हुआ PCC

कीमत प्रभाव को रेखाचित्र 10.10 में दिखाया गया है। वस्तु X और Y की दी हुई कीमतों और उपभोक्ता दी हुई मुद्रा आय को बजट रेखा PL_1 व्यक्त करती है और उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु Q पर संतुलन में है। बिन्दु Q पर संतुलन की अवस्था में वह वस्तु X की OM_1 मात्रा खरीद रहा है और वस्तु Y की ON_1 मात्रा। कल्पना कीजिए कि वस्तु Xकी कीमत घट जाती है जबकि वस्तु Yकी कीमत और उसकी मुद्रा-आय समान रहती है। कीमत में इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप बजट रेखा परिवर्तित होकर PL_2 हो जाएगी। अब उपभोक्ता ऊँचे अनधिमान वक्र IC_2 के बिन्दु R पर संतुलन में है और वस्तु X की OM_2 मात्रा और Yकी ON_2 मात्रा क्रय कर रहा है। इसलिए वह वस्तु X की कीमत के घटने के फलस्वरूप पहले से अधिक संतुष्ट हो गया है। कल्पना कीजिए कि वस्तु Xकी कीमत और घट जाती है जिससे कि बजट अथवा कीमत रेखा परिवर्तित होकर PL_3 हो जाती है। कीमत रेखा PL_3 से उपभोक्ता वक्र IC_3 के बिन्दु S पर संतुलन में है जहाँ वह वस्तु X की कीमत घट जाती है जिससे कि बजट रेखा PL_4 बन जाती है तो उपभोक्ता अनधिमान वक्र IC_4 के बिन्दु T

पर संतुलन की अवस्था को प्राप्त करता है और उस पर वस्तु X की OM_4 मात्रा और वस्तु Y की ON_4 मात्रा को ले रहा है।

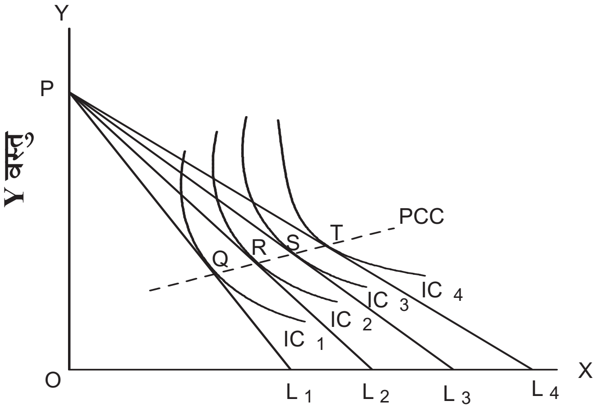

X वस्तु चित्र सं0 10.11 ऊपर की ओर बढ़ता PCC

जब विभिन्न बिन्दुओं Q, R, S और T को परस्पर मिलाया जाता है तो हमें एक वक्र प्राप्त होता है। जिसे **कीमत उपभोग वक्र** कहते हैं। कीमत उपभोग वक्र कीमत प्रभाव को ही प्रकट करता है। यह इस बात को प्रकट करता है कि उपभोक्ता की रूचियाँ और मुद्रा-आय स्थिर रहने पर वस्तु X की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता द्वारा वस्तु X की क्रय-मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है। रेखाचित्र 10.11 में कीमत उपभोग वक्र नीचे को झुका है। **नीचे को झुके हुए उपभोग वक्र का अर्थ है कि जब वस्तु X की कीमत घटती है तो उपभोक्ता उसकी अधिक मात्रा क्रय करता है और वस्तु Y की कम मात्रा**। यह बात रेखा चित्र से स्पष्ट है।

किन्तु नीचे को झुका हुआ कीमत उपभोग वक्र केवल एक सम्भावना है। कीमत उपभोग वक्र के अन्य भी कई रूप हो सकते हैं। रेखा चित्र 10.12 में ऊपर को चढ़ता हुआ कीमत उपभोग वक्र दिखाया गया है। ऊपर को चढ़ते हुए कीमत उपभोग वक्र का अर्थ यह है कि जब वस्तु X की कीमत घटती है तो दोनों वस्तुओं X और Y की माँग मात्रा बढ़ती है। कीमत उपभोग वक्र पीछे को भी मुड़ता हुआ हो सकता है , वस्तु X के लिए पीछे को मुड़ता हुआ कीमत उपभोग वक्र इस बात इस बात को इंगित करता है कि जब वस्तु X की कीमत घटती है तो इसकी कम मात्रा माँगी अथवा खरीदी जाती है और जब उसकी कीमत बढ़ती है तो उसकी अधिक मात्रा खरीदी जायेगी। ऐसी **गिफन पदार्थो** की दशा में होता है जो कि माँग के सामान्य नियम के अपवाद हैं।

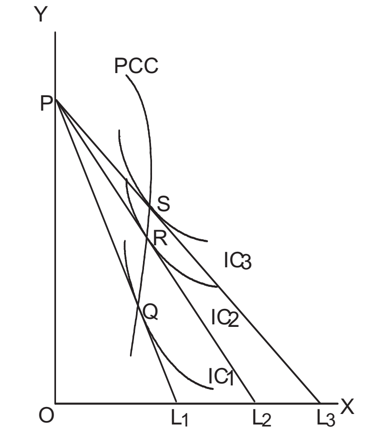

X वस्तु चित्र सं0 10.12 पीछे की ओर मुड़ता हुआ

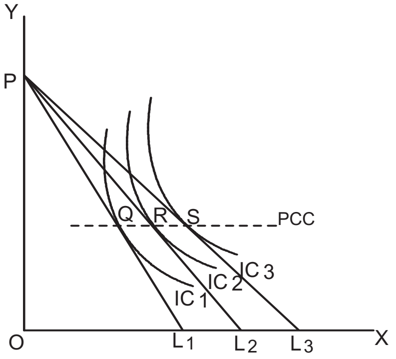

X वस्तुचित्र सं0 10.13 क्षितिज के सामान्तर PCC

किसी वस्तु के लिए कीमत उपभोग वक्र क्षितिज समानान्तर सीधी रेखा भी हो सकता है। कीमत उपभोग वक्र के क्षितिज के समानान्तर सरल रेखा का यह अर्थ है कि जब वस्तु X की कीमत घटती है तो इसकी खरीदी गई मात्रा बढ़ती है लेकिन वस्तु Y की खरीदी गई मात्रा स्थिर और समान रहती है। क्षितिज के सामानान्तर कीमत उपभोग रेखा को रेखा चित्र 10.13 दिखाया गया है।

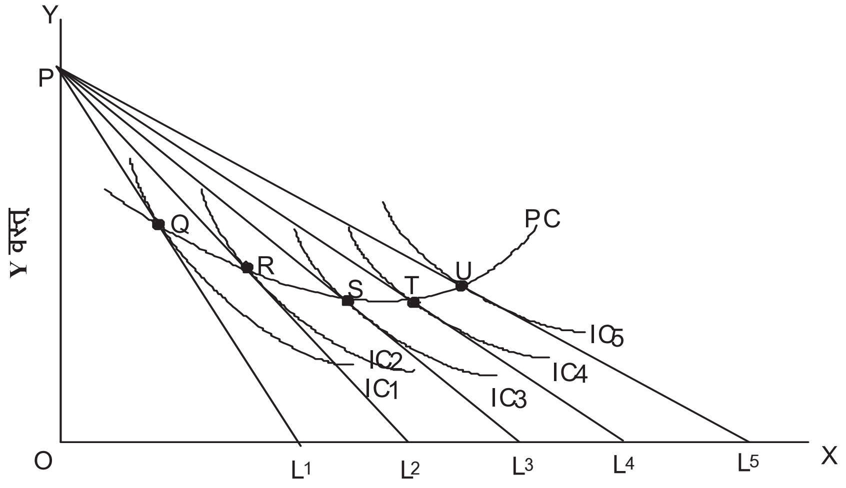

X वस्तु चित्र सं0 10.14 भिन्न कीमतों पर भिन्न स्लोप की PCC

परन्तु वास्तविक जगत् में यह बहुत ही कम पाया जाता है कि कीमत उपभोग वक्र अपनी समस्त लम्बाई में नीचे को गिरता हुआ हो अथवा ऊपर को चढ़ता हआ हो अथवा पीछे को मुड़ता हुआ हो अथवा क्षितिज के समानान्तर रेखा हो। सामान्यतया कीमत उपभोग वक्र विभिन्न कीमतों पर भिन्न-भिन्न ढाल का होता है। ऊँचे कीमत स्तरों पर यह प्रायः नीचे को झुका हुआ होता है और कुछ कीमतों पर इसकी आकृति क्षितिज के समानान्तर हो सकती है, किन्तु अन्ततः यह ऊपर को चढ़ता

हुआ होता है। हॉ, कुछ कीमत स्तरों यह पीछे को मुड़ता हुआ भी हो सकता है। एक कीमत उपभोग वक्र जिसकी ढाल विभिन्न कीमत स्तरों पर भिन्न-भिन्न है, को रेखा चित्र 10.14 में दिखाया गया है।

10.7 गिफेन पदार्थ

कुछ निम्न पदार्थ ऐसे भी हो सकते हैं जिनकी दशा में ऋणात्मक आय प्रभाव बहुत बलवान हो। ऐसी अवस्था में वस्तु की माँगी गयी मात्रा कीमत के गिरने पर घटेगी और कीमत के बढ़ने पर बढ़ेगी अर्थात् ऐसी वस्तु की दशा में कीमत और माँग में सीधा सम्बन्ध होगा। यदि वस्तु निम्न पदार्थ है तो आय प्रभाव अधिक शक्तिशाली होने के अतिरिक्त ऋणात्मक भी होगा और संभव है कि वह प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक हो जिसके फलस्वरूप वस्तु की कीमतें घटने पर उपभोक्ता उसकी कम मात्रा खरीदेगा। **ऐसी निम्न वस्तुएं जिनकी दशा में उपभोक्ता उनकी कीमत गिरने पर उनके उपभोग को घटा देता है ओर उनकी कीमते बढ़ने पर उपभोग को बढ़ा देता है को गिफेन पदार्थ कहा जाता है।**

ऐसी वस्तुओं को गिफेन पदार्थ इसलिए कहा जाता है क्योंकिउन्नीसवी शताब्दी के ब्रिटेन के सांख्यिकीविद् Sir Robert Giffen ने यह दावा किया कि जब सस्ते प्रकार के खाद्य पदार्थ जैसे कि ब्रेड की कीमत बढ़ गई तो लोगों ने उसका उपभोग घटाने के बजाय बढ़ा दिया। ब्रेड की कीमत में वृद्धि ने निर्धन जनता की क्रय शक्ति में इतनी कमी कर दी कि वे मीट व अन्य महंगे खाद्य पदार्थों का उपभोग घटाने पर विवश हो गये। ब्रेड पहले से अधिक मंहगी हो जाने पर भी दूसरों की तुलना में अपेक्षाकृत सस्ती थी इसलिए लोगों ने इसका उपभोग घटाने के बजाय बढ़ा दिया। इसी प्रकार जब निम्नकोटि की ब्रेड की कीमत गिरती है तो लोग पहले की अपेक्षा कम मात्रा खरीदेंगे।

निकृष्ट कोटि की वस्तुओं से अभिप्राय हमारा उन वस्तुओं से है जिनके सम्बन्ध में मूल्य जन्य आय प्रभाव धनात्मक हो। **निकृष्ट कोटि की वस्तुएं दो प्रकार** की होंगी-**कम निकृष्ट तथा अति निकृष्ट या गिफेन वस्तु। कम निकृष्ट कोटि की वे वस्तुएं है जिनके सम्बन्ध में आय प्रभाव तो धनात्मक रहता है पर मूल्य प्रभाव ऋणात्मक बना रहता है** जबकि **गिफेन वस्तुएं एक विशिष्ट प्रकार की निकृष्ट वस्तुएं है जिनके सम्बन्ध में आय प्रभाव के प्रबल रूप से धनात्मक होने के कारण मूल्य प्रभाव भी धनात्मक हो जाता है**। एक गिफेन पदार्थ होने के लिए निम्न तीन शर्तों का होना आवश्यक है-

1. **वस्तु निकृष्ट हो जिसका ऋणात्मक प्रभाव शक्तिशाली हो।**
2. **उस वस्तु का प्रतिस्थापन प्रभाव कम हो, तथा**
3. **उस वस्तु पर आय का एक अधिक हिस्सा व्यय किया जाता हो।**

गिफेन पदार्थ सैद्धान्तिक दृष्टि से तो संभव है लेकिन वास्तविक संसार में इसके पाये जाने की संभावना बहुत ही कम है क्योंकि संसार में लोगों का उपभोग विविध प्रकार का होता है। मार्शल ने गिफेन पदार्थ या गिफेन विरोधाभास को अपने माँग के नियम का अपवाद माना और अपने व्यख्या

में इसे शामिल नहीं किये। इसलिए अनधिमान विश्लेषण की इससे श्रेष्ठता सिद्ध होती है कि उपभोक्ता के व्यवहार की व्यापक व्याख्या इसमें की गयी है।

10.8 अनधिमान वक्र से माँग वक्र की व्युत्पत्ति

अनधिमान वक्र मानचित्र की सहायता से माँग वक्र ज्ञात किया जा सकता हैं। माँग वक्र कीमत एवं माँगी गई मात्रा को व्यक्त करता हैं। अनधिमान मानचित्र से माँग वक्र ज्ञात करने के लिए हम एक वस्तु X की कीमत में काल्पनिक परिवर्तन लाते है एवं अन्य वस्तुओं की कीमतें यथावत् रहती हैं। X वस्तु की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता का संतुलन स्तर बदलता रहता है। इन विभिन्न संतुलन बिन्दुओं को मिलाकर हम मूल्य उपभोग वक्र (PCC) ज्ञात कर सकते है। अनधिमान मानचित्र, X तथा Y वस्तु की कीमतें एवं उपभोक्ता की मौद्रिक आय ज्ञात होने पर हम माँग वक्र ज्ञात कर सकते हैं। इसे चित्र 10.15 से प्रदर्शित किया गया है।

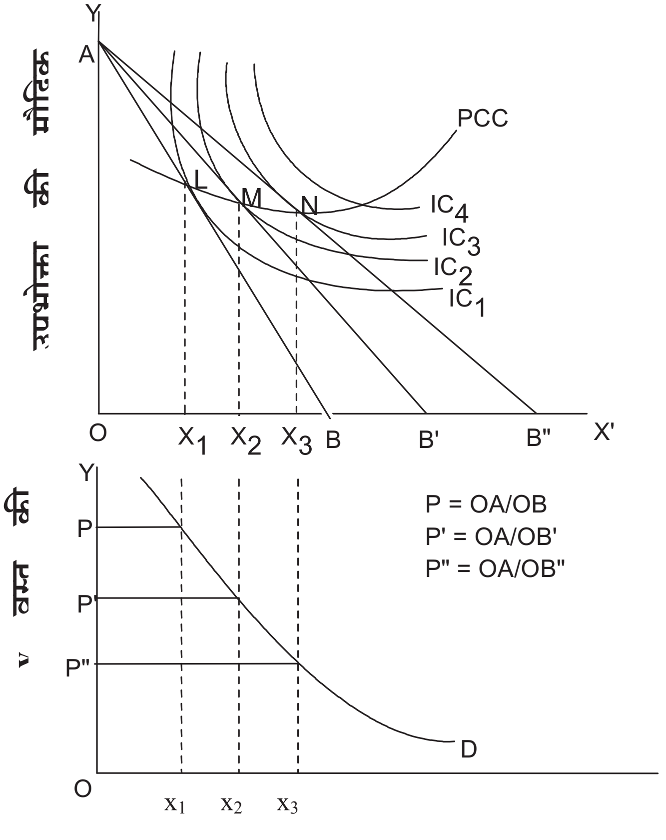

x वस्तु की मात्राचित्र सं0 10.15

उपभोक्ता की मौद्रिक आय को Y अक्ष पर तथा X वस्तु की माँगी गई मात्रा को X अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। AB प्रारम्भिक ''बजट-रेखा'' है। Xवस्तु की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप बजट रेखा AB से आगे खिसककर AB" तथाAB" हो जाती है। उपभोक्ता के संतुलन बिन्दु क्रमशः L,M,

एवं N है। जिन पर वह क्रमशः X_1, X_2 एवं X_3 मात्राएं खरीदता है। वस्तु की कीमत ज्ञात करने के लिए उपभोक्ता की कुल मौद्रिक आय OA में कुल संभावित क्रय की मात्रा OB का भाग देना पड़ेगा। कीमत च्त्रव्‌ध्व्ठ होगी। इसी प्रकार विभिन्न संतुलन बिन्दुओं पर ग् वस्तु की कीमतों का अनुमान लगाया जा सकता है। जैसे OP′ = OA/OB′(OP"=OA/OB")इत्यादि। माँगी गई मात्रा एवं माँग के इन बिन्दुओ को नीचे चित्र के दूसरे भाग में प्रदर्शित करके परम्परागत माँग वक्र ज्ञात किया गया है। अनधिमान वक्र रेखाओं की सहायता से माँग वक्र ज्ञात करने की अन्य वैकल्पिक विधियॉ भी है। अनधिमान वक्र विधि की भी कुछ सीमाएं है। तटस्थता वक्र विधि की आलोचना करते हुये प्रो0 डी0एच0 राबर्टसन लिखते हैं यह विधि हमें मांग-सिद्धान्त के बारे में कोई नई जानकारी नहीं देती।

10.9 अनधिमान वक्रों के अनुप्रयोग

हमनें मांग के अनधिमान वक्र विश्लेषण का अध्ययन किया है, परन्तु अनधिमान वक्रों की तकनीक का प्रयोग केवल उपभोक्ता के व्यवहार एवं मांग विश्लेषण तक ही सीमित न रहकर अन्य अनेक आर्थिक विषयों की व्याख्या के लिए भी किया गया है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता की मांग के विश्लेषण के अतिरिक्त अनधिमान वक्र के अनेक प्रयोग हैं। यहाँ उनके कुछ अनुप्रयोगों की व्याख्या प्रस्तुत है-

आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव एवं कीमत प्रभाव का अध्ययन

मार्शल की मांग की उपयोगिता विश्लेषण की तुलना में अनधिमान वक्रों की तुलनात्मक श्रेष्ठता इस रूप में देखी गयी है कि अनधिमान वक्र विश्लेषण में ही मांग में परिवर्तन करने वाले तत्त्वों यथा आय प्रभाव कीमत प्रभाव एवं प्रति स्थापन प्रभाव का अध्ययन करता है। आय में परिवर्तन होने से उपभोक्ता के उपभोग की मात्रा में परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन दोनों रूपों में हो सकता है। आय में वृद्धि भी हो सकती है तो आय में कमी भी हो सकती है। आय में परिवर्तन अगर आय में वृद्धि के रूप में होता है तो उपभोग की मात्रा में वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता ऊंचे अनधिमान वक्र पर जाने से ऊंचे सन्तुष्टि के स्तर पर पहुंच कर सन्तुलन को प्राप्त करता है। ऐसे कई सन्तुलन बिन्दुओं का Locus आय उपभोग वक्र कहलाता है। आय में वृद्धि का प्रभाव कुछ वस्तुओं के मामले में अपवाद भी होता है जिसे Giffen-Paradox कहा जाता है। निकृष्ट वस्तुओं का मूल्य गिरने पर उपभोग नहीं बढ़ता है। उपभोक्ता की जो वस्तु उत्कृष्ट लगती है उसी की ओर ICC का झुकाव होता जाता है। आय में कमी होने पर ठीक विपरीत स्थिति होती है।

कीमत प्रभाव के सन्दर्भ में भी अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग महत्वपूर्ण है। उपभोक्ता के रूचियों, आदत एवं आय वस्तुओं की कीमतों में स्थिर मानते हुए यदि एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है तो उपभोग की मात्रा में परिवर्तन होता है। यहां भी कीमत में वृद्धि एवं कीमत में कमी दोनों रूपों में कीमत प्रभाव का अध्ययन होता है। इसमें भी उपभोक्ता के सन्तुलन का रास्ता

होता है जिसे कीमत उपभोग वक्र कहते हैं। किसी एक वस्तु के कीमत में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता उस वस्तु के स्थान पर दूसरे वस्तु को प्रतिस्थापित करने लगता है जिसे हम प्रतिस्थापन प्रभाव के रूप में अनधिमान वक्रों के अनुप्रयोग से अध्ययन करते हैं। प्रतिस्थापन प्रभावों के अध्ययन में हिक्स एवं स्लट्स्की दोनों अर्थशास्त्रियों के प्रविधियों का प्रयोग करते हैं। वास्तव में कीमत प्रभाव, आय प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव का योग होता है जिसको अनधिमान वक्रों की सहायता से विस्तृत व्याख्या को आप विधिवत समझ गये होंगे।

10.3.3 उपभोक्ता की बचत का मापन - प्रो0 हिक्स ने अनधिमान-वक्र-प्रविधि से उपभोक्ता की बचत की एक नवीन व्याख्या की है। उनके अनुसार, उपभोक्ता की बचत वह मुद्रा-राशि है जो उपभोक्ता के आर्थिक स्तर में हुए किसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप उसे उसको इस ढंग से चुका दी जानी चाहिए अथवा उससे इस ढंग से वापस ले ली जानी चाहिए कि वह अपने पहले वाले अनधिमान-वक्र पर ही बना रहे। उपभोक्ता के आर्थिक स्तर में दो प्रकार से परिवर्तन हो सकता है- (प) वस्तु की मात्रा में परिवर्तन होता है, (पप) वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है।

10.3.5 दो व्यक्तियों में विनिमय - अनधिमान वक्र-प्रविधि का प्रयोग विनिमय विभाग में भी किया जाता है। दो व्यक्तियों के बीच दो वस्तुओं की विनिमय-दर का निर्धारण भी अनधिमान-वक्रों की सहायता से किया जा सकता है। इस दशा में प्रथम प्रयास सुविख्यात ब्रिटिश अर्थशास्त्री एफ0वाई0 इजवर्थ ने सन् 1881 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *Mathematical Psychics* में किया था। प्रो0 इजवर्थ के अनुसार, यदि दो व्यक्तियों की अधिमान-श्रेणियाँ एवं दो वस्तुओं की पूर्तियाँ दी हुई हों तो हम उन दोनों सीमाओं का निर्धारण कर सकते हैं जिनके बीच दोनों वस्तुओं की विनिमय-दर निश्चित होगी यद्यपि हमारे लिए यह बताना सम्भव नहीं कि वास्तविक विनिमय-दर क्या होगी। हम तो केवल उन सीमाओं का ही उल्लेख कर सकते हैं जिसके बीच विनिमय-दर निश्चित होगी। इन दोनों सीमाओं के बीच विनिमय-दर की वास्तविक स्थिति दोनों व्यक्तियों की सौदा करने की सापेक्ष योग्यताओं से निर्धारित होगी।

इसीप्रकार वह दो देशों के बीच दो वस्तुओं में होने वाले व्यापार पर पूर्णतः लागू होता है। अनधिमान वक्र-प्रविधि से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त की भी व्याख्या की जा सकती है।

10.3.6 राशनिंग में तटस्थता वक्रों का अनुप्रयोग - वैधानिक राशनिंग प्रणाली के अन्तर्गत व्यक्तिगत उपभोक्ताओं की समस्याओं का अध्ययन भी अनधिमान वक्र-प्रविधि द्वारा किया जा सकता है। आइए, हम दो उपभोक्ताओं का उदाहरण लें। एक तो दक्षिण भारतीय सुब्रह्मण्यम् और दूसरा उत्तर भारतीय राम है। दोनों ही वैधानिक राशनिंग के

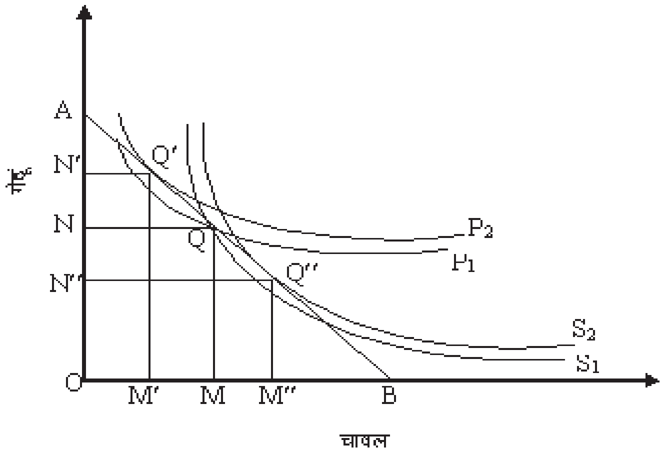

चित्र सं0 10.16

अन्तर्गत किसी बड़े औद्योगिक नगर में रह रहे हैं। दोनों को ही राशन के दुकान से गेहूँ तथा चावल का निश्चित मासिक राशन मिलता है। दोनों की मौद्रिक आय निश्चित है जिसे वे इन वस्तुओं के क्रय पर व्यय कर देते हैं। यद्यपि दोनों को गेहूँ एवं चावल का निश्चित राशन मिलता है, लेकिन उनके आस्वाद भिन्न-भिन्न हैं। दक्षिण भारतीय होने के नाते सुब्रह्मण्यम् गेहूँ की तुलना में चावल को अधिमान देता है। इसी प्रकार, राम उत्तर भारतीय होने के कारण चावल की तुलना में गेहूँ को अधिक पसन्द करता है। इन तथ्यों को रेखाचित्र 10.16 में यथावत् प्रस्तुत किया गया है।

10.3.7 कराधान सिद्धान्त में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग - अनधिमान वक्रों का प्रयोग व्यक्तियों के कल्याण पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के प्रभावों को ज्ञात करने के लिए भी किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि सरकार अपनी आय में वृद्धि करना चाहती है, तो व्यक्तियों के कल्याण के दृष्टिकोण से ऐसा प्रत्यक्ष कर लगाकर करना अच्छा होगा या अप्रत्यक्ष कर लगाकर। जैसा कि आगे प्रमाणित होगा अप्रत्यक्ष कर जैसे कि उत्पादन शुल्क ; विक्रय आदि व्यक्ति पर अत्यधिक भार डालतें है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब सरकार दोनों प्रकार के करों से अपनी आय में समान मात्रा में वृद्धि करती है, तो अप्रत्यक्ष कर, प्रत्यक्ष करों (जैसे कि आय कर) कि तुलना में व्यक्ति के कल्याण को अधिक मात्रा में घटा देते हैं।

10.3.8 उपभोक्ता उपादानों में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग - अनधिमान वक्र का एक और महत्वपूर्ण प्रयोग उपभोक्ता को दिए जाने वाले उत्पादन के प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए किया जाता है। आधुनिक युग में जनसाधारण के कल्याण को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा व्यक्तियों को अनेक प्रकार के उपदान दिये जाते हैं। उदाहरण के लिए हम खाद्य-उपदान को लेंगे, जिसे निर्धन परिवारों की सहायता के लिए सरकार प्रदान करती है। मान लीजिए, खाद्य-उपदान कार्यक्रम के अन्तर्गत निर्धन परिवारों को बाजार मूल्य से आधे मूल्य पर खाद्य पदार्थ खरीदने का अधिकार दिया

गया है और बाजार मूल्य के शेष आधे भाग का भुगतान सरकार द्वारा उपदान के रूप में किया जाता है।

10.3.9 श्रमपूर्ति एवं अनधिमान वक्र - अनधिमान वक्र विश्लेषण का उपयोग एक व्यक्ति की आय तथा अवकाश के मध्य चुनाव की व्याख्या करने तथा यह प्रदर्शित करने के लिए किया जा सकता है कि यदि श्रमिकों से अधिक घण्टे काम लेना है तो उन्हें क्यों अपेक्षाकृत ऊँची अतिसमय मजदूरी दरों का भुगतान किया जाना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि कुछ अवकाश के समय को काम में लगाकर आय अर्जित की जाती है अर्थात् कुछ अवकाश का परित्याग करके आय अर्जित की जाती है। एक व्यक्ति के अवकाश के इस परित्याग की मात्रा जितनी अधिक होती है अर्थात् वह जितना अधिक काम करता है वह उतनी ही अधिक आय अर्जित करता है।

10.6 अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1आय में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता के सन्तुलन पर पड़ने वाले प्रभाव को कहते हैं-.

क. आय प्रभाव ख. कीमत प्रभाव

ग. प्रतिस्थापन प्रभाव घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

2आय में क्षतिपूरक परिवर्तन प्रविधि सम्बन्धित है -

क. मार्शल ख. हिक्स

ग. ख एवं घ दोनों से घ. स्लटूस्की

3आय उपभोग वक्र पीछे ल् अक्ष की ओर मुड़ने का अर्थ है-

क. Y वस्तु निकृष्ट है ख. Y वस्तु उत्कृष्ट है

ग. X वस्तु निकृष्ट है घ. ख और ग दोनों सही हैं

उत्तर 1. क 2. ख 3. ख

बहुविकल्पीय प्रश्न

1 अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग का क्षेत्र नहीं है-

क. उपभोक्ता की बचत का मापन ख. उत्पादक का सन्तुलन

ग. विनिमय में घ. उपभोक्ता की यात्रा में

2 सूचकांको में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग-

क. होता है ख. नहीं होता है

ग. गलत है घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

3 उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त में अनधिमान वक्रों का प्रयोग किया था-

क. मार्शल ने ख. ड्यूपिट ने

ग. हिक्स ने घ. सैम्युएलसन ने

उत्तर 1. घ 2. क 3. ग

लघु प्रश्न

1. आय प्रभाव से क्या आशय है ?
2. कीमत प्रभाव से आपका क्या आशय है ?
3. गिफेन पैराडाक्स क्या है?

10.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि उपभोक्ता सन्तुलन के परिर्वतनकारी तत्वों-यथा आय प्रभाव, कीमत प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव का अध्ययन किया गया है। उपभोक्ता की आय में परिवर्तन दोनों रूपों में देखा गया यथा आय में वृद्धि या आय में कमी एवं कीमत में वृद्धि या कीमत में कमी। कीमत प्रभावों के अध्ययन में एक वस्तु पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते समय उपभोक्ता की आय, रूचियां एवं अन्य वस्तुओं की कीमतों को स्थिर मानकर अध्ययन करना पड़ता है। यदि वस्तु सस्ती होगी तो उपभोक्ता की क्रय शक्ति बढ़ेगी व उपभोग बढ़ेगा। फलतः कीमत उपभोग वक्र अनुराग के अनुसार झुकता जाएगा। प्रतिस्थापन प्रभाव के अध्ययन में हिक्स एवं स्लटट्स्की के विचारों को भी सम्मिलित किया गया है। वस्तुओं के स्वभाव के अंतर्गत गिफेन पदार्थ का निकृष्ट वस्तुओं को भी अध्ययन में शामिल किया गया है। अंत में, अनधिमान वक्रों द्वारा माँग वक्रों की व्युत्पत्ति के विचारों को साथ में प्रस्तुत किया गया हे। साथ ही अधिमान वक्रों का अनुप्रयोग जो अर्थशास्त्र में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों की व्याख्या की गई है।

10.10 शब्दावली

आय प्रभाव - वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहने पर उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तुओं की माँग में पड़ने वाले परिवर्तन को कहते है।

कीमत प्रभाव - कीमत प्रभाव उपभोक्ता की किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उस समस्त प्रभाव को मापता है जोकि उस वस्तु की क्रय मात्रा पर पड़ता है।

प्रतिस्थापन प्रभाव - प्रतिस्थापन प्रभाव वस्तुओं की केवल सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु की माँग अथवा उपभोग मात्रा पर प्रभाव को प्रकट करता है जबकि उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रहे।

गिफेन पदार्थ - ऐसी निकृष्ट वस्तुएं जिनकी दशा में उपभोक्ता उनकी कीमत गिरने पर उनके उपभोग को घटा देता है और उनकी कीमतें बढ़ने पर उपभोग को बढ़ा देता है।

उपभोक्ता की बचत - वस्तुओं के उपभोग से वंचित रहने की अपेक्षा वस्तु के लिए जितना देने को तैयार है एवं जितना वास्तव में देते हैं का अन्तर।

उत्पादक संतुलन - उत्पादक की वह परिस्थिति है जिसमें अधिकतम लाभ प्राप्त करता है।

10.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सेठी, टी. टी. (मक 2008) व्यष्टि अर्थशास्त्र लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।
- झिंगन, एम.एल. (2007) 'उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- आहूजा, एस.एल. (2006)उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त व्यष्टिपरक विश्लेषण'',चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

10.13सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Koutsoyinuis.A. (1979) Modern Microeconomics, (2nd Edition),Macmillian Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010) Principles of Micro Economics , S&Chand Publishing House .
- Peterson, L. and Jain ((2006)) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
- Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
- जे0पी0 मिश्र, व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण, मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी।
- एस0एन0 लाल, व्यष्टि अर्थशास्त्र शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- एस0पी0 दुबे, वी0सी0 सिन्हा - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, 1988 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- \डॉ0 बद्री विशाल त्रिपाठी एवं डॉ0 अमिताभ तिवारी - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल, इलाहाबाद।

11.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्र01 कीमत प्रभाव, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग होता है, व्याख्या करें।

प्र02 उत्पादक के संतुलन में अनधिमान वक्रों का अनुप्रयोग समझाइयें।

प्र03 हिक्स एवं स्लट्स्की के प्रतिस्थापन प्रभावों का वर्णन करें।

प्र04 कीमत उपभोग वक्र क्या होता है? क्या इसके द्वारा माँग वक्र का व्युत्पादन किया जा सकता है?

इकाई-11 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण

इकाई की रूप रेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण या सिद्धान्त
    11.3.3 माँग विश्लेषण का व्यवहारवादी दृष्टिकोण: सैम्युएलसन
    11.3.4 अधिमान परिकल्पना तथा सबल क्रमबद्धता
    11.3.5 उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त की मान्यताएं
    11.3.6 माँग का नियम तथा उद्घाटित अधिमान परिकल्पना
11.4 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण का मूल्यांकन
    11.4.1 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की श्रेष्ठता
    11.4.2 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के दोष/कमियां
    11.4.3 विश्लेषण के निष्कर्ष
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्न
11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के बाजार संरचना एवं कीमत निर्धारण से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के पहले आप बता सकते है कि उत्पादन फलन क्या है ? उपभोक्ता सन्तुलन कैसे होता है।

उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के अध्ययन में आपका स्वागत है। आप स्वयं एक उपभोक्ता है। क्या आप जानना नहीं चाहेंगे कि किसी वस्तु के उपयोग से उपयोगिता मिलती है कि नहीं? अगर मिलती है तो कितनी? यहां ''कितनी'' का संख्यात्मक मापन अगर संभव नहीं तो उसका विकल्प क्या है? इस रूप में यह अर्थशास्त्र सिद्धान्त का रूचिकर एवं सरस विषय है। इस विश्लेषण के द्वारा उपभोक्ता सन्तुलन को कैसे प्राप्त करेगा? उद्घाटित अधिमान का स्वरूप क्या होगा इस इकाई के द्वारा आप जानने में सक्षम हो जायेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उद्घाटित अधिमान की सहायता से उपभोक्ता का सन्तुलन का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- उद्घाटित अधिमान के उद्गम विकास, अर्थ, मान्यताएं और विश्लेषण को बता सकेगें।
- उद्घाटित अधिमान की सहायता से उपभोक्ता का सन्तुलन जानना।
- यह विश्लेषण कितना श्रेष्ठ है? इसमे भी कुछ दोष-कमियां हैं कि नहीं समझाने में आप सफल होंगे।

11.3 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण

उद्घाटित अधिमान विश्लेषण या सिद्धान्त का प्रतिपादन सुविख्यात अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 पाल0ए0 सैम्युएलसन ने किया है। हाल ही के वर्षो में उन्होंने इस सिद्धान्त को वैकल्पिक माँग सिद्धान्त के रूप में लोकप्रिय एवं विश्वसनीय बनाने का अथक प्रयास किया है। मार्शल के माँग विश्लेषण एवं हिक्स के अनधिमान वक्र विश्लेषण का विकल्प देने का उनका यह विचार अर्थजगत् में प्रशंसनीय रहा।

11.3.3 माँग विश्लेषण का व्यवहारवादी दृष्टिकोण: प्रो0 सैम्युएलसन

उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों में सर्वथा भिन्न है। उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त मार्शल के सिद्धान्त की भाँति गणन-संख्यात्मक उपयोगिता अथवा सन्तुष्टि पर आधारित नही है। सत्य तो यह है कि उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त ने उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त के विषयगत अथवा मनोवैज्ञानिक आधार को पूर्णतः समाप्त कर दिया है। वास्तव में, दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के

प्रति उपभोक्ता के अधिमानों को जानने हेतु प्रो. सैम्युएलसन का उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त पूर्णतया उपभोक्ता के अवलोकित बाजार-व्यवहार पर ही निर्भर करता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त उपभोक्ता माँग की एवं व्यवहारवादी व्याख्या हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। बाजार में आय-कीमत सम्बन्धी परिवर्तनों के प्रति उपभोक्ता की प्रतिक्रियाओं पर दृष्टि रखतें हुए यह सिद्धान्त उसके अधिमानों से सम्बन्धित अपने निष्कर्ष निकाल लेता है। प्रो. सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त द्वारा व्युत्पादित निष्कर्ष मार्शल तथा हिक्स द्वारा निकालने गये निष्कर्षो की तुलना में अधिक विश्वसनीय हैं। इसका कारण ज्ञात करना कठिन नहीं है। उद्धटित अधिमान सिद्धान्त द्वारा निकाले गये निष्कर्ष अवलोकित बाजार-व्यवहार पर आधारित है। जबकि मार्शल तथा हिक्स द्वारा निकाले गये निष्कर्ष उपभोक्ता के मनोवैज्ञानिक व्यवहार से सम्बन्धित अस्पष्ट सामान्य-अनुमानों का परिणाम होते है। (स्मरण रहे, उपभोक्ता का मनोवैज्ञानिक व्यवहार आय-कीमत परिस्थिति में होने वाली परिवर्तनों से सम्बन्धित होता है।) अतः उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त मार्शल तथा हिक्स के प्रतियोगी सिद्धान्तों पर एक प्रकार का सुधार है। कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा इस सिद्धान्त को ''व्यवहारवादी क्रम-संख्यात्मक सिद्धान्त'' की संज्ञा दी गयी है। यह सिद्धान्त व्यवहारवादी इस अर्थ में है कि मार्शल तथा हिक्स के सिद्धान्तों की भांति यह सिद्धान्त उपभोक्ता की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं के बारे में अस्पष्ट सामान्यानुमान प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि यह सिद्धान्त तो उपभोक्ता के वास्तविक बाजार-व्यवहार का ही अध्ययन करता है। इसी प्रकार, यह सिद्धान्त क्रम संख्यात्मक इस अर्थ में है कि मार्शल के सिद्धान्त की भांति यह सिद्धान्त गणन-संख्यात्मक उपयोगिता की मान्यता पर आधारित नहीं है, बल्कि यह सिद्धान्त तो क्रम-संख्यात्मक उपयोगिता की मान्यता पर निर्मित किया गया है। आपकों स्मरण रहे, क्रम-संख्यात्मक उपयोगिता की मान्यता के अनुसार उपयोगिता का मात्रात्मक मापन तो नही हो सकता यद्यपि व्यवहार में इसकी तुलना अवश्य ही की जा सकती है। क्रम-संख्यात्मक उपयोगिता की धारणा (जिस पर उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त निर्मित किया गया है। मार्शल का गणन-संख्यात्मक धारणा पर स्वयं एक बहुत बड़ा सुधार है। सत्य तो यह है कि प्रो. सैम्युएलसन का ''व्यवहारवादी क्रम-संख्यात्मक'' सिद्धान्त मार्शल तथा हिक्स के सिद्धान्तों की अपेक्षा उपभोक्ता के व्यवहार के बारे में अधिक श्रेष्ठ, अधिक सुधरी हुई एवं अधिक वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

आइए, अब हम उस बाजार में उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन करें जिसमें दो में से केवल एक ही वस्तु की कीमत में परितर्वन होता है। (स्मरण रहे, यहाँ पर उपभोक्ता दोनों वस्तुओं पर अपनी धनराशि व्यय करने की योजना बना रहा है।) सम्भव है कि अपने वास्तविक बाजार-व्यवहार के माध्यम से उपभोक्ता यह तथ्य प्रकट करे कि उसकी अधिमान-श्रृंखला में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। दूसरे शब्दों में, यह सम्भव है कि उसका बाजार-व्यवहार माँग के नियम के अनुरूप न हो और वह एक वस्तु को उसकी कीमत-वृद्धि के बावजूद भी दूसरी वस्तु की तुलना में प्राथमिक देता रहे। उपभोक्ता की उक्त क्रिया का विश्लेषण करते समय हमें परम्परागत माँग के नियम को नहीं, बल्कि उसके (उपभोक्ता के) उद्घाटित अधिमान को ध्यान में रखना होगा।

जैसा कि आप समझ चुके हैं, तटस्थता -वक्र विश्लेषण में हमें उपभोक्ता से उतनी विषयगत जानकारी की आवश्यकता नहीं पड़ती है जितनी मार्शल के नव-क्लासिकल सिद्धान्त में पड़ती है। लेकिन फिर भी उपभोक्ता का तटस्थता -मानचित्र तैयार करने में हमें उससे कुछ न कुछ विषयगत जानकारी की आवश्यकता तो पड़ती ही है। उदाहरणार्थ, उपभोक्ता दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के प्रति अपना अधिमान व्यक्त करने की स्थिति में होना चाहिए। लेकिन उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त के अनुसार उपभोक्ता को अपने बारे में किसी प्रकार की विषयगत जानकारी देने की आवश्यकता नहीं होती। उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त तो बाजार-व्यवहार को निकट से देखकर ही उसके बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेता है।

11.3.4 अधिमान परिकल्पना तथा सबल क्रमबद्धता

प्रो0 सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त की अधिमान परिकल्पना' उनके माँग सिद्धांत का आधार है। इस परिकल्पना के अनुसार एक उपभोक्ता जब विभिन्न वैकल्पिक संयोगों में से संयोग A को चयन करने का निश्चय करता है तो वह अन्य समस्त संयोगों, जिनका वह क्रय कर सकता था की तुलना में संयोग Aके पक्ष में अपने अधिमान को उद्घाटित करता है। अन्य शब्दों में, जब उपभोक्ता संयोग ‘A’ का चयन करता है तो इसका अर्थ यह है कि अन्य सभी संयोगों को, जिनको वह खरीद सकता था, इस संयोग A की तुलना में हीन समझता है। एक अन्य प्रकार से इसको इस तरह भी कहा जा सकता है कि वह चयन किए गए संयोग A के पक्ष में, अन्य सभी उपलब्ध वैकल्पिक संयोगों को त्याग देता है। इस प्रकार प्रो0 सैम्युएलसन के शब्दों में चयन अधिमान को उद्घाटित करता है। संयोग A के चयन से उसका इस संयोग के पक्ष में दृढ़ अथवा सबल अधिमान स्पष्ट झलकता है जिसके कारण वह अन्य सभी संयोगों को त्याग देता है। चयन अधिमान को उद्घाटित करता है' की परिकल्पना के आधार पर हम उपभोक्ता के अधिमानों के सम्बन्ध में निश्चित सूचना प्राप्त कर सकतें है। परन्तु इसके लिए हमको उसके बाजार में व्यवहार का अवलोकन करना होता है। विभिन्न कीमत आय स्थितियों में उपभोक्ताओं द्वारा उद्घाटित अधिमानों के आधार पर हम उसके अधिमान-क्रम के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

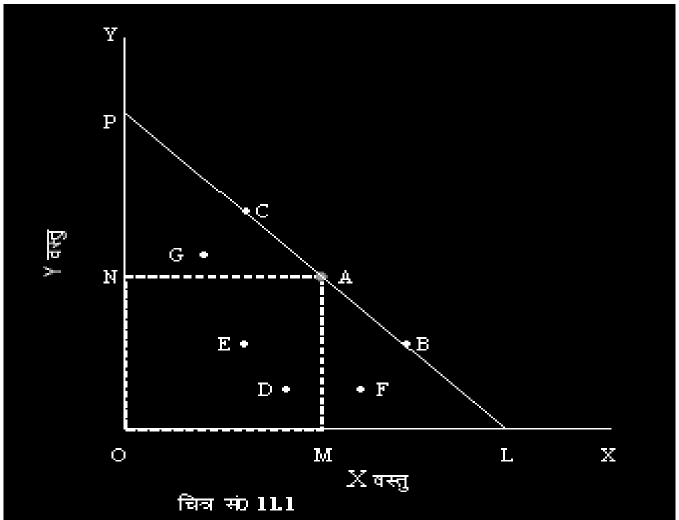

चित्र सं0 11.1

अधिमान परिकल्पना की व्याख्या चित्र सं0 11.1 की सहायता से की जा सकती है । चित्र 11.1 में यदि वस्तुओं x तथा y की कीमतों तथा उपभोक्ता की आय दी हुई हो तो बजट अथवा कीमत रेखा च्स् होगी। PL कीमत रेखा एक निश्चित कीमत-आय स्थिति को दिखाती है। PL द्वारा प्रदर्शित

कीमत-आय स्थिति की दशा में उपभोक्ता PL रेखा पर या OPL त्रिभुज के भीतर के किसी भी संयोग को प्राप्त कर सकता है। अन्य शब्दों में, PL रेखा पर के विभित्र संयोग जैसे, A,B,C तथा इस रेखा के नीचे के अन्य संयोग जैसे D,E,F तथा G आदि उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करतें हैं जिनको उपभोक्ता प्राप्त कर सकता है और इनमें से ही किसी एक का चयन उसको करना होगा। दी हुई कीमत आय स्थिति में समस्त संयोगों में से उपभोक्ता यदि संयोग A का चयन करता है तो स्पष्ट है कि इस संयोग को प्राप्त करने के लिए वह अन्य सभी संयोगों जैसे B, C, D, E तथा F को त्याग देता है। जैसे कि चित्र से स्पष्ट है; जब उपभोक्ता संयोग A का चयन करता है तो वह वस्तु Xकी OM मात्रा और वस्तु Y की ON मात्रा का क्रय करता है।

प्रो0 सैम्युएलसन का उद्घाटित अधिमान सिद्धांत किस प्रकार की अधिमान परिकल्पना पर निर्भर हैं, अधिक ध्यान देने योग्य है। सैम्युएलसन के दृढ़ अथवा उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त में सबल क्रमबद्धता की अधिमान परिकल्पना का प्रयोग किया गया है। सबल क्रमबद्धता का अभिप्राय यह है कि उपभोक्ता के अधिमान क्रम के विभिन्न संयोगों में निश्चित क्रम होता है और इसलिए जब एक उपभोक्ता किसी एक संयोग का चयन करता है तो अन्य प्राप्य संयोगों की तुलना में वह उसके लिए अपने अधिमान को स्पष्टतः उद्घाटित करता है। अतः सबल क्रमबद्धता स्थिति में यह मान लिया जाता है कि विभिन्न संयोगों के मध्य उपभोक्ता उदासीन नहीं हो सकता चित्र में जब प्राप्य विभिन्न संयोगों मे से उपभोक्ता संयोग । का चयन करता है, तो स्पष्ट है कि उसके मन में । के लिए अन्य सभी संयोगों की तुलना में निश्चित प्राथमिकता है। यहाँ सबल अथवा दृढ़ क्रमबद्धता की परिकल्पना के कारण इस सम्भावना को विचार में नहीं लिया जाता जिसमें कि उपभोक्ता अन्य संयोगों तथा चुने गए संयोग । में तटस्थ हो सकता है। प्रो0 जे0 आर0 हिक्स ने अपनी पुस्तक "Revision of Demand Theory'' में सबल क्रमबद्धता की परिकल्पना को सन्तोषजनक नहीं माना और निर्बल क्रमबद्धता की परिकल्पना का प्रयोग किया है। निर्बल क्रमबद्धता के परिकल्पना (इस अतिरिक्त मान्यता के साथ कि उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा की तुलना में अधिक मात्रा को सदैव प्राथमिकता देगा) में उपभोक्ता चुने गए संयोग A को POLत्रिभुज के अन्य संयोगों की तुलना में अधिक पसन्द करता है और इसके अतिरिक्त यह संयोग PL रेखा पर स्थित अन्य संयोगों की तुलना में उपभोक्ता द्वारा अधिक पसन्द किया जा सकता है अथवा उनके प्रति वह उदासीन हो सकता है। ''प्रबल तथा निर्बल क्रमबद्धता के परिणामों में मुख्य अन्तर यह है कि प्रबल क्रमबद्धता की स्थिति में चयन किए गए संयोग को त्रिभुज पर के तथा उसके भीतर के सभी संयोगो की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है जबकि क्षीण अथवा निर्बल क्रमबद्धता में इसको त्रिभुज के भीतर के सभी संयोगों की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है परन्तु रेखा पर स्थित अन्य संयोगों के प्रति उपभोक्ता उदासीन भी हो सकता है।

उद्घाटित अधिमान सिद्धांत जिस आधारभूत मान्यता पर आधारित है उसको संगति अभिधारणा कहा जाता है। वास्तव में संगति अभिधारणा' प्रबल क्रमबद्धता की परिकल्पना में निहित है। इस संगति अभिधारणा का वर्णन इस प्रकार से किया जा सकता हैः ''चयन व्यवहार के कोई भी दो पर्यवेक्षण इस प्रकार के नहीं होते जो उपभोक्ता के अधिमान के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी

प्रमाण प्रस्तुत करें।'' अन्य शब्दों में, संगति अभिधारणा यह बताती है कि यदि उपभोक्त B की तुलता में A का चयन किसी एक दशा में करता हैं तो किसी भी अन्य स्थिति में वह A की तुलना में B का चयन नहीं करेगा। यदि वह एक स्थिति में A की तुलना में B का चयन करता है और दूसरी स्थिति में जबकि A तथा B दोनों वर्तमान हैं, B की तुलना में A का चयन करता है तो उसके व्यवहार में संगति नहीं होगी। इस प्रकार 'संगति अभिधारणा' में यह आवश्यक है कि एक बार उपभोक्ता B की तुलना में A के पक्ष में अपने अधिमान को उद्घाटित कर देता है तो कभी भी, जबकि A व B दोनों वर्तमान हैं, वह A की तुलना में B का चयन नहीं करेगा। चूँकि यहाँ पर तुलना दो स्थितियों में है, इसलिए इमसें निहित संगति को हिक्स ने **''द्वि-पद संगति''** कहा है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त में संगति अभिधारणा तुष्टिगुण के अधिकतम करने की मान्यता, जिसका प्रयोग मार्शल के तुष्टिगुण सिद्धान्त तथा हिक्स-एलन के अनधिमान वक्र सिद्धान्त में किया गया है, से अधिक वास्तविक है। ''उपभोक्ता तुष्टिगुण अथवा संतुष्टि को अधिकतम करता है'', इस मान्यता को विवेकशीलता की मान्यता कहा जाता है। हाल ही में कुछ अर्थशस्त्रियों ने उपभोक्ता द्वारा तुष्टिगुण अधिकतम करने की मान्यता का खण्डन किया है। उनका कहना है कि वास्तविक जीवन में उपभोक्ता तुष्टिगुण को अधिकतम नहीं करते। उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त का एक लाभ यह है कि इसके द्वारा प्रयुक्त विवेकशीलता अथवा संगति की मान्यता को वास्तविक जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। इस सिद्धान्त में उपभोक्ता के विवकेशील होने का अभिप्राय केवल यह है कि वह संगत रूप से व्यवहार करे। चयन में संगति, तुष्टिगुण अधिकतम करने की मान्यता की तुलना में कम कठोर मान्यता है। यह एक मुख्य सुधार है जो सैम्युएलसन ने मार्शल के तुष्टिगुण तथा हिक्स-ऐलन के अनधिमान वक्रों के माँग के सिद्धान्तों पर किया है।

आपको इस पर ध्यान देना आवश्यक है कि सैम्युएलसन का उद्घाटित अधिमान एक सांख्यिकीय अवधारणा नहीं है। यदि यह सांख्किीय अवधारणा होती तो उपभोक्ता की स्थिति A के लिए प्राथमिकता केवल तभी मानी जाती जबकि उसको एक समान स्थितियों में कई बार चयन का अवसर प्रदान किया जाता। एक उपभोक्ता यदि विभिन्न संयोगों मे से एक संयोग A का चयन अन्य संयोगों की तुलना में, अधिक बार करता है तो तब ही उसका संयोग A के लिए अधिमान सांख्किीय रूप से उद्घाटित कहा जाएगा। परन्तु सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त में उपभोक्ता अपने अधिमान को चयन की केवल एक क्रिया ही से उद्घाटित कर देता है। यह स्पष्ट है कि उपभोक्ता द्वारा केवल एक क्रिया में किया गया चयन दो स्थितियों में उसकी तटस्थता को प्रकट नहीं कर सकता। जब तक कि किसी व्यक्ति को दी हुई परिस्थितियों में अनेक बार चयन करने का अवसर न दिया जाय, तब तक वह विभिन्न संयोगों में अपनी तटस्थता प्रकट नहीं कर सकता। अतः चूँकि सैम्युएलसन केवल चयन की एक ही क्रिया से उपभोक्ता के अधिमान को उद्घाटित होना मान लेता है इसलिये तटस्थता सम्भावना उसके सिद्धान्त में नहीं है। अतः तटस्थता के सम्बन्धों का त्याग सैम्युएलसन द्वारा अपनाई गई अध्ययन विधि का ही परिणाम है।

11.3.5 उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त की मान्यताएं

उद्घाटित अधिमान विश्लेषण या सिद्धान्त की मान्यताओं के विश्लेषणोंपरान्त यदि इन मान्यताओं को संक्षिप्तीकरण करें तो जो प्रमुख बिन्दु उभरेंगे वे निम्नवत् हैं-

1. उपभोक्ता एक ऐसे संयोग को खरीदता है जिसमें दो ही वस्तुएँ सम्मिलित होती हैं, दो से अधिक नहीं। तटस्थता वक्र-विश्लेषण की भॉति उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त भी केवल दो वस्तुओं से ही सम्बन्धित है। यही कारण है कि सिद्धान्त की उपर्युक्त व्याख्या में हमने A तथा B दो वस्तुओं को ही लिया है।

2. उपभोक्ता की आय तथा दोनों वस्तुओं की कीमतें समूची विश्लेषण अवधि में स्थित रहती हैं।

3. उपभोक्ता के अ स्वाद एवं अभिरूचियाँ दी हुई होती हैं और विश्लेषण-अवधि में अपरिवर्तित रहती हैं।

4. यह मान लिया जाता है कि एक ही आय-कीमत परिस्थिति में उपभोक्ता दोनों वस्तुओं के छोटे संयोग की अपेक्षा बड़े संयोग को प्राथमिकता देता है।

5. उपभोक्ता को वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है बशर्ते उसकी कीमत में पर्याप्त कटौती की जाय।

6.उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त के अनुसार उपभोक्ता द्वारा किया गया चयन उसके अधिमान को प्रकट करता है।

7.प्रो0 सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण मान्यता यह भी है कि सबल क्रमबद्ध अथवा अधिमान उपकल्पना के सबल रूप पर आधारित है। प्रो. हिक्स द्वारा प्रतिपादित तटस्थता -वक्र-विश्लेषण दुर्बल क्रमबद्धता के आधार पर निर्मित किया गया था। सन् 1956 में प्रकाशित अपनी पुस्तक A Revision of Demand Theory में प्रो. हिक्स ने निस्सन्देह तटस्थता -वक्र-विश्लेषण का परितयाग कर दिया था, लेकिन उन्होनें दुर्बल क्रमबद्धता की मान्यता को नहीं छोड़ा है।

9. प्रो. सैम्युएलसन का उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त एक अन्य मान्यता पर भी आधारित है। यह मान्यता अनुरूपता अथवा संगति तथा सकर्मकता की है।

11.3.6 माँग का नियम तथा उद्घाटित अधिमान परिकल्पना

उद्घाटित अधिमान परिकल्पना का प्रयोग माँग-नियम के निर्धारण के लिए भी किया गया है। प्रो0 सैम्युएलसन ने अपनी उद्घाटित अधिमान परिकल्पना की सहायता से मार्शल के माँग के नियम का व्युत्पादन किया है । जैसा कि सर्वविदित है, मार्शल का माँग नियम यह बताता है कि एक वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर, यदि आय व अन्य कीमतें स्थिर रहें, वस्तु की माँग मात्रा में कमी हो जाती है। अन्य शब्दों में, मार्शल के माँग के नियम के अनुसार किसी वस्तु की कीमत तथा माँग -मात्रा में विलोम सम्बन्ध होता है। सैम्युएलसन माँग और कीमत के इस सम्बन्ध को इस मान्यता के आधार पर प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है कि माँग की आय-लोच धनात्मक है। धनात्मक आय लोच के द्वारा ही वह मार्शल द्वारा प्रतिपादित माँग व कीमत में सम्बन्ध को व्युत्पादित करता है। वह माँग

के नियम का, जिसको उसने ''उपभोग सिद्धान्त का आधारभूत नियम'' कहा है, निम्न प्रकार वर्णना करता है। ''कोई भी वस्तु (साधारण हो या जटिल), जिसकी माँग मौद्रिक आय के बढ़ने पर सदा बढ़ती है, की माँग मात्रा में अवश्य संकुचन होना चाहिए जब केवल इसकी कीमत में वृद्धि हो।'' आधारभूत उपभोग-नियम के उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सैम्युएलसन ने कीमत तथा माँग में विलोम सम्बन्ध नियम के लिए माँग की आय-लोच के धनात्मक होने को एक आवश्यक शर्त बना दिया है। आधारभूत नियम में ज्यामितिक प्रमाण को चित्र 11.2 में चित्रित किया गया है। मान लीजिए कि उपभोक्ता अपनी समस्त आय को दो वस्तुओं X तथा Y पर व्यय करता है। वस्तुओं की दी हुई कीमतों तथा आय से बजट रेखा AB बनायी गई है। AB रेखा उस कीमत-आय स्थिति को दर्शाती है जिसका सामना उपभोक्ता करता है। OAB त्रिभुज पर या उसके भीतर के समस्त संयोग उपभोक्ता को प्राप्य हैं और उनमें से किसी भी एक संयोग को वह चयन कर सकता है। मान लीजिए कि उपभोक्ता संयोग Q का चयन करता है। इसका अर्थ है कि उपभोक्ता OAB त्रिभुज पर के तथा उसके भीतर के विभिन्न संयोगों में से संयोग Q के लिए अधिमान को उद्घाटित करता है। अब मान लीजिए कि वस्तु X की कीमत बढ़ जाती है जबकि वस्तु Y की कीमत स्थिर रहती है। वस्तु Xकी कीमत के बढ़ने पर बजट अथवा कीमत रेखा AB से बदल कर AC हो जाती है। कीमत रेखा AC नई कीमत आय स्थिति को दर्शाती है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि वस्तु X की कीमत के बढ़ने का इसकी माँग पर क्या प्रभाव पड़ता है। हम यह मान लेते हैं कि माँग में परितर्वन आय में हो रहे परिवर्तनों की दिशा में होते हैं (अर्थात् माँग की आय-लोच धनात्मक है)। चित्र से स्पष्ट है कि कीमत-आय स्थिति AC में उपभोक्ता को संयोग Q प्राप्य नहीं है।

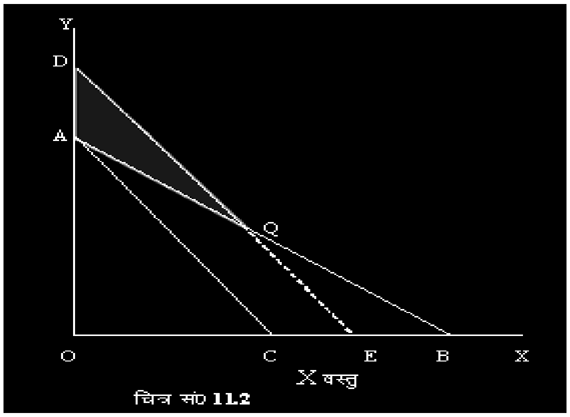

चित्र सं० 11.2

अब हम यह मान लेते हैं कि वस्तु X की बढ़ी हुई कीमत की क्षतिपूर्ति के लिए उपभोक्ता को अधिक रूपया देना होगा जिससे कि वह वस्तु X की बढ़ी हुई कीमत पर भी संयोग Q को प्राप्त कर सके।

वस्तु X की कीमत बढ़ने पर उपभोक्ता को पहले वाले संयोग क्रय को सम्भव बनाने के लिए जो अतिरिक्त रूपया देना होगा, उसको जे0आर0 हिक्स ने लागत अन्तर कहा है। चित्र में AC के समानान्तर रेखा DE इस प्रकार खींची गई है कि वह Q पर से गुजरे। DE रेखा वस्तु X की बढ़ी हुई

कीमत तथा उपभोक्ता की बढ़ी हुई आय (लागत-अंतर के बराबर) को प्रदर्शित करती है। अब प्रश्न यह है कि कीमत आय स्थिति DE में उपभोक्ता कौन से संयोग का चयन करेगा। कीमत आय स्थिति DE में भी प्रारम्भिक संयोग Q उपभोक्ता को उपलब्ध है। यह स्पष्ट है कि वह DE रेखा पर Q से नीचे के किसी भी संयोग का चयन नहीं करेगा क्योंकि यदि वह DE रेखा पर Q के नीचे के किसी संयोग को चुनता है तो उसका चयन असंगत होगा। DE पर Q के नीचे के सभी संयोगों अर्थात् QE पर के सभी संयोगों को वह पहले भी क्रय कर सकता था परन्तु AB कीमत आय स्थिति में उसने इन सभी को Q के लिए त्याग कर दिया था। (QE के समस्त बिन्दु OAB त्रिभुज में सम्मिलित थे)। चूँकि हम उपभोक्ता के व्यवहार में संगति की कल्पना कर चुके हैं इस लिए वह कीमत आय की DE स्थिति में QE पर Q की तुलना में, किसी भी संयोग को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा (जबकि उसको नई स्थिति में भी Q प्राप्य हैं)। इसलिए यह कहा जा सकता है कि DE कीमत-आय स्थिति में उपभोक्ता या तो पूर्व संयोग Q का ही चयन करेगा या DE रेखा के QD भाग पर अथवा उसके नीचे छायाकृत क्षेत्र के भीतर स्थित संयोग का चयन करेगा यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि QD पर स्थित संयोगों में Q की तुलना में पसंद करने में कोई असंगति नहीं होगी क्योंकि ये संयोग पहले वाली कीमत आय स्थिति AB में प्राप्य नहीं थे। QE कीमत आय स्थिति में उपभोक्ता यदि पूर्व संयोग Q का चयन करता है तो वह X तथा Y की पहले के बराबर ही इकाईयाँ प्राप्त करेगा और यदि वह QD पर Q से ऊपर की ओर तथा छायाकृत क्षेत्र के भीतर के किसी संयोग को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तो वह पहले की तुलना में X की कम मात्रा खरीदता है तथा वस्तु Y की अधिक। अतः यद्यपि वस्तु X की कीमत में हुई वृद्धि की क्षतिपूर्ति के लिए उपभोक्ता को अतिरिक्त आय पर्याप्त मात्रा में प्रदान कर दी गई है, तो भी वह वस्तु X की कीमत में वृद्धि होने पर या तो उसकी पहले जितनी मात्रा खरीदता है या पहले से कम। अब उसको जो अतिरिक्त क्रयशक्ति प्रदान की गई थी यदि उससे वापस ले ली जाय, तो वह निश्चित रूप से, वस्तु X की कीमत बढ़ने पर उसकी कम मात्रा का क्रय करेगा। ऐसा तब होगा जबकि आय में कमी होने पर वस्तु X की माँग गिरती है (अर्थात्, यदि माँग की आय-लोच धनात्मक हैं) अन्य शब्दों में, जबकि वस्तु X की कीमत बढ़ जाय और उपभोक्ता को कोई अतिरिक्त आय प्राप्त न हो जिस कारण वह AB कीमत-आय स्थिति में ही क्रय करता है तो वह, Q स्थिति की तुलना में, वस्तु X की कम मात्रा का क्रय करेगा। अतः माँग की आय लोच को धनात्मक मान कर, कीमत-माँग में विलोम सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है। कीमत गिरने की स्थिति में भी कीमत व माँग में विलोम सम्बन्ध को चित्र सं. 11.3 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए कि AB रेखा प्रारम्भिक कीमत आय स्थिति को दर्शाती है तथा उपभोक्ता OAB त्रिभुज पर के तथा इसके भीतर के समस्त संयोगों में से Q का चयन करता है। मान लीजिए कि वस्तु X की कीमत गिर जाती है और कीमत रेखा दायी ओर को विवर्तित होकर AC' बन जाती है।

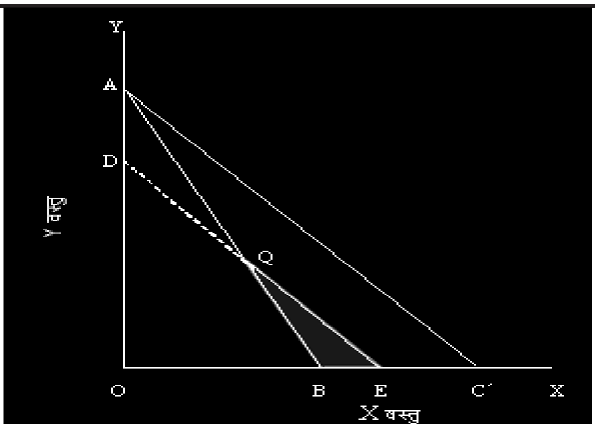

चित्र सं0 11.3

अब हम उपभोक्ता की क्रयशक्ति को कुछ कम कर देते हैं जिससे वह वस्तु X की DE कीमत पर Q संयोग को क्रय कर सकता है। अतः चित्र में AC' के समानान्तर DE रेखा खीची गयी है जोकि Q पर से गुजरती है। DE कीमत रेखा वस्तु X की कम कीमत (जैसे कि AC' द्वारा व्यक्त है) तथा उपभोक्ता की गिरी हुई आय (लागत-अंतर के बराबर कमी) को दर्शाती है। यह स्पष्ट है कि DE कीमत आय स्थिति में, उपभोक्ता Q बिन्दु से ऊपर की ओर QD पर के किसी भी संयोग का चयन नहीं करेगा क्योंकि ये सब संयोग उसको पूर्व कीमत-आय स्थिति AB में उपलब्ध थे औरQ उसने इन सब को त्याग दिया था। अतः उपभोक्ता या तो Q का चयन करेगा या QE पर के अथवा छायाकृत क्षेत्र के भीतर के किसी संयोग का। कीमत-आय स्थिति DE में, यदि वह Q का चयन करता है तो वह X तथा Y वस्तुओं की उतनी ही मात्रा प्राप्त करेगा जितनी की वह कीमत आय की पूर्व स्थिति AB में कर रहा था। परन्तु यदि वह QE पर के किसी संयोग का चयन करता है तो वह वस्तु X का क्रय अधिक मात्रा में करता है तथा वस्तु Y का कम मात्रा में (पूर्व कीमत-आय स्थिति AB की तुलना में)। अतः उपभोक्ता की आय के कम कर देने पर भी उपभोक्ता, कम कीमत पर वस्तु X की या तो पहले जितनी ही मात्रा खरीदता है या पहले से अधिक । यदि, जो क्रय शक्ति उससे ले ली गयी थी, वह उसको वापिस कर दी जाती है तो वह AC' कीमत आय स्थिति का सामना करेगा और, निश्चित रूप से, वस्तु X की कम कीमत पर इस वस्तु का क्रय अधिक मात्रा में करेगा। ऐसा तभी होगा जब कि आय के बढ़ने पर उस वस्तु X के लिए माँग बढ़ जाती है (अर्थात् वस्तु X के लिए उसकी माँग की आय-लोच धनात्मक है)।

उपर्युक्त विश्लेषण से माँग सिद्धान्त का आधारभूत नियम सिद्ध हो जाता है जिसके अनुसार जिस वस्तु की माँग में परिवर्तन आय में परिवर्तन की दिशा में होते हैं, उस वस्तु की माँग कीमत बढ़ने पर संकुचित तथा कीमत गिरने पर विस्तृत होती है। यह बताना आवश्यक है कि सैम्युएलसन के सिद्धान्त में दो मान्यताएँ निहित है। सर्वप्रथम, उपभोक्ता सर्वदा उन संयोगों में चयन करता है जो कीमत रेखा पर स्थित होते है। दूसरे शब्दों में, वह त्रिभुज के भीतर के किसी भी संयोग को वास्तव में

नहीं चुनता। यह इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता सदा, वस्तुओं की कम मात्रा की तुलना में, उनकी अधिक मात्रा को पसन्द करता है। सैम्युएलसन के सिद्धान्त में दूसरी निहित मान्यता यह है कि प्रत्येक कीमत-आय स्थिति में वह वस्तुओं के केवल एक संयोग के लिए ही अपना अधिमान उद्घाटित करता है। इन दो निहित मान्यताओं के आधार पर उपभोक्ताओं के चयन में संगति का व्यवहार तथा माँग की आय लोच के धनात्मक होने की दो स्पष्ट मान्यताओं के आधार पर सैम्युएलसन ने कीमत माँग में विलोम के नियम को सिद्ध किया है।

11.4 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण का मूल्यांकन

किसी भी सिद्धान्त के मूल्यांकन में उसके गुणों एंव त्रुटियों की विवेचना की जाती है। उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त भी इसका अपवाद नहीं है। कुछ अर्थशास्त्रियों का सृदृढ़ मत है कि यह सिद्धान्त मार्शल एवं हिक्स के पूर्वगामी माँग -सिद्धान्तों पर एक बहुत बड़ा सुधार है।

11.4.1 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की श्रेष्ठता

उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की श्रेष्ठता के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित है:

1. यह सिद्धान्त अधिक यथार्थ है - इस विश्लेषण के कतिपय समर्थकों का विचार है कि मार्शल तथा हिक्स द्वारा प्रतिपादित पूर्वगामी माँग-सिद्धान्तों की तुलना में यह सिद्धान्त अधिक यथार्थ है। जैसा कि हमें विदित है, मार्शल का विश्लेषण उपभोक्ता द्वारा अपने व्यय से प्राप्त उपयोगिता की गणन-संख्यात्मक माप पर आधारित है। मार्शल के अनुसार किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता को ठीक उसी प्रकार मापा जा सकता है जिस तरह किसी व्यक्ति के शारीरिक तापक्रम को थर्मामीटर से मापा जा सकता है। अब अर्थशास्त्र का एक साधारण नवागत भी भलीभांति यह जानता है कि मार्शल की उपर्युक्त मान्यता पूर्णतया अयथार्थ ही नहीं, बल्कि वास्तविक अनुभव के भी विपरीत है। अर्थशास्त्री के पास कोई ऐसा उपकरण नहीं है जिसकी सहायता से वह उपभोक्ता द्वारा अपने व्यय से प्राप्त उपयोगिता की माप कर सके। अतः उपयोगिता की गणन-संख्यात्मक माप का विचार विशुद्धतया काल्पनिक, अव्यवहार्य एवं अवास्तविक है। इसके विपरीत, प्रो. हिक्स का विश्लेषण उपयोगिता की क्रम संख्यात्मक माप पर निर्मित किया गया है। तटस्थता -वक्र-विश्लेषण के अनुसार उपभोक्ता निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि दो वस्तुओं के किसी विशिष्ट संयोग से उसे कितनी उपयोगिता अथवा संतुष्टि प्राप्त हुई है, क्योंकि उसे सही-सही मापने हेतु उसके पास कोई उपकरण नहीं हैं। उपभोक्ता तो केवल इतना ही कह सकता है कि दोनो वस्तुओं का A संयोग उसे उन्हीं दोनों वस्तुओं के B संयोग से अधिक अथवा कम उपयोगिता देता है। प्रो0 हिक्स की उपयोगिता की क्रम-संख्यात्मक माप की मान्यता पर एक बड़ा सुधार है। इसके बावजूद भी हिक्स की मान्यता पूर्णतया संतोषजनक नहीं है। इसके अन्तर्गत भी उपभोक्ता द्वारा यह जानने हेतु मनोवैज्ञानिक प्रयास किसा जाता है कि दोनों वस्तुओं का कौन-सा संयोग (A अथवा B) उसे अधिक संतुष्टि प्रदान करता है।

अतः मार्शल के विश्लेषण की भाँति हिक्स के विश्लेषण का स्वरूप भी मनोवैज्ञानिक है। उस सीमा तक यह कम यथार्थ है। लेकिन उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त का उपभोक्ता-व्यवहार के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से कोई संबंध नहीं है। यह सिद्धान्त तो बाजार में उपभोक्ता के वास्तविक अवलोकित व्यवहार पर पूर्णतः निर्भर करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार उपभोक्ता का व्यवहार समझने हेतु विश्लेषणकर्ता को उसकी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है। विश्लेषणकर्ता को निष्कर्ष निकालने हेतु उपभोक्ता के वास्तविक बाजार-व्यवहार का ही अध्ययन करना होगा। उपभोक्ता के वास्तविक अवलोकित बाजार-व्यवहार पर आधारित विश्लेषण उसकी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों पर निर्मित विश्लेषण की तुलना में कहीं अधिक अच्छा, कहीं अधिक यथार्थ एवं कहीं अधिक विश्वसनीय होता है। उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त द्वारा प्रदत्त निष्कर्ष एवं परिणाम मार्शल एवं हिक्स के माँग के सिद्धान्तों के निष्कर्षों की तुलना में अधिक यथार्थ एवं विश्वसनीय हैं। यही कारण है कि हाल ही के वर्षों में उद्घाटित अधिमान विश्लेषण ने मार्शल एवं हिक्स के प्रतियोगी विश्लेषणों को विस्थापित कर दिया है।

2. यह सिद्धान्त अधिक वैज्ञानिक है - उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त के समर्थकों का यह दावा भी है कि यह सिद्धान्त मार्शल तथा हिक्स के सिद्धान्तों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक है। जैसा कि सुविदित है, मार्शल का विश्लेषण वस्तु की बाजार माँग-अनूसूची पर आधारित है। माँग अनुसूची मे दो स्तम्भ होते हैं। प्रथम स्तम्भ में विभिन्न कीमतें दी होती हैं, और दूसरे स्तम्भ में उन कीमतों पर वस्तु की माँग मात्राओं को प्रस्तुत किया जाता है। स्पष्ट है कि माँग-अनुसूची में प्रदर्शित सभी कीमतों बाजार में प्रचलित कीमतें नहीं होती। उन विभिन्न विभिन्नों कीमतों में से केवल एक ही ऐसी कीमत होती है जो, वास्तव में, प्रचलित कीमत होती है। उस प्रचलित कीमत के समक्ष दिखायी गयी वस्तु की माँग-मात्रा ही वास्तविक माँग-मात्रा होती है। उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन करते समय ''प्रचलित कीमत'' और उसके समक्ष दिखायी गयी ''माँग-मात्रा'' ही वास्तव में प्रासंगिक मात्राएं होती हैं। माँग-अनुसूची का शेष भाग तो विश्लेषणकर्ता के लिए अनावश्यक एवं असंगत होता है।

हिक्स के विश्लेषण में भी बिलकुल वही त्रुटि पायी जाती है जो मार्शल के सिद्धान्त में निहित है। हिक्स द्वारा प्रस्तुत तटस्थता-वक्र (अथवा मानचित्र) दोनो वस्तुओं A तथा B के उन अनेक संयोगों को व्यक्त करते हैं जो उपभोक्ता अपने सीमित साधनों से खरीद सकने में समर्थ हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि उपभोक्ता उन दो वस्तुओं के सभी संयोगों को नहीं खरीद सकता। उसे तो इन सभी सम्भव वैकल्पिक संयोगों में से बस केवल एक संयोग का ही चयन करना है। हिक्स के कथनानुसार आय-कीमत रेखा एवं तटस्थता-वक्र का स्पर्श-बिन्दु ही दोनों वस्तुओं के उस संयोग को व्यक्त करता है जो उपभोक्ता द्वारा खरीदा जायेगा। लेकिन यह सम्भव है कि स्पर्श-बिन्दु द्वारा व्यक्त दोनों वस्तुओं का यह संयोग बाजार में उपभोक्ता को उपलब्ध ही न हो। इस सीमा तक तटस्थता वक्र विश्लेषण द्वारा प्रदर्शित निष्कर्ष यथार्थता-रहित होते हैं। यही नहीं, तटस्थता-मानचित्र दोनों वस्तुओं के अनेक ऐसें संयोगों को भी उद्घाटित करता है जो आय की सीमितता के कारण उपभोक्ता की पहुँच से परे होते हैं।

अतः ऐसे संयोग तो उपभोक्ता के लिए पूर्णतया असंगत होते हैं और उन्हें तटस्थता-मानचित्र में प्रदर्शित करने की आवश्यकता ही नहीं।लेकिन फिर भी ऐसे संयोगों को उपभोक्ता के मानचित्र में स्थान दिया जाता है। उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की श्रेष्ठता इस बात में निहित है कि यह दोनों वस्तुओं के उन संयोगों को उल्लेख नहीं करता है जो उपभोक्ता द्वारा नहीं खरीदे जाते। यह विश्लेषण तो केवल उसी संयोग का उल्लेख करता है जो बाजार में उपलब्ध है और जिसे, वास्तव में, उपभोक्ता खरीदता है।

3. यह सिद्धान्त अधिक संगत है- उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त पूर्वगामी माँग-विश्लेषण के इस दृष्टिकोण से श्री श्रेष्ठ हैं क्योंकि वह यह मानकर चलता है कि उपभोक्ता का बाजार-व्यवहार अधिक संगत एवं अधिक युक्तिक होता है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत उपभोक्ता का चयन अन्तिम होता है, और वह इस चयन में तब तक कोई परिवर्तन नहीं करता जब तक कि बाजार-परिस्थिति में कोई मूल परिवर्तन नहीं हो जाता। आइए, हम मान लें कि उपभोक्ता A संयोग का चयन करता है जबकि B, C, तथा D संयोग भी उपलब्ध हैं। यह यदि किसी अन्य परिस्थति में B, C तथा D विद्यमान हैं तो भी उपभोक्ता A संयोग को ही अधिमान्यता देना जारी रखेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि उपभोक्ता जब एक बार कोई चयन कर लेता है तब वह उसी चयन पर कायम रहता है जब कि बाजार-परिस्थिति में कोई मूल परिवर्तन नहीं हो जाता। इस प्रकार तटस्थता वक्र विश्लेषण की अपेक्षा उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के अधीन उपभोक्ता का व्यवहार अधिक संगत होता है। उदाहरणार्थ, तटस्थता वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत उपभोक्ता वस्तु संयोग का कोई निश्चयात्मक चयन नहीं करता है। वह तो समान उपयोगिता देने वाले अनेक विभिन्न संयोगों के प्रति उदासीन ही रहता है। वह किसी एक तटस्थता वक्र पर स्थित किसी भी बिन्दु का चयन कर सकता है क्योंकि सभी बिन्दु उसे समान उपयोगिता प्रदान करते हैं। मान लीजिए कि A,B C तथा D सभी एक ही तटस्थता -वक्र पर स्थित हैं। उपभोक्ता इनमें से किसी भी संयोग का चयन कर सकता है क्योंकि ये सभी संयोग समान उपयोगिता देने वाले हैं। यदि उपभोक्ता ने किसी परिस्थिति में A संयोग का चयन किया है तो किन्ही अन्य परिस्थितियों में वह B,C तथा D को भी चुन सकता है। इस प्रकार, तटस्थता वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत उपभोक्ता के व्यवहार में सामंजस्य का अभाव रहता है। यह दुर्बल क्रमबद्धता की मान्यता का परिणाम है जो इस विश्लेषण में निहित है।

4. कम मान्यताओं पर आधारित - सैम्युएलसन का यह सिद्धान्त अपेक्षाकृत कम मान्यताओं पर आधारित है।

11.4.2 उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के दोष/कमियाँ - प्रो0 सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान विश्लेषण पर्याप्त श्रेष्ठता के बावजूद इसमें कुछ दोष एवं त्रुटियाँ पायी जाती हैं। **प्रथम**, उद्घाटित अधिमान विश्लेषण ने उपभोक्ता के व्यवहार में तटस्थता की सम्भावना को पूर्णतः खारिज कर दिया है। इस विश्लेषण के अनुसार उपभोक्ता दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के प्रति उदासीन नहीं रह

सकता। उसे तो वस्तु-संयोग के बारे में एक ही अन्तिम निर्णय लेना है। दूसरे शब्दो में, उसे दो वस्तुओं के संयोग के बारे में एकल चयन ही करना है। इसका कारण यह था कि प्रो0 सैम्युएलसन ने इस विश्लेषण का निर्माण सबल क्रमबद्धता की मान्यता के आधार पर किया था। चूँकि उद्घाटित अधिमान विश्लेषण में तटस्थता की सम्भावना को खारिज कर दिया गया है, इसलिए कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस विश्लेषण की यह कहकर आलोचना की है कि यह न केवल अयथार्थ, बल्कि तथ्यों के भी विपरीत है। आलोचकों का तर्क यह है कि यदि उपभोक्ता के अधिमान का निर्णय उसके बाजार-व्यवहार के अनेक अवलोकनों को ध्यान में रखकर करना है तो फिर तटस्थता की सम्भावना को एकदम खारिज नहीं किया जा सकता। सम्भव है दोनों वस्तुओं के चयनित संयोग के आसपास ही तटस्थता के बिन्दु उत्पन्न हो जायें। इसका कारण स्पष्ट है। उपभोक्ता कोई यन्त्र मानव तो है नहीं कि वह एक ही वस्तु-संयोग का बार-बार चयन करता चला जाय। वह तो रक्त एवं अस्थियों का बना मानव है। उसे वास्तविक व्यवहार में निश्चय ही तटस्थता की सम्भावना उत्पन्न हो सकती है। यह बिल्कुल सम्भव है कि उपभोक्ता चयनित बिन्दु एवं पड़ोस में स्थित अन्य बिन्दुओं के बीच तटस्थता की भावना का प्रदर्शन करे।

दूसरे, कुछ आलोचकों ने माँग की आय की धनात्मक लोच की मान्यता को भी चुनौती दे डाली है। यह मान्यता, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान विश्लेषण का अभिन्न अंग है। प्रो0 सैम्युएलसन ने ‘‘उपभोग सिद्धान्त के मूलभूत नियम’’ का पुनर्निर्माण इस स्पष्ट मान्यता के आधार पर किया था कि माँग की आय-लोच (अथवा आय-प्रभाव) धनात्मक होती है। इसी मान्यता को आधार बनाकर सैम्युएलसन ने कीमत एवं माँग के बीच विपरीत सम्बन्ध की स्थापना की है। उपर्युक्त मूलभूत नियम के अनुसार कीमत एवं माँग के बीच विपरीत सम्बन्ध होता है। अधिकांश वस्तुओं के बारे में यह बात सही उतरती हैं। जब किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है, तो अन्य परिस्थितियां समान रहते हुए उसकी माँग में कमी हो जाती है। इसके विपरीत, जब उस वस्तु की कीमत में कमी होती है तो अन्य परिस्थितियां समान रहते हुए उसकी मांग में वृद्धि होती जाती है। लेकिन यह बात सभी वस्तुओं पर कार्यशील नहीं होती। उदाहरणार्थ, यदि माँग की आय-लोच (आय-प्रभाव) ऋणात्मक है तो कीमत एवं माँग के बीच विपरीत सम्बन्ध नहीं होगा। ऐसी परिस्थिति में तो माँग एवं कीमत के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध होगा। कीमत में वृद्धि के परिणामस्वरूप माँग में वृद्धि हो जायेगी। इससे प्रो0 सैम्युएलसन के ‘‘उपभोग सिद्धान्त के मूलभूत नियम’’ का आधार ही समाप्त हो जायेगा। यह नियम, जैसा की पहले कहा जा चुका है, कीमत एवं माँग के बीच के विपरीत सम्बन्ध पर निर्मित किया गया। इसका अभिप्राय यह हुआ कि सैम्युएलसन का उपर्युक्त नियम ‘‘गिफिन वस्तु’’ की व्याख्या करने में असमर्थ है।’’ ‘‘गिफिन वस्तु’’’ के मामले में ऋणात्मक आय-प्रभाव इतना अधिक शक्तिशाली होता है कि वह धनात्मक स्थानापत्ति-प्रभाव को नष्ट कर देता है। परिणाम यह होता है कि वस्तु की कीमत एवं उसकी माँग में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

दुर्योग से उद्घाटित अधिमान विश्लेषण ''गिफिन वस्तु'' की व्याख्या करने में असमर्थ है। वास्तव में, यह इस विश्लेषण की गम्भीर त्रुटि मानी जाती है।

लेकिन हिक्स द्वारा प्रतिपादित विश्लेषण में यह त्रुटि नहीं पायी जाती है। प्रो0 हिक्स का विश्लेषण इतना व्यापक है कि ''गिफिन वस्तु'' का मामला उसमें स्वतः ही सम्मिलित हो जाता है। इस दृष्टिकोण से हिक्स का तटस्थता -वक्र-विश्लेषण सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त से अधिक श्रेष्ठ है।

तीसरे, उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त कीमत-परिवर्तन के आय-प्रभाव एवं स्थानापत्ति-प्रभाव के बीच के अन्तर को स्पष्ट करने में असमर्थ रहता है। यदि किसी वस्तु की कीमत में कमी के परिणामस्वरूप उस वस्तु की माँग-मात्रा में वृद्धि हो जाती है तो उद्घाटित अधिमान विश्लेषण हमें यह नहीं बतलाता कि माँग-मात्रा में हुई वृद्धि का कितना अंश आय-प्रभाव और कितना अंश स्थानापत्ति-प्रभाव के कारण है। यह विश्लेषण तो हमें कीमत में हुई कमी के परिणामस्वरूप माँग-मात्रा में होने वाली कुल वृद्धि की जानकारी ही देता है। इसके विपरीत, तटस्थता -वक्र-विश्लेषण हमें केवल यह ही नहीं बताता कि वस्तु की माँग-मात्रा में कुल कितनी वृद्धि हुई बल्कि स्पष्टतः यह भी बताता है कि उस कुल वृद्धि का कितना भाग आय-प्रभाव और कितना भाग स्थानापत्ति-प्रभाव के कारण है। इस दृष्टिकोण से तटस्थता -वक्र-विश्लेषण उद्घटित अधिमान विश्लेषण की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। आय-प्रभाव तथा स्थानापत्ति-प्रभाव के बीच अन्तर करने में असमर्थता उद्घाटित अधिमान विश्लेषण की गम्भीर त्रुटि मानी जाती है। वास्तव में, यह त्रुटि तो इस विश्लेषण में निहित ही है। उद्घाटित अधिमान विश्लेषण, जैसा पहले आप समझ चुके हैं, उपभोक्ता के अवलोकित व्यवहार पर आधारित है। उपभोक्ता द्वारा किया गया चयन उसके बाजार-व्यवहार से ही प्रकट हो जाता है। अतः उपभोक्ता के अधिमानों को जानने के लिए उसके बाजार-व्यवहार को सावधानीपूर्वक देखना चाहिए। लेकिन उसके बाजार-व्यवहार को मात्र देखने से ही यह पता नहीं चलेगा कि माँग में हुई वृद्धि का कितना भाग आय-प्रभाव और कितना भाग स्थानापत्ति-प्रभाव के कारण है। यह दोष तो उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त में निहित ही है। स्मरण रहे, यह त्रुटि तो परम्परागत उपयोगिता विश्लेषण में भी पायी जाती है। डॉ0 मार्शल भी स्थानापत्ति-प्रभाव को आय-प्रभाव से पृथक करने में असमर्थ रहे थे। अतः उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त उतना विश्लेषिक नहीं है जितना कि तटस्थता -वक्र विश्लेषण है।

चौथे, उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त केवल व्यक्तिगत माँग-वक्र से ही सम्बन्धित होता है। इस कारण विश्लेषिक उद्देश्यों के लिए इस सिद्धान्त की उपयोगिता कम हो गयी है। इस दृष्टिकोण से मार्शल का माँग का उपयोगिता सिद्धान्त अधिक श्रेष्ठ एवं अधिक व्यापक है। यह व्यक्तिगत माँग-वक्र की ही नहीं, बल्कि बाजार माँग-वक्र की भी व्याख्या करता है।

पाँचवें, उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त केवल उसी उपभोक्ता का ही अध्ययन करता है जिसका बाजार-व्यवहार विशुद्धतः प्रचलित बाजार परिस्थितियों से शासित होता है। इस सिद्धान्त से यह मान लिया

गया है कि उपभोक्ता पर अन्य किसी तत्व का प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन, जैसा कि आप जानते हैं, बाजार में खरीददारी करते समय वास्तविक उपभोक्ता पर कई गैर-आर्थिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार, उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त के आदर्श उपभोक्ता एवं बाजार के वास्तविक उपभोक्ता में अन्तर पाया जाता है। चूँकि वास्तविक उपभोक्ता पर प्रचलित बाजार परिस्थितियों के अलावा अन्य कई गैर-आर्थिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है, अतः यह सम्भव है कि उसका अवलोकित व्यवहार ''अनुरूपता-मान्यता'' के विरूद्ध हो। दूसरे शब्दों में, इन्हीं गैर-आर्थिक तत्वों के कारण उपभोक्ता के अवलोकित व्यवहार में सामंजस्य का अभाव पाया जाता है।

11.4.3 विश्लेषण के निष्कर्ष - प्रो0 सैम्युएलसन के उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त की उपर्युक्त त्रुटियों एवं परिसीमाओं को ध्यान में रखते हुए यह कहना कठिन है कि यह सिद्धान्त तटस्थता -वक्र-विश्लेषण पर कोई सुधार है। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त का कल्याणकारी अर्थशास्त्र के लिए बहुत महत्व है।

अभ्यास प्रश्न

लघु प्रश्न

1. उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त की मान्यताएं क्या हैं?
2. उद्घाटित अधिमान विश्लेषण किस प्रकार तटस्थता वक्र विश्लेषण से श्रेष्ठ है?
3. सबल क्रमबद्धता (Strong ordering) किसे कहते हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.प्रकट अधिमान सिद्धान्त का आधार है -

क. निर्बल क्रमबद्धता ख. सबल क्रमबद्धता

ग. क और ख सत्य हैं घ. क और ख असत्य हैं

2.उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त आधारित है -

क. सख्यात्मक उपयोगिता पर ख. क्रमसूचक उपयोगिता पर

ग. अवलोकित बाजार व्यवहार पर घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. प्रकट अधिमान सिद्धान्त के प्रतिपादक थे-

क. राबर्टसन ख. सैम्युएलसन

ग. मार्शल घ. हिक्स

11.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 पाल ए0 सैम्युएलसन समस्त अर्थ जगत् में इसलिए प्रशंसनीय रहे क्योंकि उपभोक्ता विश्लेषण का उन्होंने ऐसा सिद्धान्त दिया जो प्रो0 मार्शल एवं प्रो0

हिक्स के विश्लेषणों की तुलना में श्रेष्ठ एवं वास्तविक रहा। मार्शल का सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण ''उपयोगिता मापनीय हैं'' के विचारों पर आधारित रहा। उनके संख्यावाचक दृष्टिकोण को अर्थशास्त्रियों ने स्वीकार नहीं किया। उनके निष्कर्ष भले ही महत्वपूर्ण रहे लेकिन उसकी विधियां अमान्य रहीं। कालांतर में प्रो0 हिक्स ने उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त का पुनर्निर्माण अधिमान वक्र विश्लेषण के आधार पर जब किया तो लोगों को लगा कि यही विकल्प है लेकिन इस मनोवैज्ञानिक विचार में भी अनेक त्रुटियां एवं दोष पाये गये। अर्थशास्त्रियों ने नयी बोतल में पुरानी शराब तक की संज्ञा दे डाली। परिणामतः बाजार में उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण करने में दोनों विकल्प कारगर सिद्ध नहीं हुए। सैम्युएलसन ने अपने विश्लेषण में विषयगत अथवा मनोवैज्ञानिक आधार को पूर्णतः समाप्त कर इसे पूर्णतया उपभोक्ता के अवलोकित बाजार व्यवहार पर आधारित किया। उनका यह सिद्धांत माँग की व्यवहारवादी व्याख्या करता हैं। प्रो0 सैम्युएलसन के निष्कर्ष मार्शल एवं हिक्स के निष्कर्षों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है। यह पूर्व विश्लेषणों पर एक प्रकार का सुधार है। यह सिद्धान्त व्यवहारवादी इस रूप में है कि अस्पष्ट एवं अनुमान पर आधारित नहीं है बल्कि इसके निष्कर्ष वास्तविक बाजार व्यवहार से लिये गये हैं।

प्रो0 सैम्युएलसन का दृढ़ अथवा उद्घाटित अधिमान विश्लेषण में सबल क्रमबद्धता की अधिमान परिकल्पना का प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ है कि उपभोक्ता के अधिमान क्रम के विभिन्न संयोगों में निश्चित क्रम होता है और इसलिए जब एक उपभोक्ता किसी एक संयोग का चयन करता है तो अन्य प्राप्य संयोगों की तुलना में वह उसके लिए अपने अधिमान को स्पष्टतः उद्घाटित करता है। अतः सबल क्रमबद्धता की स्थिति में यह मान लिया जाता है कि विभिन्न संयोगों के मध्य उपभोक्ता तटस्थ नहीं हो सकता। चयन व्यवहार में कोई भी दो पर्यवेक्षण इस प्रकार के नहीं होते जो उपभोक्ता के अधिमान के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी प्रमाण प्रस्तुत करें। इस प्रकार इस विश्लेषण में संगति अभिधारणा का तार्किक विधि से प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यह विश्लेषण अधिक यथार्थ , अधिक वैज्ञानिक एवं अधिक संगत युक्त है। इस सिद्धान्त की भी अपनी सीमायें एवं कमियां हैं, लेकिन इसमें सन्देह नही कि उद्घाटित अधिमान विश्लेषण के प्रतिपादन से कल्याणकारी अर्थशास्त्र में इसकी महत्ता एवं उपादेयता अत्यधिक बढ़ी है।

11.6 शब्दावली

क्रम संख्यात्मक उपयोगिता - जहॅा उपयोगिता का मात्रात्मक मापन नहीं वरन् व्यवहार में इसकी तुलना की जा सकती हो।

सबल क्रमबद्धता . उपभोक्ता के अधिमान क्रम के विभिन्न संयोगों में निश्चित क्रम होता है। जब उपभोक्ता किसी एक संयोग का चयन करता है तो अन्य प्राप्य संयोगों की तुलना में वह उसके लिए अपने अधिमान को स्पष्टतः उद्घाटित करता है।

अवलोकित बाजार व्यवहार . उपभोक्ता व्यवहार के जो निष्कर्ष बाजार में अवलोकित तथ्यों पर आधारित हों।

संगति अभिधारणा . जहां चयन व्यवहार में कोई भी दो पर्यवेक्षण इस प्रकार के नहीं होते जो उपभोक्ता के अधिमान के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी प्रमाण प्रस्तुत करें।

11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. ख 2. ग 3. ख

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेठी, टी. टी. (मक 2008) व्यष्टि अर्थशास्त्र लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा
2. झिंगन, एम.एल. (2007) 'उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. आहूजा, एस.एल. (2006)उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त व्यष्टिपरक विश्लेषण'',चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

11.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Koutsoyinuis.A. (1979) Modern Microeconomics, (2nd Edition),Macmillian Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010) Principles of Micro Economics , S&Chand Publishing House .
- Peterson, L. and Jain ((2006)) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
- Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
- जे0पी0 मिश्र, व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण, मिश्रा टेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी।
- एस0एन0 लाल, व्यष्टि अर्थशास्त्र शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- एस0पी0 दुबे, वी0सी0 सिन्हा - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, 1988 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

- डॉ0 बद्री विशाल त्रिपाठी एवं डॉ0 अमिताभ तिवारी - अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल, इलाहाबाद।

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. उद्घाटित अधिमान विश्लेषण में निहित मूल विचार की रेखाचित्र सहित व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2. उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

प्रश्न 3. क्या सैम्युएलसन का उद्घाटित अनधिमान विश्लेषण हिक्स के विश्लेषण के ऊपर सुधार है? विवेचना कीजिए।

इकाई – 12 लागत एवं आगम वक्र

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना
12.1 इकाई का उद्देश्य
12.2 लागत की धारणाएं
12.2.1 मौद्रिक लागत
12.2.2 वास्तविक लागत
12.2.3 अवसर लागत
12.3 अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन लागतें
12.3.1 अल्पकालीन लागतें - कुल उत्पादन लागत
12.3.2 प्रति इकाई उत्पादन लागत
12.3.3 सीमान्त लागतें
12.3.4 सीमान्त लागत व औसत लागत में सम्बंध
12.4 दीर्घकालीन लागते वक्रें
12.4.1 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र
12.4.2 दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र
12.5 आगम तथा आगम वक्र
12.5.1 आगम की विभिन्न धारणाएं
12.5.2 औसत आगम तथा सीमान्त आगम वक्र
12.5.3 औसत आगम व सीमान्त आगम के मध्य सम्बंध
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
12.9 संदर्भ ग्रन्थ
12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

पूर्व के अध्यायों में आप पढ़ चुके हैं कि बाजार में उपभोक्ता का क्या उद्देश्य होता है तथा वह किस प्रकार से व्यवहार करता है। साथ ही अपने विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से यह अध्ययन भी किया कि उपभोक्ता अपने साम्य को किस प्रकार प्राप्त करता है।

इस खण्ड में हम उत्पादक अथवा फर्म के व्यवहार का अध्ययन करेंगे। जिस प्रकार एक उपभोक्ता का उद्देश्य अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना होता है उसी प्रकार उत्पादक अथवा फर्म का मौलिक उद्देश्य अपने लाभों को अधिकतम करना माना गया है। फर्म के लाभ उसके कुल आगम तथा कुल लागत के अन्तर के बराबर होता है।

अतः किसी फर्म की उत्पादन की मात्रा के निर्धारण में उत्पादन लागत व आपेक्षित आगम का महत्वपूर्ण स्थान होता है। फर्म द्वारा लिये गये उत्पादन सम्बंधी निर्णय एक ओर इस बात पर निर्भर करते हैं कि प्रति इकाई लागतें कितनी आ रही है और दूसरी ओर इस बात पर निर्भर करता है कि बाजार में प्रति इकाई कीमतें कितनी प्राप्त हो रही है। इस इकाई में हम फर्म के लागत तथा आगम वक्रों का अध्ययन करेंगे। अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन लागत वक्रों की विवेचना करने से पूर्व हमें लागत की विभिन्न अवधारणाओं को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

12.1 इकाई का उद्देश्य

यह इकाई आपको फर्म की लागतों एवं आगम की धारणाओं से परिचित करेगी। इस अध्ययन के पश्चात आप यह समझने में सक्षम होंगे किः-

- लागत की विभिन्न धारणाएं कौन सी हैं?
- लागत क्या प्रदर्शित करती है?
- लागत वक्रों की प्रवृति क्या होती है?
- आगम की विभिन्न धारणाएं क्या हैं?
- सीमान्त व औसत सम्बंध किस प्रकार के होते हैं।

12.2 लागत की धाणाएं

समयान्तराल में अर्थशास्त्रियों द्वारा लागत की विभिन्न प्रकार की धारणाएं प्रतिपादित की गयी। इनमें से प्रमुख अवधारणाएं निम्नवत रही हैं:

1. मौद्रिक लागत
2. वास्तविक लागत
3. अवसर लागत

12.2.1 मौद्रिक लागत- सामान्य रूप से किसी वस्तु के उत्पादन प्रक्रिया में उद्यमी द्वारा जो विभिन्न प्रकार के व्यय किये जाते हैं वही उत्पादन की मौद्रिक लागतें कहलाती है। इस लागत में मुख्यतयाः निम्न तीन प्रकार की मदें सम्मिलित होती हैं:

(अ) दृश्य लागतें (Explicit Cost) - दृश्य लागतों के अन्तर्गत उन व्ययों को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें उत्पादक के वित्तीय लेखा-जोखा में देखा जा सकता है। अतः इसे व्यक्त लागत भी कहते हैं। इस दृश्य लागत में मुख्यतयाः तीन मदें सम्मिलित होती हैं:

(1) उत्पादन लागतें - इसमें कच्चे माल पर व्यय, मजदूरी वेतन, ब्याज, लगान, मशीन, उपकरण, रख रखाव पर व्यय इत्यादि सम्मिलित होते है।

(2) बिक्री लागतें - इसमें पैकिंग, विज्ञापन, परिवहनीकरण तथा अन्य बिक्री सम्बन्धी व्यय सम्मिलित होते है।

(3) अन्य लागत - जैसे बीमा, ब्याज, सरकार को दिये जाने वाला कर, विधुत, इत्यादि पर हुआ व्यय

(ब) अदृश्य लागतें(Input Cost) - इसके अन्तर्गत उन साघनों तथा सेवाओं की कीमत शामिल होती है जिन पर उत्पादन अथवा साहसी व्यय तो रहता है पर प्रत्यक्ष रूप से उनकी कीमतें नही चुकाता। अदृश्य लागतों को अस्पष्ट लागतें, अथवा अव्यक्त लागतें भी कहते है। उदाहरणार्थ उद्यमी की स्वतः की भूमि का लगान, स्वतः की पूंजी का ब्याज, इत्यादि।

(स) सामान्य लाभ - सामान्य लाभ को अर्थशाृस्त्र में किसी उद्यमी को उत्पादन प्रक्रिया में बनाए रखने की लागत के रूप मे देखा जाता है। लाभ दो प्रकार के होते है- अतिरिक्त लाभ तथा सामान्य लाभ। यदि वस्तु की बिक्री से इतना अधिक आगम प्राप्त हो कि उद्यमी की लागत, वेतन इत्यादि तो निकले ही साथ में कुछ अतिरिक्त राशि बच जाए तो उसे उद्यमी के अतिरिक्त लाभ कहेंगे। परन्तु यदि मात्र इतना आगम प्राप्त हो कि केवल उसका वेतन व लागते निकल पाए तो उसे उद्यमी का सामान्य लाभ कहा जाएगा। अतिरिक्त लाभ में लागतों से कोई सम्बंध नहीं परन्तु सामान्य लाभ को लागतों के अंश के रूप में देखा जाता है। ऐसा माना जाता है कि सामान्य लाभ भी न मिल पाने की दशा में उद्यमी उत्पादन बन्द कर देता है ।

12.2.2 वास्तविक लागत- वास्तविक लागत से अभिप्राय उस कष्ट, प्रयास, मेहनत एवं त्याग से है जिसके द्वारा किसी वस्तु का निर्माण किया जाता है। यदि किसी वस्तु X के उत्पादन में वस्तु Y की तुलना में दुगना अधिक कष्ट, प्रयास अथवा त्याग करना पड़ा है तो X का मूल्य Y की तुलना में दुगना होना चाहिए। प्रो0 मार्शल ने वास्तविक लागत की परिभाषा देते हुए कहा कि ‘‘किसी वस्तु के उत्पादन में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से लगने वाले विभिन्न प्रकार के श्रमिकों का पारिश्रमिक तथा

उसमें काम आने वाले पूंजी की बचत के लिए किए जाने वाला त्याग अथवा प्रतीक्षा उस वस्तु की वास्तविक लागत को बनाते हैं।'' परन्तु वास्तविक लागत की इस विचारधारा की बाद के अर्थशास्त्रियों द्वारा तीष्ठ आलोचना की गयी और कहा गया कि कष्ट अथवा त्याग मनोवैज्ञानिक धारणाएं हैं जिन्हें ठीक प्रकार में मापा नहीं जा सकता। साथ ही इस सिद्धान्त में व्यावहारिक भी नहीं पाया जाता क्योंकि एक डाक्टर, वकील इत्यादि की सेवाओं का मूल्य सामान्यतया कुली, श्रमिक इत्यादि से ज्यादा पाया जाता है जो कि इस सिद्धान्त का विरोधाभाष है।

12.2.3 अवसर लागत

अर्थशास्त्र की मौलिक मान्यता यह है कि आर्थिक साधन आवश्यकताओं की तुलना में सीमित होती है। अतः किसी वस्तु के उत्पादन का अर्थ है - दूसरी वस्तु या वस्तुओं के उत्पादन से वंचित होना। अवसर लागत की धारणा को एक सरल उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

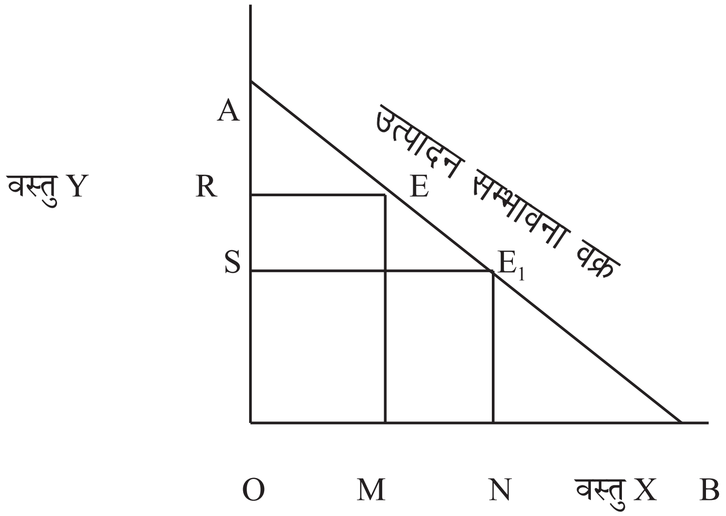

चित्र 12.1

माना AB रेखा दो वस्तुओं X और Yके उत्पादन की विभिन्न सम्भावनाओं को प्रदर्शित करती है। उत्पादक के पास साधनों की मात्रा निश्चित है जिनसे दो वस्तुओं X और Yका उत्पादन किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादक वस्तु X का उत्पादन बढ़ाना चाहता है तो उसे उस वस्तु Y के उत्पादन में कमी करनी पड़ेगी। चित्र से स्पष्ट है कि वस्तु X की MN मात्रा में वृद्धि करने के लिए वस्तु Y की RS मात्रा का उत्पादन घटाना पड़ता है, यही अवसर लागत है। अतः वस्तु X की मात्रा MN की अवसर लागत = वस्तु Y की RS मात्रा है। दूसरे शब्दों में वस्तु Xकी एक अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने की अवसर लागत वस्तु Y की वह मात्रा है जिसके उत्पादन का परित्याग करना पड़ा।

12.3 अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन लागतें

उत्पादन समयावधि तथा साधनों के समायोजन के आधार पर सामान्यतया लागतों का विश्लेषण दो रूप में किया जाता है - अल्पकालीन लागतें तथा दीर्घकालीन लागतें।

12.3.1 अल्पकालीन लागतें -कुल उत्पादन लागत (Total Cost)

अल्पकाल में उत्पादक वस्तु को पूर्ति की परिवर्तित मांग दशाओं के अनुसार समायोजित नहीं कर सकता क्योंकि अल्पकाल में उत्पादक के पास इतना समय नहीं होता कि वह उत्पत्ति के सभी साधनों में समायोजन कर सके। अल्पकाल में उत्पत्ति के कुछ साधन स्थिर होते हैं और कुछ परिवर्तनशील। स्थिर साधनों में सामान्यतया भूमि, पूंजी, मशीन, संगठन, प्रबन्ध इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। स्थिर साधनों के अतिरिक्त कुछ परिवर्तनशील साधन भी होते हैं जिनकी पूर्ति की आवश्यकतानुसार अल्पकाल में भी समायोजित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत श्रमिकों की मात्रा, कच्चा माल, ईधन इत्यादि सम्मिलित होते हैं। इन साधनों में उत्पादन की मात्रा के अनुसार परिवर्तन होता है।

स्थिर साधनों का जो भुगतान किया जाता है उसे स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील साधनों को जो भुगतान किया जाता है उसे परिवर्तनशील लागत कहा जाता है। स्थिर लागतों की एक विशेषता यह भी है कि उत्पादन बन्द हो जाने की दशा में भी उद्यमी को इनका वहन करना पड़ता है परन्तु परिवर्तनशील लागत उत्पादन की मात्रा के अनुसार बढ़ती व घटती रहती है।

अतः अल्पकाल में -

कुल उत्पादन लागत = कुल स्थिर लागत + कुल परिवर्तनशील लागत

$$TC = TFC + TVC$$

चित्र में कुल लागत वक्र (TC) को स्थिर लागत (TFC) तथा परिवर्तनशील लागत (TVC) वक्रों के रूप में स्पष्ट किया गया है। TFC रेखा Y अक्ष के एक बिन्दु से प्रारम्भ होती है तथा इस X अक्ष के समानान्तर दिखाया गया है। इसका अर्थ है कि उत्पादन बढ़ने पर भी स्थिर लागतों में परिवर्तन नहीं होता। और यदि उत्पादन शून्य भी हो जाए तब भी उत्पादक को OR मात्रा की स्थिर लागतों का वहन करना पडेगा। दूसरी ओर परिवर्तनशील लागत वक्र एक बढ़ती हुयी वक्र है जिसका अर्थ है की उत्पादन के बढ़ने के साथ परिवर्तनशील लागतें बढ़ती जाती हैं अर्थात कुल परिवर्तनशील लागतें उत्पादन की मात्रा का फलन होती है। अर्थात

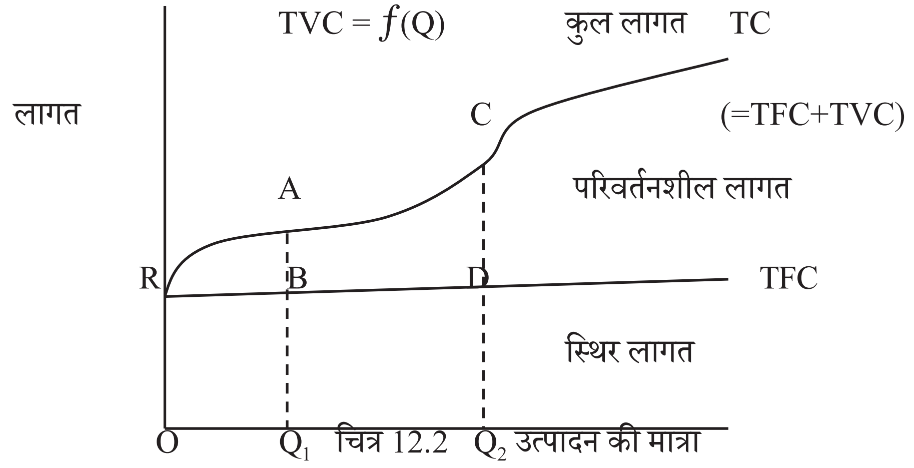

चित्र 12.2

चित्र से स्पष्ट है OQ_2 उत्पादन स्तर पर कुल लागतें CQ_2 आ रही हैं जिसमें CD परिवर्तनशील लागतें तथा DQ_2 स्थिर लागतें हैं। स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों के संदर्भ में महत्वपूर्ण बात यह भी है कि जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जाता है कुल लागत में स्थिर लागत का अंश घटता एवं परिवर्तनशील लागतें का अंश बढ़ता जाता है।

स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों के मध्य यह अन्तर मात्र अल्पकाल में ही क्रियाशील होता है। दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील हो जाते हैं।

12.3.2 प्रति इकाई उत्पादन लागत (Average Cost)

सूक्ष्मगत आर्थिक विश्लेषण में कुल उत्पादन लागत की धारणा का जितना महत्व है उतना ही महत्व प्रति इकाई अथवा औसत लागत का है। कुल लागत, स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागत की उपयुक्त व्याख्या को औसत लागत, औसत स्थिर लागत तथा औसत परिवर्तनशील लागत के रूप में भी देखा जा सकता है।

(1) औसत स्थिर लागत (**Average Fixed Cost**)

यदि निश्चित उत्पादन में आई कुल स्थिर लागत (TFC) की उत्पादित मात्रा में भाग दें तो औसत स्थिर लागत प्राप्त होती है।

$$\text{औसत स्थिर लागत (AFC)} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत (TFC)}}{\text{कुल उत्पादन (Q)}}$$

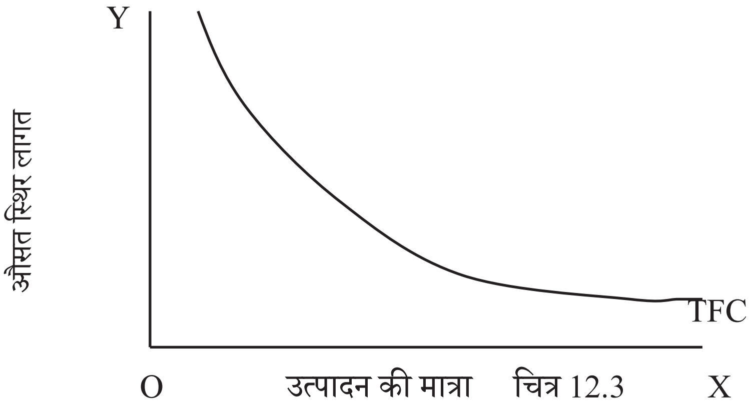

चित्र 12.3

औसत स्थिर लागत (AFC) वक्र सदैव बाएं से दाएं नीचे गिरता हुआ होता है क्योंकि कुल स्थिर लागत अपरिवर्तनीय रहती है और जैसे जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती जाती है औसत स्थिर लागत घटती जाती है। परन्तु AFC वक्र कभी भी X अक्ष को छू नहीं सकता अर्थात TFC कभी भी शून्य नहीं हो सकता। इसका आकार आयताकार अतिपरवलय (Rectangular Hyperbole) के समान होता है।

(2) औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost)

औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)कुल परिवर्तनशील लागत तथा उत्पादन की मात्रा का भागफल होता है। दूसरे शब्दों में यदि कुल परिवर्तनशील लागत को उत्पादित मात्रा से भाग दें तो औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) प्राप्त होगी।

$$\text{औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)} = \frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागत (TVC)}}{\text{उत्पादन की मात्रा (Q)}}$$

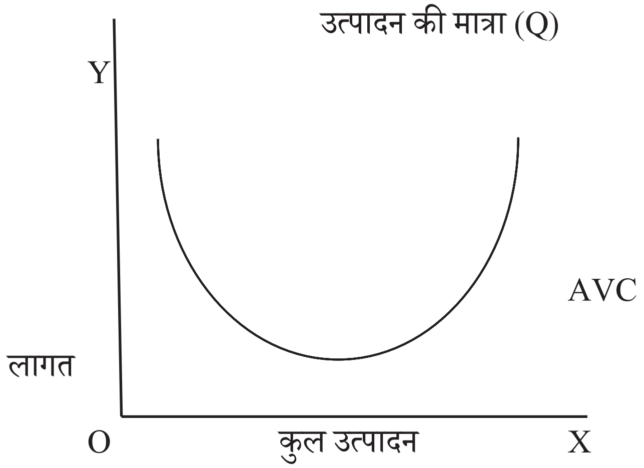

चित्र 12.4

औसत परिवर्तनशील लागत वक्र की प्रवृति उत्पादन में प्रयुक्त परिवर्तनशील साधनों की उत्पादकता पर निर्भर करती है। प्रतिफल के नियमों के अनुसार जब परिवर्तनशील साधनों की मात्राओं को

लगातार बढ़ाया जाता है तो प्रारम्भ में उत्पादन बढ़ता है फिर स्थिर हो जाता है तथा तत्पश्चात घटने लगता है। चूँकि बढ़ते हुए उत्पादन का अर्थ घटती हुई लागत से है अतः यदि लागत की दृष्टिकोण से देखें तो उत्पादन में लगातार वृद्धि होने पर प्रारम्भ में लागत गिरती है फिर स्थिर हो जाती है तत्पश्चात बढ़नें लगती है।

(3) औसत कुल लागत (Average Cost)- औसत कुल लागत, कुल लागत तथा कुल उत्पादन मात्रा का भागफल होती है अर्थात यदि वस्तु की निश्चित मात्रा को उत्पादित करने में आयी कुल लागत को उत्पादित मात्रा से भाग दें तो औसत लागत प्राप्त होगी। औसत लागत को प्रति इकाई लागत भी कहते हैं।

$$\text{औसत लागत (AC)} = \frac{\text{कुल लागत (TC)}}{\text{उत्पादित मात्रा (Q)}}$$

अल्पकाल में TC = TFC + TVC

अतः $$AC = \frac{TFC + TVC}{Q}$$

$$AC = \frac{TFC}{Q} + \frac{TVC}{Q}$$

अतः AC = AFC + AVC

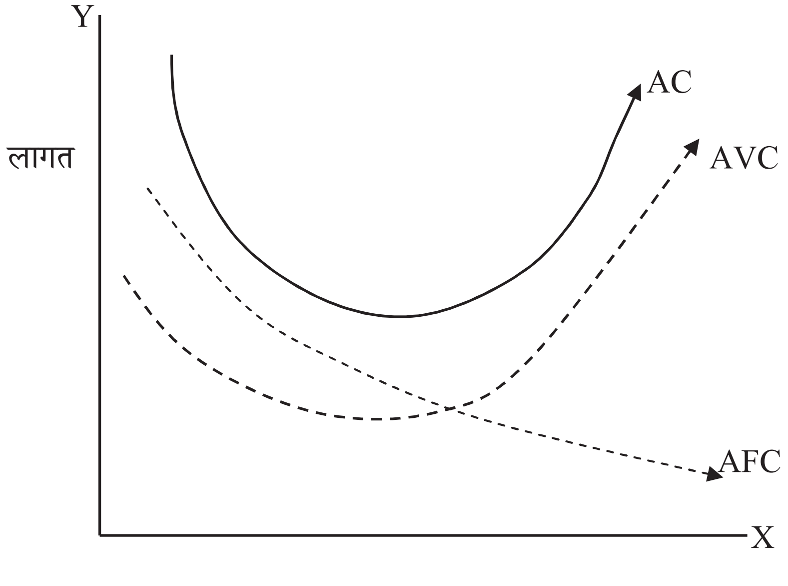

चित्र 12.5

औसत परिवर्तनशील लागत वक्र की भांति औसत लागत वक्र भी U आकार कां होता है। उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि औसत लागत, औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का योग है। उत्पादन में जैसे जैसे वृद्धि होती है कुल लागत में स्थिर लागत का अंश घटता तथा परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता जाता है। औसत स्थिर लागत की प्रवृति लगातार गिरने की होती है जबकि औसत परिवर्तनशील लागत पहले गिरती है और फिर एक न्यूनतम स्तर प्राप्त करने के पश्चात पुनः बढ़ने लगती है। जब तक यह दोनों ही वक्रे गिरती है औसत लागत वक्र भी गिरती है और न्यूनतम परिवर्तनशील लागत बिन्दु के पश्चात औसत लागत भी औसत परिवर्तनशील लागत की भांति ऊपर बढ़ने लगती है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि जैसे जैसे उत्पादन बढ़ता जाता है कुल लागतों में परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता व स्थिर लागत का अंश घटता जाता है।

12.3.3 सीमान्त लागतें तथा औसत सीमान्त सम्बंध

एक सीमान्त इकाई अर्थात अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने में जो लागत आती है उसे सीमान्त लागत कहा जाता है। दूसरे शब्दों में एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने से कुल लागत में जितनी वृद्धि होती है उसे उस इकाई विशेष की सीमान्त लागत कहा जाता है।

$$MC_n = TC_n - TC_{(n-1)}$$

जहाँ

MC_n = n इकाई की सीमान्त लागत

TC_n = n इकाईयों की कुल लागत

TC_{n-1} = n - 1 इकाईयों की कुल लागत

सीमान्त लागत परिवर्तनशील लागत पर निर्भर करती है न कि स्थिर लागत पर। अल्पकाल में सीमान्त लागत को कुल लागत में परिवर्तन की दर के रूप में भी देखा जा सकता है।

$$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

जहाँ

TC = कुल लागत में परिवर्तन

Q = कुल उत्पादन में परिवर्तन

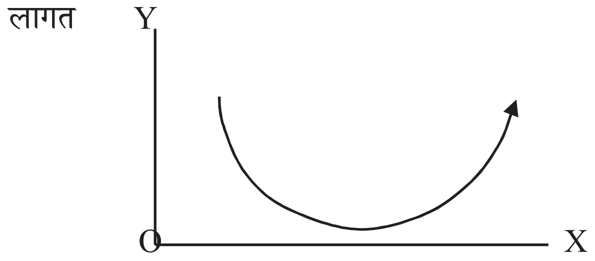

कुल उत्पादन चित्र 12.6

सीमान्त लागत वक्र भी औसत लागत वक्र की भांति न् आकार का होता है। इस आकार का मुख्य कारण परिवर्तनशील अनुपात नियम है। इस नियम के अनुसार प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन के प्रयोग की मात्रा में वृद्धि करने पर उस परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता बढ़ती है दूसरे शब्दों में सीमान्त लागते घटती हैं क्योंकि सीमान्त उत्पादकता एवं सीमान्त लागत दोनों के मध्य व्युत्क्रम (Reciprocal) सम्बंध पाया जाता है। पुनश्च् उसी साधन में और वृद्धि करने पर साधन की सीमान्त उत्पादकता अधिकतम होकर स्थिर हो जाती है अर्थात सीमान्त लागत न्यूनतम होकर स्थिर हो जाती है। तत्पश्चात सीमान्त उत्पादकता घटने लगती है अर्थात सीमान्त लागत बढ़ने लगती है।

12.3.4 सीमान्त लागत व औसत लागत में सम्बंध :- मूल्य सिद्धान्त में औसत लागत (AC) तथा सीमान्त लागत (MC) के मध्य का सम्बंध अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। AC व MC दोनों की ही गणना कुल लागत के आधार पर होती है। जहां औसत लागत प्रति इकाई की औसत लागत को प्रदर्शित करता है वहीं सीमान्त लागत सीमान्त इकाई (अन्तिम इकाई) की लागत को। सामान्य तर्क से समझा जा सकता है कि यदि सीमान्त लागत गिर रही है अर्थात अतिरिक्त इकाईयों को बनाने में कम लागत आ रही है तो औसत लागत भी गिरती जाएगी और यदि सीमान्त लागतें बढ़ रही हैं अर्थात अतिरिक्त इकाईयों को बनाने में अधिक लागतें आ रही हैं तो औसत लागतें भी बढ़ने लगेंगी।

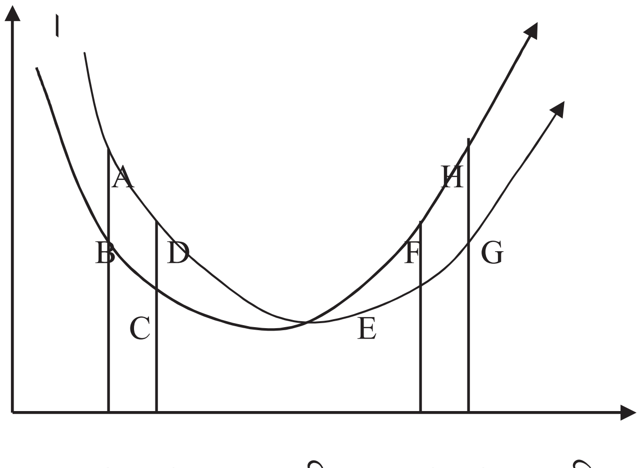

चित्र 12.7

चित्र के माध्यम से सीमान्त औसत सम्बंध को समझा जा सकता है। उत्पादन स्तर OQ_1 पर सीमान्त लागत BQ_1 तथा औसत लागत AQ_1 है। यदि उत्पादन स्तर को बढ़ाकर OQ_2 लाया जाए तो सीमान्त लागतें घट कर BQ_2 हो जाती है (अर्थात अतिरिक्त इकाईयों को बनाने में कम लागत आयी) और फलस्वरूप औसत लागतें भी घटकर DQ_2 पर आ जाएगी। यह औसत लागत के घटने की प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक कि सीमान्त लागतें घट रही हैं। जैसे ही सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक आएगी, औसत लागतें बढ़ने लगेंगी।

उत्पादन स्तर OQ_3 पर सीमान्त लागत FQ_3 है जबकि औसत लागत EQ_3 है। उत्पादन स्तर यदि बढ़ाकर OQ_4 किया जाता है तो सीमान्त लागत HQ_4 हो जाती है (यानि अतिरिक्त इकाईयों के निर्माण में अधिक लागत आयी) फलस्वरूप औसत लागत भी बढ़ जाती है।

स्पष्टतया जब तक सीमान्त लागतें गिरती हैं औसत लागत भी गिरती है और जब सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक होने लगती है औसत लागतें बढ़ने लगती है।

12.4 दीर्घकालीन लागतें वक्रं (Long-run Cost Curves)

दीर्घकाल वह समयावधि है जिसमें उत्पादक प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकता है। दीर्घकाल में उत्पादन के प्लाण्ट का आकार भी परिवर्तनशील होता है। फलस्वरूप दीर्घकाल में लागत को स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत के रूप में विखण्डित नहीं कर सकते। इस खण्ड में हम दीर्घकाल औसत लागत एवं सीमान्त लागत वक्र के बारे में समझेंगे।

12.4.1 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long run Average Cost)

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की दीर्घकालीन कुल लागत वक्र की सहायता से प्राप्त किया जाता है। दीर्घकालीन औसत लागत कुल लागत तथा उत्पादित मात्रा का भागफल है।

$$LAC = \frac{LTC}{q}$$

जहां LAC = दीर्घकालीन औसत लागत

LTC = दीर्घकालीन कुल लागत

q = उत्पादन की मात्रा

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की न्यूनतम सम्भव औसत लागत को व्यक्त करता है। यदि दीर्घकाल में किसी वस्तु की मांग बढ़ जाती है तब उत्पादक बढ़ी मांग को पूरा करने के लिए अपने वर्तमान प्लाण्ट में विस्तार कर सकते हैं अथवा बदल सकते हैं। प्रत्येक प्लाण्ट उत्पादन की एक निश्चित सीमा तक ही उपयोगी होता है। ऐसी दशा में फर्म किसी प्लाण्ट विशेष का

उसी अवस्था तक प्रयोग करेगी जहां तक उत्पादन मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन लागत में कमी होती जाए।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (*LAC Curve*) की व्याख्या सबसे सरल परिस्थित में करने के लिए हम यह मान लेते हैं कि किसी उद्योग में प्लाण्ट केवल तीन भिन्न आकारों - सूक्ष्म, मध्यम तथा वृहत में उद्योग में विद्यमान हैं। चित्र में इस स्थिति की व्याख्या दिखाई नहीं है। सूक्ष्म आकार के प्लाण्ट का अल्पकालीन औसत लागत वक्र SAC_1,, मध्यम आकार प्लाण्ट का SAC_2 तथा दीर्घ आकार का SAC_3 द्वारा प्रदर्शित है।

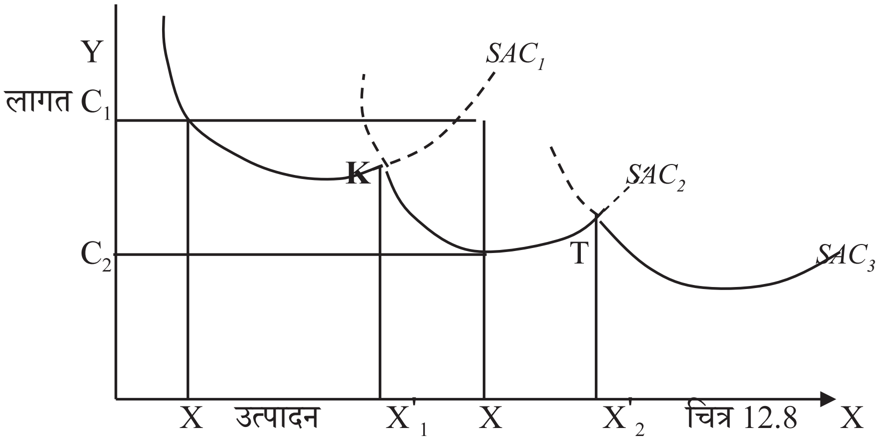

चित्र 12.8

दीर्घकाल में एक उद्यमी तीन वैकल्पिक विनियोगों में से किसी एक को चुन सकता है। चित्र में तीनों विकल्पों को तीन अल्पकालीन लागत वक्रों द्वारा दिखाया गया है। उद्यमी तीन प्लाण्ट में से किसका चुनाव करेगा यह उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करेगा। यदि फर्म OX_1 मात्रा उत्पादित करती है तब न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट का चुनाव किया जाएगा। यदि मात्रा OX_2 हो जाए तब उत्पादक पहले प्लाण्ट को छोड़कर मध्य आकार वाले प्लाण्ट पर पहुंच जाएगा क्योंकि यदि वह OX_2 उत्पादन पहले प्लाण्ट पर करता तो औसत लागत अधिक आती व उसे हानि होती। OX'_1 तक उद्यमी न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट के साथ उत्पादन करेगा क्योंकि इस उत्पादन स्तर तक पहले प्लाण्ट से न्यूनतम लागत प्राप्त हो रही है। इसके पश्चात इस प्लाण्ट पर लागतें ज्यादा आएगी और वह अगले प्लाण्ट की ओर हस्तांतरित हो जाएगा। OX'_2 उत्पादन के पश्चात वह वृहत प्लाण्ट (SAC_3) की और हस्तांतरित होगा क्योंकि अब उस पर लागत कम आएगी। **अतः दीर्घकाल में फर्म को प्लाण्ट के आकार को बदलने की स्वतंत्रता होती है तथा दीर्घकाल में फर्म किसी उत्पादन स्तर को उत्पादित करने के लिए उस प्लाण्ट का प्रयोग करेगी जो न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन दे सके।**

परन्तु दीर्घकाल में उद्यमी का चुनाव तीन प्लाण्टों तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि उसके समक्ष बड़ी संख्या में विभिन्न आकार वाले प्लाण्ट उपस्थित रहते हैं तथा उसे उनमें से किसी एक का चुनाव करना होता है। Y

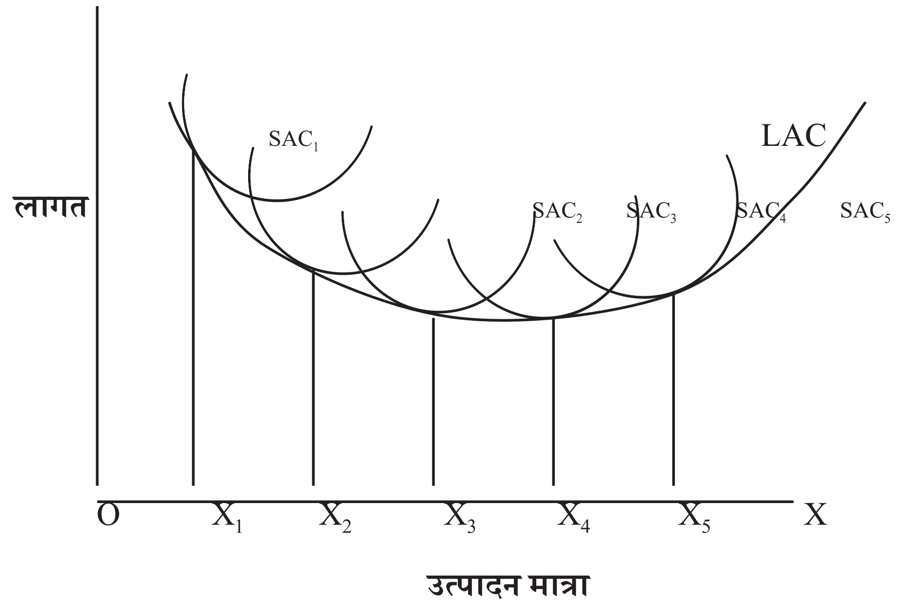

चित्र 12.9

चित्र में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को प्रदर्शित किया गया है जो कि कई अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं का बिन्दु पथ है। चित्र में अनेक अल्पकालीन औसत लागत वक्रों से दर्शाया गया है। जैसे जैसे उत्पादन का स्तर बढ़ता है उत्पादक एक प्लाण्ट से दूसरे प्लाण्ट पर हस्तांतरित होता जाता है। अतः दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का आवरण भी कहा जाता है क्योंकि यह अनेक औसत लागत वक्रों को घेरता है।

12.4.2 दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (Long-run Marginal Cost Curve)

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की सहायता से की जा सकती है। जो सम्बंध अल्पकालीन सीमान्त लागत एवं अल्पकालीन औसत लागत के मध्य पाया जाता है ठीक वही सम्बंध दीर्घकालीन सीमान्त एवं औसत लागत के मध्य होता है।

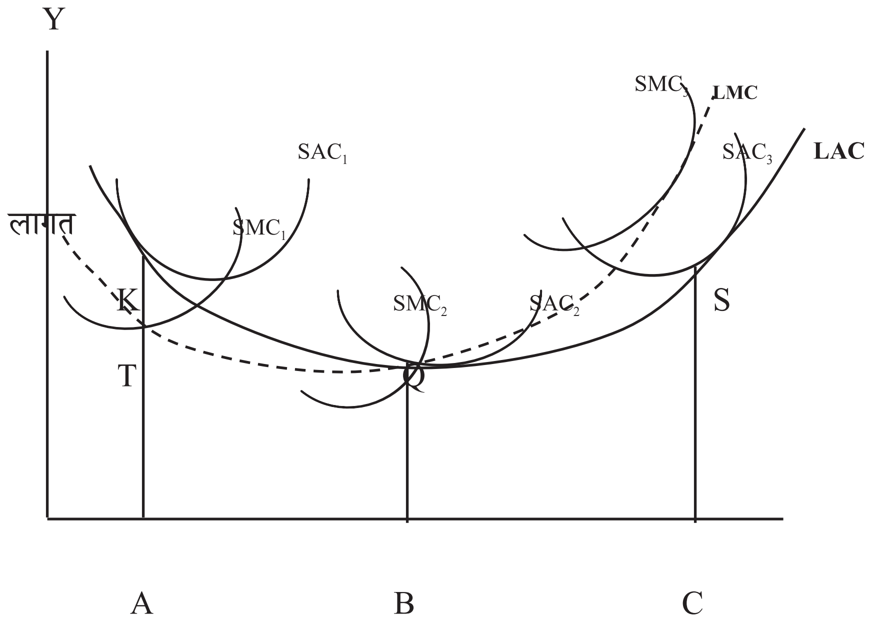

उत्पादन मात्रा **चित्र 12.10**

चित्र में इस सम्बंध को दर्शाया गया है। जहां कहीं भी SAC वक्र LAC वक्र का स्पर्श करता है वहां उससे सम्बंधित क्रमशः SMC तथा LMC परस्पर बराबर होते हैं। जब तक LMC वक्र नीचे गिर रहा होता है तब तक SMC तथा LMC की यह समानता SAC तथा LMC वक्रों के स्पर्श बिन्दु से नीचे होती है (बिन्दु K तथा T)। प्लाण्ट के अनुकूलतम आकार पर, जहां LMC तथा SAC दोनों अपने न्यूनतम बिन्दुओं पर परस्पर स्पर्श करते हैं, वहां LMC तथा SMC परस्पर इस प्रकार बराबर होती है कि LMC = SMC = LAC = SAC (बिन्दु θ पर)। इस प्रकार LAC तथा LMC में वही सम्बंध पाया जाता है जो SAC तथा SMC में है अर्थात,

i. यदि LAC > LAC तथा LAC नीचे गिरेगा।

ii. यदि LAC = LMC तब LAC स्थिर रहेगा।
अर्थात LMC वक्र LAC को उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता है।

iii. यदि LMC > LAC तब LAC ऊपर की ओर बढ़ता हुआ होगा।

बहुविकल्पी प्रश्न-

1. निम्नांकित में से कौन सा वक्र न् आकार का नहीं होता है -

(a) AVC वक्र (b) AFC वक्र

(c) AC वक्र (d) MC वक्र

2. जब सीमान्त लागत कम होती है तो औसत लागत सीमान्त लागत से होगी -

a. अधिक
b. कम
c. बराबर
d. कोई सम्बंध नहीं

3. कुल लागत बराबर होती है -

a) स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत
b) औसत + सीमान्त लागत
c) कच्चे माल की लागत + श्रम लागत
d) यातायात व्यय + स्थापित लागत

4. औसत स्थिर लागत -

a) उत्पादन वृद्धि के साथ गिरती है।
b) U आकृति वाली होती है।
c) सीमान्त लागत वक्र को न्यूनतम बिन्दु पर काटती है।
d) लगातार बढ़ती है।

5. मजदूरी पर व्यय -

a) स्थिर लागत है।
b) परिवर्तनशील लागत है।
c) अवसर लागत है।
d) अल्पकालीन लागत है।

6. निम्नलिखित में से कौन स्थिर लागत से सम्बंधित है -

a) कच्चे माल की कीमत
b) सम्पत्ति का बीमा शुल्क
c) मजदूरी
d) यातायात व्यय

12.5 आगम तथा आगम वक्र

एक उत्पादक अपने उत्पादन के बाजार में बिक्री से जो धनराशि प्राप्त करता है उसे आगम कहते हैं। प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अपने लाभों को अधिकतम करना होता है। उत्पादन के साम्य बिन्दु पर पहंचने के लिए वह आगम व लागत दोनों के मध्य तुलना करना। अतः उत्पादक के लिए जितनी महत्वपूर्ण लागत पक्ष है उतना ही महत्वपूर्ण आगम पक्ष भी है।

12.5.1 आगम की विभिन्न धारणाएं -फर्म को सही आर्थिक निर्णय लेने के लिए निम्न तीन प्रकार की आगम धारणाओं की जानकारी रखनी पड़ती है।

1.कुल आगम (Total Revenue or TR)- कुल आगम उत्पादित मात्रा की बेची गयी इकाइयों से प्राप्त कुल धनराशि है। यदि कीमत P तथा बेची गयी मात्रा Q है तो

कुल आगम (**Total Revenue**) = मूल्य x बेची गयी मात्रा

$$TR = P \times Q$$

2.औसत आगम (Average Revenue or AR)- यदि वस्तु की निश्चित मात्रा की बिक्री से प्राप्त कुल आगम को बेची गयी मात्रा से भाग दें तो औसत आगम प्राप्त होती है।

$$\text{औसत आगम (AR)} = \frac{\text{कुल आगम (TR)}}{\text{उत्पादन की मात्रा (q)}}$$

औसत आगम को प्रति इकाई आगम भी कहते हैं। स्पष्ट है कि औसत आगम का अभिप्राय वस्तु के प्रति इकाई मूल्य से है।

3.सीमान्त आगम (Marginal Revenue)- सीमान्त आगम अतिरिक्त बेची गयी इकाईयों का औसत आगम है। यदि अतिरिक्त कुल आगम TR है तथा अतिरिक्त इकाईयां ΔQ हैं तो:

$$MR = \frac{\Delta TR}{\Delta Q}$$

दूसरे शब्दों में सीमान्त आगम का अभिप्राय आखिरी अथवा अतिरिक्त इकाई की बिक्री से प्राप्त आगम से है।

$$MR_n = TR_n - TR_{(n-1)}$$

जहां

MR_n = n इकाई की सीमान्त लागत

TR_n = n इकाईयों की कुल लागत

TR_{n-1} = n - 1 इकाईयों की कुल लागत

12.5.2 औसत आगम तथा सीमान्त आगम वक्र

अब तक की व्याख्या से स्पष्ट है कि औसत आगम का अभिप्राय प्रति इकाई आगम से होता है। उत्पादक को प्राप्त होने वाला औसत आगम अथवा मूल्य वस्तु की मांग दशा पर निर्भर करता है। सामान्यतया मांग वक्र को ही औसत आगम वक्र के रूप में देखा जाता है।

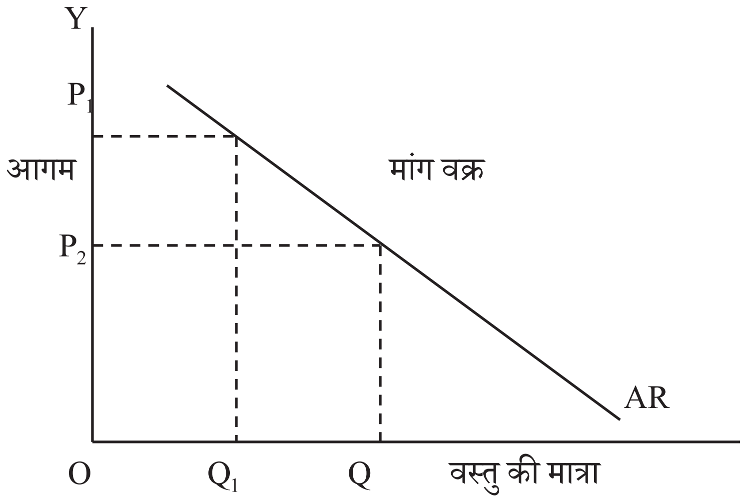

चित्र 12.11

चित्र 12.11 से स्पष्ट है कि मांग वक्र बाएं से दाएं गिरती हुई होती है जो इस मान्यता पर आधारित है कि यदि वस्तु की कम मात्रा बिक्री हेतु लायी जाती है तो औसत आगम अधिक और यदि अधिक मात्रा लायी जाती है तो औसत आगम कम प्राप्त होगा।

स्पष्ट है कि Q_1 मात्रा की बिक्री करने पर औसत आगम P_1 प्राप्त होगा। परन्तु यदि बिक्री की मात्रा बढ़ाकर Q_2 कर दी जाए तो मूल्य घटकर P_2 हो जाएगा।

12.5.3 औसत आगम व सीमान्त आगम के मध्य सम्बंध

औसत आगम उसी दिशा में परिवर्तित होगा जिस दिशा में सीमान्त आगम परिवर्तित हो रहा है। इस संदर्भ में तीन स्थितियां उल्लेखनीय हो सकती है-

1.यदि अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री से औसत आगम के बराबर ही आगम प्राप्त हो रहा है अर्थात अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री न तो अधिक और न ही कम मूल्य पर हो रही है तो औसत आगम व सीमान्त आगम बराबर रहेगा और औसत आगम व सीमान्त आगम वक्र एक Xअक्ष के समानान्तर सीधी रेखा के रूप में होगा।

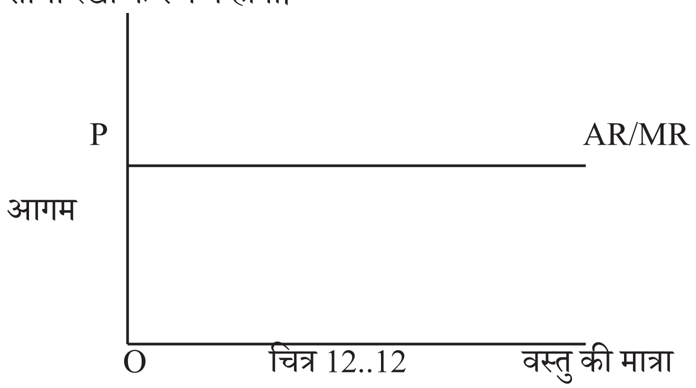

चित्र 12..12

चित्र 12.12 में इस स्थिति को प्रदर्शित किया गया है। औसत आगम P प्राप्त हो रहा है और अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री से भी Pमूल्य ही प्राप्त हो रहा है। अतः AR व MR रेखा एक ही होगी व X के समानान्तर होगी।

2.यदि अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री से पिछले औसत आगम (AR) से अधिक औसत आगम अर्थात मूल्य प्राप्त हो रहा है तो सीमान्त आगम (MR) वक्र औसत आगम वक्र के ऊपर स्थित होगा तथा औसत आगम वक्र बाएं से दाएं ऊपर उठेगी।

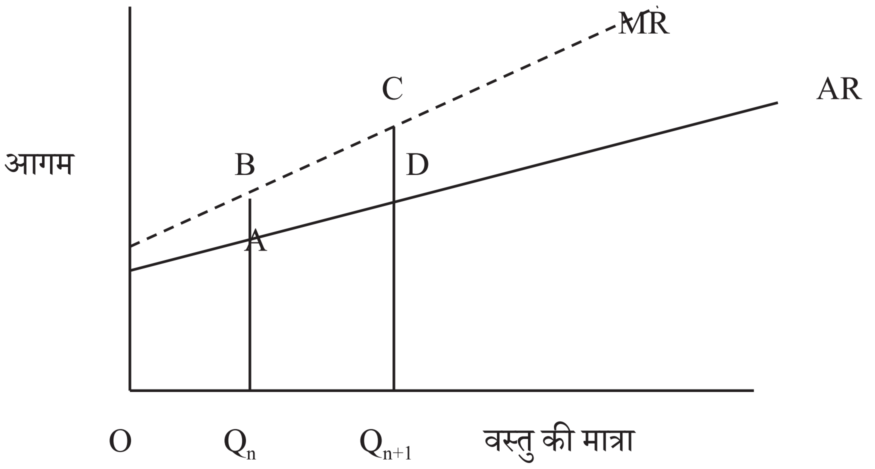

चित्र 12.13

चित्र 12.13 से स्पष्ट है कि n इकाइयों के उत्पादन पर औसत आगम AQn तथा सीमान्त आगम BQ_n प्राप्त हो रहा है। अब यदि n+1 इकाई बेची जाती है तो सीमान्त आगम CQ_{n+1} प्राप्त होता है। इसके कारण औसत आगम भी A_n से बढ़कर DQ_{n+1} हो जाएगा।

3.यदि 12.14 अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री से पिछले इकाइयों की तुलना में कम औसत आगम (मूल्य) प्राप्त होता है तो सीमान्त आगम डत् वक्र औसत आगम वक्र के नीचे स्थित होगी तथा औसत आगम वक्र बांए से दाएं नीचे छुकती हुयी होगी।

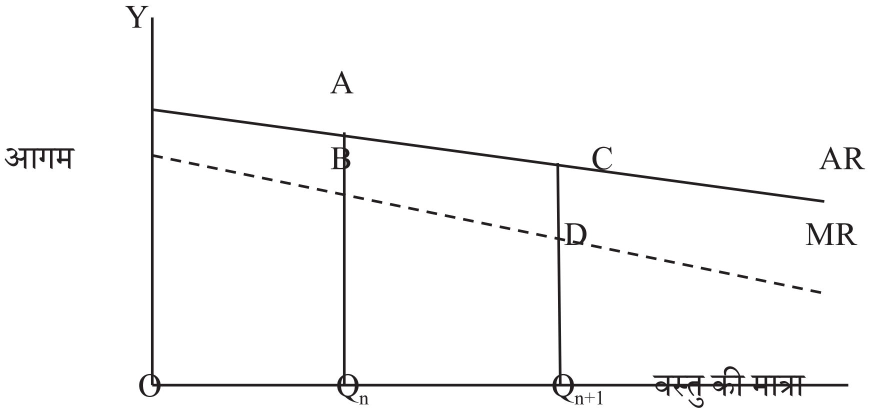

चित्र 12.14

चित्र से स्पष्ट है कि Q_n मात्रा की बिक्री पर औसत आगम AR AQ_n तथा सीमान्त आगम VMR BQ_n प्राप्त हो रहा है। अब यदि एक अतिरिक्त इकाई Q_{n+1} की बिक्री होती है तो सीमान्त आगम तुलनात्मक रूप से कम यदि क्फद्र1 ही प्राप्त होगी। फलस्वरूप औसत आगम वक्र भी गिरेगा।

बहुविकल्पी प्रश्न-

1.यदि सीमान्त आगम (MR) औसत आगम की तुलना में अधिक प्राप्त हो रही है तो औसत आगम वक्र

a. बाएं से दाएं ऊपर बढ़ेगा
b. स्थिर रहेगा
c. गिरेगा
d. कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा

2.यदि सीमान्त आगम औसत आगम के बराबर प्राप्त हो रहा हो तो औसत आगम वक्र:

a. बढ़ेगा
b. घटेगा
c. स्थिर रहेगा
d. कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

3. अल्पकाल में औसत आगम बराबर होता है -

a. प्रति इकाई मूल्य
b. सीमान्त आगम
c. कुल आगम
d. कोई नहीं

12.6 सारांश

इस अध्याय में हमने अध्ययन किया कि

- मौद्रिक लागतों से अभिप्राय उस मौद्रिक व्यय से है जो उत्पादक द्वारा उत्पादन क्रिया के दौरान किया जाता है।
- मौद्रिक लागतों के तीन भाग - दृश्य लागतें, अद्रश्य लागतें तथा सामान्य लाभ होते हैं।
- वास्तविक लागतों से अभिप्राय उस मेहनत, प्रयास, त्याग व श्रम से है जिससे किसी वस्तु का निर्माण होता है।

- किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई में उत्पादित करने में आने वाली अवसर लागत से अभिप्राय दूसरे वस्तु की उस उत्पादन मात्रा से है जिसके उत्पादन का परित्याग किया जा रहा है।
- कुल लागत के दो खण्ड स्थिर लागत व परिवर्तनशील लागत है।
- उत्पादन में वृद्धि के साथ कुल लागत में स्थिर लागत का अंश घटता व परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता जाता है।
- सीमान्त लागत का अभिप्राय वस्तु की अन्तिम इकाई की उत्पादन लागत से है।
- कुल आगम का अर्थ वस्तु की बिक्री से प्राप्त कुल धनराशि से है।
- सीमान्त आगम का अर्थ अन्तिम इकाई के उत्पादन से प्राप्त आगम से है।

12.7 शब्दावली

लाभ - उत्पादक के कुल आगम व कुल लागत के मध्य का अन्तर

सीमान्त - अन्तिम इकाई अथवा आखिरी इकाई

अल्पकाल - वह समयावधि जिसमें साधनों में समायोजन एक निश्चित स्तर तक ही सम्भव होगा।

दीर्घकाल - वह समयावधि जिसमें साधनों में यथावांछित समायोजन किया जा सकता है।

सामान्य लाभ - लागत का एक अंश जिसे उद्यमी को उत्पादन प्रक्रिया में बनाए रखने की लागत के रूप में देखा जाता है।

अतिरिक्त लाभ - सामान्य लाभ के अतिरिक्त जो भी लाभ प्राप्त होता है उसे अतिरिक्त लाभ कहते हैं।

12.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

प्रश्न 1- उत्तर: b 2- उत्तर: a 3- उत्तर: a 4- उत्तर: a 5- उत्तर: b
6- उत्तर: a 7- उत्तर: a 8- उत्तर: c 9- उत्तर: a

12.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. आहूजा, एच.एल., ''उच्चतर आर्थिक विश्लेषण'' एस चान्द एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 2008

2. स्टोनियर एण्ड हेग, ''ए टेक्सट बुक ऑफ इकोनोमिक आक्सफोर्ड पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011
3. सेठ, एम.एल., ''माइक्रो अर्थशास्त्र'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2002
4. झिगन, एम0एल0, ''माइक्रो इकोनोमिक्स'', वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, मयूर विहार, नई दिल्ली, 2007

12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औसत लागत क्या है? औसत एवं सीमान्त लागत के मध्य सम्बंध स्पष्ट कीजिए।
2. ''अल्पकाल में सीमान्त लागत परिवर्तनशील लागत में होने वाले परिवर्तन पर निर्भर करेगी'' - व्याख्या करें।
3. अवसर लागत की धारणा को समझाइए। इसका अर्थशास्त्र में क्या महत्व है?
4. फर्म के औसत आगम एवं सीमान्त आगम की धारणाओं के बीच अन्तर बताइए। औसत आगम व सीमान्त आगम के मध्य किस प्रकार का सम्बंध होता है?

इकाई - 13 उत्पादन फलन एवं परिवर्तनशील अनुपातों का नियम

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना
13.1 इकाई का उद्देश्य
13.2 उत्पादन फलन
13.3 उत्पादन फलन में परिवर्तन - उत्पादन के नियम
13.4 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम
    13.4.1 मान्यताएं
    13.4.2 परिवर्तनशील अनुपात नियम की व्यावहारिकता
    13.4.3 परिवर्तनशील अनुपात नियम का महत्व
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रन्थ
13.9 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आपने फर्म की लागत की विभिन्न धारणाओं का अध्ययन किया तथा यह देखा कि फर्म की लागत व आगम वक्रें किस प्रकार की होती है।

एक उत्पादक का उद्देश्य अपने उत्पादन से अधिकतम लाभ कमाना होता है। इस दृष्टिकोण से वह आगतों का श्रेष्ठतम व अनुकूलतम तरीके से प्रयोग करके अधिकतम निर्गत प्राप्त करना चाहता है। वह आगतों का विभिन्न संयोगों में प्रयोग कर सकता है। आगतों के संयोगों में यदि परिवर्तन किया जाता है तो उसका निर्गत की मात्रा पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यह आगत-निर्गत के बीच के प्रावधिक सम्बंध उत्पादक के लिए सदैव रोचक विषय सामग्री होते हैं। इस अध्याय में हम इसी आगत-निर्गत सम्बंध का विश्लेषण करेंगे तथा उत्पादन के नियमों का अध्ययन करेंगे।

13.1 उद्देश्य

यह इकाई आपको उत्पादन के विभिन्न पहलुओं विशेषकर आगत-निर्गत सम्बन्धों व आगत में परिवर्तन के प्रभावों से आपको अवगत कराएगी। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि :-

- आगत व निर्गत के मध्य किस प्रकार के तकनीकी सम्बंध पाये जाते हैं।
- आगत में वृद्धि निर्गत को किस प्रकार से प्रभावित करेगी।
- आगत में वृद्धि किस प्रकार से की जा सकती है।
- उत्पादन के नियम क्या हैं और इसका अध्ययन कैसे किया जाता है?
- परिवर्तनशील अनुपात नियम क्या है?

13.2 उत्पादन फलन

उत्पादन के सिद्धान्त का प्रथम स्तम्भ उत्पादन फलन है। उत्पादन विभिन्न उत्पत्ति के साधनों के सामुहिक प्रयत्नों का परिणाम है। उत्पत्ति के चार आधारभूत साधन - भूमि, पूंजी, श्रम एवं साहसी परस्पर विभिन्न अनुपात में एकत्रित एवं कार्यशील होकर उत्पादन करते हैं। उत्पादन फलन एक प्रावधिक अथवा तकनीकी सम्बंध है जो यह बताता है कि आगतों (साधनों) की निश्चित मात्राओं का प्रयोग कर के निर्गत (उत्पादन) की अधिकतम कितनी मात्रा प्राप्त की जा सकती है। दूसरे शब्दों में उत्पादन फलन यह भी बताता है कि निर्गत (उत्पादन) की दी हुई मात्रा को उत्पादित करने के लिए आगतों (साधनों) की कितनी मात्राओं की आवश्यकता होगी।

मान लें श्रम को L, पूँजी को K, उद्यमी को E, तथा उत्पादन (निर्गत) को Q से व्यक्त करें तो उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाएगा -

$Q = f\ (L, K, E)$

उपरोक्त उत्पादन फलन यह व्यक्त करता है कि यदि आगतों श्रम की L, पूंजी की K तथा साहसी की E मात्रा का प्रयोग किया जाए तो अधिकतम निर्गत (उत्पादन) Q प्राप्त किया जा सकता है। यदि इसी उत्पादन फलन को अन्य शब्दों में व्यक्त करें तो निर्गत अर्थात उत्पादन की Q मात्रा प्राप्त करने के लिए श्रम की न्यूनतम L, पूंजी की K तथा उद्यम की E मात्रा की आवश्यकता होगी।

प्रो0 सेल्यूलसन ने उत्पादन फलन की परिभाषित करते हुए कहा कि ''उत्पादन फलन वह प्राविधिक अथवा तकनीकी सम्बंध है जो यह बताता है कि आगतों के प्रत्येक विशेष समूह से निर्गत अथवा उत्पादन कितनी मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है।'' इसी प्रकार प्रो0 वालसन के अनुसार ''किसी फर्म के भौतिक आगतों एवं भौतिक उत्पादन के बीच के सम्बंध को प्रायः उत्पादन फलन कहते हैं।''

उत्पादन फलन की विशेषताएं

1. उत्पादन फलन उत्पत्ति के साधनों की मात्रा एवं उत्पादित वस्तु की मात्रा के भौतिक सम्बंधों को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार उत्पादन फलन शुद्धतः एक तकनीकी अथवा अभियन्त्रिक धारणा है।
2. उत्पादन फलन का सम्बंध उत्पत्ति साधनों की कीमतों एवं उत्पादित वस्तुओं की कीमतों से नहीं बल्कि साधनों एवं उत्पादन की मात्रा से है।
3. उत्पादन फलन का सम्बंध समयावधि से है अर्थात उत्पादन की समयावधि के अनुसार उत्पादन फलन का स्वरूप बदलता रहता है।
4. उत्पादन फलन में साधनों से स्थानापन्नता का गुण विद्यमान होता है अर्थात एक ही उत्पादन फलन के लिए एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का कम अथवा अधिक मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है। वस्तुतः एक ही उत्पादन मात्रा को प्राप्त करने के लिए परिवर्तनशील साधनों के कई संयोगों को प्रयोग किया जा सकता है।

13.3 उत्पादन फलन में परिवर्तन-उत्पादन के नियम

उपयुक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि उत्पादन फलन साधनों एवं उत्पादन के मध्य का एक प्राविधिक सम्बंध है। स्पष्टतया यदि साधनों की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो उत्पादन की मात्रा में भी परिवर्तन होगा। मान लें कि एक उत्पादन फलन निम्नवत दिया है -

$Q = f\ (L, K, T, E)$

जहां L श्रम, K पूंजी, T तकनीकी, E उद्यम एवं Q उत्पादन की मात्रा को प्रदर्शित कर रहा है। अब मान लें कि साधनों की मात्रा में A गुना वृद्धि की जाती है जिसके परिणाम स्वरूप उत्पादन के B गुना वृद्धि हो जाती है। ऐसे में उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाएगा।

$BQ = fA\ (L, K, T, E)$

उत्पादन के नियम के अन्तर्गत B तथा A के मध्य के सम्बंध का अध्ययन किया जाता है।

1. यदि B > A है तो इसका अर्थ है कि साधन का A गुना बढ़ाने पर उत्पादन में A गुना से अधिक वृद्धि हुई। इसे वृद्धमान अथवा बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थिति अथवा ह्रासमान लागत की स्थिति कहा जाएगा।
2. यदि B < A है तो इसका अर्थ है कि साधनों में A गुना वृद्धि होने पर उत्पादन में उससे कम मात्रा में वृद्धि होगी। इसे ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति अथवा वर्द्धमान लागतों की स्थिति कहा जाएगा।

उत्पादन के नियम के अध्ययन की विधियां

आगतों में वृद्धि का उत्पादन की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन उत्पादन के नियम के अन्तर्गत होता है। इन आगतों की मात्रा को निम्न दो प्रकार से बढ़ाया जा सकता है -

प्रथम विधि के अन्तर्गत हम उत्पादन फलन में स्थिति सब साधनों को स्थिर रखते हुए मात्र एक साधन को बढ़ाकर उसका उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं। इस अध्ययन को परिवर्तनशील अनुपात नियम कहते हैं। उदाहरण उपरोक्त वर्णित उत्पादन फलन $Q = fA\ (L, K, T, E)$ में यदि हम K, T व E की मात्रा को स्थिर रखते हुए मात्र L की मात्रा को बढ़ाकर इसका उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करें तो इसे अनुपात में परिवर्तन की संज्ञा दी जाएगी। ऐसे में उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त करेगा -

$$Q = f\,(L, K, T, E)$$

जहां पूंजी K, तकनीक T, एवं उद्यम E की मात्रा को स्थिर मानते हुए श्रम L की मात्रा में परिवर्तन का उत्पादन Q पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाएगा। इसे अनुपातों में परिवर्तन की संज्ञा दिया जाता है तथा इसका अध्ययन **परिवर्तनशील अनुपात नियम** में होगा।

उत्पादन के नियम के अध्ययन की दूसरी विधि यह है कि उत्पादन फलन में स्थित समस्त आगतों में एक साथ परिवर्तन किया जाए। इसे पैमाने में परिवर्तन की संज्ञा दिया जाता है। यह अध्ययन पैमाने के प्रतिफल नियम में होता है। जो कि अगले अध्याय की विषय सामग्री है।

उत्पादन के नियम की एक विशेषता और भी है कि ये नियम अल्पकाल व दीर्घकाल में भिन्न प्रकारसे क्रियान्वित होता है। अल्पकाल में चूँकि अधिकतर साधन स्थिर होते हैं अतः मात्र कुछ साधनों में ही परिवर्तन सम्भव होता है। अतः यह कहा जाता है कि अल्पकाल में मात्र साधनों के अनुपात में ही परिवर्तन सम्भव है। लेकिन दीर्घकाल में समस्त साधनों, प्लाण्ट के आकार इत्यादि परिवर्तन सम्भव है अर्थात दीर्घकाल में उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन हो जाता है। इसे परिवर्तनशील पैमाना नियम में अध्ययन किया जाता है।

बहुविकल्पी प्रश्न-

1. उत्पादन फलन से अभिप्राय है -

(a) उत्पादन के बढ़ने के तरीके (b) साधन व उत्पादन की मात्रा

(c) उत्पत्ति के साधनों का विस्तार (d) सीमान्त उपयोगिता का ह्रास

2. उत्पादन फलन है -

(a) एक भौतिक सम्बंध (b) एक तकनीकी सम्बंध

(c) एक मौद्रिक सम्बंध (d) कोई नहीं

3. अल्पकालीन उत्पादन फलन में बदलता है साधनों का -

(a) पैमाना (b) अनुपात

(c) दोनों (d) कोई नहीं

4. दीर्घकालीन उत्पादन फलन में बदलता है -

(a) पैमाना (b) अनुपात

(c) दोनों (d) कोई नहीं

13.4 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम

यदि एक आगत परिवर्तनशील हो और अन्य सब आगत स्थिर, तो फर्म का उत्पादन फलन परिवर्तनशील अनुपात के नियम को प्रकट करता है। यदि अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक परिवर्तनशील साधन की संख्या बढ़ादी जाए, तो उत्पादन किस प्रकार परिवर्तित होता है यही इस नियम का विषय वस्तु है। मान लीजिए कि भूमि, प्लांट और उपकरण स्थिर साधन हैं और श्रम परिवर्तनशील साधन। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए मजदूरों की संख्या लगातार बढ़ाई जाती है, तो स्थिर और परिवर्तनशील साधनों में अनुपात बदलता जाता है और परिवर्तनशील अनुपात का नियम लागू होने लगता है। नियम यह है, ''अन्य आगतों की मात्रा को स्थिर रखकर जब एक परिवर्तनशील आगत की मात्रा को समान मात्रा में लगातार बढ़ाया जाता है, तो कुल उत्पादन बढ़ता है, परन्तु एक निश्चित सीमा के बाद घटती दर पर। दूसरे शब्दों में अपरिवर्तनशील साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए जब परिवर्तन साधनों की और अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है, तो एक ऐसा बिन्दु आता है जिसके बाद पहले सीमान्त उत्पादन, फिर औसत उत्पादन और अन्त में कुल उत्पादन घटने लगता है।''

हम निम्न तालिका की सहायता से नियम को स्पष्ट कर सकते हैं, जहां स्थिर साधन 4 एकड़ भूमि पर परिवर्तनशील साधन श्रम की इकाइयां लगातार बढ़ाई जाती हैं और परिणामी उत्पादन प्राप्त होता है। उत्पादन फलन की पहले दो स्तम्भों में दिखाया गया है। कुल उत्पादन के स्तम्भ से औसत उत्पादन और सीमान्त उत्पादन निकाला गया है। स्तम्भ (2) को स्तम्भ (1) से विभाजित करके प्रति श्रमिक औसत उत्पादन प्राप्त होता है। सीमान्त उत्पादन एक अतिरिक्त श्रमिक लगाने से कुल उत्पादन में होने

वाली वृद्धि है। 3 श्रमिक 36 इकाइयों का उत्पादन करते हैं और 4 श्रमिक 48 का इस प्रकार सीमान्त उत्पादन 12 अर्थात 48-36 इकाइयां होगा।

तालिका 13.1

परिवर्तनशील अनुपात नियम

श्रमिकों की संख्या	कुल उत्पादन (TP)	औसत उत्पादन (AP)	सीमान्त उत्पादन (MP)	उत्पादन की अवस्था (Stage)
1	8	8	8	
2	20	10	12	I(वृद्धमान प्रतिफल)
3	36	12	16	
4	48	12	12	
5	55	11	7	II (स्थिर प्रतिफल)
6	60	10	5	
7	60	86	0	III (ह्रासमान प्रतिफल)

तालिका से स्पष्ट है कि पहले कुल, औसत और सीमान्त उत्पादन बढ़ते हैं, फिर अधिकतम हो जाते हैं और अन्त में घटने लगते हैं। कुल उत्पादन तब अधिकतम होता है जब श्रम की 7 इकाइयों का प्रयोग किया जाता है और इसके बाद घट जाता है। औसत उत्पादन चौथी इकाई तक बढ़ता जाता है जबकि सीमान्त उत्पादन श्रम की तीसरी इकाई पर अधिकतम है और इसके बाद वो भी गिरने लगता है। यह ध्यान रहे कि घटते उत्पादन का बिन्दु, कुल औसत और सीमान्त उत्पादन के लिए एक ही नहीं होता। सीमान्त उत्पादन पहले घटने लगता है, औसत उत्पादन उसके बाद और अन्त में कुल उत्पादन घटता है। इस निरीक्षण से स्पष्ट है कि घटते प्रतिफल की प्रवृत्ति अन्त में तीनों उत्पादकता सिद्धान्तों में पाई जाती है।

परिवर्तनशील अनुपात के नियम को चित्र में दर्शाया गया है। पहले TP वक्र बढ़ती दर से बिन्दु A तक ऊपर की ओर बढ़ता है, जहां इसकी ढलान सबसे अधिक होती है। बिन्दु A के बाद कुल उत्पादन घटती दर से बढ़ता है, जब तक कि यह उच्चतम बिन्दु C तक नहीं पहुंच जाता है, और फिर यह गिरना शुरू कर देता है।

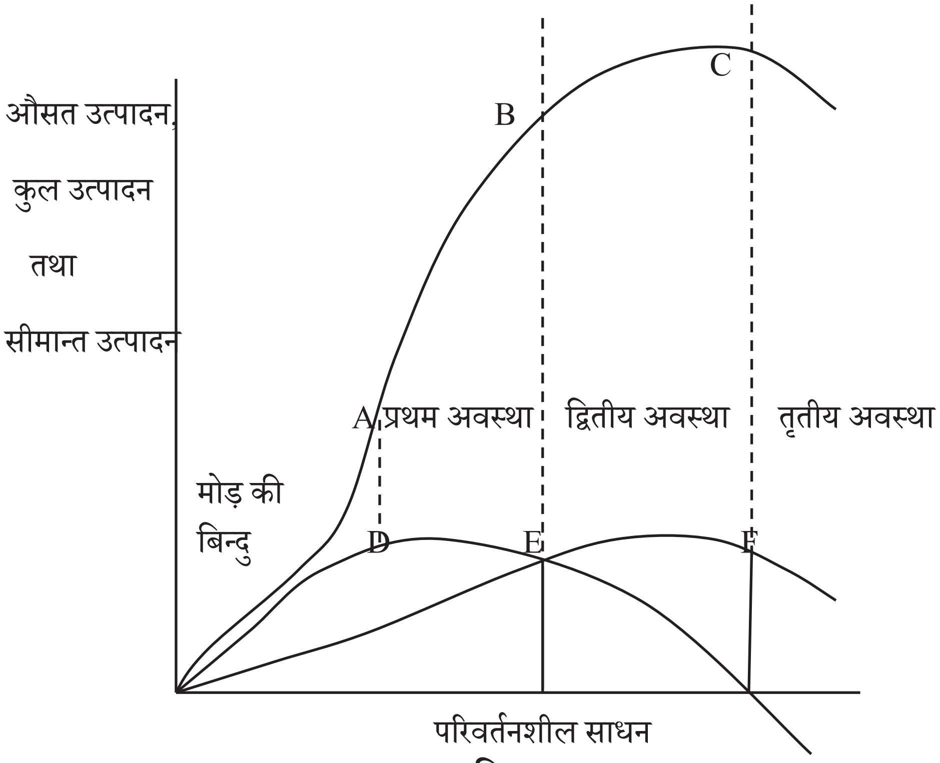

चित्र 13.1

TP वक्र पर स्थित बिन्दु Aको मोड बिन्दु कहते है जहॉ तक कुल उत्पादन में बढती दर से वृद्धि होती है और इस बिन्दु के पश्चात यह घटती दर से वृद्धि करने लगता है।

TP के साथ सीमान्त उत्पादन MP तथा औसत लागत उत्पादन AP वक्र भी बढते है जब TP की ढाल A बिन्दु पर अधिकतम होती है तो MP वक्र भी अपने अधिकतम बिन्दु C पर पहुच जाता है और उसके बाद गिरने लगता है। AP वक्र पर अधिकतम बिन्दु E है जहॉ यह MP वक्र से मिलता है। यह बिन्दु वक्र पर बिन्दु से भी मिलता है जहॉ से कुल उत्पादन वृद्धि धीमी हो जाती है। जब TP वक्र अपने अधिकतम बिन्दु C पर पहुंच जाता है तो बिन्दु F पर MP शून्य हो जाता है, और जब TP गिरना शुरू करता है तो MP ऋणात्मक हो जाता है। जब कुल औसत और सीमान्त उत्पादन के बढ़ते घटते और ऋणात्मक पक्ष वास्तव में परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीन अवस्थाएं हैं। बढ़ते प्रतिफल की अवस्था अथवा पहली अवस्था में, औसत उत्पादन अधिकतम और सीमान्त उत्पादन के बराबर पहुंच जाता है। इस अवस्था को चित्र में मूल बिन्दु O से E तक व्यक्त किया गया है, जहां MP और APवक्र मिलते हैं। इसमें TP वक्र भी तेजी से बढ़ता है। इस प्रकार इस अवस्था का सम्बंध बढ़ते प्रतिफलों से है। यहां लगाए गए श्रमिकों के अनुपात में भूमि बहुत अधिक है इसलिए इस अवस्था में भूमि पर खेती करना लाभदायक नहीं है।

इस नियम की प्रथम अवस्था में बढ़ते हुए प्रतिफल का मुख्य कारण यह है कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की अपेक्षा स्थिर साधन की मात्रा अधिक होती है। जब स्थिर साधन पर परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयों को लगाया जाता है तो स्थिर साधनों का अधिक गहन प्रयोग होता है जिससे उत्पादन तेजी से बढ़ता है इसी तथ्य को इस प्रकार भी समझाया जा सकता है कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की पर्याप्त इकाइयां न लगने से स्थिर साधन का अधिकतम प्रयोग नहीं होता परन्तु जब परिवर्तनशील साधन की उचित मात्रा में इकाइयां लगाई जाती है। तो श्रम विभाजन तथा विशेषीकरण के प्रति इकाई उत्पादन में वृद्धि होती है और बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है। बढ़ते प्रतिफल का एक कारण यह भी होता है कि स्थिर साधन अविभाज्य होता है जिसका अभिप्राय यह है कि वह एक निश्चित न्यूनतम आकार में अवश्य प्रयोग किया जाए। जब ऐसे स्थिर साधन पर परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयां लगाई जाती है, तो उत्पादन अनुपात से अधिक बढ़ता है। ये कारण बढ़ते प्रतिफल के नियम की ओर संकेत करते हैं।

इसके पश्चात प्रथम अवस्था के समाप्त होते होते स्थिर साधन अपनी पूर्ण क्षमता पर कार्य करने लगते हैं। तत्पश्चात जब परिवर्तनशील साधन अर्थात श्रम में पुनः बढ़ाया जाता है तो स्थिर साधन की उत्पादकता स्थिर होते हैं कारण मात्र लागत बढ़ती जाती है और प्रतिफल घटने लगते हैं।

घटते प्रतिफल के नियम की व्यावहारिकता:

घटते प्रतिफल की प्रवृत्ति पुराना आर्थिक सिद्धान्त जिसे फ्रांसीसी **अर्थशास्त्री टर्गट** ने 18वीं शताब्दी में प्रारम्भ किया था। मालथस और रिकार्डों ने इसका आगे विकास किया और मार्शल ने इस सिद्धान्त को बहुत ही परिष्कृत और उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया। मार्शल के शब्दों में ''भूमि को जोतने में लगाई गई पूंजी और श्रम की मात्रा में वृद्धि से सामान्य रूप से उत्पादन की मात्रा में वृद्धि अनुपात में कम होती है, जब तक कि ऐसा न हो कि उसके साथ ही कृषि की कलाओं में भी सुधार हो जाए।'' मार्शल ने इस नियम को कृषि, खान, वन और बिल्डिंग उद्योगों पर लागू किया था।

सामान्य रूप में नियम - घटते प्रतिफल का नियम केवल कृषि और निस्सारक उद्योगों पर ही लागू नहीं होता बल्कि इसका व्यवहार तो सार्वभौमिक है।

यदि उत्पादन के साधनों के संयोग के अनुपातों को बदल दिया जाए तो उस साधन का औसत और सीमान्त उत्पादन घट जाएगा या तो स्थिर साधनों की अपेक्षा परिवर्तनशील साधन की कमी के कारण साधनों का संयोग बिगड़ सकता है। या यह भी सम्भव हो सकता है कि अविभाज्य साधन का उसकी अधिकतम क्षमता से अधिक प्रयोग किया जा रहा हो। प्रत्येक स्थिति में उत्पादन की अमितव्ययिताएं आ जाती है जो लागत को अधिक और उत्पादन को कम कर देती है। उदाहरणार्थ, यदि और मशीनें लगाकर एक प्लांट बढ़ा दिया जाए तो वह संभालना कठिन हो जाता है। उद्यमीय नियंत्रण और देखभाल शिथिल हो जाती है और घटता प्रतिफल शुरू हो जाता है। या फिर प्रशिक्षित

श्रम या कच्चे माल की कमी हो सकती है जिससे उत्पादन घट जाता है। वास्तव में अन्य साधनों की तुलना में एक साधन की कमी घटते प्रतिफल के नियम का मूल कारण है। दुर्लभता का तत्व साधनों में पाया जाता है, क्योंकि उन्हें एक-दूसरे के स्थान पर स्थानापन्न नहीं किया जा सकता। श्रीमती जोन राबिन्सन इसकी व्याख्या इस प्रकार करती है, ''घटते प्रतिफल का नियम वास्तव में जो व्यक्त करता है वह यह है कि उत्पादन के एक साधन को अन्य के स्थान पर स्थानापन्न करने की एक निश्चित सीमा है। दूसरे शब्दों में, साधनों में स्थानापन्नता की लोच अन्नत होती है।'' मान लीजिए कि पटसन की कमी है। क्योंकि पटसन को किसी अन्य वस्तु से स्थानापन्न नहीं किया जा सकता, इसलिए लागत बढ़ जाएगी और घटता प्रतिफल शुरू हो जाएगा। इसका कारण यह है कि उद्योग के लिए पटसन की पूर्ति पूर्णलोचदार नहीं है। यदि दुर्लभ साधन कठोरता से स्थिर है और किसी अन्य साधन से बिल्कुल भी स्थानापन्न नहीं किया जा सकता, तो घटता प्रतिफल तुरन्त शुरू हो जाएगा। यदि कोई फैक्टरी बिजली की शक्ति से चलती है और उसका कोई स्थानापन्न नहीं है, तो बार-बार, जैसा कि भारत में होता है, बिजली फेल होने से उत्पादन घट जाएगा और लागत अनुपात में बढ़ जाएगी क्योंकि फैक्टरी के पहले से कम घंटे चलने पर भी स्थिर लागतों पर खर्च होता ही रहेगा। यदि साधनों में स्थानापन्नता की लोच अन्नत हो, तो स्थिर लागतों से अन्नत उत्पादन किया जा सकता है। इसका अभिप्राय होगा कि सब साधन एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न हैं और घटते प्रतिफल का नियम बिल्कुल भी लागू नहीं होता। यदि ऐसा होता तो भारत जैसे देश में न तो जनसंख्या की समस्या होती न खाद्य समस्या और न ही गृह प्रबन्ध की समस्या। भूमि के बजाय सरलता से श्रम और पूंजी को स्थानापन्न करके इन समसयाओं को हल कर लिया जाता। परन्तु वास्तव में कोई दो साधन पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते। यही कारण है कि घटते प्रतिफल का नियम सब उद्योगों पर लागू होता है।

घटते प्रतिफल के नियम का महत्व - विक्स्टीड के शब्दों में घटते प्रतिफल का नियम ''उतना ही सार्वभौमिक है जितना कि जीवन का नियम'' इस नियम की सार्वभौमिक व्यावहारिकता ने अर्थशास्त्र को विज्ञान के क्षेत्र में पहुंचा दिया है।

यह नियम अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का आधार है। माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त इस तथ्य से ही निकलता है कि जनसंख्या में वृद्धि की अपेक्षा खाद्य सामग्री की पूर्ति अधिक तेजी से नहीं बढ़ती। कारण कि कृषि के क्षेत्र में घटते प्रतिफल का नियम कार्यशील रहता है। वास्तव में, माल्थस के नैराश्य के लिए ही यही नियम उत्तरदायी है। रिकार्डो का लगान सिद्धान्त भी इस नियम पर आधारित है। रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के अनुसार भूमि के विषय में घटते प्रतिफल के नियम की क्रियाशीलता के कारण भूमिपति घटिया भूमि जोतने को विवश होते हैं जिससे लगान बढ़ता है। गहन खेती में भूमि के एक निश्चित टुकड़े पर श्रम और पूंजी की मात्राओं को लगाने से, इस नियम के क्रियाशील होने के कारण, उत्पादन उसी अनुपात में नहीं बढ़ता।

इसी प्रकार मांग सिद्धान्त में ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता का नियम और वितरण के सिद्धान्त में ह्रासमान सीमान्त भौतिक उत्पादकता का नियम इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

अल्पविकसित देशों में - सबसे बढ़कर अल्पविकसित देशों की समस्याओं को समझने के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। ऐसे देशों में कृषि ही लोगों का प्रमुख व्यवसाय है। जनसंख्या में वृद्धि के साथ भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता है। परिणामस्वरूप, भूमि पर और अधिक लोग काम करते हैं। जबकि भूमि एक स्थिर साधन है। इससे श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता घट जाती है। यदि यह प्रक्रिया चलती रहे तथा भूमि पर श्रम की मात्रा और बढ़ा दी जाए, तो सीमान्त उत्पादकता शून्य या ऋणात्मक भी हो सकती है। यह अल्पविकसित देशों में अपने गहन रूप में घटते प्रतिफल के नियम की क्रियाशीलता को स्पष्ट करता है।

तीसरी अवस्था या ऋणात्मक सीमांत प्रतिफल - उत्पादन की तीसरी अवस्था में भी नहीं हो सकता, क्योंकिइस अवस्था में कुल उत्पादन घटने लगता है और सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है। आठवां श्रमिक लगाने पर वास्तव में कुल उत्पादन 60 इकाइयों से घटकर 55 इकाइयां हो जाती हैं और सीमान्त उत्पादन (-) 4 इकाइयां चित्र में यह अवस्था बिन्दुकित रेखा CF से शुरू होती है जहां MP वक्र X अक्ष के नीचे है। यहां भूमि के अनुपात में श्रमिकों की संख्या बहुत अधिक है जिसके कारण खेती करना असंभव है।

जनबिन्दु X के बाएं का उत्पादन होता है तो परिवर्तनशील आगत के अनुपात में स्थिर साधन अधिक मात्रा में है। बिन्दु F के दाईं ओर परिवर्तनशील साधन अधिकता से प्रयोग किया जा रहा है। इसलिए उत्पादन हमेशा इन अवस्थाओं की मध्य की अवस्था में होगा।

13.4.1 मान्यताएं: यह नियम निम्न मान्यताओं पर आधारित-

- साधनों के संयोग के अनुपातों का परिवर्तन किया जा सकता है।
- एक साधन परिवर्तनशील होता है जबकि अन्य स्थिर है।
- परिवर्तनशील साधनों की सब इकाइयां समरूप होती है।
- तकनीक में कोई परिवर्तन नहीं होता यदि उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन हो जाता है, तो उत्पादन वक्र उसी के अनुसार सरक जाएंगे। परन्तु अन्त में नियम तो लागू होता ही है।
- नियम यह मानकर चलता है कि स्थिति अल्पकालीन है क्योंकि दीर्घकालीन में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।
- वस्तु को भौतिक इकाइयों में मापा जाता है। यदि वस्तु को मुद्रा में मापा जाए तो कीमत बढ़ जाने पर उत्पादन में कमी होने पर भी घटते प्रतिफल की अपेक्षा बढ़ते प्रतिफल होंगे।

13.4.2 परिवर्तनशील अनुपात के नियम की व्यावहारिकता - स्थिर साधनों की अविभाज्यताओं के कारण ही बढ़ते तथा घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। बढ़ते प्रतिफल उत्पादन की प्रथम अवस्था में इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि आरम्भ में परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि स्थिर साधनों का पूर्ण उपभोग सम्भव बनाती है। परिवर्तनशील साधन की मात्रा की निरन्तर वृद्धि एक बिन्दु पर स्थिर साधन का पूर्ण विदोहन कर लेती है। इस बिन्दु पर परिवर्तनशील साधन तथा स्थिर साधनों का संयोग अनुपात अनुकूलतम होता है। यदि इस अनुकूलतम बिन्दु के बाद भी परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो स्थिर साधन अति उपयोग होने के कारण परिवर्तनशील साधन का औसत उत्पादन घटने लगता है। यही घटते प्रतिफल का नियम है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री रिकार्डो एवं माल्थस ने इस सिद्धान्त को कृषि क्षेत्र पर लागू किया था। उनके अनुसार कृषि क्षेत्र तथा उससे सम्बंधित व्यवसाय में कुछ समय बाद घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। रिकार्डो के अनुसार भूमि की सीमित मात्रा तथा ह्रासमान उर्वरा शक्ति के कारण कृषि क्षेत्र में घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने घटते प्रतिफल नियम को केवल कृषि क्षेत्र में लागू करके इसके क्षेत्र को सीमित कर दिया। आधुनिक अर्थशास्त्री उद्योग उत्पादन के सभी क्षेत्रों में लागू करके इसके क्षेत्र को सीमित कर दिया। आधुनिक अर्थशास्त्री उद्योग उत्पादन के सभी क्षेत्रों में इस सिद्धान्त की व्यावहारिकता स्वीकार करते हैं। यह एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है। चाहे कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, अन्य साधनों की तुलना में एक साधन की कमी सदैव घटते प्रतिफल को जन्म देगी। श्रीमती जान राबिन्सन उत्पत्ति के साधनों की अपूर्ण स्थानापन्नता को घटते प्रतिफल का कारण मानती है। उनके अनुसार उत्पत्ति के विभिन्न साधन परस्पर अपूर्ण स्थानापन्न होते है जिसके कारण स्थिर साधन की कमी को किसी अन्य साधन से पूरा नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, श्रीमती राबिन्सन के अनुसार साधनों में स्थानापन्नता की लोच अन्नत नहीं है जिसके कारण घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। घटते प्रतिफल की व्यावहारिकता को देखते हुए विक्स्टीड ने कहा कि 'घटते प्रतिफल का नियम उतना ही सार्वभौमिक है जितना कि जीवन का नियम'।

13.4.3 परिवर्तनशील अनुपात नियम का महत्व

1. अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम - यह नियम मात्र कृषि पर ही लागू नहीं होता बल्कि खनन, महती पालन, मकान निर्माण इत्यादि सभी उत्पादन क्षेत्रों में लागू होता है। अतः इसे एक सार्वभौमिक नियम कहा जाता है।

2. माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त का आधार- माल्थस का सिद्धान्त यह बताता है कि देश में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि से कम होती है। खाद्यान्नों में कम वृद्धि का कारण उत्पत्ति ह्रास नियम ही है।

3. सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आधार - इस सिद्धान्त में उत्पत्ति के साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पुरस्कार दिया जाता है। उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता घटती हुई होती है।

4. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का आधार - रिकार्डो की गहन एवं विस्तृत दोनों ही खेतियों में लगान उत्पन्न होने का प्रमुख कारण उत्पत्ति ह्रास नियम ही है। शहरी खेती में जब दिए गए भूखण्ड पर श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग होता है तो उत्तरोत्तर इकाइयों की उत्पादकता घटती जाती है क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। सीमान्त इकाई की तुलना में पहले की इकाइयों से जो बचत प्राप्त होती है उसे रिकार्डो में लगान रहा है। इस प्रकार यह लगान उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता का परिणाम है।

बहुविकल्पी प्रश्न -

1.परिवर्तनशील अनुपात के नियम का सम्बंध -

(a) अल्पकाल से है (b) दीर्घकाल से है

(c) दोनों से है (d) किसी से नहीं है

2.ह्रासमान प्रतिफल के नियम के अनुसार परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि करने के साथ-साथ-

(a) सीमान्त उत्पादन घटने लगता है

(b) कुल उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है

(c) उत्पादन में वृद्धि होना बन्द हो जाता है

(d) कुल उत्पादन में कमी आ जाती है।

3.परिवर्तनशील अनुपात का नियम हमें उस स्थित के बारे में बताता है जब उत्पादन की मात्रा में वृद्धि -

(a) केवल स्थिर साधनों की मात्रा से बढ़ाकर की जाती है।

(b) स्थिर और परिवर्तनशील दोनों साधनों की मात्रा बढ़ाई जाती है।

(c) केवल परिवर्तनशील साधनों की मात्रा बढ़ाकर की जाती है।

(d) उपरोक्त में से कोई नहीं।

4. उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने का मुख्य कारण -

(a) साधनों की सीमितता (b) साधनों की अविभाज्यकता

(c) उपर्युक्त दोनों (d) दोनों में से कोई नहीं

5. वर्तमान प्रतिफल की अवस्था का अर्थ है -

(a) घटती हुई लागतें (b) बढ़ती हुई लागतें

(c) स्थिर लागतें (d) कोई नहीं

13.5 सारांश

इस अध्याय में हमने अध्ययन किया कि

- उत्पादन फलन एक तकनीकी विचार है जो कि आगतों और उत्पादन (निर्गत) के बीच के सम्बंध को प्रदर्शित करता है।
- उत्पादन फलन में परिवर्तन करके ही उत्पादन के नियमों का अध्ययन किया जाता है।
- अल्पकाल में उत्पादन फलन में परिवर्तन साधनों का अनुपात परिवर्तित करते हैं जबकि दीर्घकाल के परिवर्तन उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं।
- परिवर्तनशील अनुपात नियम के अन्तर्गत उत्पादन फलन के सभी साधनों को स्थिर रखते हुए मात्र एक साधन को परिवर्तित करके उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।
- यदि मात्र एक साधन को बढ़ाया जाता है तो कुल उत्पादन में तीन प्रकार की अवस्थाएं उत्पन्न होती हैं।
- प्रथम अवस्था में कुल उत्पादन बढ़ते हुए दर से बढ़ता है इसे वर्द्धमान प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है।
- द्वितीय अवस्था में कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है इसे स्थिर प्रतिफल की अवस्था कहते हैं।
- तृतीय अवस्था में कुल उत्पादन घटने लगता है जिसे ह्रासमान उत्पादन की अवस्था कहा जाता है।

13.6 शब्दावली

- **उत्पादन फलन-** आगत और निर्गत के मध्य का तकनीकी सम्बंध
- **अनुपात में परिवर्तन -** उत्पादन फलन में एक साधन परिवर्तनशील परन्तु अन्य सभी साधन स्थिर
- **पैमाने में परिवर्तन-** उत्पादन फलन में सभी साधन परिवर्तनशील
- **मोड़ का बिन्दु** - वह बिन्दु जहां से सीमान्त लागत घटने लगती है।

13.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

प्रश्न 1- उत्तर: b 2- उत्तर: b 3- उत्तर: b 4- उत्तर: a 5- उत्तर: a 6- उत्तर: a

7- उत्तर: c 8- उत्तर: b 9- उत्तर: a

13.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. झिगन, एम0एल0, ''माइक्रो इकोनोमिक्स'' वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, मयूर विहार, नई दिल्ली, 2007
2. आहूजा, एच.एल., ''उच्चतर आर्थिक विश्लेषण'' एस चान्द एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 2008
3. स्टोनियर एण्ड हेग, ''ए टेक्सट बुक ऑफ इकोनोमिक आक्सफोर्ड पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011
4. सेठ, एम.एल., ''माइक्रो अर्थशास्त्र'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2002

13.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्पादन फलन क्या है? इसकी सामान्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. परिवर्तनशील अनुपात नियम की सचित्र व्याख्या करें।
3. अनुपात एवं पैमाने में परिवर्तन के मध्य क्या अन्तर है? उत्पादन फलन के दृष्टिकोण से व्याख्या करें।

इकाई – 14 समोत्पाद वक्र, साधनों का न्यूनतम लागत संयोग एवं पैमाने के प्रतिफल

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 समोत्पाद वक्र - अर्थ एवं परिभाषा
14.2.1 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर
14.2.2 तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त
14.2.3 समोत्पाद वक्र की मान्यताएं
14.2.4 समोत्पाद वक्र की विशेषताएं
14.2.5 समोत्पाद वक्र मानचित्र
14.3 सम-लागत अथवा समान लागत रेखा
14.4 साधनों का अनुकूलतम संयोग
14.5 विस्तार पथ
14.6 उत्पादन फलन के दृष्टिकोण से पैमाने के प्रतिफल-सहजातीय व असहजातीय उत्पादन फलन
14.7 पैमाने के प्रतिफल का नियम
14.8 सारांश
14.9 शब्दावली
14.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
14.11 संदर्भ ग्रन्थ
14.12 निबन्धात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

इस खण्ड के पूर्व के अध्यायों में आप उत्पादक की लागत व आगम से सम्बंधित विभिन्न धारणाओं का अध्ययन कर चुके हैं। साथ ही आप उत्पादन फलन का अध्ययन भी कर चुके हैं। आपने देखा कि उत्पादन फलन एक तकनीकी धारणा है जो आगतों व निर्गत के मध्य के भौतिक सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है। अल्पकाल में उत्पादन फलन में स्थित सभी साधनों में एक साथ परिवर्तन सम्भव नहीं होता। वस्तुतः अल्पकाल में कुछ साधन स्थिर रहते हैं तथा कुछ ही परिवर्तित होते हैं। अर्थशास्त्री इसे साधनों के अनुपातों में परिवर्तन की संज्ञा देते हैं। परन्तु दीर्घकाल में समय पर्याप्त होता है तथा उत्पादन फलन में उपस्थित सभी साधनों को एक साथ बढ़ाया या घटाया जा सकता है। इसे अर्थशास्त्री पैमाने में परिवर्तन की संज्ञा देते हैं।

इस अध्याय में हम पैमाने में परिवर्तन का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करेंगे। पैमाने के प्रतिफलों का अध्ययन करने के लिए हमें कुछ नए आर्थिक उपकरणों जैसे समोत्पाद वक्र समलागत वक्र, विस्तार पथ इत्यादि की आवश्यकता होगी। अतः अध्याय के प्रारम्भ में हम इन धारणाओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

14.1 उद्देश्य

यह इकाई आपको अवगत कराएगी कि

- सम उत्पाद वक्र की धारणा क्या है।
- सम उत्पाद वक्र की विशेषताएं क्या हैं।
- सम लागत वक्र क्या है।
- साधनों के न्यूनतम लागत संयोग का सिद्धान्त क्या है।
- पैमाने के प्रतिफलों का उत्पादन फलन के दृष्टिकोण से क्या महत्व है।
- सहजातीय तथा असहजातीय उत्पादन फलन क्या है।
- पैमाने में परिवर्तन से कैसे प्रतिफल प्राप्त होते हैं।

14.2 समोत्पाद वक्र का अर्थ एवं परिभाषाएं

समोत्पाद वक्र मांग सिद्धान्त के तटस्थता वक्र की भांति होता है। जिस प्रकार तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है, ठीक उसी प्रकार ''समोत्पाद वक्र उत्पत्ति के किन्हीं दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उत्पादन की एक समान मात्रा प्राप्त की जा सकती है।''

उत्पादक उत्पादन की एक निश्चित मात्रा दो साधनों के विभिन्न संयोगों द्वारा उत्पादित कर सकता है। जैसे -यदि 100 कुन्टल चावल श्रम की एक इकाई तथा पूंजी की 15 इकाइयों द्वारा उत्पादित किया जा सकता है, उतना ही चावल 2 इकाई श्रमिक तथा 12 इकाई पूंजी द्वारा भी उत्पन्न किया जा सकता है, इसी प्रकार उतना ही चावल 3 श्रमिक व 10 इकाई पूंजी के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार 100 कुन्टल चावल उत्पन्न करने वाले श्रम व पूंजी के बहुत से संयोग हो सकते हैं जैसा कि सारणी 14.1 से स्पष्ट है।

सारणी 14.1- समोत्पाद अनुसूची

संयोग	श्रम इकाइयाँ	पूंजी इकाइयाँ	कुल उत्पादन
A	1 +	15	100
B	2 +	12	100
C	3 +	10	100
D	4 +	9	100

अब यदि इन संयोगों को एक चित्र के माध्यम से व्यक्त करें तो हमें समोत्पाद वक्र प्राप्त होगा। चित्र में OX अक्ष पर श्रम की इकाइयां और OY अक्ष पर पूंजी की इकाइयां प्रदर्शित की गई है। A, B, C, D बिन्दु पूंजी और श्रम के विभिन्न संयोगों को व्यक्त करते हैं। । बिन्दु पर उत्पादक 1 श्रमिक तथा पूंजी की 15 इकाइयों से जितना उत्पादन (100 कुन्टल चावल) प्राप्त करता है, उतना ही उत्पादन B बिन्दु पर दो श्रमिक व पूंजी की 12 इकाइयों से प्राप्त करता है अथवा उतना ही उत्पादन उसे C बिन्दु पर 3 श्रमिक व पूंजी की 10 इकाइयों अथवा D बिन्दु पर 4 श्रमिक व पूंजी की 9 इकाइयों से मिलेगा। यदि हम A, B, C, D बिन्दुओं को जोड़ दें तो हमें एक समोत्पाद वक्र (IP =100) मिल जाता है। इसका प्रत्येक बिन्दु उत्पादक को समान उत्पादन देता है। इसलिए उत्पादक विभिन्न संयोगों के प्रति उदासीन रहता है। अतः इसे उत्पादन की उदासीनता रेखा भी कह सकते हैं। अतः समोत्पादक वक्र दो उत्पत्ति के साधनों के अविभिन्न संयोग को प्रदर्शित करते हैं जो कि एक निश्चित मात्रा का उत्पादन

प्रदान करते हैं। समोत्पाद वक्रों को अंग्रेजी में कई नामों से सूचित किया जा सकता है, जैसे- Equal Product Curves, Iso-product Curves and Iso-quant Curves.

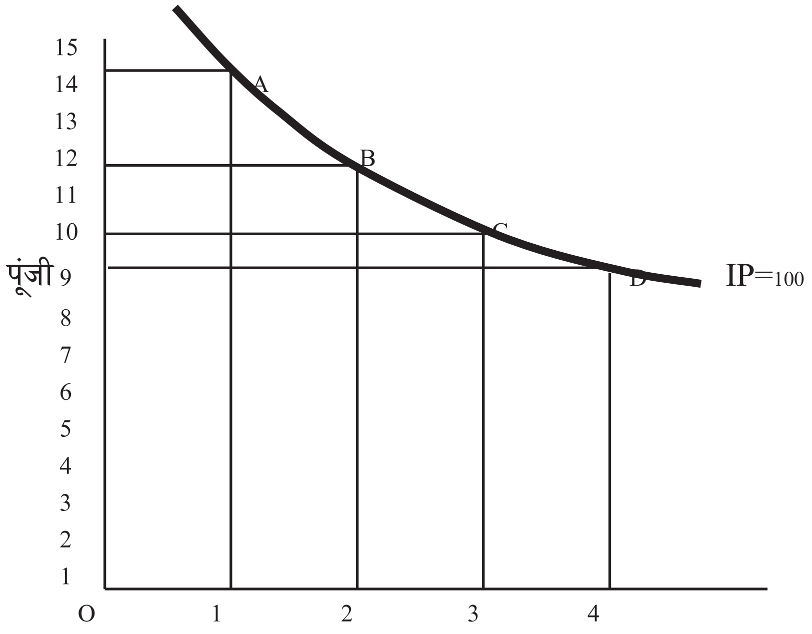

श्रम चित्र 14.1

14.2.1 तकनीकी प्रतिथापन की सीमान्त दर - प्रायः उत्पादन के साधन एक-दूसरे के स्थानापन्न होते हैं। उत्पादन की मात्रा स्थिर रहने की स्थिति में उत्पादन के किसी साधन विशेष को दूसरे साधन को प्रतिस्थापित करने की दर को तकनीकी प्रतिस्थापन दर कहते हैं।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं- ''साधन X की साधन Y के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का अर्थ है कि साधन Xकी एक अतिरिक्त इकाई साधन Y की कितनी इकाइयों को प्रतिस्थापित कर सकती है जिससे उत्पादन मात्रा पूर्ववत् रहे।'' सरल शब्दों में, ''दो साधनों के बीच तकनीकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर का आशय एक साधन की उस मात्रा से है जिसे कुल उत्पादन के स्तर को पूर्ववत् रखते हुए दूसरे साधन की मात्रा से प्रतिस्थापित किया जा सकता है।''

निम्न सारणी की सहायता से तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की धारणा को स्पष्ट किया गया है:

सारणी 14.2-तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

संयोग	X- साधन (श्रम)	Y- साधन (पूंजी)	कुल उत्पादन	पूंजी के लिए प्रतिस्थापन सीमान्त दर
A	1	15	100 कुन्टल	--
B	2	12	100 कुन्टल	3 : 1
C	3	10	100 कुन्टल	2 : 1
D	4	9	100 कुन्टल	1 : 1

सारणी 14.2 से स्पष्ट है कि श्रम व पूंजी का कोई भी संयोग क्यों न लिया जाये, उत्पादन 100 कुन्टल ही रहेगा अर्थात् वे एक ही समोत्पाद वक्र पर स्थित है। संयोग A से संयोग B पर जाने के लिए अर्थात श्रम की एक अतिरिक्त इकाई के क्रय के लिए उत्पादक ने पूँजी की 3 इकाइयां घटा दी। अतः यहां पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर 3:1 है। इसी प्रकार यदि B व C संयोगों की तुलना की जाये तो यह विदित होगा कि यहां श्रम की एक इकाई पूंजी की 2 इकाइयों का स्थान लेती है। अतः यहां पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर 2:1 है। इसी प्रकार तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर C और D के संयोगों के बीच 1:1 है।

14.2.2 तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त - सामान्यतया दो साधनों X और Y के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की दर की प्रवृति ह्रासमान होती है। इस सिद्धान्त का कथन इस प्रकार दिया जा सकता है- ''दो साधनों ग् तथा ल् के संयोग में यदि एक साधन X की मात्रा बढ़ाई जाती है तो दूसरे साधन Y की मात्रा को घटाना पड़ेगा, ताकि कुल उत्पादन समान बना रहे। ऐसी स्थिति में साधन X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को साधन Y की घटती हुई मात्राओं द्वारा प्रतिस्थापित किया जायेगा। इसको X की Y के तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती हुई अथवा ह्रासमान सीमान्त दर का सिद्धान्त कहा जाता है।''

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के विषय में एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि जैसे-जैसे पूंजी के लिए श्रम का प्रतिस्थापन किया जाता है, वैसे-वैसे श्रम की पंजी के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर $\Delta Y/\Delta X$ घटती जाती है। अन्य शब्दों में, जैसे-जैसे Y साधन (पूंजी) के स्थान पर X साधन (श्रम) का उपयोग बढ़ाया जाता है तो Y साधन की इकाइयों की संख्या (जिनकी जगह पर X साधन की एक इकाई का प्रयोग हो सकता है) घटती जायेगी। पिछली सारणी में हम देख चुके हैं कि श्रम की पूंजी के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन दर क्रमशः 3:1, 2:1 व 1:1 है अर्थात् श्रम की मात्रा के बढ़ने पर कम पूंजी का परित्याग किया जाता है। इसे 'तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त ह्रासमान दर का सिद्धान्त' कहते हैं। इस नियम का कारण ह्रासमान सीमान्त प्रतिफल की क्रियाशीलता है। श्रम

की मात्रा में वृद्धि होने के फलस्वरूप श्रम की सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है क्योंकि प्रति श्रमिक पूंजी की मात्रा में कमी हो जाती है। ठीक इसी प्रकार पूंजी की मात्रा में कमी होने के फलस्वरूप पूंजी की सीमान्त उत्पत्ति में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार पूंजी के स्थान पर श्रम का प्रतिस्थापन होने पर दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं- एक तो श्रम की सीमान्त उत्पत्ति में ह्रास हो जाता है और दूसरे, पूंजी की सीमान्त उत्पत्ति में वृद्धि हो जाती है। फलतः श्रम की पूंजी के रूप में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती जाती है। जिस गति से सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती जाती है, वह इस बात की सूचक है कि दो साधन किस सीमा तक एक दूसरे के स्थान पर सरलता से तथा अच्छी प्रकार से प्रयोग किये जा सकते हैं।

14.2.3 समोत्पाद वक्रों की मान्यताएं - समोत्पाद रेखाओं की मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित हैं:

1. उत्पादन के दो साधन- इन रेखाओं को खींचते समय सरलता के लिए यह मान लिया जाता है कि उत्पादन के मात्र दो साधन ही किसी वस्तु का उत्पादन करने में सक्षम हैं।
2. स्थिर तकनीक- यह मान लिया जाता है कि उत्पादन तकनीक पहले से ज्ञात है तथा वह स्थिर रहती है।
3. विभाज्य साधन- समोत्पाद रेखा विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि साधन को छोटे-छोटे भागों में विभाजित किया जा सकता है।
4. कुशल संयोग- यह मान लिया जाता है कि दी हुई तकनीक के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों का अधिकतम कुशलता से प्रयोग किया जाता है।

14.2.4 समोत्पाद वक्रों की विषेशताएं - समोत्पाद वक्र की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं:

1. समोत्पाद वक्र के सभी बिन्दु समान उत्पादन प्रदान करने वाली वस्तुओं के संयोगों को प्रदर्शित करते हैं।
2. **समोत्पाद रेखाओं का ढाल ऊपर से नीचे की ओर होता है-** सामान्यतः समोत्पाद वक्र का ढाल बायें से दायें नीचे की ओर होता है अर्थात ऋणात्मक होता है। इसका आशय यह है कि एक फर्म यदि एक समान उत्पादन रखते हुए एक साधन का क्रय बढ़ाती है तो उसे दूसरे साधन की कम इकाइयों का प्रयोग करना पड़ेगा। जैसा कि चित्र 14.1 में दिये हुए समोत्पाद वक्र में हम देख चुके हैं कि जब तक उत्पादन । बिन्दु से B बिन्दु की ओर जाता है, तब वह पहले से अधिक श्रम की इकाइयों का प्रयोग करता है लेकिन पूंजी की इकाइयों का प्रयोग कम हो जाता है। यही स्थिति B से Cऔर C से D की ओर होती है। इस प्रकार उत्पादन के एक साधन में वृद्धि तथा दूसरे साधन में कमी किये जाने के कारण समोत्पाद वक्र बायें से दाहिने नीचे की ओर झुकता हुआ होता है।
3. **समोत्पाद रेखाएं मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होती है-** समोत्पाद रेखा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होती है। इसका अभिप्राय यह है कि एक साधन की बढ़ती हुई मात्रा को दूसरे साधन की घटती मात्रा में प्रतिस्थापित किया जाता है। सारणी 14.2 से ज्ञात होता है कि श्रम की दूसरी इकाई का प्रयोग करने के लिए पूंजी की 3 इकाइयों का प्रतिस्थापन किया गया है

परन्तु श्रम की तीसरी इकाई का प्रयोग करने के लिए पूंजी की केवल 2 इकाइयों का प्रतिस्थापन किया गया है। समोत्पाद रेखा की यह विशेषता ''घटती हुई सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर पर आधारित है। चित्र 14.1 से स्पष्ट होता है कि समोत्पाद रेखा के ठ बिन्दु पर श्रम की एक इकाई का अधिक प्रयोग करने के लिए पूंजी की 3 इकाइयों का त्याग करना पड़ेगा। इसलिए श्रम की पूंजी के लिए सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर 1:3 हो गयी। क् बिन्दु पर यह कम होकर 1:1 हो गयी अर्थात् सीमानत प्रतिस्थापन दर घटती जा रही है। समोत्पाद वक्र का ढ़ाल इसी सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर को प्रदर्शित करता है।

4. **समोत्पाद रेखाएं कभी एक-दूसरे को काटती नहीं है-** विभिन्न समोत्पाद वक्र विभिन्न उत्पादन के स्तर को प्रदर्शित करते हैं। सबसे नीचे का वक्र सबसे कम और सबसे ऊपर का वक्र सबसे अधिक उत्पादन प्रदान करने वाला होता है। यदि एक वक्र दूसरे वक्र को काटता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक ऊंचे समोत्पाद वक्र तथा एक नीचे समोत्पाद वक्र द्वारा एक समान उत्पादन मिलता है परन्तु यह सम्भव नहीं है। इसे चित्र 14.2 से समझा जा सकता है। समोत्पाद वक्र IP_1 पर दो संयोग M व B स्थित है जो 100 इकाई का उत्पादन दे रहे हैं। इसी प्रकार समोत्पाद वक्र IP_1 पर दो संयोग M व A है जो 150 इकाई का उत्पादन दे रहे हैं। अतः कतिपय विरोधाभास उत्पन्न हो रहा है कि M 100 इकाई का उत्पादन देगा अथवा 150 इकाई का। अतः यह माना जाता है कि समोत्पाद वक्र एक दूसरे को काट नहीं सकते।

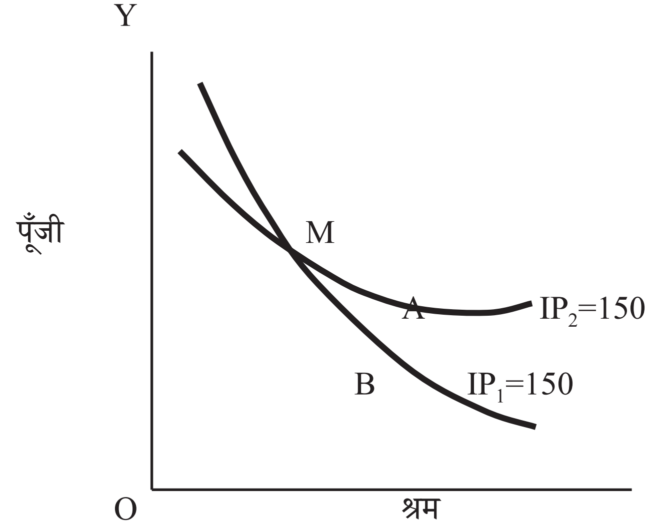

चित्र 14.2

5. **समोत्पाद रेखा जितनी ऊंची होती है, उतनी ही अधिक उत्पादन मात्रा को प्रकट करती है-** मूल बिन्दु से कोई समोत्पाद वक्र जितना दूर होता जाता है अर्थात् दायें की ओर हटता जाता है, वह उत्पादन की उतनी ही अधिक मात्रा को दिखाता है। इस बात को चित्र 14.3 द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र 14.3 में दो समोत्पाद वक्र IP तथा IP_1 लिये गये हैं। पहले वक्र IP पर स्थित P बिन्दु

श्रम की OM मात्रा तथा पूंजी की ON मात्रा के संयोग से बना है जिससे वस्तु की 100 इकाइयां उत्पादित होती हैं। इसके विपरीत, दायें हाथ वाले वक्र IP_1 पर P_1बिन्दु, श्रम की OM_1 मात्रा तथा पूंजी की ON मात्रा को बताता है। चूँकि साधनों के संयोग में (OM_1 + ON) से पहले वाले संयोग (OM + ON) की अपेक्षा अधिक उत्पादन मात्रा पैदा की जा सकती है इसलिए यह सिद्ध हो जाता है कि दायीं ओर का समोत्पाद वक्र बायीं ओर के वक्र की तुलना में उत्पादन की अधिक मात्रा का प्रतीक है।

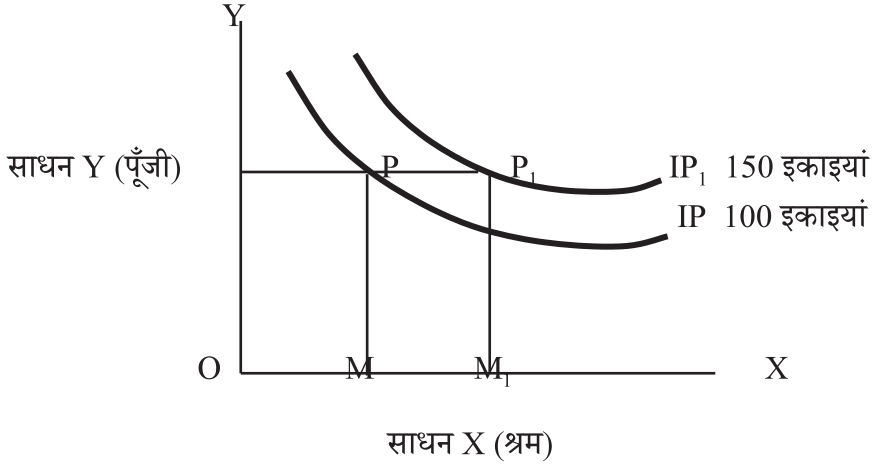

चित्र 14.3

6.दो समोत्पाद वक्रों के बीच में अनेक समोत्पाद वक्र हो सकते हैं- विभिन्न समोत्पाद वक्र (उत्पादन) के उन विभिन्न स्तरों को जो साधनों के विभिन्न संयोगों से प्राप्त होते हैं, प्रदर्शित करते हैं। दो समोत्पाद वक्रों 100 तथा 200 के बीच कई समोत्पाद वक्र हो सकते हैं, जैसे- 110, 115, 120, 135, 175, 180 इत्यादि।

7.समोत्पाद वक्रों पर दिखाई गई उत्पादन इकाइयां कल्पित होती हैं- समोत्पाद वक्रों पर उत्पादन की 100, 150, 200 इत्यादि इकाइयां कल्पित होती हैं।

8.कोई समोत्पाद वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्ष नहीं कर सकता- यदि एक समोत्पाद वक्र X अथवा Y अक्ष को स्पर्श करता है तो इसका अभिप्राय है कि मात्र एक साधन की सहायता से उत्पादन किया जा सकता है जो कि तार्किक दृष्टि से असंगत है।

14.2.5 समोत्पाद-मानचित्र - एक उत्पादक या फर्म के लिए एक नहीं बल्कि अनेक समोत्पाद वक्र हो सकते हैं। प्रत्येक समोत्पाद वक्र उत्पादन की विभिन्न मात्राओं को व्यक्त करते हैं, जैसे- 100 इकाई, 200 इकाई, 300 इकाई आदि। जब कई समोत्पाद वक्रों को एक ही चित्र में दर्शाया जाता है, तब हम इसे समोत्पाद मानचित्र कहते हैं। प्रत्येक दायीं ओर वाला समोत्पाद वक्र उत्पादन की अधिक मात्रा को बताता है। समोत्पाद मानचित्र को चित्र 14.4 में दर्शाया गया है।

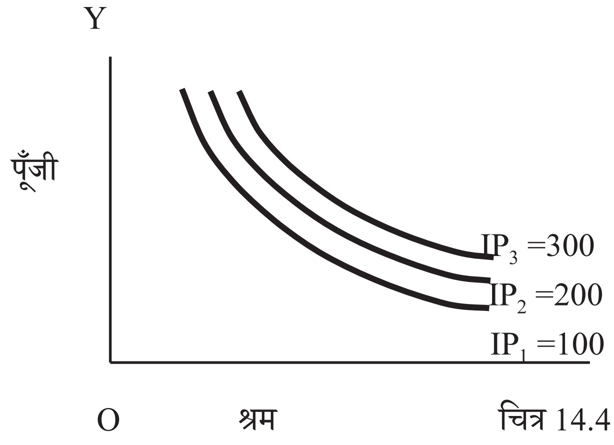

चित्र 14.4

उदासीनता वक्र तथा समोत्पाद वक्र में अन्तर- समोत्पाद वक्र का स्वरूप उदासीनता वक्र की तरह ही होता है। उदासीनता वक्र दो वस्तुओं के सभी सम्भावित संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि मिलती है। उसी प्रकार समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन सभी सम्भावित संयोगों को दिखाता है जिनसे उत्पादक को समान उत्पादन मिलता है। परन्तु इन समानताओं के बाद भी दोनों में कुछ मौलिक अन्तर होते हैं जैसे:

1.उदासीनता वक्र सन्तुष्टि या उपयोगिता को व्यक्त करता है परन्तु सन्तुष्टि को किसी भौतिक इकाई के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। फलतः उदासीनता वक्र सन्तुष्टि के स्तर को दिखाते है, सन्तुष्टि के परिमाणात्मक माप की व्याख्या इसके द्वारा नहीं हो सकती परन्तु समोत्पाद वक्र साधनों के विभिन्न संयोगों से प्राप्त होने वाले उत्पादन को दिखाते हैं जिसका माप भौतिक इकाई के रूप में सम्भव है।

2.दो उदासीनता वक्रों के विश्लेषण से यह स्पष्ट नहीं होता कि उच्चतर तटस्थता वक्र से मिलने वाली सन्तुष्टि निम्नतर उदासीनता वक्र से मिलने वाली सन्तुष्टि से कितनी अधिक है परन्तु समोत्पाद वक्रों के सम्बंध में यह कहा जा सकता है कि दोनों वक्रों से मिलने वाले उत्पादन में कितना अन्तर है।

14.3 सम-लागत अथवा समान लागत रेखा

कोई उत्पादक साधनों का कौन-सा संयोग चुनेगा, यह उत्पादक के पास व्यय करने के लिए उपलब्ध धनराशि तथा साधनो की कीमत पर निर्भर होता है। सम-लागत रेखा इन दो तत्वो अर्थात् उत्पादन साधनों की कीमतों तथा कुल उपलब्ध मुद्रा जिसको उत्पादक साधन खरीदने पर व्यय करना चाहता है, को प्रकट करता है। मान लीजिए की उत्पादक 60 रू0 दो साधनों श्रम व पूँजी पर व्यय करना चाहता है और मान ले, श्रम की कीमत 1 रू0 और पूँजी की कीमत 2 रू0 प्रति इकाई है तो ऐसी स्थिति में उत्पादक के समक्ष उपलब्ध सम्भावनाओं को निम्न सारणी से स्पष्ट कर सकते हैं।

सारणी 14.3 सम्भावित क्रय संयोग

संयोग	श्रमिक	पूँजी	कुल व्यय (लागत) श्रमिक + पूँजी
A	60	0	60 + 0 = 60
B	30	15	30 + 30 = 60
C	20	20	20 + 40 = 60
D	40	10	40 + 20 = 60
E	0	30	0 + 60 = 60

सारणी में दी गई वैकल्पिक सम्भावनाओं को चित्र 14.5 में स्पष्ट किया गया है। AE रेखा समान लागत रेखा हे जो 60 रू0 की लागत द्वारा खरीदी जाने वाली श्रम और पूँजी के विभिन्न संयोगो को प्रदर्शित करती है। उदाहरण के लिए, इस रेखा पर D बिन्दु यह बताता है कि दी हुई कीमतों पर उत्पादक 20 इकाई पूँजी व 20 श्रमिक खरीद सकता है अथवा C बिन्दु के अनुसार वह 15 इकाई पूँजी व 30 श्रमिक खरीद सकता है। अतः इस रेखा पर यदि हम कोई भी बिन्दु लें तो वह श्रम व पूँजी के उस संयोग को दिखायेगा जो कि दी हुई मुद्रा-राशि से प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में समलागत रेखा एक उत्पादक की उपलब्ध मुद्रा राशि को दो साधनो पर व्यय करने की सम्भावनाओं को प्रदर्शित करती है। सम-लागत रेखा को कई अन्य नामों से भी पुकारा जाता है, जैसे साधन कीमत रेखा, व्यय रेखा अथवा फर्म की बजट रेखा।

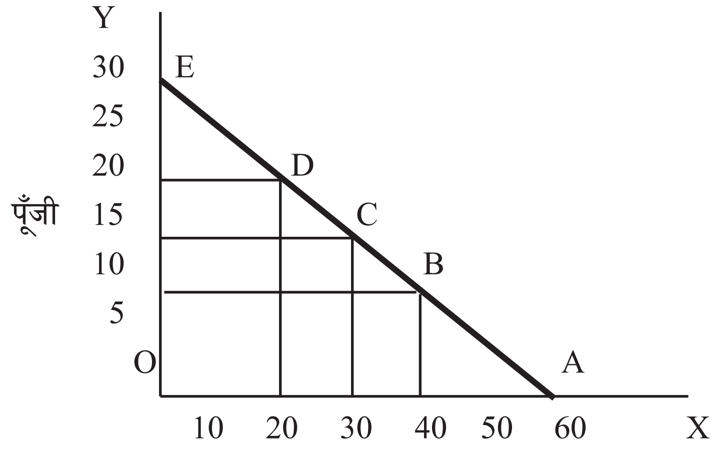

चित्र 14.5

एक सम लागत रेखा का ढ़ाल दोनों साधनों की कीमत अनुपात को व्यक्त करता है अर्थात् यहाँ पर इस रेखा का ढाल श्रमिको एवं पूँजी के अनुपात को व्यक्त करता है।

सम-लागत रेखा का ढाल ऋणात्मक होता है। इसका कारण यह है कि यदि फर्म एक साधन को अधिक खरीदना चाहती है तो उसे दूसरे साधनों की कम मात्रा खरीदनी पड़ेगी।

सम-लागत रेखा में परिवर्तन दो कारणों से सम्भव है:

1. जब उत्पादक द्वारा किये जाने वाले कुल व्यय में परिवर्तन हो जाये।

2. जब साधन की कीमतों में परिवर्तन हो जाये।

यदि साधनों की कीमतें स्थिर रहने पर उत्पादक 60 रूपये के स्थान पर 120 रूपये व्यय करने का निर्णय लेता है तो वह दोनों साधनों को पहले से अधिक मात्रा में खरीद सकेगा। कुल व्यय के 120 रूपये तक बढ़ जाने से सम-लागत रेखा ऊपर की ओर सरक जायेगी। यदि समस्त 120रू0 श्रम पर व्यय किया जाय तो उसकी कीमत 1रू0 प्रति इकाई होने पर कुल 120 इकाइयां अर्थात् OB_1 खरीदी जा सकेगी और यदि यह समस्त 120 रू0 साधन Y अर्थात् पूंजी पर व्यय किये जायें तो उसकी कीमत 2रू0 प्रति इकाई होने पर उसकी 60 इकाइयां अर्थात् OA_1 मात्रा खरीदी जा सकेगी। A_1और B_1 के बिन्दुओं को मिलाने पर हमें नई सम-लागत वक्र प्राप्त होगी जैसाकि चित्र 14.6 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

अभी तक हमने यह माना कि साधनों की कीमतें स्थिर रहती है और कुल व्यय में परिवर्तन हो जाता है। अब हम सम-लागत रेखा का अध्ययन उस स्थिति में करेंगे जबकि कुल व्यय स्थिर रहता है और साधनों की कीमत में परिवर्तन हो जाता है।

किसी भी एक साधन की कीमत में परिवर्तन होने से सम-लागत रेखा की स्थिति बदल जाती है और दूसरी सम-लागत रेखा पहली सम-लागत रेखा के समानान्तर नहीं हाती जैसाकि चित्र 14.7 में दर्शाया गया है।

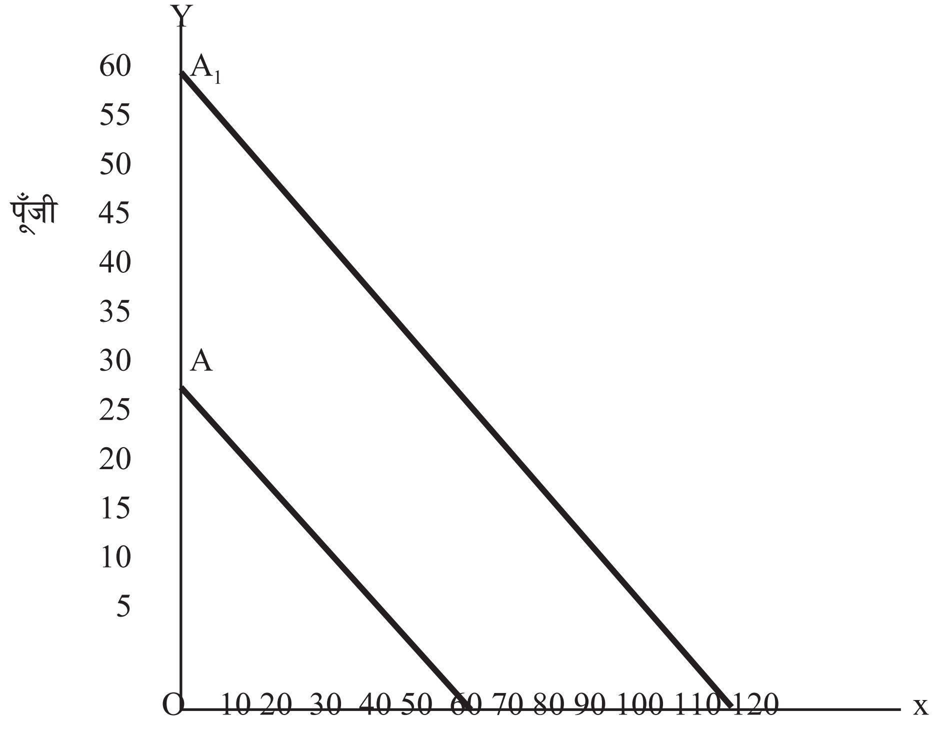

श्रम चित्र 14.6

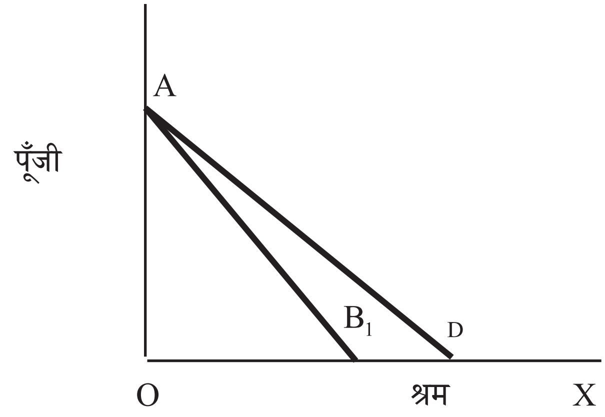

चित्र 14.7

चित्र 14.7 में प्रारम्भिक सम-लागत रेखा AB है जब कुल व्यय की जाने वाली धनराशि 60 रूपये है और X साधन (श्रम) का मूल्य 1 रूपया और Y साधन (मशीन) का मूल्य 2 रूपया है। अब मान लीजिए कि साधन X (श्रम) की कीमत 1 रूपये से घटकर 75 पैसे हो जाती है तो फर्म दिये हुए लागत व्यय पर अब साधन X की अधिक इकाइयां खरीद सकेगी। माना कि वह X की OD मात्रा खरीदती है। चूँकि साधन Y की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता इसलिए Y की उतनी ही मात्रा OA खरीदी जायेगी अर्थात बिन्दु A स्थिर रहेगा। अब नई सम-लागत रेखा AD होगी। यदि साधन X की कीमत और गिरती है तो बिन्दु A स्थिर रहेगा परन्तु बिन्दु D और आगे खिसक जायेगा क्योंकि अब साधन X की और अधिक मात्रा खरीदी जा सकेगी। इसके विपरीत, यदि साधन X की कीमत स्थिर रहती है और साधन Y की कीमत गिरती है तो बिन्दु B स्थिर रहेगा और बिन्दु A आगे खिसक जायेगा।

14.4 साधनों का अनुकूलतम (न्यूनतम लागत) संयोग

समोत्पाद वक्र साधनों के उन सभी संयोगों को प्रकट करता है जिनसे उत्पादन की समान मात्रा उत्पादित होती है। इसके विपरीत, सम-लागत वक्र साधनों के क्रय की सम्भावनाओं को प्रकट करता है।

उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है। अधिकतम लाभ अर्जित करने के लिए वह वस्तु का अधिकतम मात्रा का उत्पादन न्यूनतम लागत पर करना चाहता है। दूसरे शब्दों में वह साधनों के अनुकूलतम संयोग का चयन करना चाहेगा जो उसे अधिकतम लाभ प्रदान कर सके।

दो साधनों की अनुकूलतम मात्राओं या दो साधनों के न्यूनतम लागत संयोग का चुनाव करने के लिए इस फर्म को साधनों की भौतिक उत्पादकता, तथा साधनों की कीमतों, दोनों को ध्यान में रखना

होगा। समोत्पाद रेखाएं साधनों की भौतिक उत्पादकताओं को दर्शाती है जबकि साधनों की कीमत को उसी एक चित्र में सम-लागत रेखाओं द्वारा दिखाया जाता है।

साधनों के न्यूनतम लागत संयोग का अध्ययन हम निम्नलिखित दो दृष्टिकोणों से करते हैं:

(अ) लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई हो और

(ब) उत्पादन को अधिकतम करना जबकि लागत व्यय दिया हुआ हो।

(अ) लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई हो- जब उत्पादन की मात्रा दी रहती है तो फर्म के सामने यह समस्या होती है कि दिये हुए उत्पादन को न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पादित करें। अन्य शब्दों में, फर्म सबसे कम लागत रेखा पर पहुंचने का प्रयत्न करेगी। इसी तथ्य को चित्र 14.8 की सहायता से समझाने का प्रयत्न किया गया है।

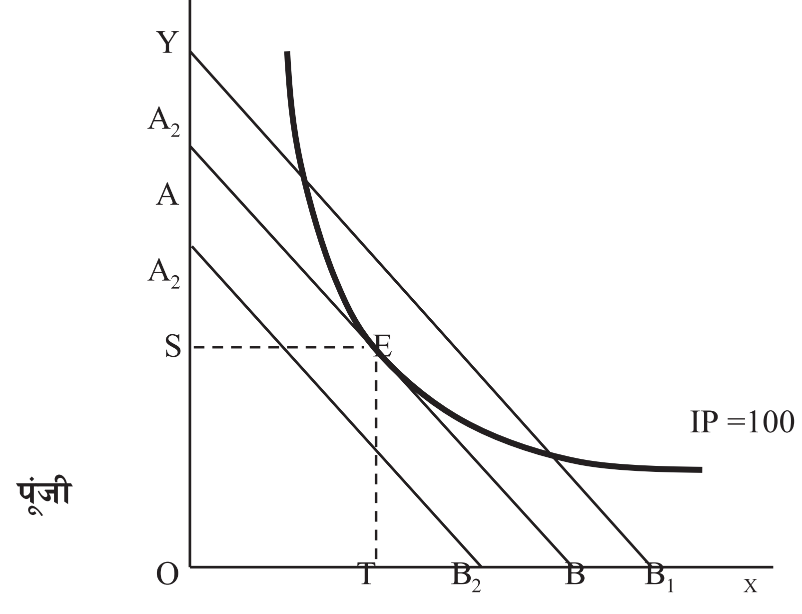

श्रम चित्र 14.8

चित्र में समोत्पाद वक्र IP उत्पादन की 100 इकाइयों को प्रकट करती है। वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन समोत्पाद वक्र IP पर स्थित किसी भी साधन संयोग, जैसे- C,E,D आदि द्वारा किया जा सकता है परन्तु इन विभिन्न संयोगों में से केवल E संयोग ही उत्पादनकर्ता का न्यूनतम लागत संयोग होगा क्योंकि इस पर समोत्पाद वक्र IP न्यूनतम सम्भावित सम-लागत वक्र AB को स्पर्श करता है। साधनों के E संयोग के प्रयोग से उत्पादन लागत न्यूनतम होगी। यदि उत्पादनकर्ता समोत्पाद वक्र IP वक्र के किसी अन्य संयोग, जैसे- C अथवा D का चुनाव करता है तो वस्तु की 100 इकाई का उत्पादन करने के लिए उस अधिक राशि व्यय करनी पड़ेगी। अतः कोई भी विवेकशील उत्पादक इन

संयोगों का चुनाव नहीं करेगा। अतःE बिन्दु ही साम्य बिन्दु होगा। यही साधनों का न्यूनतम लागत संयोग भी है।

(ब) उत्पादन अधिकतम करना, जबकि लागत व्यय दिया हुआ हो- जब लागत व्यय दिया हुआ है तो फर्म के सामने यह समस्या होती है कि इस दिये हुए लागत व्यय के अन्तर्गत अधिकतम उत्पादन कैसे करें। दूसरे शब्दों में, फर्म सबसे ऊंचे समोत्पाद वक्र पर पहुंचने का प्रयास करेगी जोकि दी हुई लागत पर सम्भव हो। ऐसी स्थिति में उत्पादक के लिए श्रम और पूंजी का सबसे अनुकूलतम संयोग उस बिन्दु पर प्राप्त होगा जहां पर समलागत वक्र उच्चतम समउत्पाद वक्र को स्पर्श करता है। इसी तथ्य को चित्र 14.9 की सहायता से समझाया गया है।

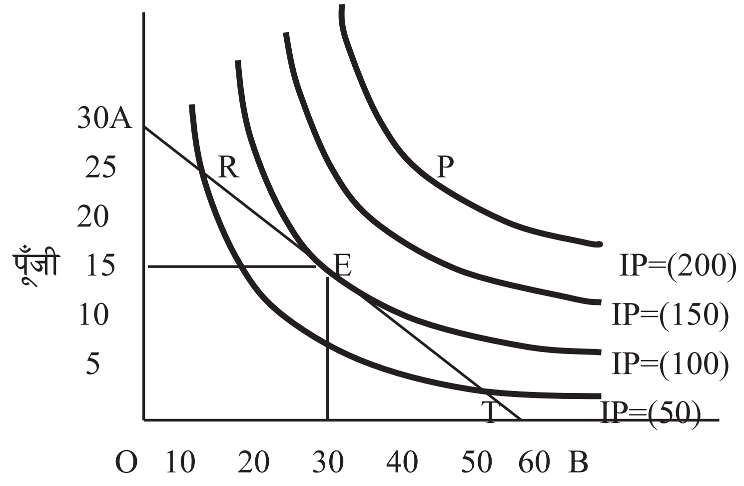

चित्र 14.9

चित्र 14.9 में OX अक्ष पर श्रम को तथा OY अक्ष पर पूँजी को दिखाया गया है।

मान लिया, उत्पादक वस्तु की 100 इकाइयां उत्पादित करना चाहता है जिसे वह IP_1 समोत्पाद वक्र पर अंकित श्रम तथा पूंजी के संयोग से प्राप्त कर सकता है। इन संयोगों में, अनुकूलतम संयोग चुनने के लिए उत्पादक को साधन रेखा अथवा (समलागत रेखा) मालूम होनी चाहिए। चित्र में IB सम-लागत रेखा है जिसे IP_1 समोत्पाद वक्र E बिन्दु पर स्पर्श करता है। यही बिन्दु साधनों D अनुकूलतम संयोग का या उत्पादक का साम्य बिन्दु है। साम्य बिन्दु पर पूंजी की 15 इकाइयों और श्रम की 30 इकाइयों का उपयोग करके फर्म वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन करने में सफल होती है। इस प्रकार फर्म का सन्तुलन बिन्दु E है। फर्म IP_3 पर स्थित P बिन्दु पर यदि साम्य स्थापित करे तो उसको 200 इकाई उत्पादन प्राप्त हो सकता है, लेकिन फर्म के व्यय सीमा के कारण वह श्रम व पूंजी के ऐसे संयोगों को प्राप्त करने में असफल रहेगी जो कि उसे P बिन्दु पर ले जा सके। इसी प्रकार यदि फर्म IP पर स्थित R अथवा Tबन्दु पर अपना साम्य स्थापित करती है तो वह केवल 50 इकाई उत्पादन प्राप्त कर सकेगी क्योंकि साम्य बिन्दु R अथवा T फर्म की कीमत रेखा AB से नीचे की ओर स्थित है।

अतः फर्म के साम्य की अवस्था E बिन्दु पर ही प्राप्त होगी जहां वह अपने वित्तीय साधनों की सहायता से पूंजी व श्रम के ऐसे संयोग को प्राप्त करने में समर्थ है जो कि उसे अधिकतम उत्पादन प्रदान करे। E बिन्दु सन्तुलन बिन्दु है, इस बिन्दु पर साधनों की लागत रेखा तथा समोत्पादक वक्र का ढाल समान है तथा इस कारण दोनों साधनों की कीमत अनुपात (जो लागत रेखा के ढाल द्वारा स्पष्ट किया गया है) और साधन की सीमान्त प्रतिस्थापन दर (जो समोत्पाद वक्र के ढाल द्वारा निर्धारित होती है) समान है। अतः सन्तुलन बिन्दु E अथवा न्यूनतम लागत को निम्न प्रकार भी समझाया जा सकता है-

$$\frac{\text{पूंजी की सीमान्त उत्पादकता}}{\text{श्रम की सीमान्त उत्पादकता}} = \frac{\text{पूंजी की कीमत}}{\text{श्रम की कीमत}}$$

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्पादक सन्तुलन की स्थिति में उस समय होता है जबकिः

(अ) समोत्पाद वक्र समान लागत वक्र को स्पर्श करता है।

(ब) साधनों की सीमान्त प्रतिस्थापन दर और दोनों साधनों की कीमत अनुपात बराबर होती है।

(स) सीमान्त प्रतिस्थापन दर, सन्तुलन बिन्दु पर ह्रासमान है अर्थात समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होता है।

बहुविकल्पी प्रश्न्

1. समोत्पाद वक्र
   (a) दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे समान उत्पादन मिलता है।
   (b) उत्पादन की बढ़ती हुयी मात्रा को दर्शाता है।
   (c) अधिकतम उत्पादन को दर्शाता है।
   (d) स्थिर उत्पादन को दर्शाता है।

3.समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते है। समोत्पाद वक्र की यह विशेषता आधारित है - (a) तकनीकी प्रतिस्थापन की ह्रासमान दर पर।
   (b) सम लागत रेखा के ढाल पर।
   (c) पैमाने के प्रतिफल पर।
   (d) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

3. समोत्पाद वक्र का ढाल सदैव
   (a) धनात्मक होता है।
   (b) ऋणात्मक होता है।
   (c) पूर्णतया अनिश्चित होता है।

(d) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

4. समोत्पाद वक्र की तकनीकी प्रतिस्थापन दर होती है-

(a) $MRSTS_{xy} = \frac{-\Delta y}{\Delta x}$ (b) $MRTS_{xy} = \frac{\Delta y}{\Delta x}$

(c) $MRTS_{xy} = \frac{\Delta x}{\Delta y}$ (d) $MRTS_{xy} = \frac{-\Delta x}{\Delta y}$

5. समलागत वक्र प्रदर्शित करती है-

(a) उत्पादक की क्रय सीमा को

(b) साधनों के प्रतिस्थापन की सीमा को

(c) साधनों की परिवर्तनशीलता को

(d) इनमें से कोई नहीं।

14.5 विस्तार पथ

विस्तार पथ उत्पादक के विभिन्न उत्पादन स्तरों को उत्पादित करने वाले न्यूनतम लागत संयोगों का बिन्दुपथ है जबकि साधनों की कीमतें स्थिर रहती है। दूसरे शब्दों में, उत्पादक साधनों की स्थिर कीमतों की दशा में उत्पादन स्तर में वृद्धि करने पर साधन संयोगों को किस प्रकार समायोजित करता है, इसका अध्ययन विस्तार पथ की सहायता से किया जा सकता है।

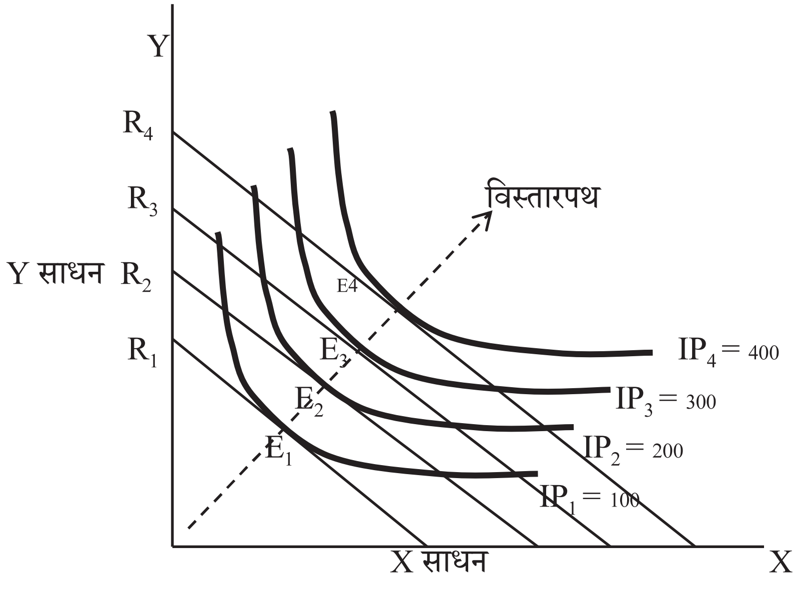

चित्र 14.10

चित्र में R_1S_1, R_2S_2, R_3S_3 तथा R_4S_4 चार समानान्तर समलागत रेखाएं दी हुई हैं। उत्पादक प्रारम्भ में बिन्दु E_1 पर स्थित है तथा 100 इकाइयों का उत्पादन कर रहा है। उत्पादन को अगली 100 इकाइयों

से बढ़ाने के लिए अर्थात समोत्पाद वक्र IP_1 से IP_2 पर जाने के लिए वह दोनों साधनों यानि पैमाने में E_1E_2 मात्रा में वृद्धि करेगा। ऐसा करने पर वह साम्य बिन्दु E_1 से E_2 पर पहुंच जाएगा। इसी प्रकार वह E_2 से E_3 तथा E_3 से E_4 पर पहुंचेगा। E_1, E_2, E_3, E_4 साम्य बिन्दुओं को जोड़ने वाली रेखा विस्तार पथ कहलाएगी। इस विस्तार पथ को पैमाना रेखा भी कहा जाता है क्योंकि उत्पादक इसी पैमाने वृद्धि के आधार पर अपने उत्पादन का विस्तार करता है।

14.6 उत्पादन फलन के दृष्टिकोण से पैमाने के प्रतिफल सहजातीय व असहजातीय उत्पादन फलन

मान लें कि एक उत्पादन फलन निम्नवत दिया हुआ है

$$Q = f(L, K, E)$$

जहां L श्रम, K.पूंजी, E उद्यम तथा Q उत्पादन की मात्रा को प्रदर्शित करते हैं।

पैमाने में वृद्धि करने के लिए हमें सभी साधनों को एक साथ बढ़ाना होगा। साधनों में बढ़ाने के दो तरीके हो सकते हैं। पहला तरीका यह होगा L, K तथा E, को भिन्न-भिन्न प्रकार से बढ़ाया जाए। उदाहरणार्थ मान लें L की a गुना, K को b गुना और E को c गुना बढाया जाए। इस प्रकार की वृद्धि का उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसका अनुमान लगाना सम्भव नहीं होगा। इस प्रकार के उत्पादन फलन को अर्थशास्त्री असहजातीय उत्पादन फलन कहते हैं।

पैमाने को बढ़ाने का दूसरा तरीका यह हो सकता है कि साधनों में एकरूपता से A गुना वृद्धि की जाए। इसे सहजातीय उत्पादन फलन की संज्ञा दिया जाता है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार ऐसे में उत्पादन A^{α} के बराबर बढ़ेगा। "α" को सहजातीयता की अंश (degree of homogeniety) कहते हैं। ऐसे में उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त करेंगे -

$$A^{\alpha}Q = fA\ (L, K, E)$$

"α" का मान ही पैमाने के प्रतिफलों को प्रदर्शित करेगा।

1.यदि $\alpha = 1$ है तो उत्पादन फलन $AQ = fA\ (L, K, T, E)$ हो जाएगा। इसे शिष्ट अथवा रेखीय सहजातीय उत्पादन फलन कहा जाता है। इसका अभिप्राय है कि साधनों में A गुना वृद्धि करने पर उत्पादन भी A गुना बढ़ गया।

2.यदि $\alpha > 1$ है तो दूसरा अर्थ है कि पैमाने को बढ़ाने से वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त हुए।

3.यदि $\alpha < 1$ है तो दूसरा अर्थ है कि पैमाने को बढ़ाने से ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त हुए।

14.7 पैमाने के प्रतिफल का नियम

पैमाने के प्रतिफल का नियम दीर्घकालीन निर्गतों और आगतों के माप के सम्बंध को वर्णित करता है जबकि सब आगतें समान अनुपात में बढ़ा दी जाएं। मांग में दीर्घकालीन परिवर्तन को पूरा करने के लिए फैक्टरी में अधिक स्थान, मशीनों और श्रम का प्रयोग करके फर्म अपने उत्पादन का पैमाना बढ़ाती है।

मान्यताएं - यह नियम निम्न मान्यताओं पर आधारित है-

1. सब साधन परिवर्तनशील है।
2. एक श्रमिक दिये हुए औजार और उपकरणों से काम करता है।
3. प्रोद्योगिकीय परिवर्तन नहीं होते।
4. पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है।
5. वस्तु मात्राओं में मापी जाती है, मुद्रा में नहीं।

इन मान्यताओं के दिए होने पर, जब सब आगतें अपरिवर्तित अनुपात में बढ़ाई जाती है और उत्पादन के पैमाने का विस्तार अनुपात में बढ़ाई जाती है और उत्पादन के पैमाने का विस्तार किया जाता है, तो उत्पादन में तीन अवस्थाएं उत्पन्न होती है। प्रथम, प्रतिफल बढ़ जाता है क्योंकि कुल उत्पादन में वृद्धि सब आगतों में वृद्धि के अनुपात से अधिक होती है। तत्पश्चात पैमाने का प्रतिफल स्थिर हो जाता है क्योंकि कुल उत्पादन में वृद्धि आगतों में वृद्धि से ठीक समान अनुपात में होती है। अन्त में, पैमाने का प्रतिफल घट जाता है क्योंकि कुल उत्पादन में वृद्धि सब आगतों में वृद्धि से कम होती है। पैमाने के प्रतिफल का यह नियम नीचे तालिका और चित्र की सहायता से समझाया गया है।

सारणी- 14.4 उत्पादन का प्रतिफल

इकाई	उत्पादन का पैमाना	कुल प्रतिफल	सीमान्त प्रतिफल	अवस्था
1	1 श्रमिक + 2 एकड़ भूमि	8	8	प्रथम
2	2 श्रमिक + 4 एकड़ भूमि	17	9	
3	3 श्रमिक + 6 एकड़ भूमि	27	10	
4	4 श्रमिक + 8 एकड़ भूमि	38	11	द्वितीय
5	5 श्रमिक + 10 एकड़ भूमि	49	11	
6	6 श्रमिक + 12 एकड़ भूमि	59	10	तृतीय
7	7 श्रमिक + 14 एकड़ भूमि	68	9	
8	8 श्रमिक + 16 एकड़ भूमि	76	8	

यह तालिका स्पष्ट करती है कि शुरू में जब उत्पादन का पैमाना 1श्रमिक + 2 एकड़ भूमि है, तो कुल उत्पादन 8 है। उत्पादन बढ़ाने के लिए जब उत्पादन का पैमाना दुगुना (2श्रमिक + 4 एकड़

भूमि) कर दिया जाता है, तो कुल प्रतिफल दुगुने से अधिक हो जाता है। वह 17 हो जाता है। अब यदि पैमाना तिगुना (3श्रमिक + 6 एकड़ भूमि) कर दिया जाए, तो प्रतिफल तिगुने से अधिक अर्थात 27 हो जाता है। यह पैमाने के बढ़ते प्रतिफल को प्रकट करता है। यदि उत्पादन के पैमाने को और बढ़ा दिया जाए तो कुल प्रतिफल उस ढंग से बढ़ेगा कि सीमान्त प्रतिफल स्थिर हो जाता है। उत्पादन के पैमाने की चौथी और पांचवी इकाई का सीमान्त प्रतिफल 11 है अर्थात पैमाने का प्रतिफल स्थिर है। इसके बाद उत्पादन के पैमाने में वृद्धि का परिणाम घटता प्रतिफल होगा। छठी, सातवीं, आठवीं इकाइयों पर कुल प्रतिफल पहले की अपेक्षा कम दर पर बढ़ता है और सीमान्त प्रतिफल उत्तरोत्तर घटकर 10, 9, 8 हो जाता है।

पैमाने का प्रतिफल पहले बढ़ता, फिर स्थिर और अन्त में घटता क्यों है?

1.पैमाने का बढ़ता प्रतिफल- उत्पादन के साधनों की अविभाज्यता के कारण पैमाने का प्रतिफल बढ़ता है। अविभाज्यता का अर्थ है कि मशीनें, प्रबंधकर्ता, श्रम, वित्त आदि बहुत छोटे आकार में प्राप्त नहीं होते। वे निश्चित आकारों में ही मिलते हैं। जब एक व्यापार इकाई का विस्तार होता है, तो पैमाने का प्रतिफल बढ़ जाता है क्योंकि अविभाज्य साधनों को उनकी अधिकतम क्षमता पर लगाया जाता है।

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल विशेषीकरण और श्रम विभाजन से भी होते है। जब फर्म के पैमाने का विस्तार किया जाता है, तो श्रम विभाजन और उपकरणों के विशेषीकरण का पैमाना बढ़ जाता है। काम को छोटे-छोटे भागों में बांटा जा सकता है और श्रमिक प्रक्रियाओं के पहले से छोटे क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। इसके लिए विशेषीकृत उपकरण लगाए जा सकते है। इस प्रकार विशेषीकरण दक्षता बढ़ती है और इससे पैमाने का प्रतिफल बढ़ता है। फिर, जब फर्म का विस्तार होता है तो वह उत्पादन की आन्तरिक किफायतों का उपभोग करती है। वह पहले से अच्छी मशीनें लगा सकती हैं, अधिक आसानी से वस्तुएं बेंच सकती है, सस्ती दर पर मुद्रा उधार ले सकती है, अधिक कुशल और श्रमिकों की सेवाएं प्राप्त कर सकती है। ये सब किफायतें पैमाने के प्रतिफल को अनुपात से अधिक बढ़ा देने में सहायता करती है।

केवल इतना ही नहीं, बाहरी किफायतों के कारण भी फर्म पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का उपभोग करती है। जब अपनी वस्तु की दीर्घकालीन बढ़ी हुई मांग को पूरा करने के लिए उद्योग अपना और विस्तार करता है तो बाहरी किफायतें प्रकट होती हैं। जिनका उद्योग की सब फर्में बांटकर उपभोग करती हैं। जब बहुत सी फर्में एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती हैं, तो कुशलश्रम, उधार और यातायात की सुविधाएं आसानी से मिलने लगती हैं। प्रधान उद्योग की सहायता के लिए सहायक उद्योग उत्पन्न हो जाते हैं। व्यापार-पत्रिकाएं, शोध और प्रशिक्षण केन्द्र खुल जाते हैं, जो फर्मों की उत्पादन दक्षता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इस प्रकार ये बाहरी किफायतें भी पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का कारण बनती है।

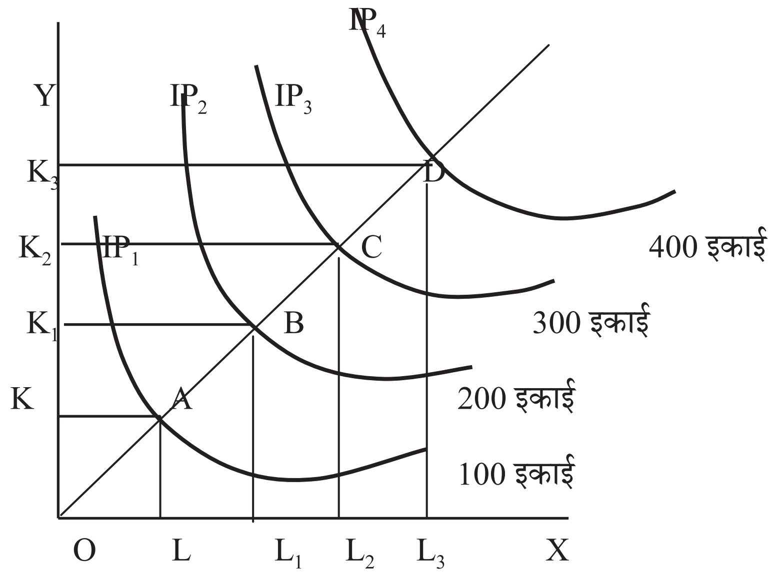

साधन-X (श्रम की मात्रा) चित्र 14.11

पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल को चित्र 14.11 की सहायता से समझाया गया है। चित्र में IP_1, IP_2, IP_3 तथा IP_4 समोत्पाद रेखाएं हैं जो क्रमशः उत्पादन की 100, 200, 300 तथा 400 इकाइयों को व्यक्त करती है। अन्य शब्दों में, समोत्पाद रेखाएं रेखाचित्र में एक समान वृद्धि को बताती है अर्थात् प्रत्येक ऊंची समोत्पाद वक्र पर उत्पादन की 100 इकाइयां बढ़ जाती हैं। चित्र में विभिन्न समोत्पाद रेखाएं पैमाने की रेखा व्त् को विभिन्न टुकड़ों में विभाजित करती है। पैमाने की रेखा का प्रत्येक टुकड़ा दोनों साधनों (श्रम और पूंजी) की एक निश्चित मात्रा को बताता है। चित्र में पैमाने की रेखा पर प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई कम होती है अर्थात् $OA>AB>BC>CD$

इन विभिन्न टुकड़ों की घटती हुई लम्बाई का तात्पर्य यह है कि दो साधनों की क्रमशः उन कम मात्राओं के प्रयोग से उत्पादन में एक समान वृद्धि (100 इकाइयों के बराबर) प्राप्त की जाती है। अतः इस अवस्था को बढ़ते हुए प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है।

2.पैमाने का स्थिर प्रतिफल - परन्तु पैमाने का यह बढ़ता प्रतिफल अनिश्चित काल के लिए नहीं चलता रहता। जब फर्म का और विस्तार किया जाता है, तो आन्तरिक और बाहरी अमित्व्ययिताएं तथा आन्तरिक और बाहरी किफायतों के प्रति संतुलन करती है। प्रतिफल समान अनुपात में बढ़ता है। जिससे उत्पादन के एक बड़े क्षेत्र में पैमाने का प्रतिफल स्थिर रहता है। यहां पैमाने के प्रतिफल का वक्र क्षैतिज हो जाता है इसका अभिप्राय है कि उत्पादन के सब स्तरों पर पैमाने का प्रतिफल स्थिर रहता है। पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते हैं जब आंतरिक अमितव्ययिताएं और किफायतें निष्प्रभावित हो जाती है और उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है। दूसरा कारण बाहरी किफायतें और अमितव्ययिताओं का संतुलित होना है। फिर, जब उत्पादन के साधन पूर्णतया विभाज्य, स्थानापन्न

और समरूप हों और दी हुई कीमतों पर उनकी आपूर्तियां पूर्णतया लोचदार हों तो पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते हैं। पैमाने के स्थिर प्रतिफल का सिद्धान्त एक रेखीय उत्पादन-फलन को प्रदर्शित करता है। चित्र 14.12 में OR एक पैमाने की रेखा है। समोत्पाद रेखाएं IP_1, IP_2, IP_3 तथा IP_4 पैमाने की रेखा OR को समान टुकड़ों (OA = AB = BC = CD)में विभाजित करती है, इसका तात्पर्य यह हुआ कि उत्पादन के दोनों साधनों- श्रम तथा पूंजी की क्रमशः बराबर मात्राओं के प्रयोग से उत्पादन एक समान (अर्थात 100 इकाइयां) वृद्धि प्राप्त की जाती है। इस स्थिति को पैमाने के स्थिर या समता प्रतिफल की अवस्था कहते हैं।

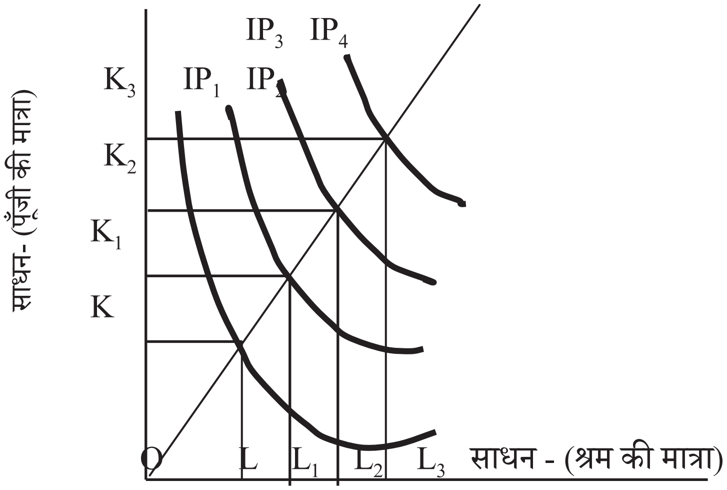

चित्र- 14.12

3.पैमाने का घटता प्रतिफल- पैमाने का स्थिर प्रतिफल केवल एक गुजरती हुई अवस्था है क्योंकि अन्त में पैमाने का प्रतिफल घटने लगता है। अविभाज्य साधन अकुशल और कम उत्पादक बन जाते हैं। व्यापार भारी भरकम हो सकता है जिससे ताल-मेल और देखभाल की समस्याएं खड़ी हो जाती है। प्रबन्ध का विस्तार होने से नियंत्रण और कठोरताओं की कठिनाइयां भी उत्पन्न हो जाती हैं। जब उद्योग का विस्तार जारी रहता है, तो प्रशिक्षित श्रम, भूमि, पूंजी की मांग बढ़ जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता के कारण मजदूरी, लगान और ब्याज की दरें बढ़ जाती है। कच्चे माल की कीमतें भी बढ़ जाती है। यातायात और मार्किटिंग की समस्याएं पैदा हो जाती हैं। इन सब कारणों से लागतें बढ़ने लगती हैं और फर्मों के विस्तार से पैमाने का प्रतिफल घटने लगता है। जिसके कारण पैमाने को दुगुना कर देने से उत्पादन दुगुना नहीं होता।

वास्तव में, ऐसे उदाहरण ढूंढ़ सकना संभव नहीं है जहां सब साधनों में बढ़ने की प्रवृत्ति हो। सब साधनों के बढ़ जाने पर भी उद्यम अपरिवर्तित रहता है। ऐसी स्थिति में उत्पादन में परिवर्तन केवल पैमाने में परिवर्तन के कारण नहीं माना जा सकता। उत्पादन में परिवर्तन का कारण साधनों के अनुपातों का बदल जाना भी है। इस प्रकार वास्तविक जगत में परिवर्तनशील अनुपातों का नियम लागू होता है।

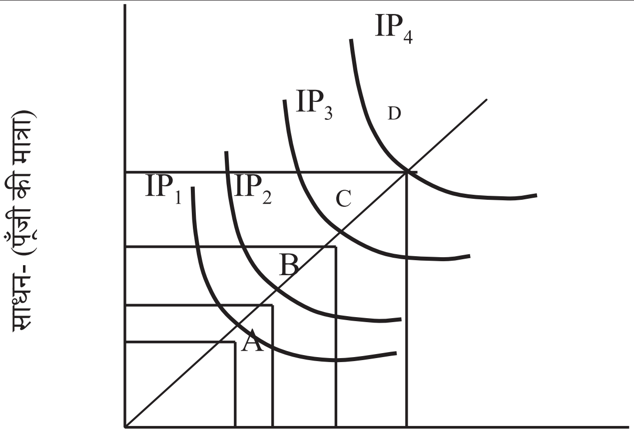

साधन-X (श्रम की मात्रा) चित्र-14.13

चित्र 14.13 में समोत्पाद रेखाएं IP_1, IP_2, IP_3 तथा IP_4 क्रमशः उत्पादन की 100,200,300 तथा 400 इकाइयों को व्यक्त करती है अर्थात् प्रत्येक समोत्पाद वक्र पर उत्पादन की मात्रा में एक समान 100 इकाइयों की वृद्धि होती जाती है। ये विभिन्न समोत्पाद रेखाएं पैमाने की रेखा OR को जैसे- OA, AB, BC तथा CD में विभाजित करती है, प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई बढ़ती जाती है अर्थात् $OA < AB < BC < CD$ I इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक अतिरिक्त 100 इकाइयों का उत्पादन करने के लिए श्रम एवं पूंजी की अधिकाधिक मात्राओं का प्रयोग किया जाता है। अतः इस अवस्था को पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है।

लघुउत्तरीय प्रश्न्

1. पैमाने के प्रतिफल में -
   (a) कुछ साधन स्थिर रहते हैं और कुछ परिवर्तनशील
   (b) सभी साधन भिन्न प्रकार से बढ़ते हैं।
   (c) सभी साधनों की मात्रा में एक ही अनुपात में परिवर्तन होता है
   (d) सभी साधन स्थिर रहते हैं।
2. पैमाने के प्रतिफल का सम्बंध -
   (a) दीर्घकाल से होता है
   (b) अल्पकाल से होता है
   (c) दोनों से नहीं
   (d) दोनों से ही।
3. पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल लागू होने के प्रमुख कारण हैं-
   (a) आकार की कुशलता
   (b) अविभाज्यकता
   (c) विशिष्टीकरण

(d) उपर्युक्त सभी।

4. पैमाने को बढ़ाने के लिए उत्पत्ति के साधनों की मात्रा बढ़ायी जाती है, साधनों का अनुपात-

(a) अपरिवर्तित रहता है

(b) बदल जाता है

(c) प्रतिकूल हो जाता है

(d) अनुकूल हो जाता है।

5. आन्तरिक एवं बाहरी बचतों के कारण उत्पन्न होता है-

(a) पैमाने का स्थिर प्रतिफल

(b) पैमाने का घटता प्रतिफल

(c) पैमाने का बढ़ता प्रतिफल

(d) उपर्युक्त कोई भी।

14.8 सारांश

इस अध्याय में हमने अध्ययन किया कि

- समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन संयोगों को प्रदर्शित करते हैं जो उत्पादक को बराबर का उत्पादन स्तर प्रदान करते हैं।
- समोत्पाद वक्र सदैव ऋणात्मक ढाल के होते हैं तथा ये कभी एक दूसरे को काट नहीं सकते।
- समोत्पाद वक्र का ढाल तकनीकी प्रतिस्थापन दर को प्रदर्शित करता है।
- तकनीकी प्रतिस्थापन दर की प्रवृत्ति लगातार गिरने की होती है। इसे ह्रासमान तकनीकी प्रतिस्थापन का नियम कहते हैं।
- सम लागत वक्र साधनों के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिसे उत्पादक अपनी व्यय क्षमता से खरीद सकता है।
- विस्तार पथ वह पथ है जिस पर चलकर उत्पादन का विस्तार किया जा सकता है।

14.9 शब्दावली

समोत्पाद वक्र- दो साधन के विभिन्न संयोगों से प्राप्त समान उत्पादन की मात्रा को प्रदर्शित करने वाला वक्र।

समलागत वक्र - दी व्यय क्षमता पर साधनों के क्रय की सम्भावनाओं को प्रदर्शित करने वाला वक्र

तकनीकी प्रतिस्थापन दर - साधन की एक अतरिक्त इकाई को बढ़ाने पर दूसरे साधन की घटाए जाने वाली मात्रा

सहजातीय उत्पादन फलन -साधनों को एकरूपता से बढ़ाने पर प्राप्त होने वाला उत्पादन फलन

शिष्ट उत्पादन फलन - साधनों में निश्चित अनुपात में यदि वृद्धि हो और उत्पादन भी उतने ही अनुपात में बढ़ जाए।

14.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

प्रश्न 1- उत्तर: a 2- उत्तर: a 3- उत्तर: b 4- उत्तर: b 5- उत्तर: a 6- उत्तर: c
7- उत्तर: c 8- उत्तर: d 9- उत्तर: a 10- उत्तर: c

14.11 संदर्भ ग्रन्थ

- झिगन, एम0एल0, ''माइक्रो इकोनोमिक्स'' वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, मयूर विहार, नई दिल्ली, 2007
- आहूजा, एच.एल., ''उच्चतर आर्थिक विश्लेषण'' एस चान्द एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 2008
- स्टोनियर एण्ड हेग, ''ए टेक्सट बुक ऑफ इकोनोमिक आक्सफोर्ड पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011
- सेठ, एम.एल., ''माइक्रो अर्थशास्त्र'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2002

14.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पैमाने के प्रतिफल से आप क्या समझते हैं? वर्द्धमान प्रतिफल एवं ह्रासमान प्रतिफल के मध्य अन्तर समझाएं।
2. पैमाने तथा अनुपात के विचारों में अन्तर स्पष्ट करें। पैमाने के घटते प्रतिफलों की व्याख्या करें।
3. समोत्पाद वक्र क्या होती है? समोत्पाद वक्र की विशेषताओं का वर्णन करें।
4. समउत्पाद वक्र की सहायता से दर्शाइए कि एक उत्पादक दिए हुए उत्पादन स्तर को प्राप्त करने के लिए न्यूनतम लागत साधन संयोग का चुनाव किस प्रकार करता है?
5. तकनीकी प्रतिस्थापन दर क्या है? ह्रासमान तकनीकी प्रतिस्थापन दर नियम की व्याख्या करें।

इकाई- 15 पूर्ण प्रतियोगिता

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 प्रतियोगिता बाजार का अर्थ एवं वर्गीकरण
15.4 प्रतियोगिता बाजार का सन्तुलन विश्लेषण
    15.4.1 कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा
    15.4.2 सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्रों द्वारा
15.5 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताएं
15.6 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्म का सन्तुलन
15.7 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उद्योग का सन्तुलन
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.12 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
15.13 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के बाजार संरचना एवं कीमत निर्धारण से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के पहले आप बता सकते है कि उत्पादन फलन क्या है ? उपभोक्ता सन्तुलन कैसे होता है।

प्रतियोगी बाजार संरचना एवं उनके सन्तुलन की धारणाओं के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में फर्म और उद्योग के अल्पकाल एवं दीर्धकाल में सन्तुलन किस प्रकार होता है। प्रस्तुत इकाई में विस्तार से उसके सम्बन्ध में विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप प्रतियोगी बाजार संरचना ,पूर्ण प्रतियोगी बाजार की विशेषताएं एवं पूर्ण प्रतियोगी बाजार में फर्म और उद्योग के अल्पकाल एवं दीर्धकाल में सन्तुलन का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बता सकेंगे कि प्रतियोगी बाजार कितने प्रकार का होता है।
- समझा सकेंगे कि विभिन्न प्रतियोगिता बाजार में सन्तुलन का निर्धारण कैसे होता है।
- फर्म की आगम और लागत धारणा में सन्तुलन की क्या शर्ते है।
- फर्म का संतुलन विश्लेषण को समझ सकेंगे।

15.3 प्रतियोगिता बाजार का अर्थ एवं वर्गीकरण

बाजार का रूप वस्तु स्वभाव, क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या और उनके बीच निर्भरता पर निर्भर करती है, जिसे संक्षेप में प्रतियोगिता कहते है। जिसके निम्न रूप है-

1. पूर्ण प्रतियोगिता:- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार वह है जहाँ स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले छोटे क्रेताओं तथा विक्रेताओं की अधिक संख्या होती है जो समरूप वस्तु का उत्पादन करते हो। वहाँ वस्तु का ही नहीं विक्रेताओ का भी प्रमापीकरण होता हों। सभी को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है। कोई गैर कीमत प्रतियोगिता नहीं होता। उत्पादन के साणन पूर्ण गतिशील होते है फलस्वरूप एक कीमत (माँग की मुल्य लोच अनेक) पाई जाती है, और एक व्यक्तिगत विक्रेता या उत्पादक या फर्म के लिए उसकी वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है।

2. एकाधिकार:- एकाधिकार वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण हो, प्रतियोगिता शून्य होती है। एक फर्म उद्योग पाया जाता है, वस्तु के कोई निकट या अच्छे स्थानापन्न नही होते या वस्तु

की माँग की आड़ी लोच शून्य होती है। साथ ही नए उत्पादको के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रूकावट होती है।

प्रतियोगिता बाजार का वर्गीकरण

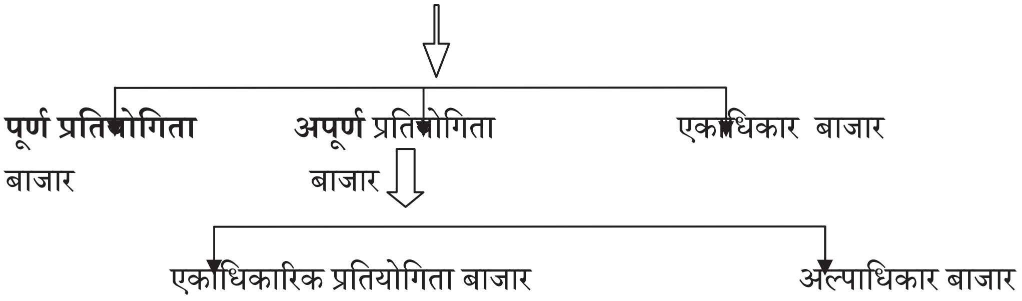

प्रतियोगिता बाजार का वर्गीकरण

विशेषताएँ	**पूर्ण प्रतियोगिता**	**एकाधिकार**	***अपूर्ण प्रतियोगिता***	
			एकाधिकार	**अल्पाधिकार**
फर्मो की संख्या	बहुत अधिक	एक	अधिक संख्या	कुछ अधिक परन्तु दो से कम नही
वस्तु कास्वभाव	प्रमापित या समरूप	निकट के स्थानापन्न	विभेदीकृत	प्रमापित या विभेदित
फर्म के लिए माँग की कीमत लोच	अनन्त	बहुत कम	अधिक	कम
जानकारी की पूर्ण प्राप्यता	हाँ	नहीं	न्हीं	नहीं
कीमत पर नियन्त्रण कीमात्रा	कुछ नहीं	पर्याप्त या पूर्ण	कुछ	कुछ
गैर कीमत प्रतियोगिता	कोई नहीं	मात्रा जनता से अच्छे सम्बन्ध दिखाने के लिए	विज्ञापन, टेडमार्क, ब्राण्ड पर जोर	भेदित अल्पाधिकार में पर्याप्त
फर्मो के प्रवेश एवं निकासी की सुगमता	बाधा रहित बिल्कुल सुगम	पूर्णतया बन्द	आसान	कठिन कुछ बाधाएँ

3. अपूर्ण प्रतियोगिता:- अपूर्ण प्रतियोगिता का आशय पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की किसी भी दशा का अभाव होना है। इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अनेक उपश्रेणियाँ होती है

प्रथम महत्वपूर्ण उपश्रेणी एकाधिकारिक प्रतियोगिता है जिस पर प्रो0 ई0 एच0 चैम्बरलिन ने अधिक बल दिया है। एकाधिकार प्रतियोगिता वह जिसमें बड़ी संख्या में फर्मे विभेदीकृत पदार्थो का उत्पादन करती है जो एक दूसरे के निकट के स्थानापन्न होते है। इनके परिणामस्वरूप एक फर्म का माँग वक्र अधिक लोचदार होता है। जो यह संकेत करता है कि इसमें फर्म कीमत पर कुछ नियन्त्रण रखती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की दूसरी श्रेणी जिसे श्रीमती जोन राबिन्सन ने अल्पाधिकार कहा है इसकी प्रथम उपश्रेणी पदार्थ विभेदीकरण बिना अल्पाधिकार है जिसे शुद्ध अल्पाधिकार कहते है इसमें समरूप पदार्थ का उत्पादन करने वाली कुछ फर्मो के बीच प्रतियोगिता होती है। फर्मों की कमी सुनिश्चित करती है कि उनमें से प्रत्येक का पदार्थ कीमत पर कुछ नियन्त्रण होगा तथा प्रत्येक फर्म का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है जो यह इंगित करता है कि प्रत्येक फर्म कीमत पर कुछ नियन्त्रण रखती है। इसकी दुसरी उपश्रेणी पदार्थ विभेदीकरण सहित अल्पाधिकार है जो विभेदीकृत अल्पाधिकार कहलाता है। इसमें विभेदीकृत पदार्थ जो एक दूसरे के निकट स्थानापन्न होते है। उत्पादनकरने वाली कुछ फर्मों के बीच प्रतियोगिता पायी जाती है। इसके अर्न्तगत व्यक्तिगत फर्म के बीच का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। अतः फर्म अपने व्यक्तिगत पदार्थ की कीमत पर नियन्त्रण रखती है।

15.4 प्रतियोगिता बाजार का सन्तुलन विश्लेषण

वास्तव में सन्तुलन शब्द का आशय 'सन्तुलन की स्थिति अथवा अपरिवर्तन की स्थिति' से है। अतः जब कोई आर्थिक इकाई उपभोक्ता, उत्पादक कोई सन्तुलनावस्था को प्राप्त होते है, वह उस स्थिति में किसी प्रकार का परिर्वतन नहीं चाहता कि वह वस्तु का उत्पादन को घटाये या बढ़ाये। जैसा कि बोल्ड़िग कहते है कि, "एक उद्योग या फर्म उस समय सन्तुलन की स्थिति में कहा जाता जबकि उसके विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृति नहीं होती है" इस तरह की स्थिति तब होगी जब वह फर्म अधिकतम लाभ अर्जित कर रही होगी। क्योंकि कोई भी विवेकशील उत्पादक यह जानता है कि उत्पादन मात्रा घटाने-बढ़ाने से अपना लाभ बढ़ाया जा सकता है तो वह उत्पादन मात्रा में परिर्वतन करता है। परन्तु जिस उत्पादन मात्रा पर वह अधिकतम लाभ अर्जित कर रहा है यहाँ उत्पादन मात्रा घटाने-बढ़ाने से तो उसका लाभ कम ही होगा बढ नहीं सकता। इस सन्दर्भ में अधिकतम लाभ की उस स्थिति में फर्म की लागत, कीमत उत्पादन मात्रा आदि को देखना होगा जिस पर उस फर्म का सन्तुलन बिन्दु होगा।

सन्तुलन की व्याख्या विभिन्न बाजार के रूपों अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारिक प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत आगे की जाएगी। यहाँ हम सन्तुलन की सामान्य शर्तो की व्याख्या करेंगे जो सभी प्रकार के बाजारों पर लागू होती है। सन्तुलन की व्याख्या के सन्दर्भ में दो दृष्टिकोण प्रचलित है।

15.4.1 कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा - कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन उस बिन्दु पर होता है जहाँ वह अधिकतम लाभ अर्जित करती है। कुल आगम और कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन को रेखाचित्र 17.1 में स्पष्ट किया गया है। जहाँ TR कुल आगम वक्र तथा TC कुल लागत वक्र है। कुल आगम वक्र TR मूल बिन्दु व् से प्रारम्भ होता है जिसका आशय है कि जब कुछ भी उत्पादन नहीं किया जाता तो आगम शून्य होता है। उत्पादन की मात्रा में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, कुल आगम बढ़ता जाता है। इसी कारण कुल आगम वक्र TR बाएँ से दाई ओर को ऊपर चढ़ता है। जबकि कुल लागत वक्र TC मूल बिन्दु से शुरू न होकर बिन्दु F से शुरू होता है, अर्थात जब कोई उत्पादन नहीं होता तो भी उसे OF के बराबर लागत उठानी पड़ती है। ऐसा अल्पकाल में होता है, जिसमें यदि उत्पादन करना बन्द भी कर दे तो भी उसे स्थिर लागत वहन करना पड़ता है।

जब OM से कम मात्रा उत्पादित करने पर हानि प्राप्त करती है क्योंकि प्रारम्भ में कुल लागत कुल आगम से अधिक है। जबकि OM उत्पादन मात्रा पर कुल आगम कुल लागत के बराबर इसलिए न तो हानि हो रही है न ही लाभ इसलिए OL उत्पादन मात्रा के इस S बिन्दु को समस्थिति बिन्दु कहते है। अब फर्म OM से उत्पादन बढ़ता है,तो कुल आगम कुल लागत से बढ़ता जाता है और फर्म को लाभ प्राप्त होता है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उत्पादन मात्रा ON पर कुल आगम वक्र TR और कुल लागत वक्र TC के बीच की दूरी अधिकतम है और इस मात्रा पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। इस कारण फर्म ON उत्पादन मात्रा पर सन्तुलन में होगी। कुल लागत और कुल लागत वक्रों के बीच अधिकतम दूरी की जानकारी दो प्रकार से होती है, प्रथम ON उत्पादन पर ही जहाँ कुल आगम और कुल लागत वक्रों पर खीची गई स्पर्श रेखाएं एक दूसरे के समान्तर है। इसी बीच उनके मध्य दूरी अधिकतम है, और वहाँ लाभ अधिकतम प्राप्त हो रहा है। दूसरा विधि कुल लाभ वक्र है जो कि उत्पादन की विभिन्न मात्राओं पर कुल आगम और कुल लागत में अन्तर को व्यक्त करता है। इस प्रकार जिस उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु होगा उस उत्पादन मात्रा पर लाभ अधिकतम होगा। रेखा चित्र से स्पष्ट है कि ON उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु H है, अर्थात ON उत्पादन मात्रा पर ही लाभ अधिकतम है। अतः ON से कम या अधिक उत्पादन मात्रा पर कुल लाभ NH से कम होगा। कुल लाभ वक्र OM उत्पादन मात्रा से कम पर X अक्ष के नीचे स्थित है जिसका अर्थ यह है कि फर्म OM उत्पादन मात्रा से कम उत्पादन मात्रा पर ऋणात्मक लाभ (हानि) प्राप्त हो रही है। बिन्दु M के बाद लाभ प्राप्त होना शुरू होता है जो ON उत्पादन मात्रा पर अधिकतम होता जाता है इसके बाद भी फर्म यदि उत्पादन करती है तो लाभ वक्र नीचे को गिरने(लाभ घटने लगता है) लगता है। ON उत्पादन मात्रा पर ही कुल आगम और कुल लागत वक्र

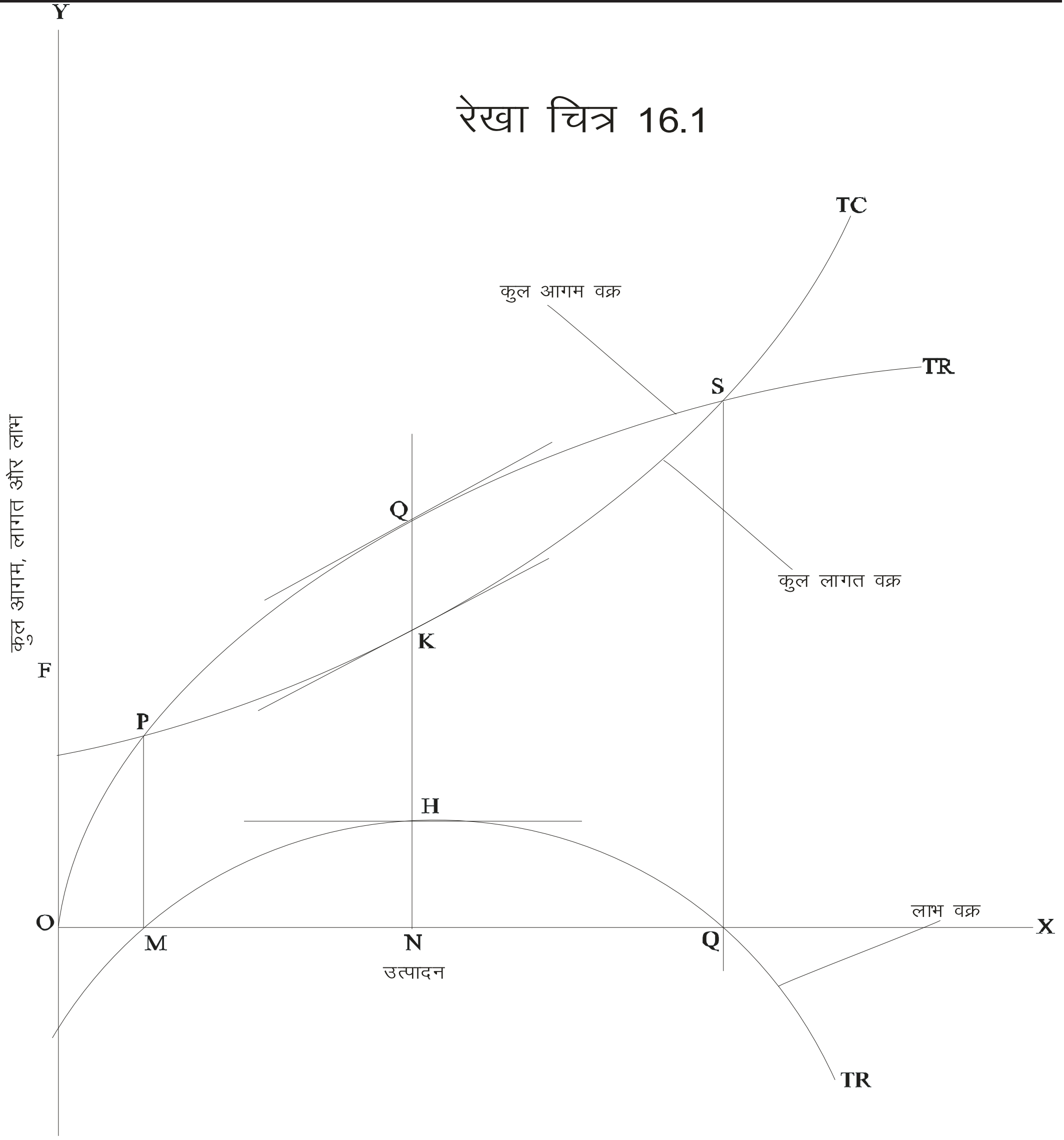

के बीच अधिकतम अन्तर है ऐसा उस बिन्दु पर खीची गई स्पर्श रेखाओं द्वारा भी स्पष्ट होता है। इस बिन्दु पर ही फर्म को अधिकतम लाभ NH की प्राप्ति होती है। इसके बाद कुल फर्म उत्पादन नहीं करेगीं क्योकि कुल आगम और कुल लागत के बीच अन्तर घटने लगता है, फलस्वरूप कुल लाभ भी कम हो जायेंगा। उत्पादन मात्रा OQ पर कुल लागत और कुल आगम वक्र एक दूसरे को पुनः काटते है अर्थात इस उत्पादन मात्रा OQ पर कुल आगम कुल लागत के बराबर है। अतः बिन्दु S पुनः एक समस्थिति बिन्दु (ब्रेक ईवेन प्वाइन्ट) है। यदि उत्पादन को OQ से अधिक बढ़ाते है, तो फर्म की कुल आगम कुल लागत की अपेक्षा कम होगी और हानि उठानी पडेगी। जैसा कि कुल लाभ वक्र TP से भी पता चल रहा है कि OQ उत्पादन मात्रा के बाद वह Xअक्ष के नीचे जा रहा है।

फर्म के संन्तुलन के सम्बन्ध में उपर्युक्त दृष्टिकोण का प्रयोग प्रायः व्यावसायिक व्यक्तियों द्वारा किया जाता है किन्तु इसमें कई कमियाँ है प्रथम कमी तो यह है कि कुल आगम और कुल लागत के बीच अधिकतम अन्तर ज्ञात करना बहुत कठिन है। बहुत से स्पर्श रेखाएँ खीचनी पड़ती है और तब कही दो समान्तर स्पर्श रेखाएं दोनों वक्रों पर ज्ञात होती है। जिनके अनुरूप कुल लाभ अधिकतम होते है। यदि कुल लाभ वक्र खीचा जाता है तो अधिकतम लाभ बिन्दु ज्ञात करना कम कठिन है कोई कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु अधिकतम लाभ को व्यक्त करता है। दूसरी कमी प्रति इकाई कीमत की जानकारी नहीं होती। इसलिए आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में सन्तुलन की व्याख्या सीमान्त विश्लेषण से, जिसमें सीमान्त आगम और सीमान्त लागत की धारणाओं का प्रयोग कर ज्ञात करते है।

15.4.2 सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्रों द्वारा - एक फर्म एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन करने पर जो लागत आती है उसें सीमान्त लागत कहते है, एवं इस अतिरिक्त इकाई के बिक्री से जो आय प्राप्त होती है उसे सीमान्त आगम कहते है। एक फर्म का लाभ तब तक बढ़ेगा जब तक उसे अतिरिक्त इकाई की बिक्री से लागत की तुलना में आगम अधिक प्राप्त होता है। अर्थात फर्म का उत्पादन तब तब बढ़ेगा जब तक सीमान्त आगम सीमान्त आय से अधिक होगा।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर फर्म के सन्तुलन को रेखाचित्र 15.2 के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। MR और MC फर्म के सीमान्त आगम और सीमान्त लागत वक्र है जो एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते है अर्थात व्छ उत्पादन मात्रा पर फर्म की सीमान्त आगम उसके सीमान्त लागत के बराबर है और फर्म को अधिकतम लाभ की प्राप्ति होती है। इसके कम उत्पादन करने पर फर्म की सीमान्त आगम उसके सीमान्त लागत से अधिक है अतः उत्पादन बढ़ाकर लाभ बढ़ाये जा सकते है जैसे OM उत्पादन पर सीमान्त आगम MQ और सीमान्त लागत MWहै जो कि उससे कम है इस कारण

रेखाचित्र 16.2

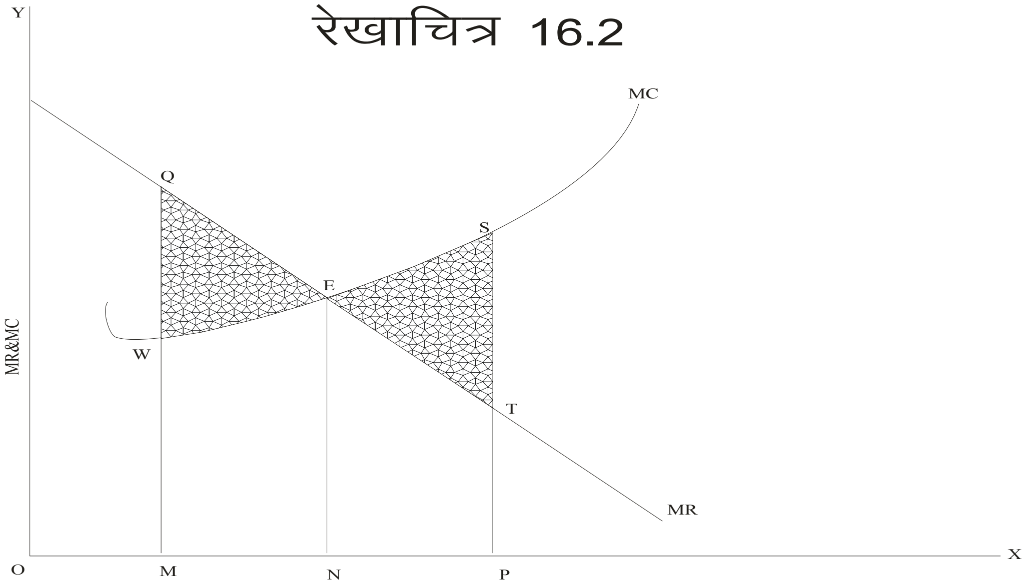

छवीं इकाई तक उत्पादन करना लाभकारी होगा। फर्म का उत्पादन यदि ON मात्रा से आगे बढ़ता है तो सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक हो जाता है जो फर्म के लाभ में कमी को दर्शाता है। इसलिए फर्म ON मात्रा उत्पादित करके अधिकतम सम्भव लाभ कमाएगी और संतुलन में होगी। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि फर्म अधिकतम लाभ और सन्तुलन को तब प्राप्त करके जब निम्न शर्त पूरी होती है-

सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC)

यह फर्म के सन्तुलन की प्रथम शर्त है।

फर्म के सन्तुलन के लिए सीमान्त आगम डत् का सीमान्त लागत से बराबर होना ही जरूरी नहीं है बल्कि फर्म का सन्तुलन तब पूर्ण माना जाता है। जबकि सन्तुलन बिन्दु पर सीमान्त लागत MC वक्र सीमान्त आगम MR वक्र को नीचे से (अथवा बायें से दायें) काटे अर्थात सन्तुलन उत्पादन मात्रा के आगे सीमान्त लागत MC सीमान्त आगम MR से अधिक हो। इसी को फर्म के सन्तुलन की दूसरी शर्त कहते है।

रेखाचित्र 16.3

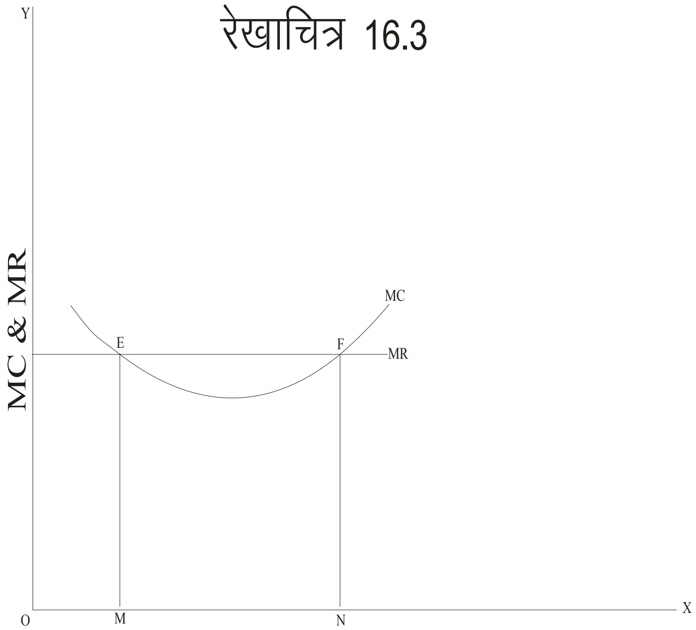

जिसको रेखाचित्र 15.2 व 15.3 में देखा जा सकता है। रेखाचित्र 15.3 में सीमान्त आगम वक्र क्षितिज के समानान्तर सरल रेखा है जैसा पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में होता है। और सीमान्त लागत वक्र MC शुरू में तो नीचे को गिरता हुआ ओर कुछ सीमा बाद यह ऊपर चढ़ता है जो सीमान्त आगम वक्र MR को दो बिन्दुओं E और F पर काटता है जिस पर दोनों बराबर होते है। बिन्दु E पर सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को ऊपर से काटता है और OM उत्पादन होता है परन्तु

व्छ उत्पादन मात्रा तक सीमान्त लागत सीमान्त आगम से कम है इसलिए E बिन्दु या OM उत्पादन पर सन्तुलन फर्म के लिए अलाभकारी है। बिन्दु F (ON उत्पादन) पर सीमान्त लागत MC वक्र सीमान्त आगम MR वक्र को नीचे काटता है और इस बिन्दु के बाद सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक है। अतः स्पष्ट है

कि फर्म का सन्तुलन F बिन्दु पर होगा और वह व्छ मात्रा उत्पादित करेगा। जहाँ फर्म सन्तुलन की दोनों शर्ते पूरी हो रही है-

i. सीमान्त लागत (MC) = सीमान्त आगम (MR)

ii. सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम को संतुलन बिन्दु पर नीचे से काटता है। अर्थात सीमान्त आगम वक्र की ढाल सीमान्त लागत की ढाल से कम है।

सन्तुलन की उपर्युक्त शर्ते पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता सभी में पूरी होनी चाहिए। अर्थशास्त्र में इस विधि के प्रयोग द्वारा ही अधिकतर फर्म के सन्तुलन का विश्लेषण किया जाता है। सीमान्त वक्रों की सहायता से सन्तुलन ज्ञात करना एक तो सुगम है और इससे न केवल सन्तुलन मात्रा और लाभ ज्ञात हो जाते वरन् फर्म या उत्पादक प्रति इकाई मूल्य भी जान सकते है। साथ ही लाभ के सम्बन्ध में सही स्पष्टीकरण भी हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरिए।

(क) प्रतियोगिता के आधार पर बाजार कितने प्रकार................................ का होता है।

(ख) एक समान कीमत...की विशेषता है।

(ग) पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्म की मॉग-वक्र की आकृति.............होती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) किसी फर्म सन्तुलन के लिए पहली आवश्यक शर्त क्या है?

1. AC = MR   2. MC = AC

3. MR = AR   4. MR = MC

(ब) किसी फर्म के सन्तुलन के लिए द्वितीय आवश्यक शर्त क्या है?

1. AC वक्र MR वक्र के नीचे से काटता है।
2. MC वक्र MR वक्र के नीचे से काटता है।
3. AR वक्र MC वक्र के नीचे से काटता है।
4. AC वक्र AR वक्र के नीचे से काटता है।

(स) निम्न में प्रतियोगिता के आधार पर बाजार नहीं है।

(1) अल्पकालीन बाजार (2) पूर्ण प्रतियोगिता

(3) अपूर्ण प्रतियोगिता (4) एकाधिकार

लघु उत्तरीय प्रश्न

(अ) सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को नीचे से क्यों काटता है ?

(ब) एक फर्म का अधिकतम लाभ सीमान्त आगम के सीमान्त लागत के बराबर क्यों होता है?

(स) पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की मुख्य्य विशेषताएं बताइए।

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताए:-

बाजार ढाँचे का निर्धारण वस्तु को उत्पादित करने वाले फर्मो की संख्या, वस्तु के समरूप या विभेदीकृत प्रारूप नई फर्मो के प्रवेश निकासी एवं प्रतिबन्ध और प्रचलित कीमत के विषय में जानकारी के आधार पर करते है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में तब विद्यमान होते है जब निम्न विशेषताएँ पूरी होती है

- समरूप वस्तु का उत्पादन।
- प्रचालित कीमत की पूर्ण जानकारी।
- फर्मो का स्वतन्त्र रूप से उद्योग में प्रवेश करना तथा उसको छोड़ना।
- क्रेताओं एवं विक्रेताओं को पूर्ण जानकारी होती है।
- उत्पादन साधनों की पूर्ण गतिशीलता।
- परिवहन लागतें नहीं होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का सन्तुलन

एक फर्म साम्य में तब होगी जब उसके उत्पादन में कोई परिर्वतन नहीं होता। फर्म अपने उत्पादन में तब तक कोई परिर्वतन नहीं करती जब तक उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है, जो उसे तब होगा जब सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC) है। यह स्थिति प्रत्येक बाजार में होती है, इसलिए इस दशा को फर्म के साम्य की सामान्य दशा कहते है दूसरा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के लिए अपनी वस्तु की माँग रेखा अर्थात औसत आगम रेखा एक पड़ी रेखा होती है तथा औसत आगम (AR)= सीमान्त आगम (MR) के होता है, ऐसा पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मो के स्वतन्त्र प्रवेश एवं बर्हिगमन के कारण होता है, जो दीर्घकाल में फर्मो को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त है कि गारन्टी देता है। जैसा कि रेखाचित्र से भी स्पष्ट है कि आरम्भ में एक वस्तु का माँग वक्र DD और पूर्ति वक्र SS जो E बिन्दु पर दूसरे को काटते है और OP कीमत निर्धारित होती है। जिस स्थिर कीमत पर औसत आगम (AR) वक्र, सीमान्त आगम (MR) वक्र के बराबर होगा। यदि माँग वक्र ऊपर

बढ़कर D_1D_1 हो जाए तो की कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है, जिसे स्थिर कीमत मानने पर नई औसत आगम तथा सीमान्त आगम ($AR_1=MR_1$) वक्र OP_1 पर स्थिर है। इसी तरह माँग घटने पर

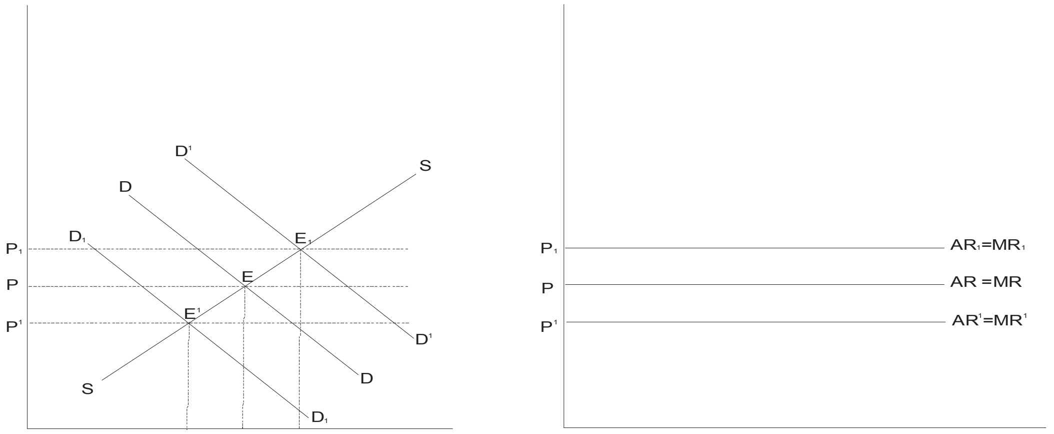

D_1D_1माँग वक्र पहुँच जाता है और कीमत OP_1हो जाएगी। जिस पर सीमान्त आगम औसत आगम ($MR_1= AR_1$) के बराबर हो जाते है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता फर्म के लिए वस्तु की कीमत एक ही रहती है, और दी हुई कीमत पर फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। इस लिए फर्म के साम्य पर औसत आगम(AR)= सीमान्त आगम (MR)= सीमान्त लागत (MC) होगा, और इसके अतिरिक्त लाभ के अधिकतम होने के लिए सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को नीचे से काटे।

अल्पकाल में फर्म का साम्य

अल्पकाल फर्म को इतना समय नहीं होता कि पूर्ति को घटा बड़ाकर माँग के अनुरूप किया जाए। अतः अल्पकाल में एक फर्म को असामान्य लाभ, सामान्य लाभ या हानि कुछ भी हो सकता है। जैसाकि रेखाचित्र 2 में फर्म का सन्तुलन E बिन्दु पर दिखाया गया है जहाँ MR=MC है एवं MC वक्र MR वक्र को नीचे से काट रहा है। अल्पकालीन लागत वक्र की स्थिति में अन्तर के कारण फर्म असामान्य लाभ, सामान्य लाभ अथवा हानि अर्जित करती है। जबकि तीनों ही स्थिति में प्रति इकाई कीमत OP ही है। रेखाचित्र (अ) में सन्तुलन बिन्दु E पर फर्म OQ मात्रा का उत्पादन कर रही है। सीमान्त आगम (MR) और औसत लागत (MC) के बीच अन्तर BE है, जोकि प्रति इकाई लाभ को बताता है, कुल लाभ (असामान्य) ज्ञात करने के लिए BE को कुल उत्पादन OQ याAB से गुणा कर देते है, अर्थात कुल लाभ आयात AREP का क्षेत्रफल होगा, रेखाचित्र (ब) में सन्तुलन बिन्दु E पर OQ उत्पादन पर कीमत OP प्रति इकाई लागत BQ से कम है अतः फर्म को प्रति इकाई BE की हानि है, जबकि कुल हानि ABEP के बराबर होगी। रेखाचित्र (स) में OQ उत्पादन स्तर पर औसत आगम और औसत लागत बराबर अतः बिन्दु E को शून्य लाभ बिन्दु या सामान्य लाभ बिन्दु कहते है।

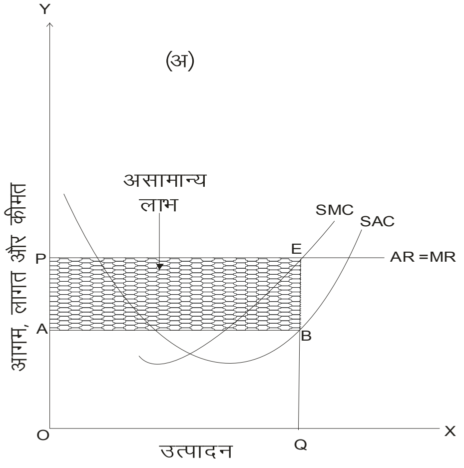

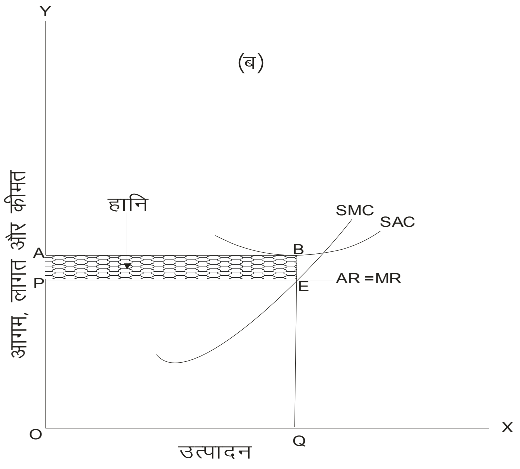

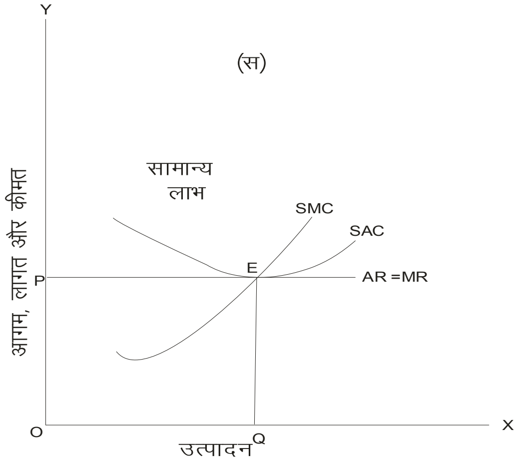

अल्पकाल में हानि की स्थिति में उत्पादन की अन्तिम सीमा:-

इस सन्दर्भ हम लोगों के स्थिर एवं परिवर्तनशील भाग को ध्यान में रखते है। अल्पकाल में फर्म हानि होने पर उत्पादन स्थगित या बन्द नहीं करते क्योंकि पूँजी, उपकरण सयंत्र आदि जैसे बधे एवं स्थिर साधनों को बदल नहीं सकते और इनके बराबर हानि उठाना पड़ेगा चाहे वे उत्पादन करें अथवा न करें। परन्तु अल्पकाल में यदि उत्पादन लागत में से केवल परिवर्तनशील प्राप्त हो रही है तो फर्म हानि की स्थिति में उत्पादन जारी रखेगी जबकि दीर्घकाल में उसकी कुल लागत (स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत) निकल आए तभी वह उत्पादन जारी रखती है। अतः यदि अल्पकाल में फर्म परिवर्तनशील लागतों को भी पूरा नहीं तो वह अनावश्यक हानि से बचने के लिए उत्पादन बन्द कर

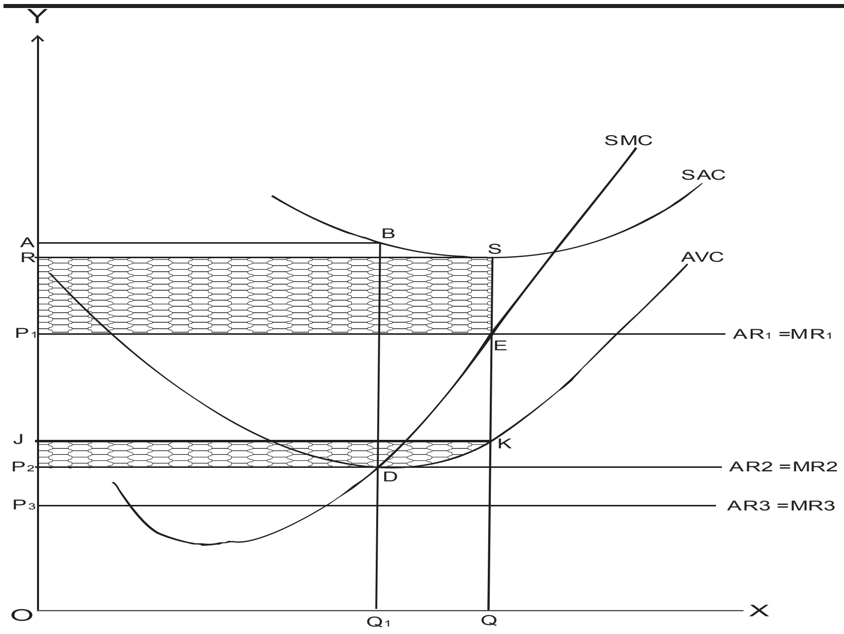

देगी। जैसाकि रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट है जिसमें अल्पकालीन औसत लागत (SAC) वक्र और सीमान्त लागत (SMC) वक्र तथा औसत परिवर्तनशील (AVC) वक्र द्वारा यहाँ दर्शाया गया है, जब बाजार में वस्तु की कीमत OP_1 है तो फर्म E बिन्दु पर सन्तुलन में है और OQ मात्रा उत्पादित कर रही है। यहां पर वस्तु की औसत लागत QS_1 औसत आय QE या OP_1 से अधिक होने के कारण फर्म P_1ESR के समान हानि हो रही है। परन्तु औसत परिवर्तनशील लागत QK है जो कीमत OP_1 या QE से कम अतः फर्म उत्पादन जारी रखेंगें। क्योकि यह फर्म की कुल हानि P_1ESR है जो उत्पादन बन्द करने पर स्थिर लागत हानि JKSP से कम है इसमें से $JKEP_1$ हानि वह उत्पादन करने के कारण नहीं सहन करना पड़ रहा है। अब यदि बाजार में वस्तु की कीमत है OP_2 तो फर्म का सन्तुलन D बिन्दु पर होगा और वहाँ कीमत OP_2 केवल परिवर्तनशील लागतों को पूरा कर रही है, अर्थात कुल हानि $DBAP_2$ है जो स्थिर लागत के बराबर है। अतः फर्म उत्पादन करने एवं न करने के प्रति उदासीन होगी। परन्तु यदि बाजार कीमत इससे गिरकर OP_3 हो जाये तो फर्म उत्पादन तुरन्त बन्द कर देना चाहिए क्योंकि इस कीमत पर वह परिवर्तनशील लागत भी नहीं वसूल सकती है। अतः D बिन्दु को उत्पादन बन्द होने का बिन्दु कहते है तथा OP_2 कीमत उत्पादन बन्द होने की कीमत को बताती है। OQ_1 अल्पकाल में न्यूनतम उत्पादन मात्रा को बताता है।

फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन

दीर्घकाल में इतना समय होता है कि सभी साधनों की पुर्ति को घटा-बढ़ा पूर्णतया माँग के अनुरूप किया जा सकता है, अतः दीर्घकाल में फर्म को न लाभ होगा न हानि, बल्कि केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। यदि फर्म को दीर्घकाल में लाभ प्राप्त होता है अर्थात औसत (AR) आगम अधिक है औसत लागत (AC) से, तो लाभ से आकर्षित होकर अन्य फर्म उद्योग में प्रवेश करेगीं और वस्तु

की पूर्ति बढ़ेगी परिणामस्वरूप कीमत (AR) घटकर औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। यदि फर्म को हानि है तो AC अधिक है कीमत (AR) से फलस्वरूप कई फर्मे उद्योग छोड़ देगी और पूर्ति कम होने से कीमत

बढ़कर (AR) ठीक औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। इससे यह निकलता है कि पूर्ण प्रतियोगिता के दीर्घकालीन संतुलन प्राप्त होने के लिए निम्न दो शर्ते अवश्य पूरी होनी चाहिए।

(1) कीमत (P=AR) = सीमान्त लागत (MC)

(2) कीमत (P=AR) = औसत लागत (AC)

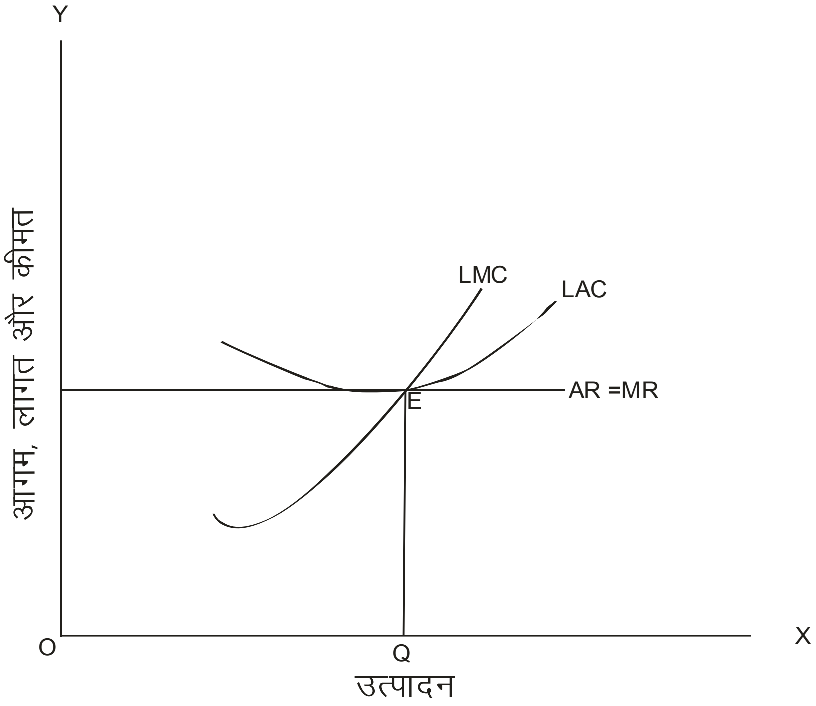

सीमान्त लागत और औसत लागत के परस्पर सम्बन्ध से हम जानते है कि सीमान्त लागत केवल औसत लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर ही बराबर होती है। अतः इसे हम इस प्रकार व्यक्त करते है

कीमत = सीमान्त लागत = निम्नतम औसत लागत रेखाचित्र में दीर्घकालीन साम्य को दिखाया गया है। LAC दीर्घकालीन औसत लागत रेखा है तथा LMC दीर्घकालीन सीमान्त लागत रेखा है। औसत आगम (AR) रेखा को LAC रेखा के न्यूनतम बिन्दु E पर स्पर्श करते है इसी E बिन्दु पर सीमान्त आगम (MR) रेखा को LMC रेखा भी स्पर्श करती है। अतः E बिन्दु पर फर्म के दीर्घकालीन साम्य की सभी शर्ते पूर्ण हो जाती है और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर होता है। जिससे स्पष्ट है कि यह फर्म इष्टमत आकार की है, जहाँ संसाधनों का अधिकतम कुशल ढ़ग से प्रयोग हो रहा और उपभोगता बस्तु की न्यूनतम कीमत दे रहा है।

उद्योग का सन्तुलन

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग सन्तुलन की स्थिति में तब कहा जाता है जबकि उसके विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृति नहीं होती। प्रचलित कीमत पर एक उद्योग सन्तुलन की स्थिति में तब होगा, जबकि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (S) उसकी कुल माँग (D) के बराबर होती है। सारा रूप में वस्तु की जिस मात्रा तथा कीमत पर उसका माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटेगें, उस उत्पादन मात्रा पर उघोग का सन्तुलन होगा। उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम निष्कर्ष पर पहुँचते है कि किसी उद्योग के सन्तुलन के लिए निम्न शर्ते पूरी होनी चाहिए।

1. उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति की गई मात्रा तथा इसके लिए माँग की मात्रा समान हो।

2. माँग और पूर्ति द्वारा निर्घारित कीमत पर सभी फर्मे व्यक्तिगत सन्तुलन में हो और उनकी सीमान्त लागत, सीमान्य आगम के बराबर हो।

3. नई फर्मो के उद्योग में प्रवेश करने तथा वर्तमान फर्मो की उद्योग से बाहर जाने की प्रवृति न पाई जाती है और वर्तमान फर्मे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर रही हों।

उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन के लिए पहली दोनों शर्ते तथा दीर्घकालीन सन्तुलन के लिए तीनों शर्तो का पूर होना आवश्यक है।

उद्योग का अल्पकालीन सन्तुलन:-

अल्पकाल में फर्म न किसी उद्योग में प्रवेश कर सकती है और न ही कोई फर्मे उसे छोड़ सकती है। अतः उद्योग के संन्तुलन के लिए वर्तमान फर्मो द्वारा केवल सामान्य लाभ ही अर्जित करने की शर्त की पूर्ति होना आवश्यक नहीं होती वहाँ लाभ तथा हानि का सह अस्तित्व हो सकता है। इसलिए

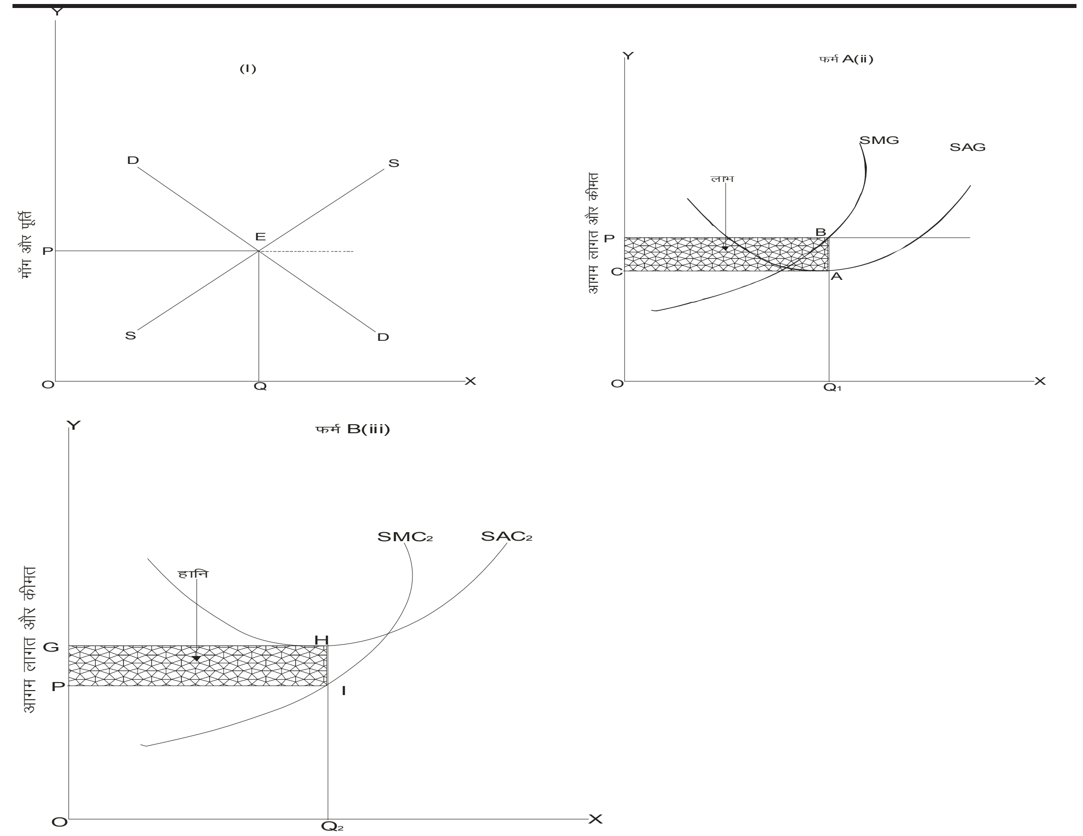

कोई उद्योग अल्पकालीन सन्तुलन में तब होगा जब उसके द्वारा वस्तु की पूर्ति मात्रा उसकी माँग मात्रा के बराबर होती है, और उसमें उत्पादन कार्य कर रही सभी वर्तमान फर्मे व्यक्तिगत रूप से सन्तुलन में होती है। अतः उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन में उसकी सभी फर्मे सन्तुलन में होती है, वे सभी असामान्य लाभ या सभी हानि उठा सकती है रेखाचित्र के भाग के भाग ;पद्ध में उद्योग की माँग रेखा DD तथा पूर्ति रेखा SS एक दूसरे को E बिन्दु पर काटती है। बिन्दु E उद्योग के अल्पकालीन सन्तुलन को बताता है, क्योंकि यहाँ पर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति और उसकी माँग बराबर है उद्योग द्वारा OQ उत्पादन एवं वस्तु की OP या QE कीमत इस सन्तुलन पर प्राप्त होता है। उद्योग के इस अल्पकालीन सन्तुलन में प्रत्येक फर्म OP कीमत को दिया हुआ मानकर केवल उत्पादन मात्रा का समायोजन करती है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि प्रत्येक फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित अल्पकालीन सन्तुलन कीमत OP के आधार पर वस्तु की उत्पादन मात्रा का समायांजन करती है। रेखाचित्र के भाग (ii) में दी हुई कीमत पर फर्म A आर्थिक लाभ प्राप्त कर रही है। जो B बिन्दु पर सन्तुलन में है जहाँ अल्पकालीन सीमान्त लागत रेखा (SMC_1) और सीमान्त आगम MR रेखा एक दुसरे को काटते है। फर्म को ।ठच्ब् के बराबर लाभ प्राप्त हो रहा है। रेखाचित्र के भाग ABPC में फर्म B को हानि हो रही है। फर्म E बिन्दु I पर अल्पकालीन सन्तुलन में होगी जहाँ पर दी हुई कीमत OP पर उसका अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र SMC_2 उसके सीमान्त आगम MR

वक्र को काटते है और उसके कुल IHGP के बराबर हानि होती है। इसी प्रकार कुछ ऐसी भी फर्म हो सकती है जो केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर रही हों।

उद्योग का दीर्घकालीन सन्तुलन:-

दीर्घकाल वह समयावधि है जिसमें इतना अधिक समय उपलब्ध होता है कि उद्योग अपने उत्पादन को माँग परिवर्तनों के प्रति पूर्णतया समायोजित कर लेने में समर्थ हो जाता है। जहाँ तक व्यक्तिगत फर्म का सम्बन्ध है, स्थिर एवं परिवर्ती हो जाता है। उद्योग क सन्तुलन में दीर्घकाल में सभी फर्में केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है। इस सन्तुलन के लिए कीमत उद्योग की कुल पूर्ति और कुल माँग द्वारा निर्धारित होता है। जैसाकि रेखाचित्र (i) से स्पष्ट है कि उद्योग के माँग वक्र DD एवं पूर्ति वक्र एक दुसरे E को बिन्दु पर काट रहे है तथा बिन्दु पर कीमत OP तथा OQ उत्पादन मात्रा का निर्धारण होता है।

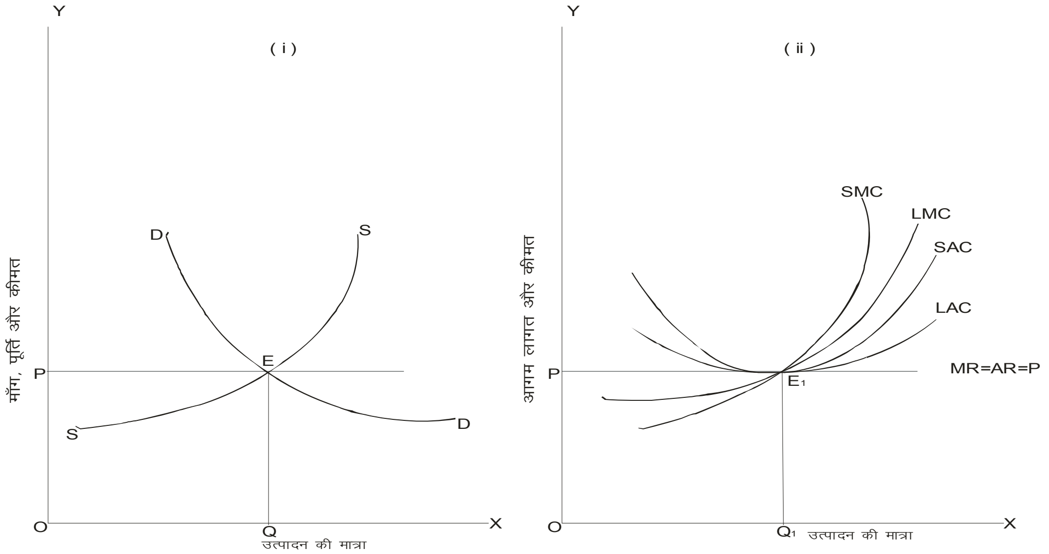

इस OP कीमत पर फर्म भी दीर्घकालीन सन्तुलन में है और सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है। रेखाचित्र के भाग (ii) में फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित OP कीमत पर OQ_1 मात्रा का उत्पादन कर रही है और सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है क्योकि सन्तुलन बिन्दु E_1 पर दीर्घकालीन औसत लागत LAC वक्र बराबर है अल्पकालीन औसत लागत SAC वक्र के और दोनों ही कीमत (P=AR=MR) के बराबर है फर्म सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है और उद्योग में उपस्थित सभी फर्मे सन्तुलन में है एवं फर्मो के प्रवेश या निकासी की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए उद्योग के दीर्घकालीन सन्तुलन को पूर्ण सन्तुलन कहते है।

15.5 सारांश

सामान्य रूप में प्रतियोगिता के आधार पर बाजार के चार स्वरूप हैः पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार,एकाधिकारिक और अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार एक आदर्श बाजार की स्थिति को बताता है।इस बाजार में अनेकों फर्म दी हुई कीमत पर उत्पादन करती हैं, इस बाजार में फर्मों के प्रवेश एवं निकासी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। प्रतियोगी बाजार में फर्म का सन्तुलन कुल आगम एवं कुल लागत वक्र विधि एवं सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि के आधार पर किया जाता है। जिसमें सीमान्त विश्लेषण विधि अधिक यथार्थ एवं उपयोगी है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में दीर्धकाल में प्रत्येक फर्म सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है। वास्तविक संसार में कही भी पूर्ण प्रतियोगिता बाजार नहीं पाया जाता हैं,पर इस आदर्श स्थिति में कीमत एवं उत्पादन मात्रा के निर्धारण के आधार पर हम अन्य प्रतियोगी बाजार में फर्म एवं उद्योग के सन्तुलन का विश्लेषण कर पायेंगे।

15.6 शब्दावली

कुल लागत:- किसी वस्तु के उत्पादन में सम्मिलित होने वाली सभी मदों पर फर्म द्वारा किए गए व्यय के सम्मिलित योग को कुल लागत कहते है।

कुल आगम:- किसी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल इकाईयों के बिक्री से होने वाली कुल प्राप्ति को कुल आगम कहते है।

कुल लाभ:- कुल लागत से कुल आगम के अन्तर को कुल लाभ कहते है।

सीमान्त लागत:- वस्तु की अन्तिम अथवा सीमान्त इकाई का उत्पादन करने की लागत को सीमान्त लागत कहते है। जैसे सीमान्त लागत त्र उत्पादन की द इकाईयों की कुल लागत - उत्पादन की द्र1 इकाइयों की कुल लागत।

सीमान्त आगम:- फर्म के द्वारा उत्पादित अन्तिम या सीमान्त इकाई के बिक्री से प्राप्त आगम को सीमान्त आगम कहते है। दूसरे रूप में सीमान्त आगम कुल आगम में होने वाली वृद्धि है जो द इकाइयों के बजाय द्र1 इकाइयों को बेचने से प्राप्त होती है।

15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सेठी, टी. टी. (मक 2008) व्यष्टि अर्थशास्त्र लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा

झिंगन, एम.एल. (2007) ‘उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

आहूजा, एस.एल. (2006)उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त व्यष्टिपरक विश्लेषण’’,चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

15.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

Koutsoyinuis.A. (1979) Modern Microeconomics, (2nd Edition),Macmillian Press, London.

Ahuja,H.L. ((2010) Principles of Micro Economics , S&Chand Publishing House .

Peterson, L. and Jain ((2006)) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.

Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.

Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान भरिए-1. पूर्ण प्रतियोगिता, 2.उद्योग, 3.सामान्य लाभ, 4.पूर्णतया लोचदार।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न (अ) 4. MR = MC (ब) 2. MC वक्र MR वक्र के नीचे से काटता है। (स)1. परिवर्ती लागत

15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1."एक फर्म उस समय सन्तुलनावस्था में होती है जबकि वह अधिकतम मौद्रिक लाभ कमा रही हो। परन्तु किसी भी फर्म का मौद्रिक लाभ उसी समय होता है जब उसका सीमान्त आगम उसकी सीमान्त लागत के बराबर हो"। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में व्याख्या कीजिए ?

2.उद्योग में सन्तुलन से क्या अभिप्राय है? पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उद्योग के अल्पकालीन एवं दीर्धकालीन सन्तुलनों की व्याख्या कीजिए।

इकाई- 16 एकाधिकार प्रतियोगिता

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 एकाधिकारी का अर्थ एवं विशेषताएं
16.3.1 एकाधिकारी के अन्तर्गत मॉग व पूर्ति वक्र
16.4 एकाधिकारी के अन्तर्गत संस्थिति व मूल्य निर्धारण
16.4.1 कुल आगम व कुल लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन
16.4.2 सीमान्त आगम व सीमान्त लागत वक्रों द्वारा सन्तुलन
16.4.3 अल्पकाल में एकाधिकारी का सन्तुलन विश्लेषण
16.4.4 दीर्घकाल में एकाधिकारी का सन्तुलन निर्धारण
16.4.5 क्या एकाधिकारी कीमत, प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है?
16.5 मूल्य विभेदीकरण या विभेदात्मक एकाधिकार
16.5.1 मूल्य विभेदीकरण की कोटियाँ
16.5.2 मूल्य विभेदीकरण की अनिवार्य दशाएं
16.5.3 मूल्य विभेदीकरण के अन्तर्गत एकाधिकारी का संतुलन
16.5.4 मूल्य विभेदीकरण का औचित्य
16.6 सारांश
16.7 शब्दावली
16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
16.11 निबन्धात्मकप्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई के अन्तर्गत 'पूर्ण प्रतियोगता' के बारे में विशद चर्चा की गयी। इसके द्वारा आपने यह जाना कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार के क्या लक्षण होते है, इसकी मान्यताए क्या है? साथ ही इसमें पूर्ण प्रतियोगी फर्म के अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन की भी चर्चा की गयी हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता के ठीक विपरीत स्थिति एकाधिकारी बाजार की होती है, जिसमें प्रतियोगिता का पूर्णतः अभाव होता है। यह बाजार का वह प्रकार है जिसमें बाजार की पूर्ति का नियंत्रण एक ही व्यक्ति के हाथ में होता है। अर्थात् इस बाजार में एक ही फर्म होती है जो उत्पादन करती है तथा उद्योग भी वह फर्म ही होती है, जबकि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में उद्योग व अपरिमित फर्मो का अलग-अलग अस्तित्व होता है।

इस इकाई के अन्तर्गत बाजार की दूसरी चरम स्थिति 'एकाधिकारी' के अर्थ, उसकी विशेषताओं के साथ-साथ उसके अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन की चर्चा की गयी है। इस इकाई में एकाधिकारी के मूल्य विभेदीकरण का भी उल्लेख किया गया है।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- बाजार के एकाधिकारी स्वरूप से भली-भॉति परिचित हो सकेंगे।
- एकाधिकारी की विशेषताओं को ज्ञात कर सकेंगे।
- एकाधिकारी के अन्तर्गत सन्तुलन निर्धारण को समझ सकेंगे।
- एकाधिकारी के अन्तर्गत मूल्य विभेदीकरण से अवगत हो सकेंगे।
- एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगी बाजार के मध्य विभेद कर सकने में समर्थ होंगें।

16.3 एकाधिकारी का अर्थ एवं विशेषताए

एकाधिकारी का अंग्रेजी शब्द 'Monopoly' दो शब्दों 'Mono' और Poly से मिलकर बना है। Mono का अर्थ है - अकेला, तथा Poly का अर्थ है - विक्रेता। अतः Monopoly का शाब्दिक अर्थ है- अकेला विक्रेता अथवा एकाधिकार। जब किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन तथा विक्रय पर किसी एक व्यक्ति अथवा फर्म का पूर्ण अधिकार रहता है तो इसे एकाधिकारी की स्थिाति कहते हैं। अर्थात् एकाधिकारी वह है जिसका वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण हो। स्पष्ट है कि एकाधिकारी पूर्ण प्रतियोगिता के ठीक विपरीत स्थिति है। एकाधिकारी के अस्तित्व के लिए निम्न तीन दशाओं का पूरा होना आवश्यक है:-

1.वस्तु का एक विक्रेता हो या उसका उत्पादन केवल एक फर्म द्वारा हो। अर्थात् फर्म तथा उद्योग एक ही होते हैं।

2.वस्तु के कोई निकट स्थानापत्र वस्तु न हो, क्योंकि यदि कोई नजदीकी स्थानापन्न हुआ तो प्रतियोगिता की स्थिति आ जाएगी और वस्तु की पूर्ति पर उत्पादक का पूर्ण नियंत्रण नहीं होगा।

3.उद्योग में नए उत्पादकों के प्रवेश के प्रति प्रभावपूर्ण रूकावटे हों। अर्थात् एकाधिकारी के क्षेत्र में फर्मे स्वतंत्र रूप से आ जा नहीं सकती।

एकाधिकारी की परिभाषा विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्न प्रकार दी गयी हैः

प्रो0 बेन्हम के अनुसार- एकाधिकारी वस्तुतः एकमात्र विक्रेता होता है और एकाधिकारी शक्ति पूर्ति के पूर्णतः नियंत्रण पर आधारित होती है। "A monopolist is Literately a seller........and monopoly power is based entirely on central over supply." - Benham.

प्रो0 बोल्डिंग एकाधिकारी को अत्यन्त ही स्पष्ट शब्दों में पारिभाषित करने का प्रयास करते हुए कहते हैं कि- शुद्ध एकाधिकारी फर्म वह फर्म है जो कि कोई ऐसी वस्तु उत्पादित कर रही है जिसका किसी अन्य फर्म की उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापत्र नहीं हो। 'प्रभावपूर्ण' से यहाँ आशय यह है कि यद्यपि एकाधिकारी असाधारण लाभ कमा रहा है, तथापि अन्य फर्में ऐसी स्थानापत्र वस्तुएं उत्पन करके जो कि खरीददारों को एकाधिकारी की वस्तु से दूर कर सके, उक्त लाभों पर अतिक्रमण करने की स्थिति में नही है।''

प्रो0-चैम्बरलिन के अनुसार-''एकाधिकारी उसे समझना चाहिए जों किसी वस्तु की पूर्ति पर नियंत्रण रखता हो।''

इसी प्रकार प्रो0 लर्नर के अनुसार-'' एकाधिकारी से आशय उस विक्रेता से है जिसकी वस्तु का मॉग वक्र गिरता हुआ होता है।''

"A Monopolist is any seller who is confronted with a falling demand curve for his product."- Lerner

विभिन्न अर्थशास्त्रीयों की उपर्युक्त व्याख्या से एकाधिकारी की निम्नांकित महत्वपूर्ण विशेषताए ज्ञात होती है-

i. एकाधिकारी की स्थिति में केवल एक ही उत्पादक या विक्रेता होता है।

ii. एक विक्रेता होने के फलस्वरूप पूर्ति के ऊपर विक्रेता का पूर्ण नियंत्रण होता है। वह पूर्ति को घटा-बढ़ाकर वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है। अर्थात एकाधिकारी की अपनी मूल्य नीति होती है।

iii. एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु की कोई दूसरी वस्तु नजदीक स्थानापन्न नहीं होती है। दूसरो शब्दों में एकाधिकारी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु एवं बाजार में बेंची जाने वाली अन्य वस्तुओं के बीच मॉग की तिर्यक लोच शून्य होती है।

iv. एकाधिकार में एक ही फर्म होती है जो उत्पादन करती है। अर्थात फर्म ही उद्योग है। स्पष्ट है कि एकाधिकार में फर्म तथा उद्योग में अन्तर नही रहता।

v. एकाधिकारी उद्योग में अन्य फर्मों की प्रविष्टि नहीं हो सकती है।

vi. एकाधिकारी की स्थिति में मूल्य विभेद सम्भव हो सकता है। अर्थात एकाधिकारी ऐसी स्थिति में होता है जो कि अपनी उत्पादित वस्तु की विभिन्न इकाईयों को अलग-अलग उपभोक्ताओं को अलग-अलग मूल्यों पर बेच सकता है।

16.3.1 एकाधिकार के अन्तर्गत मॉग व पूर्ति वक्र:-जैसा कि आपने पिछली इकाई में यह जाना कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्मो की संख्या अपरिमित होती है, और फर्म मूल्य निर्धारक नहीं होती बल्कि उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य ही फर्मे स्वीकार करती है। कहने का अभिप्राय यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य पर फर्मे चाहे जितनी मात्रा में वस्तुओं को बेच सकती है, यही कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की मॉग रेखा एक निश्चित मूल्य स्तर पर आधार के समानान्तर होती है। परन्तु एकाधिकारी के अन्तर्गत उद्योग में एक ही फर्म होती है अर्थात एकाधिकार में फर्म ही उद्योग होती है। एकाधिकारी फर्म की मॉग वक्र की साधारण माँग वक्र तरह ही ऋणात्मक ढाल की होगी अर्थात ऊपर से नीचे दाहिने ओर गिरती हुई होगी क्योंकि कोई भी एकाधिकारी फर्म बिना मूल्य में कमी किये अपने उत्पाद की अधिक इकाईयॅा नहीं बेच सकता। आप इस तथ्य से भी अवगत हो चुके है कि उपभोक्ता का मॉग वक्र ही उत्पादक ही दृष्टि से औसत आय (AR)वक्र वक्र होता है क्योंकि उपभोक्ता द्वारा दिया जाने वाला मूल्य ही विक्रेता की आय होती है। एकाधिकारी के मॉग वक्र (AR) के अनुरूप ही सीमान्त आय वक्र भी नीचे गिरती हुई होती है। एकाधिकारी के अन्तर्गत नीचे गिरती हुई MR वक्र AR से मूल्य अक्ष पर खींचे गये लम्ब को दो बराबर भागो में विभाजित करती है। एकाधिकार के अन्तर्गत AR व MR वक्रों का स्वरूप निम्नवत होता है।

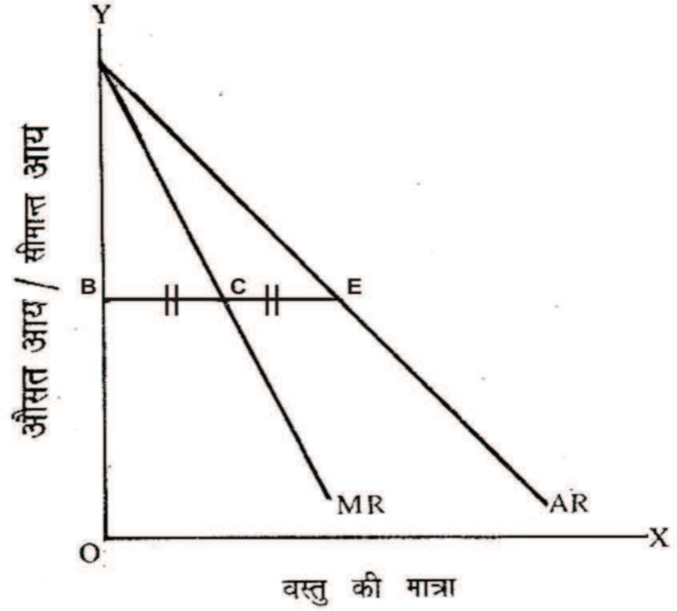

चित्र : 16.1

अतः स्पष्ट है कि जब औसत आय एक क्षैतिज वक्र हो (X अक्ष के समान्तर रेखा) जैसा कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में होता हैं तो उस स्थिति में AR=MR होगा। इसके विपरीत जब AR वक्र दाहिनी ओर गिरती हुई एक सीधी रेखा हो तो (एकाधिकार की स्थिति) उससे लम्ब-अक्ष पर खींचे गये लम्ब को MR वक्र दो बराबर भागों में विभाजित करता है। चित्र 16.1 से स्पष्ट है कि BC = CE होगी। एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण में AR, MR व माँग की लोच के मध्य गणितीय सम्बन्ध का विशेष महत्व है। इन तीनों के मध्य निम्न गणितीय सम्बन्ध होता हैः

$$MR = AR\left(1-\frac{1}{e}\right),$$ जहाँ e = माँग की लोच है।

अतः $$AR = P = MR\left(\frac{e}{e-1}\right),$$

चूँकि $\left(\frac{e}{e-1}\right)$ का मान निश्चित रूप से 1 से अधिक होगा इसीलिए MR का मान AR या मूल्य (P) से कम होगा।

लागत वक्र के सन्दर्भ में प्रतियोगी फर्म और एकाधिकारी फर्म के मध्य कोई विभेद नहीं होता है। पूर्ण प्रतियोगी फर्म की तरह ही एकाधिकारी की AVC, MC तथा AC अंग्रजी के Uआकार की तथा औसत स्थिर लागत (AFC) समकोणीय अतिपरवलय होगी। बाजार के इन दोनों स्वरूपों में सबसे ज्यादा स्मरणीय तथ्य पूर्ति वक्र के सन्दर्भ में होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में चूँकि सीमान्त लागत, मूल्य के बराबर होता हैं। अतः MC वक्र के प्रत्येक बिन्दु विभिन्न बिन्दुओं पर फर्म द्वारा पूर्ति की जाने वाली वस्तु की मात्रा को प्रदर्शित करते हैं, इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में MC

वक्र ही फर्म की पूर्ति वक्र होती है। इसके विपरीत एकाधिकार MR वक्र AR वक्र से नीचे होता है अतः MR = MC का समता बिन्दु निश्चित रूप से AR वक्र के नीचे होगा। ऐसी स्थिति में MC वक्र के बिन्दु न तो मूल्य को प्रदर्शित करेंगे और न ही एकाधिकारी द्वारा विभिन्न मूल्यों पर बेंची जाने वाली मात्राओं को ही प्रदर्शित करेंगे। अतः स्पष्ट है कि एकाधिकार में पूर्ति वक्र का कोई निश्चित स्वरूप नहीं निर्धारित किया जा सकता।

16.4 एकाधिकार के अन्तर्गत संस्थिति व मूल्य निर्धारण-

पिछली इकाई में आपने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत संस्थिति व मूल्य निर्धारण के सन्दर्भ में दो रीतयों - TR-TC विधि एवं MR-MC विधि को विस्तर से जाना। पूर्ण प्रतियोगी फर्म की ही तरह एकाधिकारी फर्म की संस्थिति को ज्ञात करने के दो तरीके होतें हैं।

इसी प्रकार पूर्ण प्रतियोगी फर्म की ही तरह एकाधिकारी फर्म भी अल्पकाल तथा दीर्घकाल, दोनों में क्रियाशील हो सकती है। अतः अब हम एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादन तथा मूल्य निर्धारण का विश्लेषण अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों के अन्तर्गत करेंगे।

16.4.1 अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म का सन्तुलन विश्लेषण- अल्पकाल की प्रमुख विशेषता यह है कि एकाधिकारी फर्म एक दिये हुए प्लान्ट पर ही कार्य करेगी क्योकि वह इस अवधि में प्लांट के आकार में परिवर्तन नहीं ला सकती है। माँग में वृद्धि या कमी के अनुसार पूर्ति में समायोजन वह परिवर्तनीय साधनों मे परिवर्तन के द्वारा ही कर सकती है। वस्तुतः एकाधिकारी के विषय में एक सामान्य धारणा यह होती है कि उसे हानि नहीं हो सकती है क्योंकि वह एकाधिकारी है परन्तु सच्चाई यह है कि एकाधिकारी लाभ की मात्रा उसकी माँग तथा लागत की दशाओं पर निर्भर करती है। अतः अल्पकाल में एकाधिकारी को असामान्य लाभ (AR > AC) सामान्य लाभ (AR = AC) तथा हानि (AR < AC) तीनों ही स्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। इन तीनों स्थितियों को हम चित्रों की सहायता से स्पष्ट कर रहे है।

i. **असामान्य लाभ (AR > AC):-.**

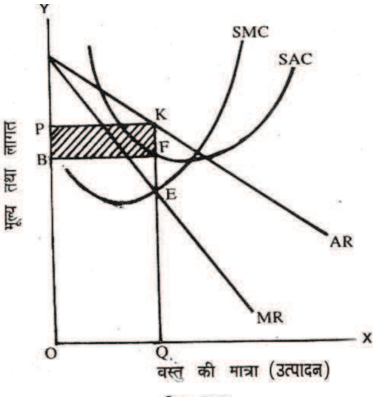

चित्र 16.2

चित्रानुसार SAC अल्पकालीन औसत लागत वक्र है जो एकधिकारी फर्म के उस प्लाण्ट से सम्बन्धित है जिस पर वह उत्पादन कर रही है। AR तथा MR वक्र क्रमशः औसत आय व सीमान्त आय वक्र है। जबकि SAC तथा SMC अल्पकालीन औसत लागत वक्र एवं अल्पकालीन सीमान्त लागत को प्रदर्शित करते है। एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन वहाँ निर्धारित करेगा जहॉ MR=MC है। चित्र में SMC वक्र MR को E बिन्दु पर काटता है। E से उत्पादन अक्ष पर खीचा गया लम्ब, अधिकतम लाभ के उत्पाद मात्रा OQ का निर्धारण करता है। OQ से सम्बन्धित AR का बिन्दु (K) मूल्य को बताएगा क्योंकि मूल्य (P)= औसत आय (AR) इस प्रकार चित्र से स्पष्ट है-

संस्थिति उत्पाद = OQ

मूल्य(Price)=OP (या KQ)

औसत लागत (AC)=QF

अतः प्रति इकाई लाभ =QK-KF=FK

अतः कुल लाभ= FK×OQ = क्षे0PKFB

ii. सामान्य लाभ–(AR = AC)

एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में सामान्य लाभ भी प्राप्त कर सकती है। इसे चित्र 16.4 में स्पष्ट किया गया है।

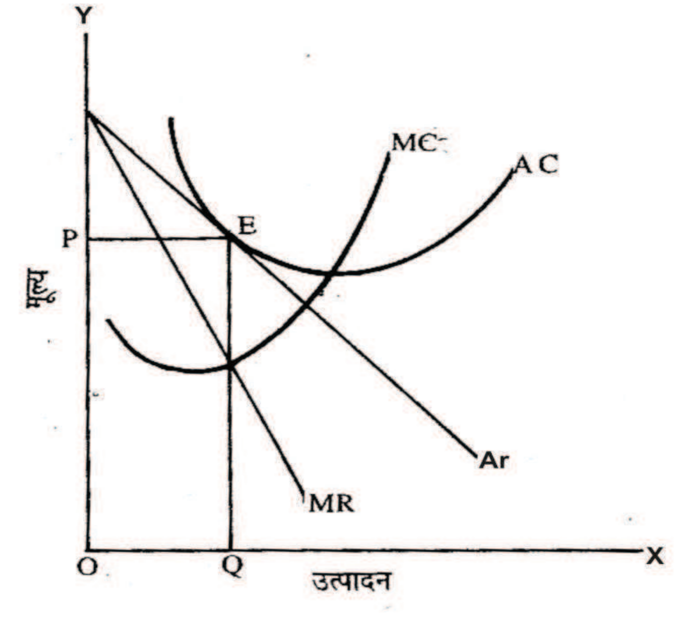

चित्र 16.3

चित्र से स्पष्ट है कि -

संस्थिति उत्पादन = OQ

संस्थिति मूल्य (AR)=OP=QE

औसत लागत (AC)=QE

स्पष्ट है कि AR=AC

चूँकि P=AC; अतः फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर रही है।

iii. हानि की स्थिति– **(AR < AC):-** अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म हानि भी प्राप्त कर सकती है। अल्पकाल में हानि सहने वाले एकाधिकारी फर्म को रेखांचित्र 16.5 मे स्पष्ट किया गया है।

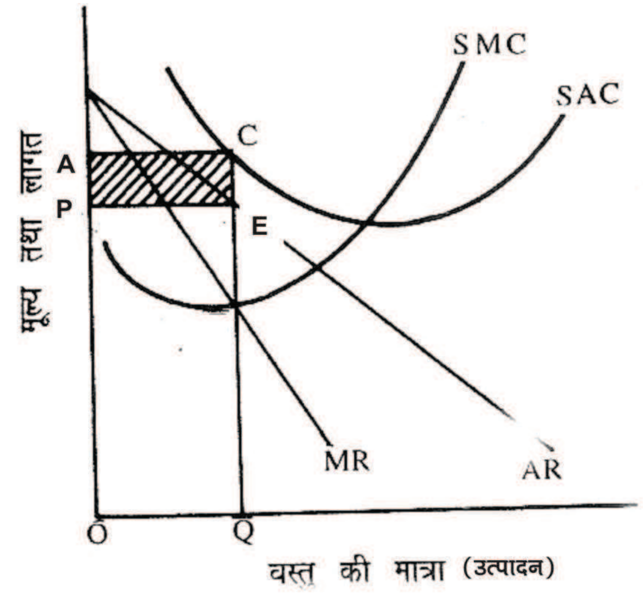

चित्र 16.4

स्पष्ट है कि अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र (SMC) सीमान्त आय (MR) वक्र को E बिन्दु पर काटती है। अतः चित्रानुसार -

संस्थिति उत्पादन = OQ

प्रति इकाई मूल्य (P)=OP=QE

औसत लागत (AC)=OA=QC

अतः प्रति इकाई हानि =AC-P=OA-OP=AP=CE

अतः कुल हानि = AP×PE=CE×OQ = क्षे0ACEP (रेखांकित भाग का क्षेत्रफल)

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कोई भी एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में हानि की स्थिति में कब तक कार्य करती रहेगी। जैसा कि आपने पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत जाना होगा कि जब तक फर्म के उत्पाद का मूल्य (P), उसके औसत परिवर्तनशील लागत(AVC) से ऊपर रहेगा, फर्म हानि पर उत्पादन करती रहेगी और जब मूल्य इससे कम हो जाता है, (अर्थात P<AVC) तो फर्म अपने प्लान्ट को बन्द कर देती है। यही स्थिति एकाधिकारी फर्म के सन्दर्भ में भी लागू होती है।

16.4.2 दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म का सन्तुलन विश्लेषण - एकाधिकारी फर्म को अल्पकाल में चाहे सामान्य लाभ हो या हानि किन्तु दीर्घकाल में उसे सदैव लाभ होता है। क्योंकि यह अकेला उत्पादक होता है और दीर्घकाल में इतना पर्याप्त समय मिल जाता है कि फर्म उत्पादन के आवश्यकतानुसार अपने प्लाण्ट के आकार में वृद्धि ला सकती है या दिये हुये प्लाण्ट को ही किसी स्तर तक प्रयोग में ला सकती है जिससे उसका लाभ अधिकतम् हो सके। वस्तुतः एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में सामान्यतया असामान्य लाभ अर्जित करती रहेगी जबकि पूर्ण प्रतियोगी फर्म दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है। दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म प्लाण्ट के आकार तथा वर्तमान प्लाण्ट को किस स्तर तक प्रयुक्त करेगी, यह बाजार माँग के ऊपर निर्भर करेगा। एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में बाजार माँग के अनुरूप दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) के न्यूनतम बिन्दु, LAC के गिरते हुए भाग या LAC के ऊपर उठते हुए भाग किसी भी बिन्दु पर उत्पादन कर सकती है। दीर्घकाल में असामान्य लाभ को प्रदर्शित करने वाले फर्म की संस्थिति को निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट किया गया है।

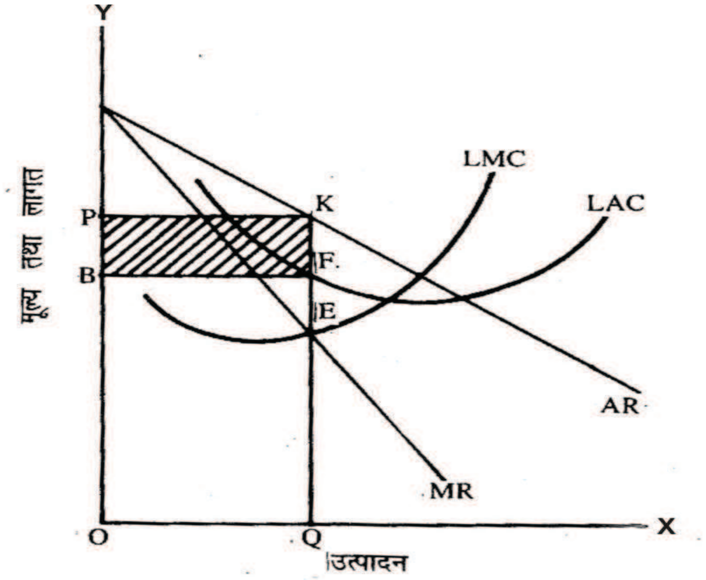

चित्र 16.5

चित्र 16.5 में LAC दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है तथा LMC दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र है। LMC, MR को E बिन्दु पर काटता है, जिससे सन्तुलन कीमत OP तथा सन्तुलन उत्पाद OQ का निर्धारण होता है। चूँकि प्रति इकाई औसत लागत QF या OB है। अतः प्रति इकाई लाभ = OP - OB = PB

अतः कुल असामान्य लाभ = OQ×PB=PBKF

रेखाचित्र 16.5 से यह भी स्पष्ट है कि एकाधिकारी फर्म की सन्तुलन स्थिति LAC के न्यूनतम बिन्दु पर नहीं है। F बिन्दु LAC के गिरते हुए भाग में स्थित है। वस्तुतः LAC के किस भाग में एकाधिकारी उत्पादन करेगा, यह AR तथा MR के आकार पर निर्भर करेगा।

दीर्घकालीन एकाधिकारी फर्म के सम्बन्ध में एक तथ्य और भी महत्वपूर्ण है कि वह दीर्घकाल में अपनी स्थित प्लान्टों में से कुछ को बेचकर उत्पादन क्षमता कम कर सकता है या नये प्लान्टों को लगाकर उत्पादन क्षमता बढ़ा सकता है। अतः दीर्घकाल में एकाधिकारी उद्योग के विस्तार या संकुचन के कारण एकाधिकारी के लिए कुछ उत्पत्ति के साधनो की लागत में वृद्धि या कमी हो सकती है, फलस्वरूप एकाधिकारी उद्योग, दीर्घकाल में बढ़ती हुई, घटती हुई या स्थिर लागत के अर्न्तगत उत्पादन करेगा। अतः दीर्घकाल में मूल्य निर्धारण के क्रिया के ऊपर उत्पादन के तीनों नियमों के प्रभावों को हम निम्नलिखित रेखाचित्रों 16.6, 16.7 तथा 16.8 के अन्तर्गत स्पष्ट कर रहे है।

I. **लागत वृद्धि नियम लागू होने पर**- लागत वृद्धि नियम के अन्तर्गत एकाधिकारी की स्थिति को चित्र 16.6 में प्रदर्शित किया गया है।

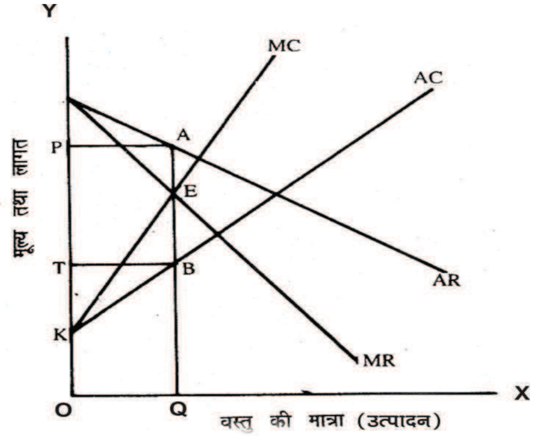

चित्र 16.6

चित्रानुसार लागत रेखाएँ AC और MC ऊपर की ओर बढ़ती हुई है, MC, MR को E बिन्दु पर काटती है। अतः एकाधिकारी OQ वस्तु का उत्पादन करेगा। इस OQ उत्पादन पर औसत आय OP है। इसी OP मूल्य पर फर्म का लाभ अधिकतम होगा और फर्म को कुल PABT के क्षेत्रफल के बराबर लाभ प्राप्त होगा।

II. लागत ह्रास नियम लागू होने परः- एकाधिकारी को लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत कार्य करने की स्थिति को चित्र 16.7 में प्रदर्शित किया गया है।

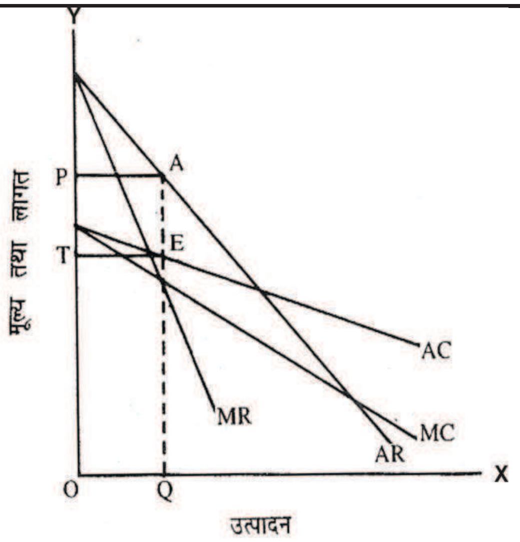

चित्र 16.7

स्पष्ट है कि इस स्थिति में उत्पादन के साथ-साथ लागत घटती जाती है। ऐसी स्थिति में एकाधिकारी कम से कम मूल्य रखकर अधिक से अधिक उत्पादन करना चाहेगा। चित्रानुसार MR तथा MC की समानता के आधार पर सन्तुलन उत्पाद व्फ का निर्धारण होता है।

संस्थिति मूल्य = OP

औसत लागत (AC)=OT

चूँकि प्रति इकाई लाभ =OP-OT=PT

अतः कुल लाभ - PT×OQ = क्षे0 PTEA

III. **स्थिर - लागत नियम लागू होने पर-** एकाधिकारी की लागत स्थिरता नियम या स्थिर - लागत नियम के अन्तर्गत कार्य करने की स्थिति को रेखाचित्र 16.8 में प्रदर्शित किया गया है।

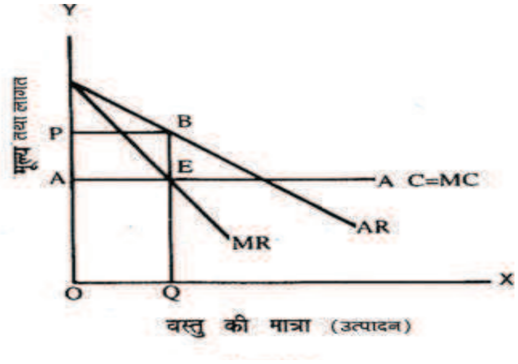

चित्र 16.8

चित्रानुसार MR तथा MC के द्वारा सन्तुलन उत्पाद OQ का निर्धारण होता है।

सन्तुलन मूल्य प्रति इकाई = OP है।

औसत लागत (AC) प्रति इकाई =OA है।

लाभ प्रति इकाई = OP-OA=PA

अतः कुल लाभ = OQ×PA

अतः कुल लाभ = क्षे0 PAEB

16.4.3 क्या एकाधिकारी कीमत सदैव प्रतियोगी कीमत से ऊँची होती है ?

चूँकि एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला होता है, उसका पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है तथा वह अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है। एक सामान्य धारणा यह पनपती है कि एकाधिकारी कीमत प्रतियोगी कीमत से बहुत अधिक ऊँची होती है। वास्तविकता यह है कि यद्यपि कुछ स्थितियों में यथा अल्पकाल में एकाधिकारी कीमत नीची हो सकती है, और उसे केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो या हानि भी हो सकती है परन्तु प्रायः एकाधिकारी कीमत निःसंदेह प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है और एकाधिकारी अतिरिक्त लाभ अर्जित करता है।

एकाधिकारी वस्तु की कीमत कितनी ऊँची होगी यह माँग की लोच तथा लागत के व्यवहार पर निर्भर करेगी। एक एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन निर्धारित करते समय सदैव अपनी मूल्य लोच को ध्यान में रखता है। वस्तुतः एकाधिकारी मूल्य वहाँ निर्धारित करता है जहाँ वस्तु की मूल्य लोच इकाई से अधिक ($e>1$) हो। यदि एकाधिकारी वस्तु की मॉग बेलोचदार है तो एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत ऊँची रख सकेगा और ऐसा करने से उसकी बिक्री की मात्रा में कोई विशेष कमी नहीं होगी। इसके विपरीत यदि मॉग अत्यधिक लोचदार है तो एकाधिकारी को वस्तु की कीमत नीची रखनी पड़ेगी जिससे वस्तु की अधिक मात्रा में बेंचकर वह अपने लाभ कों अधिकतम् कर सके।

यद्यपि कुछ दशाओं में एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत को प्रतियोगी कीमत से नीची रख सकता है-

i. यदि एकाधिकारी 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत उत्पादन कर रहा है, तो वह अपनी वस्तु को अपेक्षाकृत नीची कीमत रखकर अपने लाभ को अधिकतम करेगा।
ii. यदि किसी क्षेत्र में उत्पत्ति के बड़े पैमाने की बचतों के परिणामस्वरूप एकाधिकारी स्थिति प्राप्त की जा सकती है, तो इस स्थिति में एकाधिकारी वस्तु का बड़े पैमाने पर उत्पादन करके वस्तु की प्रति इकाई लागत को कम करेगा। फलतः वह अपने वस्तु की कीमत को प्रतियोगी कीमत से कम रखेगा।

उपर्युक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त एकाधिकारी वस्तु की कीमत सदैव प्रतियोगी कीमत से ऊँची रहती है।पिछली इकाई के अन्तर्गत पूर्ण प्रतियोगिता तथा इस इकाई में एकाधिकार के बारे में विशद जानकारी प्राप्त करने के पश्चात अब पूर्ण प्रतियोगी बाजार तथा एकाधिकारी बाजार के मध्य महत्वपूर्ण अन्तरों को हम सारांश रूप में निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं -

क्र. सं.	तुलना का आधार	पूर्ण प्रतियोगिता	एकाधिकारी
1.	फर्मों की संख्या	अपरिमित या अत्यधिक	एक
2.	फर्मों का प्रवेश	स्वतंत्र प्रवेश	प्रवेश पूर्णतया वर्जित
3.	वस्तु का स्वभाव	पूर्णतः सहजातीय	पूर्ण सहजातीय, नजदीकी स्थानापन्न नहीं
4.	उत्पादन व मूल्य निर्धारण	केवल उत्पादन समायोजन, मूल्य निर्धारण नहीं (फर्मे केवल मूल्य स्वीकारक होती है)	उत्पादन तथा मूल्य दोनों का निर्धारण
5.	आय वक्र का स्वरूप,ARवM R के मध्य सम्बन्ध	AR तथा MR आधार अक्ष के समान्तर होते हैं तथा AR, MR तथा लोच (e) के मध्य कोई संबंध नहीं	AR तथा MR नीचे गिरते हुए होते हैं। AR, MR तथा E के मध्य सम्बन्ध $MR = AR\left(1 - \frac{1}{e}\right)$
6.	पूर्ति वक्र व लागत वक्र का स्वरूप	पूर्ति वक्र निर्धार्य तथा अल्पकाल में MC से सम्बन्धित होती है। जबकि लागत वक्र U आकार का होता है।	पूर्ति वक्र MC से सम्बन्धित नहीं तथा अनिर्धाय, लागत वक्र U आकार में है।
7.	संस्थिति की स्थिति	दीर्घकालीन संस्थिति में AR = MR = AC= MC	दीर्घकालीन संस्थिति में MR = MC तथा AR इससे अधिक होता है। अर्थात् (MR= MC < AR)
8.	लाभ की स्थिति (i) अल्पकाल में (ii) दीर्घकाल में	सामान्य लाभ, असामान्य लाभ तथा हानि तीनों स्थितियां संभव है। केवल सामान्य लाभ	सामान्य लाभ, असामान्य लाभ तथा हानि तीनों स्थितियां संभव है। केवल असामान्य लाभ
9.	मूल्य तथा	के न्यूनतम बिन्दु पर, निष्क्रिय	दीर्घकाल में उत्पादन AC के

	उत्पादन क्षमता	उत्पादन क्षमता का अभाव साधनों का अनुकूलतम व पूर्ण शोषण	न्यूनतम बिन्दु से बायी ओर निष्क्रिय उत्पादन क्षमता। मूल्य अपेक्षाकृत ऊँचा तथा उत्पादनकम
10.	उपभोक्ता का शोषण	उपभोक्ता की दृष्टि से उत्तम	उपभोक्ता का शोषण

अभ्याय प्रश्न-1

लघु उत्तरीय प्रश्नः-

क. एकाधिकारी का अर्थ बताइए? इसकी प्रमुख विशेषताए क्या हैं?

ख. एकाधिकार के अन्तर्गत अल्पकाल में फर्म के लाभ को रेखाचित्र से प्रदर्शित कीजिए।

ग. एकाधिकारी व पूर्ण प्रतियोगी फर्म में पॉच प्रमुख अन्तर बताइए।

घ. एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण की शर्त क्या है?

निम्न कथनो में सत्य/असत्य कथन बताइए-

(क) एकाधिकार के अन्तर्गत फर्मों की अपरिमित संख्या होती है।

(ख) एकाधिकारी मूल्य, प्रतियोगी मूल्य से सदैव अधिक होती है।

(ग) एकाधिकार को अल्पकाल में केवल लाभ ही होता है, हानि नहीं।

(घ) मूल्य विभेदीकरण पूर्ण प्रतियोगिता में भी संभव हो सकता है।

(ड.) एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य या मात्रा दोनों में से कोई भी निर्धारित कर सकता है।

(च) दीर्घकाल में एकाधिकारी सदैव असामान्य लाभ ही प्राप्त करता है।

बहुविकल्पी प्रश्न-

(क) एकाधिकारी फर्म होती है-

a. केवल कीमत नियोजक है
b. केवल मात्रा नियोजक
c. कीमत नियोजक व मात्रा नियोजक दोनो
d. उपर्युक्त सभी असत्य

(ख) एकाधिकारी सन्तुलन के लिए सत्य होगा-

(A) $AR < MR$ (B) $TR = TC$

(C) $AR > MR$ (D) $AR = MR$

(ग) एकाधिकारी के लिए निम्नांकित में से कौन सा सत्य है?

(A) $MR = AR\left(1-\frac{1}{e}\right)$ (B) $MR = AR\left(1+\frac{1}{e}\right)$

(C) MR = AR $\left(\frac{1-e}{e}\right)$ (D) MR = AR $\left(\frac{e}{1-1}\right)$

(घ) एक एकाधिकारी अपनी वस्तु का उत्पादन वहाँ हमेशा करेगा जहाँ उसकी औसत आय की लोच -

a. इकाई से अधिक हो
b. इकाई से कम हो
c. शून्य हो
d. तीनों में से कोई भी

(ड.)अल्पकाल में एकाधिकारी का तालाबन्दी बिन्दु ;ेीनज कवूद चवपदजद्ध वहॉ होगा, जहॉ-

(A) P = AVC (B) TR = TVC
(C) P = AFC (D) इनमें से कोई नहीं

(च) एकाधिकार के अन्तर्गत सत्य है-

a. फर्म व उद्योग एक ही होते हैं
b. फर्म स्वयं कीमत निर्धारक होती है।
c. नयी फर्मों के प्रवेश में प्रभावपूर्ण रूकावटें
d. उपर्युक्त सभी

16.6 सारांश

बाजार के वर्गीकरण का सबसे प्रमुख आधार प्रतियोगिता को माना गया है। बाजार की दो ऐसी चरम स्थितियॉ है जो परस्पर एक दूसरे के विपरीत गुण वाली है। एक तरफ पूर्ण प्रतियोगिता है, जिसमें फर्मो की संख्या इतनी अधिक होती है कि कोई भी फर्म बाजार में प्रचलित मूल्य को प्रभावित नही कर सकती। वहीं दूसरी ओर बाजार की एक स्थिति वह है कि जिसमें प्रतियोगिता का पूर्ण अभाव रहता है और बाजार में अकेला विक्रेता होता है। इसे एकाधिकारी बाजार कहा जाता है। इस प्रकार एकाधिकारी बाजार शुद्ध प्रतियोगिता की ठीक विरोधी स्थिति है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वस्तुए एक समांग होती है अतः उनके मध्य भेद करना सम्भव नही होता है, जबकि एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तुओ का कोई निकट स्थानापन्न नहीं होता। एकाधिकारी बाजार में नई फर्मो का प्रवेश भी सम्भव नही हो पाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की भॉति एकाधिकारी के अन्तर्गत संतुलन हेतु आवश्यक है कि MR=MC हो। एकाधिकार में वस्तु की कीमत, पूर्ण प्रतियोगी बाजार की कीमत से अधिक होती है। एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में हानि सहन कर सकता है परन्तु दीर्घकाल में वह असामान्य लाभ प्राप्त करता रहता है। एकाधिकारी फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से मूल्य विभेदीकरण की नीति को भी अपनाता हैं इसके अन्तगत वह एक ही वस्तु की विभिन्न बाजारों या उपभोक्ताओं में अलग-अलग मूल्यों पर बेचता है। यद्यपि मूल्य विभेदीकरण की कुछ शर्ते है

जिनके पूर्ण होने पर ही एकाधिकारी अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है। मूल्य विभेदीकरण किसी स्तर तक समाज के लिए वांछनीय भी है और किसी स्तर पर अवांछनीय भी। यदि किसी बाजार में एक विक्रेता के साथ-साथ एक ही क्रेता भी हो तो 'इसे द्विपक्षीय एकाधिकार' कहा जाता है। विश्लेषण से स्पष्ट है कि एकाधिकार के अन्तर्गत उपभोक्ता का शोषण अधिक होता है क्योंकि इसमें मूल्य अपेक्षाकृत ऊँचा एवं उत्पादन कम होता है। वस्तुतः व्यवहार में विशुद्ध एकाधिकारी नहीं पाया जाता क्योंकि किसी वस्तु का एक उत्पादक हो सकता है, परन्तु प्रत्येक वस्तु का कोई-न- कोई स्थानापन्न अवश्य होता है और उस उत्पादक को भी किसी न किसी रूप में अप्रत्यक्ष प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है।

16.7 शब्दावली

तिर्यक लोचः- एक वस्तु की माँग में जो परिवर्तन दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के प्रतिक्रिया में होता है, उसे मॉग की आड़ी लोच या तिर्यक लोच कहते है। उदाहरणार्थ इसके अन्तर्गत हम ल् वस्तु की कीमत में परिवर्तन करते है और फिर देखते है कि ग् की मॉग में कितना परिवर्तन होता है।

मॉग की मूल्य लोचः- किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन का उस वस्तु की मॉग में कितने प्रतिशत परिवर्तन होगा, यह विभिन्न मूल्यो पर माँग के बदलने की क्षमता पर निर्भर करती है, यह क्षमता की मॉग की मूल्य लोच कहलाती है।

बचतः- कोई उपभोक्ता किसी वस्तु के उपभोग से वंचित न रह पाने हेतु जितना अधिकतम मूल्य देने को तैयार होता है और वास्तव में वह जितना मूल्य अदा करता है, उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता बचत या उपभोक्ता अतिरेक कहलाता है।

कीमत विभेदः- लगभग एक समांग वस्तु को विभिन्न बाजारों या उपभोक्ताओं के मध्य अलग-अलग मूल्यों पर विक्रय करना ही ''कीमत विभेद' कहलाता है।

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

अभ्यास प्रश्न-1

1. सत्य/असत्य कथन-

(क) असत्य	(ख) सत्य	(ग) असत्य
(घ) असत्य	(ङ) सत्य	(च) सत्य

बहुविकल्पी प्रश्न-(क) C (ख) C (ग) A (घ) A (ङ) A (च) D

16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Koutsoyinies, A (1979) - Modern Micro-economics; 2nd Edition, Macmillon Press, London.

- Mishra S.K. and Puri V.K. (2003)- " Modern Micro-Economics Theory" Himalaya Publishing House. New Delhi.
- Ahuza H.L. (2010)-"Principles of Microeconomics." S. Chand Publishing House. New Delhi.
- Dwivedi, D.N. (2008) -"Micro Economics; 7th Edition, Vikas Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T.T. (2006) -"Principles of Economics, "Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.

16.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- आहूजा, एच0 एल0 (2003)- 'उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त' (व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण), एस0चन्द्र पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- लाल, एस0एन0 (1999)-''व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण; शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद (उ0प्र0)
- जैन, के0पी0 (1997) - 'व्यष्टि अर्थशास्त्र', साहित्य भवन, आगरा।
- सिन्हा, वी0सी0 (1999) -''व्यक्ति अर्थशास्त्र'', प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- झिंगन, एम0एल0 (2005) -''व्यष्टि अर्थशास्त्र'', चन्द्रा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न-

प्रश्न-1एकाधिकारी का अर्थ बताइये? अल्पकाल में एकाधिकारी मूल्य निर्धारण को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-2एकाधिकारी के अन्तर्गत अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन को विस्तार से समझाइये।

प्रश्न-3 लागत की दशाओं का एकाधिकार मूल्य पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए। क्या एकाधिकार मूल्य अनिवार्यतः एक ऊँचा मूल्य होता है?

प्रश्न-4 एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण के अन्तर को पूर्णतयास्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-5 विभेदात्मक एकाधिकार किसे कहते है? इसे कौन से तत्व सम्भव बनाते हैं? इसके अन्तर्गत कीमत-निर्धारण का रेखाचित्र खीचिए।

प्रश्न-6 एकाधिकारी किन परिस्थितियों में मूल्य विभेदीकरण कर सकता है? विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है?

इकाई- 17 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता-अर्थ एवं विशेषताएं

17.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का संतुतन

17.4.1 अल्पकाल में फर्म का संतुलन

17.4.2 दीर्घकाल में फर्म का संतुलन तथा समूह संतुलन

17.5 चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की आलोचना

17.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र से सम्बन्धित यह 17वीं इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि उत्पादन फलन क्या है ? उपभोक्ता सन्तुलन कैसे होता है। बाजार संरचना, फर्म के संतुलन की शर्तें तथा पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में बता सकते हैं।

इस खण्ड की पहली दो इकाईयों पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार बाजार की दो चरम बाजार स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, और वास्तविक जगत में बाजार की स्थितियों से मेल नहीं खाती हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इन दो चरम स्थितियों के बीच की बाजार स्थिति एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताओं तथा उसके अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

17.3 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- एकाधिकारिक प्रतियोगिता का अर्थ तथा उसकी विशेषताओं को जान सकेंगे।
- एकाधिकारिक प्रतियोगिता में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण को समझ सकेंगे।
- एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता प्रतियोगिता के अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।

17.3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता-अर्थ एवं विशेषताएं

अपूर्ण प्रतियोगिता का आशय पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की किसी भी दशा का अभाव होना है। इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अनेक उपश्रेणियाँ होती है प्रथम महत्वपूर्ण उपश्रेणी एकाधिकारिक प्रतियोगिता है जिस पर प्रो0 ई0 एच0 चैम्बरलिन ने अधिक बल दिया है। एकाधिकार प्रतियोगिता वह जिसमें बड़ी संख्या में फर्मे विभेदीकृत पदार्थो का उत्पादन करती है जो एक दूसरे के निकट के स्थानापन्न होते है। इनके परिणामस्वरूप एक फर्म का माँग वक्र अधिक लोचदार होता है। जो यह संकेत करता है कि इसमें फर्म कीमत पर कुछ नियन्त्रण रखती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की दूसरी श्रेणी जिसे श्रीमती जोन राबिन्सन ने अल्पाधिकार कहा है इसकी प्रथम उपश्रेणी पदार्थ विभेदीकरण बिना अल्पाधिकार है जिसे शुद्ध अल्पाधिकार कहते है इसमें समरूप पदार्थ का उत्पादन करने वाली कुछ फर्मो के बीच प्रतियोगिता होती है। फर्मों की कमी सुनिश्चित करती है कि उनमें से

प्रत्येक का पदार्थ कीमत पर कुछ नियन्त्रण होगा तथा प्रत्येक फर्म का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है जो यह इंगित करता है कि प्रत्येक फर्म कीमत पर कुछ नियन्त्रण रखती है। इसकी दुसरी उपश्रेणी पदार्थ विभेदीकरण सहित अल्पाधिकार है जो विभेदीकृत अल्पाधिकार कहलाता है। इसमें विभेदीकृत पदार्थ जो एक दूसरे के निकट स्थानापन्न होते है। उत्पादनकरने वाली कुछ फर्मों के बीच प्रतियोगिता पायी जाती है। इसके अर्न्तगत व्यक्तिगत फर्म के बीच का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है। अतः फर्म अपने व्यक्तिगत पदार्थ की कीमत पर नियन्त्रण रखती है।

प्रो0 चैम्बरलिन की एकाधिकारिक प्रतियोगिता और श्रीमती राबिन्सन की अपूर्ण प्रतियोगिता में कुछ अन्तर होते हुए भी दोनों में आवश्यक तत्व तथा सार समान हैं।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता से तात्पर्य उस बाजार स्थिति से है, जिसमें बड़ी संख्या में विक्रेता या फर्में एक दूसरे की निकट स्थानापन्न, विभेदीकृत वस्तुओं का विक्रय करती हैं।

प्रत्येक फर्म इस अर्थ में एकाधिकारी होती है कि वह ब्रान्डेड तथा पेटेन्टयुक्त वस्तु उत्पादित करने तथा बेचने के लिए अधिकृत है। परन्तु प्रत्येक फर्म को दूसरी फर्मों के निकट स्थानापन्न वस्तुओं से प्रतियोगिता करनी होती है। जैसे-शैम्पू, साबुन या टूथपेस्ट बनाने वाली प्रत्येक फर्म का अपने उत्पाद के ब्रान्ड तथा पेटेन्ट पर एकाधिकार है परन्तु उत्पाद बनाने वाली अन्य फर्मों से उन्हें कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। चूँकि हर एक फर्म या विक्रेता विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन तथा विक्रय करने के कारण एकाधिकारी होता है परन्तु बाजार में उनके निकट स्थानापन्न वस्तुएं होने के कारण उन्हें प्रतियोगिता करनी होती है, अतः एकाधिकारिक प्रतियोगिता की इस बाजार स्थति में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों कें मूलभूत तत्व समाहित होते हैं।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताएं

17.3.2.1 वस्तु विभेदीकरण

एकाधिकारिक प्रतियोगिता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता वस्तु विभेदीकरण के कारण ही इसमें एकाधिकार तथा प्रतियोगिता का मिश्रण पाया जाता है। वस्तु विभेदीकरण का तात्पर्य है विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में कुछ भिन्नता पायी जाती है। यह भिन्नता उनके आकार, आकृति, रंग, ब्रान्ड, डिजाइन, सूक्ष्म गुणात्मक अन्तर, डिब्बे की सुन्दरता, पैकेजिंग, विक्रय के बाद सेवा, गारन्टी तथा वारण्टी, दुकान की स्थिति इत्यादि के आधार पर हो सकती है। विभेदीकरण का आधार वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है। वस्तु विभेदीकरण जितना ही अधिक होगा, एकाधिकार का अंश उतना ही अधिक होगा। परन्तु दूसरी फर्मों के निकट स्थानापन्न वस्तु से प्रतियोगिता करनी होती है। वस्तु विभेदीकरण गैर कीमत प्रतियोगिता का एक अंग है।

17.3.2.2 विक्रेताओं की अधिक संख्या

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में विक्रेताओं या फर्मों की संख्या अधिक होती है। अर्थात बाजार में उस वस्तु की कुल आपूर्ति का थोड़ा ही भाग एक फर्म या विक्रेता के पास होता है। इसलिए प्रत्येक फर्म के लिए अपनी वस्तु की कीमत स्वयं निर्धारित कर पाना सम्भव होता है।

17.3.2.3 नीचे की ओर गिरता हुआ मांग वक्र

विभेदीकृत वस्तु के कारण चूँकि फर्म की अपनी वस्तु की कीमत निर्धारित करने की शक्ति होती है, अतः वह कीमत कम करके अपने उत्पाद की बिक्री बढ़ा सकता है या फिर उसके कीमत बढ़ाने के बावजूद उसकी कुछ मांग बाजार में बनी रहेगी। चूँकि विभिन्न ब्रान्ड आपस में निकट स्थानापन्न होते हैं, इसलिए उनमें प्रति लोच अधिक होती है परन्तु अनन्त नहीं। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एक फर्म का मांग वक्र वस्तु विभेदीकरण के कारण नीचे की ओर गिरता हुआ होगा।

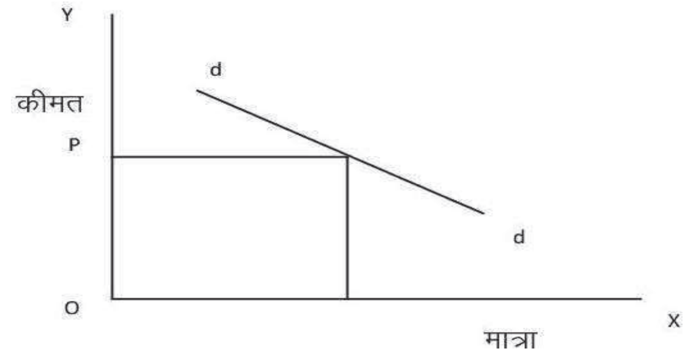

चित्र 17.1

चैम्बरलिन के अनुसार मांग सिर्फ फर्म की कीमत नीति से ही निर्धारित नहीं होती है बल्कि वस्तु की स्टाइल, इसमें जुड़ी सेवाओं तथा फर्म की विक्रय गतिविधियों पर भी निर्भर करती है।

यहां यह महत्वपूर्ण है कि वस्तु विभेद की स्थिति में जब फर्में एक दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं तो प्रत्येक फर्म यह महसूस करती है कि उसका मांग वक्र उसकी प्रतिद्वंदी फर्म के मांग वक्र की अपेक्षा अधिक लोचदार है। अर्थात जब वह अपने उत्पाद की कीमत कम करेगी तो अन्य प्रतिद्वंदी फर्में ऐसा नहीं करेंगी और वह अन्य फर्मों के कुछ ग्राहक आकर्षित कर लेगी। कीमत बढ़ाने की स्थिति में फर्म अपने कुछ ग्राहक खोएगी। चैम्बरलिन इसे फर्म का आत्मगत या अनुभूत मांग वक्र ((dpdp)) कहते हैं। यह व्यक्तिगत फर्म के आत्मगत निर्णय पर आधारित है, जिसमें वह यह कल्पना कर लेती है कि उसका मांग वक्र किस प्रकार का होगा।

परन्तु जब समूह की सभी फर्मों द्वारा कीमत परिवर्तन एक ही मात्रा में तथा एक ही दिशा में होता है तो व्यक्तिगत फर्म का मांग वक्र कम लोचदार होगा। यह अनुपातिक मांग वक्र (dd) है, जो कि dpdp से कम लोचदार है। यह प्रत्येक कीमत पर फर्म की वास्तविक बिक्री को दर्शाता है। इसमें एक फर्म

द्वारा कीमत में परिवर्तन करने पर अन्य प्रतिद्वंदी फर्मों की प्रतिक्रियाओं को भी सम्मिलित किया गया है। फर्म द्वारा कीमत परिवर्तन करने पर, अन्य प्रतिद्वंदी फर्मों द्वारा भी उसी समय कीमत परिवर्तन करने की स्थिति में dpdp वक्र में लगातार विवर्तन होगा। dd वक्र, विवर्तित dpdp वक्रों का बिन्दुपथ है। जैसा कि चित्र 17.2 में c, c_1 तथा c_2 बिन्दुओं से स्पष्ट है।

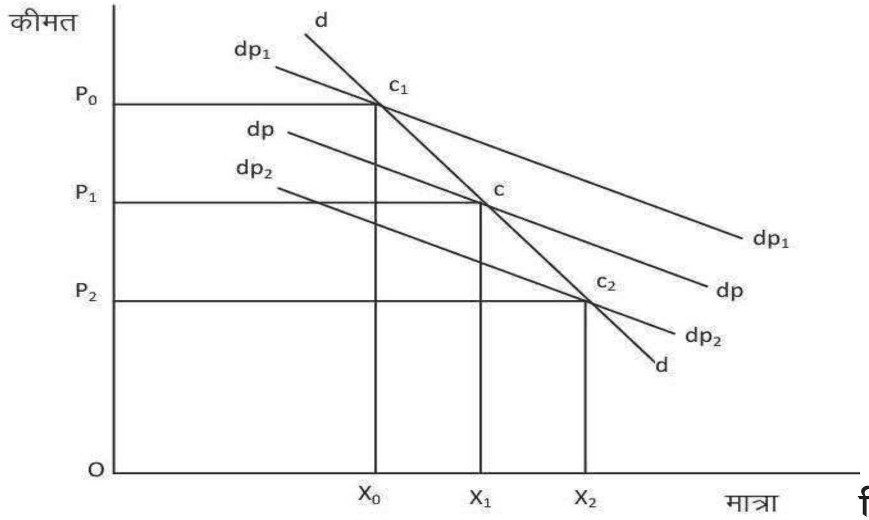

चित्र 17.2

एक फर्म जिस अनुपातिक मांग वक्र पर सामना करती है वह समूह की समान्य वस्तुओं की कुल बाजार मांग का एक अंश है। अधिक फर्मों के उत्पादन समूह में प्रवेश करने पर कक वक्र बायीं ओर विवर्तित हो जाएगा।

17.3.2.4 फर्मों के प्रवेश तथा निकास की स्वतंत्रता

पूर्ण प्रतियोगिता की तरह यहां भी उद्योग में नयी फर्म के प्रवेश तथा पुरानी फर्म के निकासी पर कोई रोक नहीं होती है। एकाधिकारक प्रतियोगिता में प्रवेश की स्वतंत्रता केवल निकट स्थानापन्न पदार्थ उत्पादित करने के मांग में होती है।

17.3.2.5 विक्रय लागतें

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के विपरीत एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्में अपने उत्पाद के विपरीत तथा अन्य बिक्री प्रोत्साहन योजनाओं पर भारी व्यय करती है। चैम्बरलिन ने पहली बार फर्म के सिद्धान्त में विक्रय लागतों की संकल्पना प्रस्तुत की। विक्रय लागतों-विज्ञापनों तथा अन्य विक्रय गतिविधियों में हुआ व्यय-द्वारा ही फर्म अपनी उत्पादित वस्तु को अन्य फर्मों को उत्पादित वस्तुओं से अलग दिखाने का प्रयास करती है। इससे फर्म का मांग वक्र ऊपर की ओर

विवर्तित हो जाएगा और इसकी लोच में भी कमी आएगी-क्योंकि विज्ञापन तथा अन्य बिक्री प्रोत्साहन गतिविधियों से उस वस्तु के प्रति उपभोक्ताओं के अधिमान में मजबूती आएगी।

चैम्बरलिन अपने मॉडल में परम्परागत U-आकार के लागत वक्रों - AC, AVC और MC की तरह औसत बिक्री लागत वक्र (ASC) को भी U -आकार का मान लेते हैं।

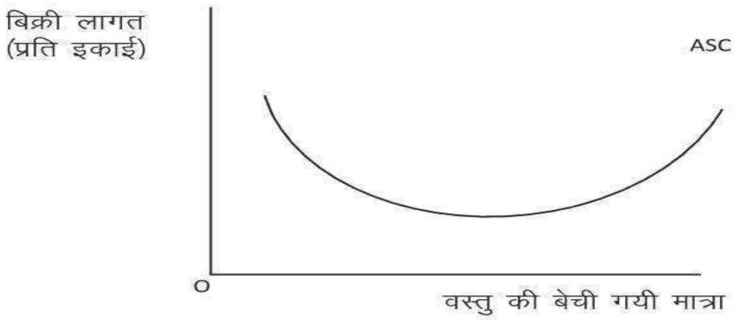

औसत बिक्री लागत वक्र

चित्र 17.3

उत्पादन तथा कीमत के अधिकतम व्यय के स्तर को निर्धारित करने में ASC वक्र को AC वक्र में जोड़ दिया जाता है।

17.3.2.6 उद्योग तथा 'उत्पाद समूह' की संकल्पना

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत उद्योग का अर्थ है समांग वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों का समूह। यहां प्रत्येक फर्म के मांग वक्र को जोड़कर उद्योग की बाजार मांग को ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्में असमांग वस्तुओं का उत्पादन करती हैं, इसलिए यहां उद्योग की संकल्पना प्रयोग में नहीं लायी जा सकती। चूँकि प्रत्येक फर्म विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन करती है इसलिए बाजार मांग एवं आपूर्ति वक्र प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत वस्तुओं की मांग को नहीं जोड़ा जा सकता।

प्रो0 चैम्बरलिन 'वस्तु समूह' की संकल्पना का प्रयोग करते हैं, जो ऐसी फर्मों का समूह है जो कि निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। समूह द्वारा उत्पादित वस्तुएं परस्पर निकट की तकनीकी तथा आर्थिक स्थानापन्न होनी चाहिए। यदि दो वस्तुएं तकनीकी रूप से एक ही आवश्यकता की संतुष्टि करती हैं तो वे तकनीकी रूप से एक दूसरे की स्थानापन्न होंगी। जैसे सभी कारे तकनीकी रूप से स्थानापन्न हैं। यदि दो वस्तुएं एक ही आवश्यकता की संतुष्टि कर रही हों और दोनों की कीमतें भी लगभग समान हों तो वे आर्थिक स्थानापन्न होंगी। उदाहरण के तौर पर, आल्टो,

स्पार्क तथा सैन्ट्रो को एक दूसरे की आर्थिक स्थानापन्न कहा जा सकता है परन्तु टाटा नैनो और फोर्ड फिएस्टा नहीं।

17.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का संतुलन

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म का बाजार समूह की अन्य फर्मों से कुछ सीमा तक पृथक होता है। इसलिए उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग उसके द्वारा निश्चित कीमत, वस्तु की किस्म तथा उसके द्वारा किए गए विज्ञापन व्यय पर निर्भर करती है।

परन्तु हम एक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की एक विशेष किस्म को मानकर और विज्ञापन पर फर्म द्वारा किए गए व्यय को स्थिर मानकर केवल कीमत तथा उत्पादन मात्रा के विषय में ही फर्म के संतुलन की व्याख्या अल्प काल तथा दीर्घ काल में करेंगे।

17.4.1 अल्प काल में फर्म का संतुलन

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एक व्यक्तिगत फर्म का मांग वक्र, बाजार में उसके द्वारा उत्पादित वस्तु के कई निकट में स्थानापन्न होने के कारण अधिक मूल्य सापेक्ष या लोचदार होता है। इस प्रकार फर्म का अपने वस्तु की किस्म पर एकाधिकारिक नियंत्रण बाजार में उपलब्ध स्थानापन्न वस्तुओं की मात्रा द्वारा सीमित होता है। यदि स्थानापन्न वस्तुओं की किस्म और उसकी कीमतों को स्थिर मान लिया जाए तो एक फर्म के वस्तु का एक निश्चित मांग वक्र होगा।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत उपरोक्त विशेषताओं तथा मान्यताओं के दिए होने पर, प्रत्येक फर्म ऐसी कीमत तथा उत्पादन निश्चित करती है, अर्थात् वहां संतुलन में होती है, जहां उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। फर्म का लाभ वहां अधिकतम होगा जहां उसकी सीमांत लागत (MC) सीमान्त आय (MR) के बराबर होती है।

चित्र 17.4 में एक व्यक्तिगत फर्म का अल्पकालीन संतुलन दर्शाया गया है। फर्म का व्यक्तिगत मांग वक्र कक है जो कि उसका औसत आय वक्र भी है। MR तथा MC के संतुलन के अनुरूप फर्म P_0 कीमत तथा X_0 उत्पादन निर्धारित करती है। इस संतुलन की स्थिति में फर्म P_0ABC क्षेत्रफल के बराबर असामान्य लाभ अर्जित कर रहा है। अल्पकाल में फर्म हानि भी उठा सकती है, यदि औसत लागत वक्र (AC) वक्र मांग वक्र से ऊपर हो। अल्पकाल में फर्म केवल सामान्य लाभ भी प्राप्त कर सकती है यदि मांग वक्र औसत लागत वक्र (AC) को स्पर्श करता हो। इस प्रकार फर्म के लाभ या हानि की स्थिति

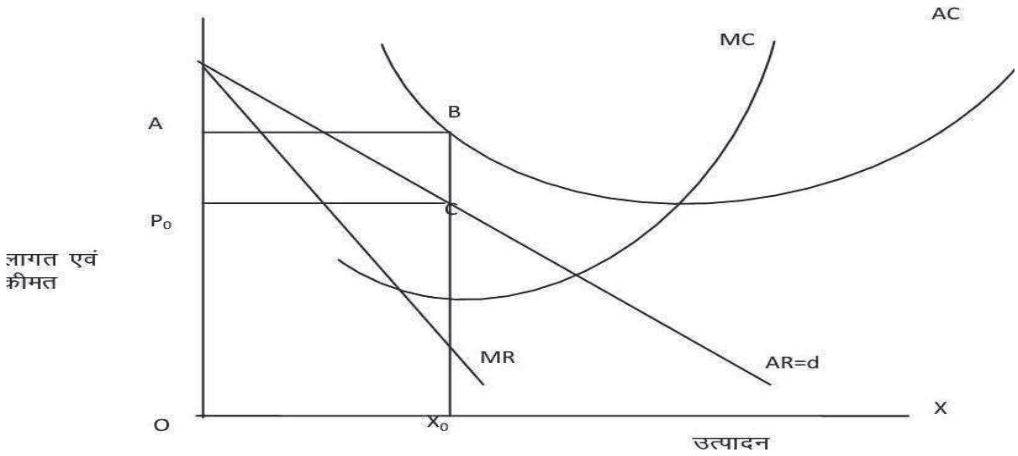

चित्र-17.4

वस्तु के मांग वक्र तथा लागत वक्र की स्थिति पर निर्भर करती है।

17.4.2 दीर्घकाल में फर्म का संतुलन तथा समूह संतुलन

एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म तथा उद्योग के संतुलन की व्याख्या के लिए चेम्बरलिन यह 'साहसपूर्ण मान्यता' मानकर चलते हैं कि समूह की सभी फर्मों तथा सभी वस्तुओं में लागत तथा मांग वक्र समान हैं। इसे 'समता की मान्यता' कहा जाता है। एक अन्य महत्वपूर्ण मान्यता 'समरूपता की मान्यता' है, जिसके अनुसार फर्मों की संख्या अधिक होने के कारण किसी एक फर्म द्वारा कीमत तथा उत्पादन में परिवर्तन का प्रभाव समूह की अन्य प्रतियोगी फर्मों पर नगण्य होगा।

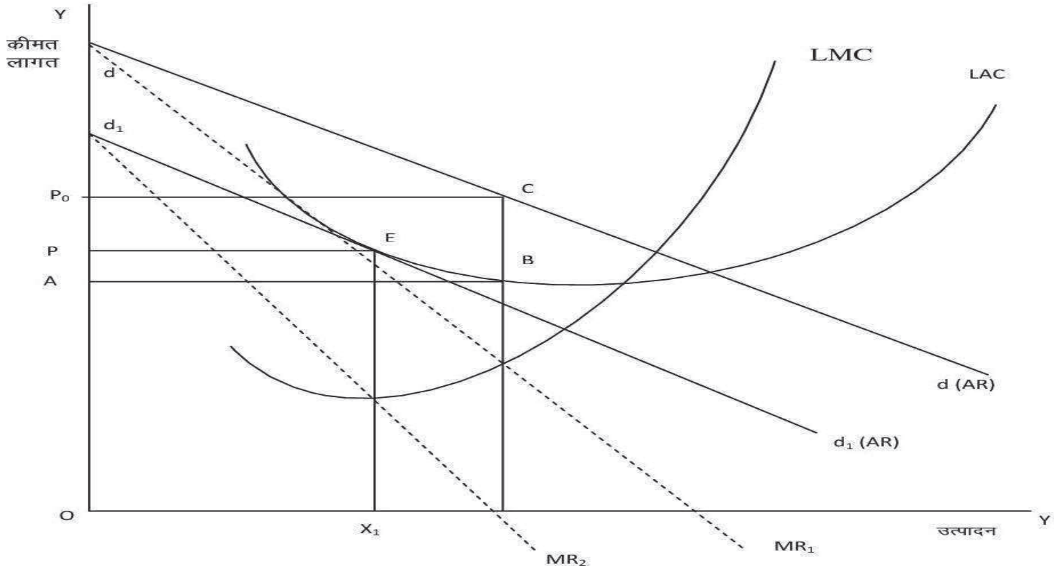

चित्र 17.5

चित्र 17.5 में बिन्दु C पर फर्में, संतुलन में हों और असामान्य लाभ अर्जित कर रही हैं परन्तु कीमत में परिवर्तन करने का कोई लाभ उन्हें नहीं है। असामान्य लाभों के कारण उस समूह में नयी फर्में आकृष्ट होंगी। फलस्वरूप मांग वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाएगा क्योंकि वस्तु की मांग पहले से अधिक फर्मों में विभाजित हो जाएगी। यह मानते हुए कि औसत लागत वक्र में परिवर्तन नहीं होगा, मांग वक्र (dd) में बायीं ओर प्रत्येक विवर्तन से कीमत में समायोजन होता है और फर्म नयी संतुलन स्थिति में पहुँच जाती है, जहां कि नया वक्र सीमान्त आय (विवर्तित MR वक्र पर) सीमान्त लागत के बराबर है। नयी फर्मों के प्रवेश की प्रक्रिया तथा फलस्वरूप मांग वक्र का बायीं ओर विवर्तन तब तक जारी रहता है जब तक वह औसत लागत वक्र को स्पर्श नहीं करने लगता है और असामान्य लाभ पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाता है। अंतिम रूप में फर्म मांग वक्र d_0d_0 के बिन्दु E पर संतुलन में होगी जबकि संतुलित कीमत P_1 होगी, तथा उत्पादन X_1।

इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का दीर्घकालीन संतुलन अथवा समूह संतुलन वहां होता हैं, जहां:-

$$MR = MC \text{ तथा}$$

$$AR = LAC$$

स्पष्ट है कि संतुलन की स्थिति में सभी फर्मों सामान्य लाभ ही प्राप्त करेंगी। इसलिए अधिक या समूह में नयी फर्मों का प्रवेश नहीं होगा। यह स्थिर संतुलन है क्योंकि कोई भी फर्म कीमत घटाने या बढ़ाने की दशा में हानि की स्थिति में होगी।

दीर्घकाल में फर्मों की संख्या में वृद्धि होने से फर्मों के दीर्घकालीन मांग वक्र अधिक लोचदार होंगे। यहां यह उल्लेखनीय है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में 'उपयुक्त उत्पादन क्षमता बनी रहेगी क्योंकि संतुलन की स्थिति दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) के न्यूनतम बिन्दु पर नहीं होती है।

20.5 चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की आलोचना

कीमत सिद्धान्त में चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त का योगदान महत्वपूर्ण होते हुए भी अनेक सिद्धान्त की अनेक अर्थशास्त्रियों ने काफी आलोचना की।

1.प्रो0 स्टिगलर तथा राबर्ट ट्रिफिन ने 'समूह' की धारणा की आलोचना की तथा इसे एक भ्रामक धारणा बताया। जब वस्तु विभेदीकरण होता है तो प्रत्येक फर्म स्वयं एक उद्योग होती है। असमांग वस्तुओं की मांग व आपूर्ति के आधार पर उद्योग का मांग व पूर्ति वक्र प्राप्त करना संभव नहीं है।

2.एक वस्तु के सभी उत्पादकों द्वारा उत्पादित किस्मों के सम्बन्ध में लागत तथा मांग वक्रों को समान मान लेना उचित नहीं है। विभेदीकृत वस्तुओं की स्थिति में प्रत्येक वस्तु के लिए मांग वक्र तथा उत्पादन लागत भिन्न-भिन्न होती है। इस प्रकार एकरूपता की मान्यता अवास्तविक है।

3.स्टिमलर और कैल्डर ने समता की मान्यता की भी आलोचना की। विभेदीकृत वस्तुओं, जो कि एक दूसरे की निकट स्थापन्न है, की स्थिति में फर्में अपनी प्रतियोगी फर्मों के निर्णयों को लेकर अत्यधिक सतर्क रहती हैं। यह मानना गलत है कि किसी एक फर्म द्वारा उत्पादन तथा मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव समान रूप से सभी फर्मों के ऊपर पड़ जायेगा।

4.चैम्बरलिन के अनुसार असामान्य रूप से आकृष्ट होकर जब नयी फर्में समूह में प्रवेश करेंगी और फलस्वरूप समूह में फर्मों की संख्या बढ़ेगी तो फर्मों के मांग वक्र की लोच नहीं बढ़ेगी। परन्तु राबिन्सन तथा काल्डर का मत है कि चैम्बरलिन की यह धारणा गलत है, क्योंकि समूह में नयी फर्मों के प्रवेश करने तथा उनकी संख्या बढ़ने पर बाजार की अपूर्णता का अंश कम होता जायेगा और उनका मांग वक्र अधिक लोचदार होता जायेगा।

5.अनेक विद्वानों का यह मत है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की तरह एकाधिकारिक प्रतियोगिता के मॉडल के आधार पर भी उपयोगी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इस सम्बन्ध में अल्पाधिकार के मॉडल कहीं अधिक उपयोगी हैं और फिर वास्तविक जगत में ऐसा उदाहरण पाना कठिन है जहां चैम्बरलिन की एकाधिकारिक प्रतियोगिता का मॉडल प्रासंगिक हो।

इन आलोचनाओं के बावजूद चैम्बरलिन के एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त का कीमत सिद्धान्त में योगदान काफी महत्वपूर्ण है। वस्तु विभेद, विक्रय कीमतें इत्यादि संकल्पनाओं को अपने सिद्धान्त में सम्मिलित कर चैम्बरलिन कीमत सिद्धान्त को वास्तविकता के अधिक निकट ले आए।

अभ्यास प्रश्न-1

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

i. एकाधिकारिक प्रतियोगिता से क्या अभिप्राय है?

ii. वस्तु विभेदीकरण क्या होता है?

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

i. विक्रय लागतों की धारणा का विकास किसने किया?

(क) मार्शल (ख) चैम्बरलिन

(ग) जोन राबिन्सन (घ) केन्स

ii. निम्न में से विक्रय लागत क्या है?

(क) पैकिंग (ख) परिवहन व्यय

(ग) विज्ञापन पर व्यय (घ) मजदूरी पर व्यय

iii. एकाधिकारिक प्रतियोगिता में:-

(क) विभेदीकृत वस्तुएं बेचने वाली कुछ फर्में होती हैं।

(ख) समांग वस्तुएं बेचने वाली अनेक फर्में होती हैं।

(ग) समांग वस्तुएं बेचने वाली कुछ फर्में होती हैं।

(घ) विभेदीकृत उत्पाद बेचने वाली अनेक फर्में होती हैं।

अभ्यास प्रश्न-2

1- **लघु उत्तरीय प्रश्न**

i. चैम्बरलिन की 'साहसिक मान्यताएं क्या हैं?

ii. एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म में दीर्घकालीन संतुलन की शर्तें क्या हैं?

2- बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्रो0 चैम्बरलिन के 'वस्तु समूह' की संकल्पना सत्य होगी:-

(क) नहाने के साबुन की अनेक किस्मों में।

(ख) नहाने तथा कपड़ा धोने के साबुन में।

(ग) साबुन तथा टूथपेस्ट में।

(घ) इनमें से कोई नहीं।

2. एकाधिकारिक प्रतियोगिता में 'अतिरिक्त क्षमता' का कारण है:-

(क) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत से ऊँचे स्तर पर उत्पादन करना।

(ख) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत में से नीचे के स्तर पर उत्पादन करना।

(ग) फर्मों द्वारा न्यूनतम औसत लागत के बराबर स्तर पर उत्पादन करना।

(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

17.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एकाधिकार तथा प्रतियोगिता दोनों का समिश्रण होता है जिसमें बड़ी संख्या में फर्मे या विक्रेता विभेदीकृत वस्तुओं, जो कि एक दूसरे की निकट स्थानापन्न होती हैं, का उत्पादन या विक्रय करते हैं। इस बाजार स्थिति में फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु का मांग वक्र की ढाल बाये से दायें ओर नीचे की ओर होती है। वस्तु

विभेद के कारण फर्मों विज्ञापन तथा अन्य विक्री प्रोत्साहन उपायों के माध्यम से अपनी बिक्री बढ़ाने का प्रयास करती है।

अल्पकाल में एकाधिकारिक प्रतियोगी बाजार में, फर्में सामान्य लाभ, असामान्य लाभ या हानि की स्थिति में हो सकती हैं, जो कि फर्म के वस्तु की मांग वक्र तथा औसत लागत वक्र की स्थिति पर निर्भर करता है। फर्म का दीर्घकालीन संतुलन तथा समूह संतुलन वहां होता है जहां सीमान्त आय (MR) सीमान्त लागत (MC) के तथा औसत आय (AC) दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) के बराबर हो।दीर्घकाल में एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्में पूर्ण प्रतियोगिता की तरह अनुकूलतम आकार की नहीं होती हैं तथा फर्म की उत्पादन क्षमता अप्रयुक्त रहती है अर्थात् अधिक्य क्षमता पायी जाती है।

17.6 शब्दावली

वस्तु विभेद - वस्तु विभेद का अर्थ है, एक उद्योग या वस्तु समूह की विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में अन्तर। यह अन्तर उनके आकार, पैकेजिंग, विक्रय के बाद सेवा, डिजाइन, विक्रय-कला इत्यादि के आधार पर हो सकता है। वस्तु विभेद का मुख्य उद्देश्य एक फर्म का समूह की अन्य फर्मों के उत्पादों से अपने उत्पाद को भिन्न दिखाकर अपने उत्पाद के प्रति ग्राहक की प्राथमिकता को मजबूत करना ळें।

विक्रय लागतें -वे लागतें जो कि फर्म अपने उत्पाद के मांग रेखा की ढाल में या स्थिति में परिवर्तन करने के लिए करती है। विक्रय लागतों में विज्ञापन की लागत, बिक्री संवर्द्धन योजनाओं पर व्यय, बिक्री में लगे कर्मचारियों के वेतन तथा कमीशन, बिक्री के बाद की सेवा की लागत और प्रदर्शन के लिए फुटकर विक्रेताओं को दिये गये भत्ते शामिल है।

उद्योग -समांग वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों के समूह को 'उद्योग' कहा जाता है।

वस्तु समूह -ऐसी फर्मों का समूह जो निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

गैर-कीमत प्रतियोगिता - एक एकाधिकारी प्रतियोगिता की फर्म के वे प्रयास जैसे-वस्तु विभेद तथा विक्रय व्यय, जिनमें वह अपनी वस्तु की बिक्री और लाभों की कीमत में कटौती किए बिना बढ़ाती है।

आधिक्य क्षमता - एकाधिकारिक प्रतियोगिता में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र ;स्।ब्द्ध में गिरते हुए भाग पर आय करती है, अर्थात उस अनुकूलतम मात्रा का उत्पादन नहीं करती है जिस पर स्।ब् न्यूनतम हो। इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म का वास्तविक दीर्घकालीन उत्पादन तथा सामाजिक दृष्टि से अनुमूलतम उत्पादन का अन्तर उसकी 'आधिक्य क्षमता' की माप ळें।

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

बहुविकल्पीय प्रश्न

i. ख

ii. ग

iii. घ

अभ्यास प्रश्न-2

बहुविकल्पीय प्रश्न

i. क

ii. क

17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सेठी, टी. टी. (मक 2008) व्यष्टि अर्थशास्त्र लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा
- झिंगन, एम.एल. (2007) ‘उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- आहूजा, एस.एल. (2006)उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त व्यष्टिपरक विश्लेषण’’,चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

17.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Koutsoyinuis.A. (1979) Modern Microeconomics, (2nd Edition), Macmillian Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010) Principles of Micro Economics , S&Chand Publishing House .
- Peterson, L. and Jain ((2006)) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
- Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-EconomicsTheory, Himalaya Publishing House.

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1-एकाधिकारी प्रतियोगिता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इसके अंतर्गत एक फर्म के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन संतुलन की व्याख्या कीजिए।

2-एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत समूह संतुलन की आलोचनात्मक व्याख्या की गयी है।

इकाई-18 अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण का सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 अल्पाधिकार: अर्थ एवं विशेषताएँ
18.4 कूर्नों का दूयाधिकार मॉडल
18.5 चैम्बरलिन का मॉडल
18.6 विकुंचित मांग वक्र मॉडल
18.7 कार्टेल
18.7.1 संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण मॉडल
18.7.2 कार्टेल तथा बाजार का बंटवारा मॉडल
18.7.2.1 गैर कीमत प्रतियोगिता समझौता
18.7.2.2 कोटा सिस्टम
18.8 कीमत नेतृत्व मॉडल
18.8.1 निम्न लागत कीमत नेतृत्व मॉडल
18.8.2 प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व मॉडल
18.8.3 बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व मॉडल
18.9 शब्दावली
18.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
18.12 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
18.13 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

फर्म के सिद्धान्त से सम्बन्धित यह 18वीं इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद अब आप यह बता सकते हैं कि तीन बाजार स्थितियों, पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता में क्या अन्तर है तथा इनमें कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण कैसे होता है?

वास्तविक जगत में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के साथ-साथ एकाधिकारिक प्रतियोगिता की स्थिति भी कम ही होती है। वास्तविक जगत में अपूर्ण प्रतियोगिता का एक महत्वपूर्ण रूप अल्पाधिकार, जिसमें 'थोड़े से' उत्पादकों या विक्रेताओं में प्रतियोगिता होती है, की स्थिति पायी जाती है।

प्रस्तुत इकाई में अल्पाधिकार की विशेषताओं तथा विभिन्न प्रकार के अल्पाधिकारी बाजारों में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया

18.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- अल्पाधिकार तथा उसकी विशेषताओं को बता सकेंगे।
- अल्पाधिकार के विभिन्न मॉडलों के बारे में जान सकेंगे।
- वास्तविक जगत में फर्मों तथा उत्पादकों के व्यवहारों को समझ सकेंगे।

18.3 अल्पाधिकार का अर्थ एवं विशेषताएँ

अल्पाधिकार वह बाजार स्थिति होती है जिसमें एक वस्तु के थोड़े से उत्पादक या विक्रेता होते हैं। इसे कुछ के बीच प्रतियोगिता कहा जाता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि बाजार में थोड़ी सी फर्में या उत्पादक या विक्रेता होने पर एक की कार्यवाही दूसरे को प्रभावित कर सकती है। अल्पाधिकार का सरलतम रूप द्वयाधिकार है जिसमें एक पदार्थ के केवल दो उत्पादक या विक्रेता होते हैं।

एक अल्पाधिकारी उद्योग समरूप या निकट स्थानापन्न विभेदीकृत वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है। यदि कुछ फर्मो या विक्रेताओं के पदार्थ समांग या पूर्ण स्थानापन्न हों तो उसे शुद्ध अल्पाधिकार तथा यदि वस्तुएं विभेदीकृत तथा निकट स्थानापन्न हों तो इसे अपूर्ण अल्पाधिकार या विभेदीकृत अल्पाधिकार कहते हैं। लोहा, पेट्रोल, रसोई गैस, सीमेंट, ताँबा, जस्ता आदि उद्योगों में

शुद्ध अल्पाधिकार तथा साबुन, शैम्पू, कार, टी0वी0 इत्यादि उद्योगों में अपूर्ण अल्पाधिकार बाजार की स्थितियाँ पायी जाती हैं।

18.3.1 अल्पाधिकार की विशेषताएँ

फर्मों या विक्रेताओं की कम संख्या होने के अलावा अल्पाधिकारी बाजार की कुछ विशिष्ट विशेषताएँ है जो कि अन्य बाजार स्थितियों में नहीं पायी जाती हैं।

1- परस्पर निभरता

2- विज्ञापन तथा विक्रय लागतें

3- मांग-वक्र की अनिश्चितता

4- कीमत तथा उत्पादन की अनिर्धार्यता

अतः अल्पाधिकारी समस्या का कोई एक निश्चित समाधान नहीं है, बल्कि बहुत से सम्भावित समाधान हैं और प्रत्येक समाधान भिन्न मान्यताओं पर आधारित है।

18.3.3 अल्पाधिकार के मॉडल

अल्पाधिकारी बाजारों में स्वतंत्र रूप में कीमत निर्धारण करना काफी कठित है। अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित आधारों पर अनेक मॉडलों का विकास किया है रू

फर्मों के बीच समझौते या गठबन्धन के आधार पर, अल्पाधिकारी को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः

(क) गैर-कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल

(ख) कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल

गैर कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल के अंतर्गत निम्नलिखित मॉडलों के बारे में आप जान सकेंगे:

i. क्रूनों का दूयाधिकार मॉडल

ii. चैम्बरलिन का मॉडल

iii. पॉल स्वीजी का विकुंचित मांग वक्र मॉडल

कपट संधि अल्पाधिकार मॉडल के अंतर्गत अल्पाधिकारी फर्में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता को दूर करने के लिए आपस में कपट संधि करती हैं। जब एक उद्योग की फर्मों के बीच औपचारिक समझौता होता है, जिसमें वे आपसी विचार-विमर्श से कीमत या उत्पादन के सम्बन्ध में कुछ सामान्य नियम निर्धारित कर लेते हैं, तो इसे ‘कार्टेल’ कहा जाता है। आप दो प्रकार के कार्टेल के अंतर्गत अल्पाधिकार फर्मो के कीमत तथा उत्पादन व्यवहार को जान सकेंगेः

i. संयुक्त लाभ और पूरे उद्योग के लाभ में अधिकतम करने वाला कार्टेल, तथा

ii. बाजार का बंटवारा करने वाला कार्टेल।

अनौपचारिक समझौते के अंतर्गत बिना आमने-सामने विचार-विमर्श किए फर्में आपस में एक समझौता कर लेती हैं तथा कीमत, उत्पादन आदि के संबंध में एक समान नीति का पालन करती हैं। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है 'कीमत नेतृत्व'। कीमत नेतृत्व के तीन प्रमुख प्रकार हैं: (प) निम्न लागत कीमत नेतृत्व

i. प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व

ii. बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व

अभ्यास प्रश्न-1

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

i. अल्पाधिकार से आप क्या समझते हैं?
ii. अल्पाधिकार की मुख्य विशेषताएं बताइए।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

i. अल्पाधिकार के सम्बन्ध में निम्नलिखित में से क्या सही नहीं है?
   (क) मांग वक्र की अनिश्चितता
   (ख) कीमत प्रतियोगिता
   (ग) कीमत दृढ़ता
   (घ) परस्पर निर्भरता
ii. अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत में -
   (क) स्थिर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
   (ख) अस्थिर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
   (ग) निम्न स्तर पर रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
   (घ) इनमें से कोई नहीं।

3. सत्य व असत्य बताइए

निम्नलिखित कथनों में सत्य व असत्य चुनिए:

i. अल्पाधिकार में फर्मों की संख्या बहुत अधिक होती है।
ii. अल्पाधिकारी का मांग वक्र अनिश्चित होता है।
iii. विकुंचित मांग वक्र मॉडल, कपट संधि समझौता के अंतर्गत आएगा।
iv. कीमत नेतृत्व फर्मों के बीच अनौपचारिक समझौते का एक रूप है।
v. फर्मों के बीच परस्पर निर्भरता अल्पाधिकार की एक प्रमुख विशेषता है।

18.4 कूर्नों का द्वयाधिकार मॉडल

द्वयाधिकारी सिद्धान्त अल्पाधिकारी सिद्धान्त का सरलतम एवं सीमित पक्ष है जिसमें सिर्फ दो विक्रेता या फर्में होती हैं, जो कि पूर्ण रूप से स्वतंत्र होती है और उनमें किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं होता। अल्पाधिकार के प्रतिष्ठित माडलों में यह मान लिया गया है कि अल्पाधिकारी फर्में अपनी उत्पादन तथा कीमत नीति निर्धारित करते समय अपने प्रतिद्वंदी की प्रतिक्रियाओं की पूर्ण रूप से उपेक्षा कर देती हैं।

अल्पाधिकार का प्रथम माडल फ्रेंच अर्थशास्त्री कूर्नों ने 1838 में दिया था। उनका माडल समान पदार्थों वाले दूयाधिकारी की व्याख्या करता है। कूर्नों का माडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित थाः

1. दो स्वतंत्र फर्में या विक्रेता हैं जो एक समांग वस्तु, खनिज जल, का उत्पादन तथा एक ही बाजार में विक्रय करते हैं।
2. उत्पादन की लागत शून्य है अर्थात सीमान्त लागत (MC) भी शून्य है।
3. दोनों फर्में या विक्रेता एक सरल रेखा प्रकार के मांग वक्र का सामना करते हैं, जिसका ढाल ऋणात्मक है।
4. प्रत्येक फर्म यह मानते हुए कि उसकी प्रतिद्वंदी अपना उत्पादन परिवर्तन नहीं करेगा, अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए अपने उत्पादन स्तर का निर्धारण करती हैं। दूसरे शब्दों में उत्पादक अपनी उत्पादन मात्रा का निर्धारण करने में, अपने क्रियाओं या परिवर्तनों के प्रति अपने प्रतिद्वंदी की प्रतिक्रियाओं पर कोई ध्यान नहीं देता है।

माना दो फर्में A और B हैं जो मांग वक्र DD_1 का सामना कर रही हैं। माना पहले फर्म A ने उत्पादन प्रारम्भ किया वह O_1 मात्रा का उत्पादन करेगी, OP कीमत पर, जहां उसका लाभ अधिकतम हो, क्योंकि इस बिन्दु पर, सीमान्त लागत (MC) = सीमान्त आय (MR)=0 है। उसका लाभ OAMP है। उत्पादन कीमत में इस स्तर पर मांग की लोच (e) इकाई के बराबर है और कुल आय (TR) अधिकतम है। चूँकि लागत शून्य है इसलिए अधिकतम आय का तात्पर्य है अधिकतम लाभ।

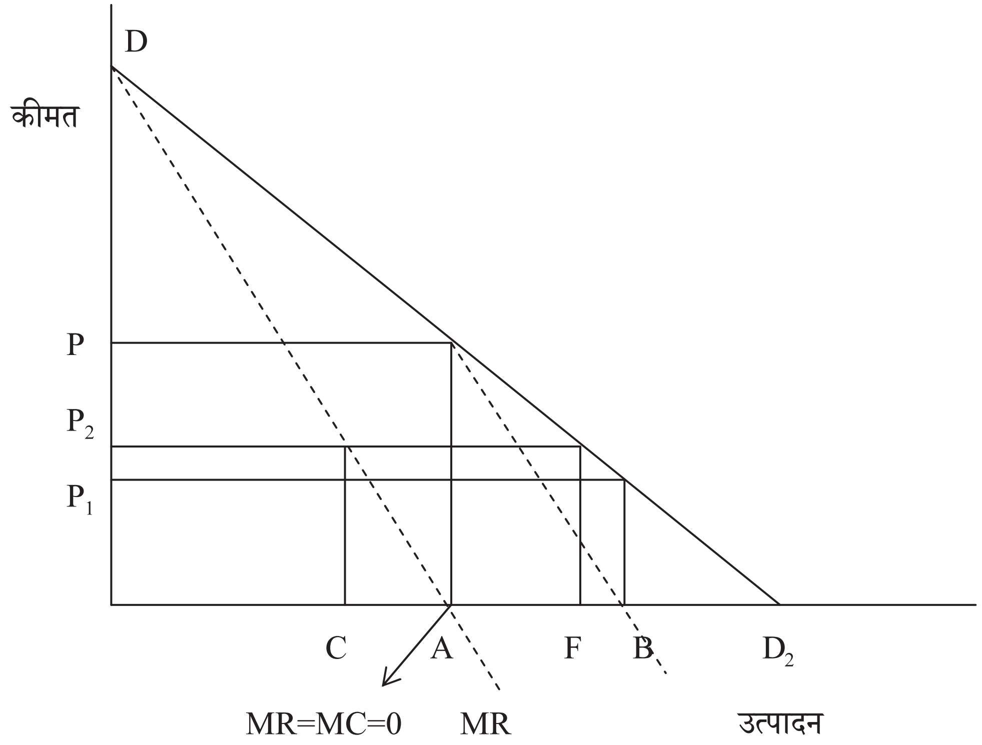

चित्र 18.1

अब फर्म B यह मानकर कि फर्म A, OA मात्रा (1/2OD1) का उत्पादन करती रहेगी, अपने उत्पादन का निर्धारण करेगी। फर्म B के लिए उपलब्ध बाजार AD_1है, अतः वह MD_1 को अपना मांग वक्र मानकर अपने लाभ को अधिकतम करने वाले उत्पादन स्तर AB का उत्पादन करेगी, जबकि कीमत P_1 है। फर्म B का MD_1 मांग वक्र होने पर MB उसका MR वक्र होगा जिसके B बिन्दु पर वह सीमान्त लागत के बराबर है। संतुलन में वह वस्तु की AB मात्रा P_1 कीमत पर बेचकर RABN आय प्राप्त करेगा, जो कि उसके अधिकतम लाभ को प्रदर्शित करता है। फर्म B फर्म A द्वारा छूटे हुए बाजार के हिस्से (AD_1) का आधा (AB=1/2AD1) अर्थात कुल बाजार का एक चौथाई (1/4=1/2*1/2) का उत्पादन करेगी।

फर्म B के प्रवेश से कीमत गिरकर P_1 होने से फर्म A के लाभ में कमी आ जाती है जो कि गिरकर मात्र $OARP_1$रह जाता है। फर्मA यह मानते हुए कि फर्म B अब अपने उत्पादन स्तर में परिवर्तन नहीं करेगी क्योंकि वह अधिकतम लाभ अर्जित कर रही है, अपने लाभ को अधिकतम

करने के लिए उपलब्ध बाजार, $\left(1-\frac{1}{4}=\frac{3}{4}\right)$ का आधा $\left(\frac{3}{4}.\frac{1}{2}=\frac{3}{8}\right)$ उत्पादन करेगी जो कि पहले से कम है A पुनः फर्म B यह मानकर कि फर्म A अपने उत्पादन स्तर में परिवर्तन नहीं करेगी, वह अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उपलब्ध बाजार $\left(1-\frac{3}{8}=\frac{5}{8}\right)$ का आधा $\left(\frac{5}{8}.\frac{1}{2}=\frac{5}{16}\right)$ उत्पादन करेगी। जो कि पहले की अपेक्षा अधिक है $\left(\frac{5}{16}=\frac{1}{4}+\frac{1}{16}\right)$ ।

क्रिया और प्रतिक्रिया की यह प्रक्रिया चलती रहेगी तथा फर्म A उत्पादन में कमी तथा फर्म B के उत्पादन या बाजार हिस्से में वृद्धि होती रहेगी। यह प्रक्रिया तब रुकेगी जबकि दोनों ही फर्मों का उत्पादन तथा बाजार हिस्सा बराबर हो जाएगा, जो कि कुल उत्पादन का एक तिहाई (1@3OD1) होगा। इस प्रकार दोनों फर्में मिलकर कुल बाजार का दो तिहाई (2/3) उत्पादन करेंगी। यह स्थायी संतुलन की स्थिति होगी।

यदि दोनों ही फर्में पारस्परिक निर्भरता को पहचान लें और मिलकर एक गुट की तरह कार्य करें तो दोनों का संयुक्त उत्पादन, एकाधिकारी उत्पादन OA के बराबर तथा कीमत OP के बराबर होगा। दोनों OA का आधा-आधा $\left(\frac{1}{2}OA\right)$ हिस्सा बांट लेंगे अर्थात प्रत्येक फर्म कुल बाजार का एक चौथाई $\left(\frac{1}{4}OD_1\right)$ उत्पादन करेगी और उसे लाभ अधिकतम करने वाली कीमत OP पर बेचेंगी। स्पष्ट है कि कूर्नो के द्वयाधिकारी समाधान में उत्पादन, अधिकतम सम्भव उत्पादन (अर्थात पूर्ण प्रतियोगी उत्पादन, OD_1) का दो तिहाई $\left(\frac{2}{3}OD_1\right)$ और कीमत, अधिकतम लाभ कीमत (अर्थात एकाधिकारी कीमत, OP) की दो तिहाई $\left(OP_2=\frac{2}{3}OP\right)$ होगी।

यदि फर्मों या विक्रेताओं की संख्या दो से अधिक हो तो भी कूर्नों माडल को लागू किया जा सकता है। यदि उद्योग में फर्मों की संख्या n हो तो कूर्नो समाधान में प्रत्येक फर्म 1/n+1½ उत्पादन करेगी तथा उद्योग का कुल उत्पादन n / (n+1) होगा।

आलोचना

1. कूर्नो माडल की अधिकांश मान्यताएं अवास्तविक हैं। प्रत्येक विक्रेता या फर्म यह मान लेता है कि उसकी प्रतिद्वंदी अपनी उत्पादन मात्रा में परिवर्तन नहीं करेगी जबकि बार-बार वह प्रतिक्रिया स्वरूप उसे परिवर्तित होते देखती है। वास्तव में कूर्नों की यह मान्यता तर्कसंगत विवेकशील नहीं है।

2. कूर्नो के उत्पादन लागत शून्य मान लेने की मान्यता भी अवास्तविक है। फिर भी यदि उत्पादन लागत को शून्य न माना जाए तो भी कूर्नो समाधान अप्रभावित रहेगा।
3. यह एक बंद माडल है जो कि फर्मों के प्रवेश की इजाजत नहीं देता।
4. अंतिम संतुलन की स्थिति आने में कितना समय लगेगा, इस बारे में भी मॉडल कुछ नहीं कहता।

18.5 चैम्बरलिन मॉडल

चैम्बरलिन ने अपने द्वयाधिकार माडल में दोनों विक्रेताओं की परस्पर निर्भरता को स्वीकार करते हुए स्थिर संतुलन हल प्रस्तुत किया। चैम्बरलिन, कूर्नो तथा अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा दिए गए माडल में फर्मों की परस्पर निर्भरता का ध्यान न रखने की आलोचना करते हैं। क्योंकि यह फर्मों का विवेकशील व्यवहार नहीं होगा। वास्तव में फर्में पारस्परिक निर्भरता को पहचान कर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती हैं और ऐसी स्थिति में प्रत्येक फर्म एकाधिकारी कीमत वसूल करती है तथा एकाधिकारी संतुलन उत्पादन को बराबर-बराबर बांट लेती है और जब सभी फर्में में संतुलन होंगी तो उद्योग का लाभ भी अधिकतम होगा और संतुलन स्थिर होगा।चित्र 18.2 में कूर्नो माडल की तरह मांग वक्र DD एक सीधी रेखा है जिसका ढाल ऋणात्मक है। सैद्धान्तिक सरलता के लिए उत्पादन लागत शून्य मान ली गयी है।

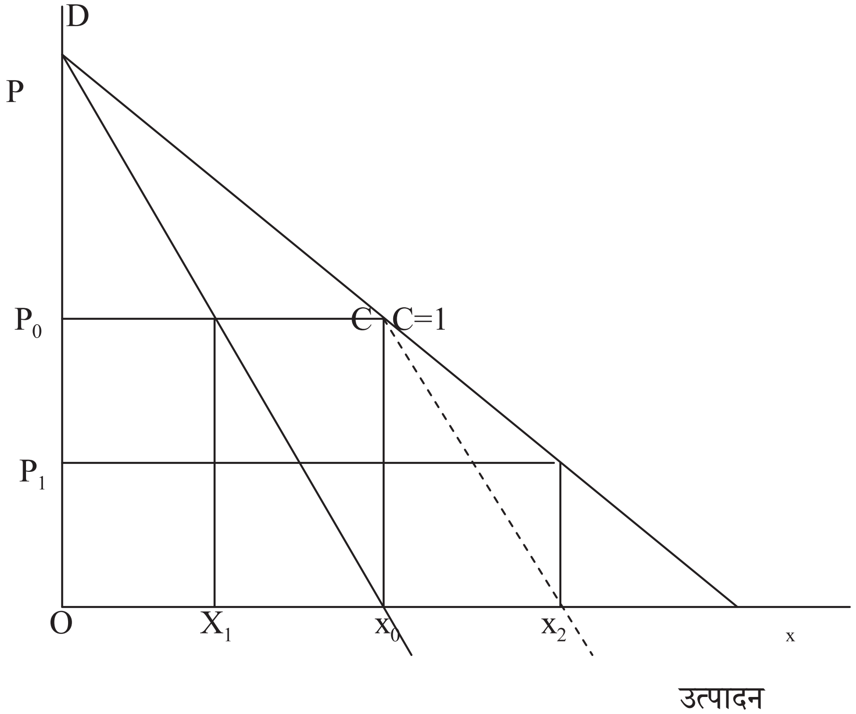

चित्र 18.2

यदि फर्म A पहले उत्पादन शुरु करती है तो वह उत्पादन को वहां निश्चित करेगी जहां उसका लाभ अधिकतम होगा अर्थात वह OX_0 मात्रा में उत्पादन करेगी। (क्योंकि X_0 पर फर्म A का MR = MC) तथा उसे एकाधिकारी कीमत OP_0 पर बेचेगी। फर्म B यह मानकर कि फर्म अपनी उत्पादन मात्रा में परिवर्तन नहीं करेगी, CD को अपना मांग वक्र मानकर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करेगी तथा X_0D का आधा अर्थात $X_0 X_2$ मात्रा में उत्पादन करेगी (क्योंकि X_2 पर फर्म B का MR = MC)। परिणामस्वरूप उद्योग का कुल उत्पाद OX_2 हो जाएगा तथा कीमत गिरकर OP हो जाएगी।

यहां कूर्नो के विपरीत चैम्बरलिन यह मानते हैं कि फर्म A पारस्परिक निर्भरता को ध्यान में रखते हुए प्रतिक्रिया करती है फर्म Aयह महसूस करती है कि वह जो भी निर्णय लेगी, फर्म B उस पर प्रतिक्रिया करेगी। इसलिए फर्म A अपने उत्पादन को कम करके OX_1 कर देती है। जो कि OX_0 का आधा है और B के उत्पादन X_0 X_2 के बराबर है। फर्म B भी परस्पर निर्भरता को स्वीकार करते हुए यह महसूस करती है कि दोनों ही फर्मों के लिए यह बेहतर होगा कि एकाधिकारी उत्पादन का आधा-आधा उत्पादन करें और उसे एकाधिकारी कीमत पर बेंचे। इस प्रकार वह X_0X_1 $(=X_0X_2)$ उत्पादन करेगा। इस प्रकार परस्पर निर्भरता को पहचानते हुए दोनों फर्में एकाधिकारी हल पर पहुंचती हैं जो कि स्थिर है और इसी कारण चैम्बरलिन माडल अन्य प्रतिष्ठित माडलों से बेहतर है।

चैम्बरलिन के अनुसार यदि फर्में अपने उत्पादन की अपेक्षा अपनी कीमतों का समायोजन करें तो भी यही परिणाम प्राप्त होगा।चैम्बरलिन माडल की गैर कपट संधि के तहत फर्मो के संयुक्त लाभ अधिकतम करने की स्थिति तभी सम्भव है जब फर्मों को मांग तथा लागत वक्रों के बारे में पूरी जानकारी हो। परन्तु व्यवहार में यह पूरी तरह सम्भव नहीं है। यह माडल एक बंद माडल है जो कि फर्मों के प्रवेश की उपेक्षा करता है।

18.6 विकुंचित मांग वक्र का सिद्धान्त

सर्वप्रथम हॉल एवं हिच ने अल्पाधिकारी बाजार में कीमत दृढ़ता की व्याख्या के लिए विकुंचित मांग वक्र का प्रयोग किया। उसी वर्ष (1939) अमेरिकी अर्थशास्त्री पॉल स्वीजी ने विकुंचित वक्र का प्रयोग अल्पाधिकारी बाजार में संतुलन के निर्धारण के लिए एक औजार के रूप में किया।

स्वीजी द्वारा प्रस्तुत विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त अल्पाधिकार में कीमत तथा उत्पादन के निर्धारण की व्याख्या नहीं करता है बल्कि सिर्फ यह बताता है कि जब एक बार अल्पाधिकार में कीमत निर्धारित हो जाती है तो उसके स्थिर बने रहने की प्रवृत्त क्यों होती है। क्योंकि प्रत्येक अल्पाधिकारी फर्म यह सोचती है कि यदि वह वर्तमान कीमत स्तर को कम करेगी तो प्रतिद्वंदी फर्में भी कीमत को कम करेंगी और इस प्रकार बाजार मांग बढ़ने के बावजूद फर्मों का हिस्सा अपरिवर्तित रहेगा परन्तु यदि फर्म कीमत में वृद्धि करेगी तो प्रतिद्वंदी फर्में ऐसा नहीं करेंगी और फर्म के बाजार हिस्से में कमी आ जाएगी। प्रतियोगी फर्मो के इस प्रकार की प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति के कारण ही अल्पाधिकारी

बाजार में मांग वक्र वर्तमान कीमत के स्तर पर विकुंचित होता है तथा विकुंचित बिन्दु अर्थात वर्तमान कीमत स्तर के ऊपर का भाग अपेक्षाकृत लोचदार तथा नीचे का भाग अपेक्षाकृत बेलोचदार होता है।

चित्र 18.3 में अल्पाधिकारी का मांग वक्र dD बिन्दु E पर विकुंचित है, जहां वर्तमान कीमत P है जो कि स्थिर या दृढ़ रहेगी क्योंकि कीमत में ऊपर या नीचे की ओर परिवर्तन से कोई भी अल्पाधिकारी लाभान्वित नहीं होगा। विकुंचित मांग वक्र के अनुरूप सीमान्त आय वक्र (MR) असतत् होगा। चित्र में MR के दो भाग हैं, क। जो कि मांग वक्र के ऊपरी भाग से संबंधित है तथा बिन्दु B से नीचे का भाग, जो कि मांग वक्र के नीचे के भाग से संबंधित है। MR की असतता या अन्तराल की लम्बाई मांग वक्र के दो भागों, de कम तथा eD, की लोचों पर निर्भर करेगी। इन दोनों मांग वक्रों के लोचों का अन्तर जितना ही अधिक होगा, अन्तराल AB की लम्बाई उतनी ही अधिक होगी।

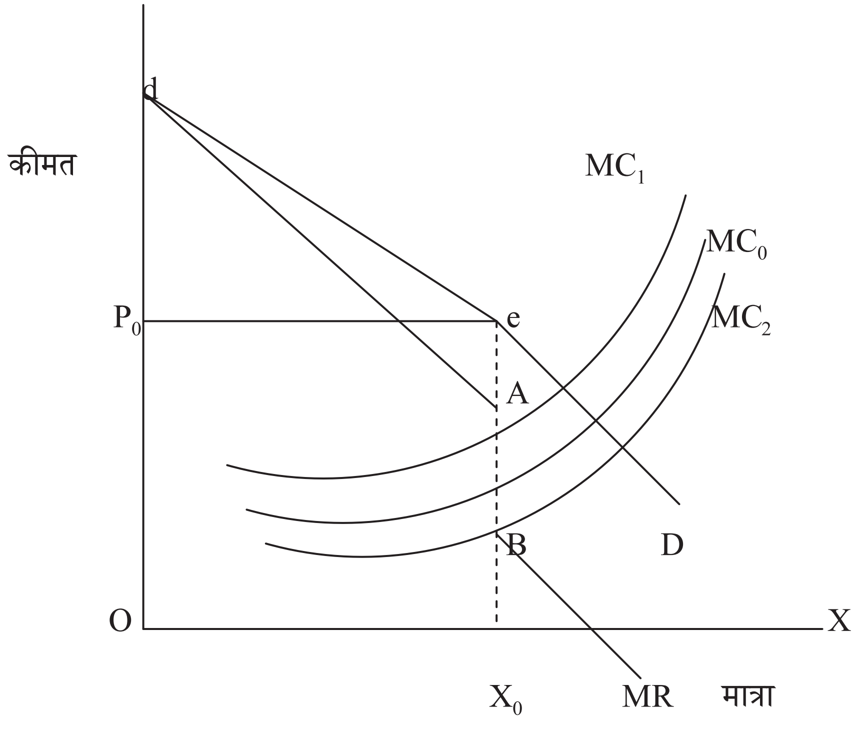

चित्र 18.3

अल्पाधिकारी का संतुलन विकुंचित बिन्दु e पर होगा जबकि कीमत P_0 तथा उत्पादन X_0 है, क्योंकि e बिन्दु के बायें किसी भी बिन्दु पर MC, MR से कम होगी, तथा विकुंचित बिन्दु e से दायें किसी भी बिन्दु पर MC, MR से अधिक होगी। इस प्रकार जब MC वक्र, MR के असतत् भाग AB से गुजरता है तो अल्पाधिकारी फर्म को वर्तमान कीमत, P पर अधिकतम लाभ होगा। AB भाग के बीच जब तक MC वक्र रहेगा तब तक बिना कीमत P तथा उत्पादन X_0 को प्रभावित किए लागत परिवर्तित हो सकती है। इस प्रकार, एक सीमा तक (AB के बीच) लागत में परिवर्तन के बावजूद कीमत व उत्पादन में परिवर्तन नहीं होगा। इसी प्रकार एक सीमा के अन्दर मांग में परिवर्तन होने पर भी कीमत स्थिर रहती है। यद्यपि उत्पादन मात्रा परिवर्तित हो जाती है।

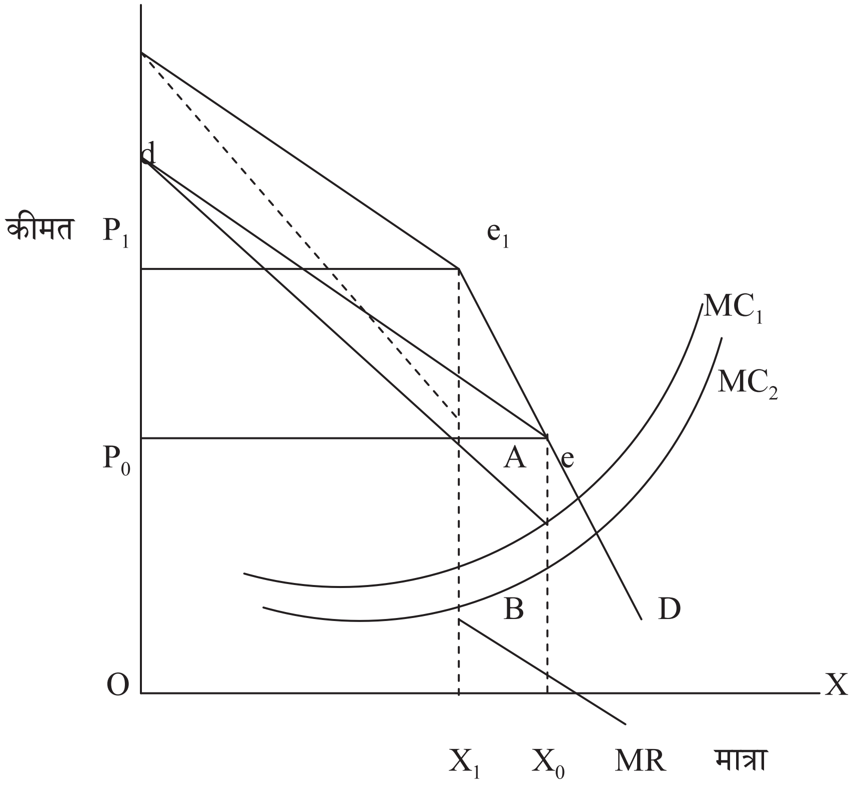

चित्र 18.4

जब अल्पाधिकारी उद्योग में लागत में वृद्धि हो जाती है तो कीमत स्थिर या दृढ़ नहीं रहेगी। जब लागत बढ़ने से सभी फर्में प्रभावित होती है तो फर्म यह सोचकर कीमत में वृद्धि करेगी कि अन्य फर्में भी उसका अनुसरण करेंगी। इस प्रकार विकुंचित बिन्दु ऊपर बायें की ओर विवर्तित हो जाएगा और नया संतुलन ऊँची कीमत P_1 तथा कम उत्पादन x_1 पर होगा (चित्र 18.4).

सामान्यतः अल्पाधिकार का विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त कम होती मांग या गिरती लागतों की दशाओं में कीमत स्थिरता की व्याख्या करता है। जबकि लागतों के बढ़ने या मांग के बढ़ने पर कीमतों में वृद्धि की सम्भावना होती है।

आलोचना:- एक अल्पाधिकारी बाजार में फर्मों के व्यवहार का एक संतोषजनक व्याख्या यह सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। परन्तु यह माडल कीमत या उत्पादन किस प्रकार निर्धारित होगा, इसके बारे में कुछ नहीं बताता। इस बात की व्याख्या नहीं करता कि कीमत के किस स्तर पर लाभ अधिकतम होगा। यह सिद्धान्त केवल यह बताता है कि कीमत एक बार निर्धारित हो जाने के बाद दृढ़ या स्थिर क्यों रहती है। यदि दो विकुंचित मांग वक्र हैं, जिसमें दो अलग-अलग कीमत स्तरों P_1 तथा P_2 पर विकुंचन है त यह सिद्धान्त यह व्याख्या नहीं करता कि इसमें से कौन एक कीमत निर्धारित होगी, P_1 या P_2।

18.7 कार्टेल

अल्पाधिकारी बाजारों में स्वतंत्र रूप से कीमत निर्धारण काफी कठिन है। परस्पर निर्भरता के कारण उत्पन्न अनिश्चितता को दूर करने का एक तरीका फर्मों द्वारा आपस में किसी न किसी प्रकार का पारस्परिक समझौता होता है। अल्पाधिकारियों के मध्य आपसी समझौता या कपट संधि दो प्रकार की होती है-कार्टेल तथा कीमत नेतृत्व। दोनों ही स्थितियों में प्रायः फर्में आपस में गुप्त समझौते करती हैं क्योंकि अधिकांश देशों में खुले में फर्मों द्वारा समझौता करना या कीमत तथा उत्पाद संबंधी सामान्य नियम निर्धारित करना गैर कानूनी है।

एक उद्योग समूह में स्वतंत्र फर्मों के संगठन को कार्टेल कहते हैं।यहां हम दो प्रकार के कार्टेल की विवेचना करेंगे- संयुक्त लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से बनाए गए कार्टेल तथा बाजार के बंटवारे के उद्देश्य से बनाए गए कार्टेल।

18.7.1 संयुक्त लाभ अधिकतमकरण कार्टेल

कपट संधि का चरम रूप है 'पूर्ण कार्टेल'। पूर्ण कार्टेल समांग वस्तुएं बनाने वाली फर्मों के बीच एक औपचारिक कपट संधि है जिसमें सदस्य फर्में अपने कीमत तथा उत्पादन निर्धारण संबंधी समस्त अधिकार एक ''केन्द्रीय प्रशासनिक एजेन्सी'' को सौंप देती हैं जो उनको संयुक्त अधिकतम लाभ प्रदान कर सके। एजेन्सी अपने सदस्यों के लिए उत्पादन, कोटा ली जाने वाली कीमत और उद्योग के लाभों का वितरण निर्धारित करती है और इस प्रकार यह एक एकाधिकारी की तरह कार्य करता है।

हम यह मान लेते हैं कि केन्द्रीय कार्टेल एजेन्सी का मुख्य उद्देश्य उद्योग के लाभ को अधिकतम करना होता है तथा उसको वस्तु के बाजार मांग वक्र और उसके अनुरूप सीमान्त आय

(MR) वक्र की पूरी जानकारी रहती है। फर्मों के लागत वक्र भिन्न होते हैं, परन्तु केन्द्रीय एजेन्सी को प्रत्येक फर्म के लागत वक्र की जानकारी होती है। कार्टेल या उद्योग के सीमान्त लागत वक्र (MC) को सदस्य फर्मों के सीमांत लागत वक्रों के क्षैतिज योग से प्राप्त किया जाता है।

चूँकि केन्द्रीय एजेन्सी, अनेक प्लान्टों पर कार्य करने वाले एकाधिकारी की तरह कार्य करती है इसलिए उद्योग का संयुक्त लाभ वहां अधिकतम होगा जहां उद्योग के MR तथा MC वक्र एक दूसरे को काटते हैं।

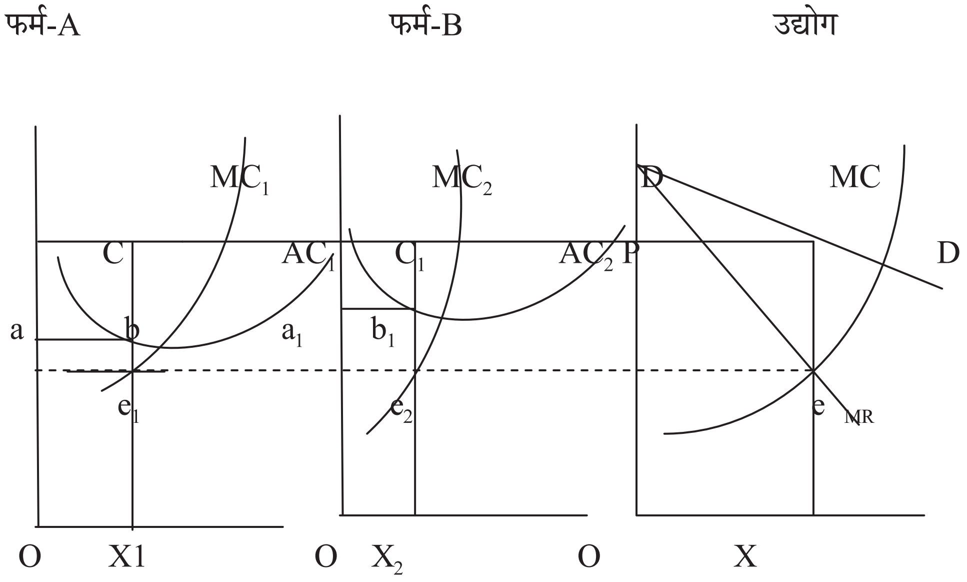

चित्र 18.5

विश्लेषण की सरलता के लिए, मान लिया दो फर्में A तथा B मिलकर कार्टेल बनाती हैं। दोनों फर्मों के लागत चित्र 18.5 में दिए हुए हैं। उद्योग का MC वक्र MC_1 तथा MC_2 वक्र के क्षैतिज योग से प्राप्त किया गया है। MC के अनुसार उत्पादन करने से प्रत्येक फर्म की उत्पादन मात्रा की कुल लागत न्यूनतम होगी। उद्योग की कुल उत्पादन मात्रा को फर्मों के बीच इस प्रकार विभाजित किया जाएगा कि सबकी MC समान हो जाए। बाजार मांग वक्र DD के दिए हुए होने पर उद्योग का संयुक्त लाभ बिन्दु e पर अधिकतम होगा जहां उद्योग का MC,MR के बराबर है। कुल उत्पादन X तथा कीमत P होगी। अब केन्द्रीय एजेन्सी उत्पादन X को फर्म A तथा B में प्रत्येक फर्म के MC वक्र को उद्योग के MR वक्र से बराबर करके बांटती है। फर्मA का सीमान्त लागत वक्र MC_1, e_1 बिन्दु तथा फर्म B का MC_2, e_2 बिन्दु पर MR के बराबर है। इस प्रकार फर्म A, X_1 तथा फर्म B , X_2 मात्रा का उत्पादन करेगी।

यहां यह उल्लेखनीय है कि फर्म I कम लागत पर अधिक उत्पादन करती है। उद्योग का कुल लाभ दोनों फर्मों के लाभ का योग है $(abcP + a_1b_1c_1P)$ । इस लाभ का बंटवारा केन्द्रीय कार्टेल एजेन्सी निर्धारित करेगी।

मूल्यांकन :- सैद्धान्तिक रूप से पूर्ण कार्टेल के अंतर्गत एकाधिकारी समाधान प्राप्त करना आसान है परन्तु व्यवहार में इस प्रकार के कार्टेल का निर्माण तथा संयुक्त लाभ अधिकतम करना काफी कठिन है। व्यवहार में प्रायः समझौता सिर्फ कीमत संबंधी होता है। दीर्घकाल में कार्टेल के निर्माण तथा उसके कार्यकरण में अनेक कठिनाइयां आती हैं।

1-संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण द्वारा संतुलन सम्भव तभी है जब प्रत्येक फर्म समांग वस्तुओं का उत्पादन करें तथा उनके मांग व लागत वक्र समरूप हों, जबकि व्यवहार में यह कठिन है।

2-बाजार मांग वक्र का सही अनुमान काफी कठिन है क्योकि फर्म यह सोचती है कि उसके उत्पादन की मांग लोच अधिक है।

3-सदस्य फर्मों द्वारा अपनी लागत के बारे में कार्टेल को सही जानकारी न उपलब्ध कराने की स्थिति में MC वक्र का अनुमान भी गलत हो सकता है। उत्पादन व लाभ का अधिक भाग प्राप्त करने की चाह में फर्में अपने लागत को कम बता सकती हैं।

4-कार्टेल निर्माण की प्रक्रिया प्रायः धीमी होने से, हल अवधि में फमों की लागत संरचना बदल सकती है। फर्मो की संख्या अधिक होने पर भी कार्टेल निर्माण में कठिनाई आती है या यह जल्दी टूट सकता है।

5-कार्टेल द्वारा निर्धारित कीमत में दृढ़ता होती है, लंबे समय तक इसके स्थिर बने रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है, भले ही बाजार दशाओं में परिवर्तन हो रहा हो। क्योंकि कार्टेल में कीमत पर सहमति बनने में लम्बा समय लगता है तथा अनेक कठिनाइयां आती हैं। ऐसे में कीमत स्थिरता कार्टेल को छोड़ने का कारण बन सकती है।

6-कुछ फर्में अपने ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अतिरिक्त छूटों या कीमत में कमी का सहारा ले सकती हैं इससे समझौते की अंतिम स्थिति पर पहुंचने में कठिनाई होती है।

7-यदि कार्टेल में उच्च लागत वाली फर्म हो, जिसकी लागत उद्योग की MC से अधिक हो, तो संयुक्त लाभ के अधिकतम होने के लिए उसे बंद कर दिया जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में उच्च लागत वाली फर्में कार्टेल छोड़कर जा सकती हैं।

8-कार्टेल कीमत के अधिक होने पर सरकारी हस्तक्षेप का खतरा बढ़ जाता है। जिससे सदस्य उससे कम कीमत रख सकते हैं।

9-ऊँची कार्टेल कीमत, जो कि एकाधिकार लाभ उत्पन्न करती हैं, से उद्योग में नयी फर्मों के प्रवेश की सम्भावना बढ़ जाती है। नयी फर्मों के प्रवेश को रोकने के लिए फर्में कम कीमत रख सकती हैं।

10-कुछ फर्में सामान्य जन में अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के उद्देश्य से कार्टेल कीमत से कम कीमत वसूल सकती हैं।

18.7.2 बाजार बांट कार्टेल - बाजार के बंटवारे से सम्बन्धित कार्टेल अधिक व्यवहारिक है। इसके अंतर्गत फर्में बाजार के बंटवारे को सहमत हो जाती हैं, परन्तु अपने उत्पादन के तरीके, विक्रय गतिविधियों तथा अन्य निर्णयों से संबंधित स्वतंत्रता काफी हद तक अपने पास ही रखती हैं। बाजार के बंटवारे की दो विधियां हैं - गैर कीमत प्रतियोगिता तथा कोटा प्रणाली।

18.7.2.1 गैर-कीमत प्रतियोगिता समझौता - यह एक ढीले प्रकार का कार्टेल है। इसके अंतर्गत अल्पाधिकारी फर्म एक सामान्य कीमत पर सहमत हो जाती है, जिस पर प्रत्येक फर्म कोई मात्रा बेच सकती है। एक समान कीमत का निर्धारण सौदेबाजी के द्वारा होता है। कम लागत फर्में, कम कीमत के लिए तथा अधिक लागत फर्में ऊँची कीमत के लिए जोर देती हैं। परन्तु अन्त में एक कीमत पर समझौता होता है जिस पर कि सभी सदस्य फर्मों को कुछ लाभ अवश्य प्राप्त हो रहा हो। फर्में कार्टेल कीमत से नीचे की कीमत पर वस्तु न बेचने के लिए सहमत होती है परन्तु गैर-कीमत प्रतियोगिता के द्वारा अपनी बिक्री बढ़ाने का प्रयास कर सकती हैं। फर्में अपने उत्पाद के रंग, आकार, डिजाइन, पैकिंग आदि को परिवर्तित कर सकती हैं तथा अपनी विज्ञापन तथा विक्रय गतिविधियां बदल सकती हैं।

इस प्रकार कार्टेल सामान्यतया अस्थिर होता है। क्योंकि कम लागत फर्म द्वारा कार्टेल कीमत से कम कीमत पर वस्तु बेचने की सम्भावना प्रबल होती है। ऐसे कार्टेल टूटने तथा कीमत प्रतियोगिता शुरु होने का खतरा बना रहता है। यदि कार्टेल बनाने वाली फर्मों के लागत वक्रों में भिन्नता कम है तो कार्टेल की जीवन अवधि लम्बी हो सकती है।

18.7.2.2 कोटा समझौता द्वारा बाजार का बंटवारा - बाजार के बंटवारे का एक दूसरा तरीका है, प्रत्येक फर्म का बाजार में कोटा निर्धारित कर देना। यदि सभी फर्मों के लागत वक्र समान हो तो सभी फर्मों के बीच बाजार का बंटवारा बराबर-बराबर होगा और एकाधिकारी समाधान प्राप्त होगा। यदि समान लागत वाली सिर्फ दो ही फर्में हों तो प्रत्येक फर्म एकाधिकारी कीमत पर कुल बाजार मांग का आधा बेचेंगी।

उल्लेखनीय है कि कार्टेल अल्पाधिकारी बाजार में कीमत दृढ़ता या स्थिरता लाएंगे, यह आवश्यक नहीं है। ज्यादातर कार्टेल ढीले होते हैं। कार्टेल समझौता सदस्यों के लिए बाध्यकारी नहीं होता। इसके टूटने का खतरा बराबर बना रहता है। यदि फर्मों के प्रवेश की स्वतंत्रता हो तो कार्टेल की

अस्थिरता और बढ़ जाती है। यदि कार्टेल कीमत ऊँची हो और लाभ अधिक हो तो नयी फर्मों के प्रवेश की संभावना बढ़ जाती है।

18.8 कीमत नेतृत्व

इसके अंतर्गत अल्पाधिकारी फर्मों के बीच एक प्रकार की अनौपचारिक समझौता या अपूर्ण कपट संधि होती है जिसमें एक फर्म द्वारा नियत कमी कीमत का उद्योग की सभी फर्में अनुसरण करती है क्योंकि ऐसा करना अन्य फर्मों के लिए लाभदायक होता है या फिर वे अल्पाधिकारी अनिश्चितता से बचना चाहती है। कीमत नेतृत्व, कार्टेल की अपेक्षा व्यवहार में अधिक दिखता है क्योंकि यह सदस्य फर्मों से उनके उत्पाद तथा विक्रय गतिविधियों के सम्बन्ध में पूरी स्वतंत्रता देता है। यदि वस्तुएँ समान हो तो फर्मों की कीमत समान होगी। परन्तु वस्तुओं में भिन्नता होने पर कीमतें भिन्न हो सकती है, परन्तु उनके परिवर्तन की दिशा समान होगी।

कीमत नेतृत्व विभिन्न प्रकार का हो सकता है परन्तु सामान्यतया तीन प्रकार के कीमत नेतृत्व प्रचलित हैं:-

1) **कम-लागत कीमत नेतृत्व**

2) **प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व**

3) **स्थितिमान कीमत नेतृत्व**

18.8.1 कम लागत कीमत नेतृत्व माडल - इस माडल के अन्तर्गत कम लागत होने के कारण एक अल्पाधिकारी फर्म कम कीमत निर्धारित करती है और वह उद्योग की अन्य फर्मों की नेता बन जाती है। अन्य फर्मों को कम लागत फर्म की कीमत का अनुसरण करना पड़ता है। निम्नलिखित मान्यताओं के आधार पर इस माडल में कीमत तथा उत्पादन निर्धारण होता है

1-दो फर्में हैं, जो कि समान वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

2-दोनों फर्मों की लागतों में भिन्नता है।

3-दोनों फर्में एक समान मांग वक्र का सामना करती हैं अर्थात दोनों फर्मों का बाजार मांग में बराबर हिस्सा है।

18.8.2 प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व - कीमत नेतृत्व की एक विशिष्ट स्थिति वह है जब एक उद्योग की कुछ फर्मों में से एक फर्म कुल उत्पादन के एक बहुत बड़े लाभ का उत्पादन करने के कारण बाजार पर अपना प्रभुत्व रखती है। यह प्रधान फर्म अपने मांग वक्र के अनुरूप वस्तु की कीमत का

निर्धारण करती है, जिससे उसका लाभ अधिकतम हो। अन्य फर्में छोटी होने के कारण बाजार पर प्रभाव डालने की स्थिति में नहीं होती हैं तथा प्रधान फर्म द्वारा निर्धारित कीमत को स्वीकार करके उसके अनुसार अपने उत्पादन की मात्रा निश्चित करती है।

इस माडल में यह मान लिया जाता है कि प्रधान फर्म को वस्तु के बाजार मांग क्क् के संबंध में पूर्ण जानकारी है। साथ ही उसे अन्य छोटी फर्मों के डब् वक्र की भी जानकारी है, जिसके क्षैतिज योग से, विभिन्न कीमतों पर छोटी फर्मों की वस्तु की आपूर्ति निर्धारित होती है। इस प्रकार प्रधान फर्म अपने अनुभव से विभिन्न कीमतों पर छोटी फर्मों द्वारा आपूर्ति का अनुमान लगा सकती है।

आलोचना- कीमत नेतृत्व माडल के अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण की समस्या का एक स्थिर समाधान इस बात पर निर्भर करेगा कि अनुयायी फर्में कितनी निष्ठापूर्वक नेता फर्म का अनुसरण करती हैं। नेता फर्म का बड़ी होना तथा कम लागत वाली होना दोनों ही आवश्यक है।

किसी फर्म का कीमत नेतृत्व इस बात पर भी निर्भर करेगा कि वह अपने अनुयायी फर्मों की प्रतिक्रियाओं को कितना उचित ढंग से अनुमानित कर सकता है। दूसरे यदि नेता फर्म अपनी लागत कम होने के लाभ को बरकरार नहीं रख पाती है तो वह नेतृत्व करने की अपनी स्थिति खो देगी। वास्तविक उद्योग जगत में नये उत्पादों तथा तकनीकों के प्रवर्तन से अपेक्षाकृत छोटी फर्में उद्योग की नेता बन जाती है।

व्यवहार में, कीमत नेतृत्व के कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिसमें नेता फर्म न तो सबसे बड़ी होती है और न ही वह कम लागत वाली फर्म होती है। विशेषकर मंदी की स्थितियों में, बाजार में बने रहने के लिए अपेक्षाकृत छोटी फर्में अपनी कीमतें कम कर देती हैं। परन्तु वास्तव में नेतृत्व की क्षमता उस फर्म में होती है जो कि न सिर्फ कीमत में परिवर्तन करे बल्कि दीर्घकाल तक बनाए रखने में समर्थ हो।

नेता फर्म द्वारा कीमत ऊँची रखने पर प्रतिद्वंदी अन्य फर्में गुप्त कीमत कटौतियां कर सकती है तथा उद्योग में नयी फर्में आने को प्रेरित हो सकती हैं। यदि नयी फर्म को वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ की स्थिति हो तो वह धीरे-धीरे अपने बाजार हिस्से में विस्तार करते हुए, नेता फर्म बन सकती है।

18.8.3 स्थितिमान कीमत नेतृत्व मॉडल - इस मॉडल में सभी फर्में औपचारिक या अनौपचारिक रूप से उस फर्म के कीमत परिवर्तन का अनुकरण करने को सहमत हो जाती हैं, जो कि बाजार की स्थितियों की बेहतर जानकारी रखती हो तथा भविष्य में बाजार में होने वाले परिवर्तनों का बेहतर अनुमान लगा सकती हो। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसी अनुभवी या पुरानी फर्म सबसे बड़ी हो या कम लागत वाली हो। यह वह फर्म होती है जो बाजार में वस्तु की मांग व लागत की स्थितियों और समस्त अर्थव्यवस्था की स्थितियों में परिवर्तन का पूर्वानुमान लगाने में एक बैरोमीटर की तरह कार्य करती है। बेरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व निम्नलिखित कारणों से विकसित होता है

1-अल्पाधिकारी उद्योग की बड़ी फर्मों के बीच प्रतिद्वंदिता से गला-काट प्रतियोगिता शुरु हो जाती है जिससे सभी फर्मों को हानि होती है। बड़ी फर्मों के बीच प्रतिद्वंदिता के कारण उनमें से किसी एक को उद्योग का नेता स्वीकार करना सम्भव नहीं होता है।

2-उद्योग की अधिकतर फर्मों को लागत, मांग तथा पूर्ति दशाओं की लागतार गणना करते रहने की न तो क्षमता होती है और न ही इच्छा। इसलिए वे ऐसा करने वाली एक योग्य फर्म को अपना नेता मान लेती हैं।

3-सामान्यतया बेरोमेट्रिक फर्म उद्योग विशेष की लागतों तथा मांग दशाओं में परिवर्तनों तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के संबंध में एक अच्छी भविष्यवक्ता होती हैं जिससे अन्य फर्में उसे अपना नेता मानकर अपनी कीमत नीति तय करती हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

i. कीमत दृढ़ता से क्या तात्पर्य है?

ii. प्रधान फर्म कीमत नेतृत्व तथा बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

iii. कार्टेल से क्या तात्पर्य है?

iv. स्थितिमान कीमत नेतृत्व पर टिप्पणी लिखिए।

2. अति लघुउत्तरीय प्रश्न

i. विकुंचित मांग वक्र का सिद्धान्त किस अर्थशास्त्री ने दिया?

ii. क्रूनों माडल में उत्पादन लागत के सम्बन्ध में क्या मान्यता है?

iii. यदि मांग वक्र में किसी बिन्दु पर $e = 1$ हो तो उससे संबंधित सीमान्त आय (MR) कितनी होगी?

iv. यदि छोटी अनुयायी फर्में, प्रधान फर्म द्वारा निर्धारित कीमत को स्वीकार करती हैं परन्तु अपने बाजार हिस्से से कम उत्पादन करती हैं तो प्रधान फर्म का लाभ अधिकतम होगा या नहीं?

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

i. क्रूनों माडल की मुख्य मान्यता है -

(क) प्रतिद्वंदी फर्मों के उत्पादन की स्थिरता

(ख) कीमत स्थिरता

(ग) परस्पर निर्भरता

(घ) बाजार नेतृत्व

ii. अल्पाधिकार में विकुंचित मांग वक्र किस तथ्य की व्याख्या करता है?

(क) कीमत तथा उत्पादन निर्धारण

(ख) कीमत दृढ़ता

(ग) कीमत नेतृत्व

(घ) प्रतिद्वन्दियों के बीच कपट संधि

iii. विकुंचित मांग वक्र में विकुंचन बिन्दु के ऊपर का भाग होता है-

(क) अधिक लोचदार

(ख) कम लोचदार

(ग) शून्य लोचदार

(घ) अनन्त लोचदार

iv. विकुंचित मांग वक्र में MR वक्र के अन्तराल की लम्बाई जितनी अधिक होगी –

(क) कीमत अपरिवर्तित रहने की सम्भावना उतनी ही कम होगी।

(ख) कीमत अपरिवर्तित रहने की सम्भावना अधिक होगी।

(ग) कीमत उतनी ही तेजी से बदलेगी।

(घ) उपर्युक्त तीनों असत्य हैं।

4. सत्य व असत्य बताइए

i. बैरोमीट्रिक फर्म वह होती है जिसका बाजार में हिस्सा सबसे अधिक होता है।

ii. कार्टेल गैर-कपट संधि अल्पाधिकार के अंतर्गत आता है।

iii. कार्टेल के अंतर्गत सदस्य फर्मे एक केन्द्रीय कार्टेल एजेन्सी की स्थापना करते हैं जिसका मुख्य उद्देश्य अद्योग के लाभ को अधिकतम करना होता है।

iv. क्रूनों माडल के दूयाधिकार माडल में तिहाई प्रत्येक फर्म मुख्य बजार मांग का एक तिहाई उत्पादन करती है।

v. चैम्बरलिन के अल्प समूह माडल में फर्में अपनी परस्पर निर्भरता को पहचान कर व्यवहार करती हैं।

18.10 **सारांश**

अल्पाधिकार वह बाजार स्थिति होती है जिसमें समरूप या विभेदीकृत वस्तुएं बेचने वाली थोड़ी सी फर्में होती हैं। इसकी मुख्य विशेषता परस्पर निर्भरता है, जिसके कारण अल्पाधिकारी मांग वक्र अनिश्चित होता है। अर्थशास्त्रियों ने अल्पाधिकारी समूह के व्यवहार, उनके उद्देश्यों तथा एक फर्म द्वारा कीमत व उत्पादन में परिवर्तन से उसकी प्रतिद्वंदी फर्मों के प्रतिक्रिया ढांचे के सम्बन्ध में मान्यताओं के आधार पर बहुत से माडलों का विकास किया है।

फर्मों की परस्पर निर्भरता के कारण अल्पाधिकारी बाजारों में स्वतंत्र रूप से कीमत निर्धारण करना काफी कठिन है। इसलिए प्रायः अल्पाधिकारी फर्मों के बीच किसी न किसी प्रकार का समझौता

उद्योग विशेष में पाया जाता है। यह समझौता औपचारिक या अनौपचारिक हो सकता है परन्तु फर्मों के अनिश्चित व्यवहार के कारण अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत व उत्पादन का निर्धारण व एक स्थायी समाधान एक दुर्लभ कार्य है। अल्पाधिकार के अंतर्गत लाभ अधिकतम करने के माडल का एक विकल्प बिक्री अधिकतम माडल है।

18.11 शब्दावली

द्वयाधिकार - द्वयाधिकार अल्पाधिकारी बाजार का एक विशेष सरलतम रूप है, जिसमें एक वस्तु के केवल दो उत्पादक या विक्रेता होते हैं।

विकुंचित मांग वक्र - अल्पाधिकार के अंतर्गत प्रायः मांग वक्र में विकुंचन होता है। यह विकुंचन वर्तमान कीमत पर होता है क्योंकि वर्तमान कीमत के ऊपर की आय अत्यधिक लोचदार तथा नीचे की आय बेलोचदार होता है।

कपट संधि - अल्पाधिकारी बाजारों में अनिश्चितता के कारण स्वतंत्र रूप से कीमत निर्धारण करना कठिन है। इसलिए अल्पाधिकारी फर्में प्रायः आपस में औपचारिक या अनौपचारिक समझौता कर लेती है, औपचारिक समझौते 'कपट संधि' कहे जाते हैं।

कार्टेल - एक उद्योग में स्वतंत्र फर्मों के संगठन को कार्टेल कहते हैं। कार्टेल कीमतों, उत्पादनों, बिक्रियों, वस्तु के वितरण और लाभ अधिकतमीकरण संबंधी समान नीतियों का अनुसरण करता है।

अभ्यास प्रश्न- 3

1. बहुविकल्पीय प्रश्न
   i. अल्पाधिकार का बिक्री अधिकतमीकरण माडल किसने प्रस्तुत किया?
      (क) हॉल एवं हिच (ख) चैम्बरलिन
      (ग) बॉमल (घ) स्वीजी
   ii. बिक्री अधिकतम माडल के लिए क्या सत्य है?
      (क) उत्पादन स्तर बढ़ता है किन्तु कीमत स्तर गिर जाता है।
      (ख) उत्पादन स्तर घटता है किन्तु कीमत स्तर बढ़ जाता है।
      (ग) उत्पादन तथा कीमत स्तर दोनों बढ़ते हैं।
      (घ) उत्पादन तथा कीमत स्तर दोनों गिर जाते हैं।
   iii. बॉमल के बिक्री अधिकतम माडल के लिए क्या असत्य है?
      (क) बिक्री के मौद्रिक मूल्य को अधिकतम करना।
      (ख) न्यूनतम लाभ प्रतिबन्ध की शर्त

(ग) बिक्री की भौतिक मात्रा को अधिकतम करना।

(घ) उपरोक्त सभी असत्य हैं।

18.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1 बहुविकल्पीय प्रश्न

i. ख

ii. ग

iii. घ **सत्य व असत्य बताइए**

i. असत्य

ii. सत्य

iii. असत्य

iv. सत्य

v. सत्य

अभ्यास प्रश्न-2 अति लघुउत्तरीय प्रश्न

i. स्वीजी

ii. लागत शून्य है

iii. शून्य

iv. नहीं बहुविकल्पीय प्रश्न

i. क

ii. ख

iii. ख

iv. ख

सत्य व असत्य बताइए

i. असत्य

ii. असत्य

iii. सत्य

iv. सत्य

v. सत्य

अभ्यास प्रश्न-3 बहुविकल्पीय प्रश्न

i. ग

ii. क
iii. ग

18.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सेठी, टी. टी. (2008) व्यष्टि अर्थशास्त्र लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा
- झिंगन, एम.एल. (2007) ‘उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त वृन्दा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- आहूजा, एस.एल. (2006)उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त व्यष्टिपरक विश्लेषण’’,चन्द पब्लिकेशन, नई दिल्ली

18.14 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Koutsoyinuis.A. (1979) Modern Microeconomics, (2nd Edition), Macmillian Press, London.
- Ahuja,H.L. ((2010)Principles of MicroEconomics,S&Chan Publishing House.
- Peterson, L. and Jain (2006)) Managerial Economics, 4th edition, Pearson Education.
- Colander, D, C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
- Mishra, S. K. and Puri, V. K., (2003), Modern Micro-EconomicsTheory, Himalaya Publishing House.

1. अल्पाधिकार में विकुंचित मांग वक्र सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. क्रूनों के दूयाधिकार माडल की सचित्र व्याख्या कीजिए। चैम्बरलिन का अल्प समूह माडल किस प्रकार क्रूनों माडल से भिन्न है?
3. कार्टेल के अंतर्गत संयुक्त लाभ अधिकतम कैसे होता है? उन कारणों को बताइए जिससे कार्टेल के टूटने की सम्भावना बनी रहती है।
4. एक प्रधान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व के अंतर्गत कीमत तथा उत्पादन निर्धारण की व्याख्या कीजिए।

इकाई - 19 वितरण का सिद्धान्त एवं सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

इकाई संरचना

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
19.3.1 सिद्धान्त की मान्यतायें
19.3.2 सीमान्त उत्पादकता का आशय तथा उसकी माप
19.3.3 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन में अन्तर नहीं होता है
19.3.4 अपूर्ण प्रतियोगिता (एकाधिकार) के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन में अन्तर होता है
19.3.5 सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन को प्रदर्शित करने वाले वक्रों के स्वरूप
19.3.6 पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित वक्रों में अन्तर
19.3.8 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनाएँ
19.4 वितरण का आधुनिक सिद्धान्त अथवा मांग एवं पूर्ति सिद्धांत
19.4.1 मांग-पक्ष
19.4.2 पूर्ति-पक्ष
19.4.3 संतुलन
19.5 सारांश
19.6 शब्दावली
19.7 अभ्यास प्रश्न व उत्तर
19.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
19.9 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र से सम्बन्धित यह 19वी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद अब आप यह बता सकते हैं कि तीन बाजार स्थितियों, पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता में क्या अन्तर है तथा इनमें कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण कैसे होता है? इसकी मान्यताए क्या है? साथ ही इसमें प्रतियोगी फर्म के अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन की भी चर्चा की गयी हैं।

इस इकाई में साधनों का कीमत-निर्धारण जो वास्तव में, कीमत सिद्धान्त की विशिष्ट दशा है, का अध्ययन किया गया है। जिस प्रकार किसी वस्तु की कीमत उसकी मांग एवं पूर्ति से निर्धारित होती है, ठीक उसी प्रकार किसी साधन की कीमत भी मांग एवं पूर्ति की अर्न्तक्रिया से निश्चित होती है। अतः साधनों की कीमत निर्धारण प्रक्रिया ठीक वैसी ही है जैसी वस्तुओं की कीमत-निर्धारण प्रक्रिया होती है। फिर भी, वस्तु कीमत-निर्धारण एवं साधन कीमत-निर्धारण में कुछ अन्तर पाये जाते हैं। साधनों की माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाली शक्तियाँ उन शक्तियों से थोड़ी भिन्न होती है जो उपभोग वस्तुओं की माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि हमें साधनों के कीमत-निर्धारण हेतु एक पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है। इसे वितरण का सिद्धान्त कहते हैं। हम इसके अन्तर्गत वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त तथा वितरण के आधुनिक (माँग एवं पूर्ति) सिद्धान्त की व्याख्या करेंगे।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- उत्पादन साधनों - भूमि, श्रम, पूँजी तथा साहस का मूल्य निर्धारण करना।
- सभी साधनों का उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार मूल्य निर्धारण करना।
- भूमि की लगान, श्रम की मजदूरी, पूँजी का ब्याज तथा साहस का लाभ निर्धारण करना।
- उत्पादन साधनों की मांग एवं पूर्ति के अनुसार मूल्य निर्धारण करना।

19.3 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त यह बताता है कि दी हुई मान्यताओं के अन्तर्गत दीर्घकाल में किसी साधन के पुरस्कार में उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 19वीं शताब्दी के अन्त में जे0बी0क्लार्क, वालरस, विकस्टीड आदि

अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया था। किन्तु इसे विस्तृत एवं सही नाम देने का श्रेय आधुनिक अर्थशास्त्रियों में श्रीमती जोन रॉविन्सन तथा जे0आर0 हिक्स को है।

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त एक ऐसा सामान्य सिद्धान्त है जो मजदूरियों, लगान, ब्याज लाभ जैसी साधन-कीमतों की व्याख्या करता है। वास्तव में, यह एक सामान्य सिद्धान्त है और इसके माध्यम से सभी साधनों के पारिश्रमिकों की व्याख्या की जा सकती है।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की निम्न शब्दों में परिभाषा दी जा सकती है। ''अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते है।'' (Marginal productivity is the increment of value of the total output caused by employing an additional man, the total value of other factors remaining unchaged" (Joan Robinson : *The Economics of Imperfect Competitions,* p. 237).

इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन साधनों के कीमत निर्धारण का आधार सीमान्त उत्पादकता है। एक व्यावसायिक फर्म किसी उत्पादन-साधन को उसकी उत्पादकता (अथवा उत्पादन-शक्ति) के कारण नियोजित करती है। दूसरे शब्दों में, वह उत्पादन-साधन उत्पादन-क्रिया में अपना समुचित अंशदान करता है। इसीलिए व्यावसायिक फर्म उसे काम पर लगाती है। वह फर्म उस साधन को क्या पारिश्रमिक चुकायेगी, यह उस साधन की उत्पादकता पर निर्भर करता है (अर्थात साधन की कीमत उसकी उत्पादकता पर आश्रित रहती है)। जितनी साधन की उत्पादकता अधिक होगी, उतनी ही उसकी कीमत अधिक होगी। अतः सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त किसी भी साधन के पारिश्रमिक को उसकी उत्पादकता अथवा कुल उत्पादन में किये गये उसके अंशदान से जोड़ देता है। व्यावसायिक फर्म किसी भी साधन की विभिन्न इकाइयों को उस बिन्दु तक लगाती चली जायेगी जिस पर उस साधन की सीमान्त इकाई को चुकाया जाने वाला पारिश्रमिक उस इकाई द्वारा कुल उत्पाद में किये गये अंशदान के बराबर होता है। दूसरे शब्दों में, वह फर्म उस बिन्दु तक उस साधन को अधिकाधिक इकाइयाँ लगाती चली जायेगी जहाँ पर उस साधन की सीमान्त लागत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। साधन की सीमान्त इकाई का पारिश्रमिक उसकी (साधन की) सीमान्त उत्पादकता के बराबर होता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त का सारांश यह है कि उत्पादन के किसी भी साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है।

19.3.1 सिद्धान्त की मान्यतायें

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

1. वस्तु तथा साधन दोनों बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता की दशाए विद्यमान हैं।
2. साधन की सभी इकाइयाँ समरूप हैं।

3. प्रत्येक उत्पादक अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयास करता है।
4. उत्पादन का केवल एक साधन ही परिवर्तनशील है जबकि शेष साधन अपरिवर्तनशील रहते हैं।
5. सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त केवल दीर्घकाल में ही लागू होता है।
6. सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि एक सीमा के पश्चात्
7. साधन की सीमान्त उत्पादकता क्रमशः घटती जाती है।
8. इस सिद्धान्त में पूर्ण रोजगार एक आधारभूत स्थिति है।

19.3.2 सीमान्त उत्पादकता का आशय तथा उसकी माप

किसी साधन की सीमान्त उत्पादकता से आशय उस साधन की एक अतिरिक्त इकाई के रोजगार या उत्पादन-क्रिया में आने के कारण कुल उत्पादन में वृद्धि से है। सीमान्त उत्पादकता को तीन रूपों में व्यक्त किया जा सकता है -

(क)सीमान्त भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Product-MPP)

किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग के कारण, अन्य साधनों की स्थिर मात्रा के साथ कुल उत्पादन में वृद्धि ही उस साधन का सीमान्त भौतिक उत्पादन है।

इस प्रकार सीमान्त भौतिक उत्पादन = (साधन की एक अतिरिक्त इकाई के बाद कुल उत्पादन) - (साधन की उस अतिरिक्त इकाई के पहले का कुल उत्पादन)

$MPP = TP_n – TP_{n-1}$ जिसमें TP कुल उत्पादन का प्रतीक है।

(ख)सीमान्त मूल्य उत्पादन (Marginal Value Product-MVP)

जब सीमान्त भौतिक उत्पादन को मूल्य या औसत आय से गुणा कर दिया जाय तो जो गुणनफल प्राप्त होगा उसे सीमान्त मूल्य उत्पादन कहेंगे। इस प्रकार

सीमान्त मूल्य उत्पादन = सीमान्त भौतिक उत्पादन x मूल्य

MVP = MPP x Price (AR)

(ग)सीमान्त आय उत्पादन (Marginal Revenue Product-MRP)

उत्पादन के किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के फलस्वरूप 'कुल मूल्य उत्पादन' अथवा कुल आय में होने वाली वृद्धि ही सीमान्त आय उत्पादन है। उदाहरण के लिए कोई फर्म 10 श्रमिकों को उत्पादन क्रिया में लगाती है तथा उनसे 100 कलम का उत्पादन प्राप्त करती है। यदि कलम का मूल्य

प्रति कलम 5 रूपया हो तो फर्म की कुल आय या कुल मूल्य उत्पादन 100 x 5 = 500 रूपया होगा पर यदि फर्म एक और श्रमिक को उत्पादन-क्रिया में लगाये और यदि उसके बाद कुल उत्पादन 108 कलम का हो जाय तथा यदि हम यह मान लें कि अब भी वह फर्म कलम की प्रति इकाई की कीमत 5 ही रूपया लेती है तो 108 कलमों के बेचने से 108 x 5 = 540 रूपया कुल आय प्राप्त होगी। सीमान्त मूल्य उत्पादन 540-500=40 रूपया होगा। चूँकि अन्तिम इकाई से जो आय प्राप्त होगी वह सीमान्त आय होगी, इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि सीमान्त आय उत्पादन उस उत्पादन के साधन के सीमान्त भौतिक उत्पादन तथा सीमान्त आय का गुणनफल है। अर्थात्

MRP=MPP x MR

ऊपर दिये गये उदाहरण में सीमान्त भौतिक उत्पादन 8 कलम का है तथा सीमान्त आय 5 रूपया है इसलिए सीमान्त आय उत्पादन 8 x 5=40 रूपया होगा।

19.3.3 पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन में अन्तर नहीं होता है:

इसके पूर्व हम लोगों ने सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन की जो व्याख्या की उससे स्पष्ट है कि दोनों के ऊपर बाजार में प्रचलित मूल्य का प्रभाव पड़ता है। हम जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य एक ही रहता है, उत्पादन में परिवर्तन का मूल्य के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, औसत आय तथा सीमान्त आय बराबर होती है, फलस्वरूप सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन एक ही होंगे। जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में हम जानते हैं कि औसत तथा सीमान्त आय वस्तु की बेची गयी मात्रा के साथ क्रमशः गिरते हुए होते हैं तथा सीमान्त मूल्य औसत मूल्य से आवश्यक रूप से कम रहता है। ऐसी स्थिति में सीमान्त आय के आधार पर सीमान्त आय उत्पादन तथा औसत आय या मूल्य के आधार पर गणना किये गये सीमान्त मूल्य उत्पादन में अन्तर होगा। चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य या औसत आय एक ही बना रहता है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में यह गिरता हुआ होता है, इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में इन दोनों धारणाओं में अन्तर होगा। स्पष्ट है चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में AR=MR इसलिए MVP=MRP पर अपूर्ण प्रतियोगिता AR>MR इसलिए MVP>MRP अब हम सारिणी तथ रेखाचित्र के माध्यम से इन दोनों धारणाओं में अन्तर को प्रदर्शित करेंगे। पहले हम सारिणी सं0 19.1 तथा 19.2 पर विचार करेंगे।

तालिका सं0 19.1

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन

श्रमिकों की इकाइयॉ	कुल उत्पादन	सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP)	मूल्य	सीमान्त मूल्य उत्पादन (MVP) (3X4)	कुल आय ¼2x4½	सीमान्त आय उत्पादन (MRP)	उत्पादन का नियम
1	2	3	4	5	6	7	8
1	10	10	4	40	40	40	बृद्धिमान
2	30	20	4	80	120	80	नियम
3	60	30	4	120	240	120	समता
4	100	40	4	160	400	160	नियम
5	140	40	4	160	560	160	
6	175	35	4	140	700	140	
7	200	25	4	100	800	100	ह्रासमान
8	215	15	4	60	860	60	नियम
9	225	10	4	40	900	40	
10	230	5	4	20	920	20	

सारिणी 19.1 के स्पष्टीकरण के पूर्व दो महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख आवश्यक है- प्रथम, उत्पादन क्रिया में उत्पादन के तीनों नियम क्रियाशील हैं जैसा सीमान्त भौतिक उत्पादन से स्पष्ट है। चौथी इकाई तक उत्पादन-वृद्धि, चौथी से पाँचवी के बीच उत्पादन-समता तथा पाँचवी के बाद उत्पादन-ह्रास-नियम प्रदर्शित है। दूसरे चूँकि वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है इसलिए उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर मूल्य 4 रूपया ही प्रदर्शित है। अब हम सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन की गणना पर विचार करेंगे। हम इसके पूर्व देख चुके हैं कि MVP=MPP x ARA इसलिए सीमान्त भौतिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर मूल्य अर्थात् 4 रूपये से गुणा करके खाना नं. 5 में सीमान्त मूल्य उत्पादन प्रदर्शित किया गया है, जैसे साधन की दूसरी इकाई से प्राप्त होने वाले सीमान्त मूल्य उत्पादन की गणना इस प्रकार की गयी है- सीमान्त भौतिक उत्पादन 20, मूल्य 4 रू0 इसलिये सीमान्त मूल्य उत्पादन 20 X 4 = 80रू0। चूँकि वस्तु-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है इसलिए औसत आय तथा सीमान्त आय में कोई अन्तर नहीं होता इसलिए इस स्थिति में सीमान्त आय उत्पादन की गणना सीमान्त भौतिक उत्पादन में मूल्य के ही गुणा द्वारा की जा सकती है अर्थात् (MRP=MPP x MR

(MR=AR)। यही कारण है कि पाँचवें खाने में प्रदर्शित मूल्य उत्पादन तथा सातवें में प्रदर्शित सीमान्त आय उत्पादन में कोई अन्तर नहीं है।

19.3.4 अपूर्ण प्रतियोगिता (एकाधिकार) के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन में अन्तर होता है:

अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की स्थिति में सीमान्त मूल्य उत्पादन के बीच अन्तर होगा क्योंकि अपूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य (औसत आय) तथा सीमान्त आय में अन्तर पाया जाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त आय उत्पादन तथा सीमान्त मूल्य उत्पादन की गणना सारिणी नं. 19.2 में प्रदर्शित है। **तालिका सं0 19.2**

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन

श्रमिकों की इकाइयॉ	कुल उत्पादन	सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP)	मूल्य	सीमान्त मूल्य उत्पादन (MVP) (3X4)	कुल आय (2x4)	सीमान्त आय उत्पादन MRP
1	2	3	4	5	6	7
1	10	10	4.00	40.00	40.00	40.00
2	30	20	3.60	72.00	108.00	68.00
3	60	30	3.00	90.00	180.00	72.00
4	100	40	2.60	104.00	260.00	80.00
5	140	40	2.40	96.00	336.00	76.00
6	175	35	2.30	80.50	402.50	66.50
7	200	25	2.24	56.00	448.00	45.50
8	215	15	2.20	33.00	473.00	25.00
9	225	10	2.16	21.60	486.00	13.00
10	230	5	2.14	10.70	492.20	6.20

अपूर्ण प्रतियोगिता में पूर्ण प्रतियोगिता की तरह औसत आय वक्र आधार के समानान्तर नहीं होता या दूसरे शब्दों में मूल्य स्थिर नहीं होता है बल्कि नीचे गिरता हुआ होता है जैसा सारणी नं. 19.2 के खाना नं. 4 में प्रदर्शित है। जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जायेगा प्रति इकाई मूल्य कम होता जायेगा। हम औसत आय तथा सीमान्त आय के बीच के सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए यह देख चुके हैं कि अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आय औसत आय से कम होती है इसलिए सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन के बीच अन्तर होगा, वस्तुस्थिति तो यह है कि सीमान्त आय उत्पादन सीमान्त मूल्य उत्पादन से कम होगा, क्योंकि-

MVP = MPP x AR

तथा MRP = MPP x MR

पर AR का मूल्य MR से अधिक होगा (AR>MR) इसलिए MVP > MRP

सारिणी नं. 19.2 के खाना नं. 5 में सीमान्त मूल्य की गणना सीमान्त भौतिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर से सम्बन्धित मूल्य से गुणा करके की गयी है जैसे श्रम की तीसरी इकाई पर यदि सीमान्त मूल्य की गणना करनी हो तो इस इकाई के सीमान्त भौतिक उत्पादन 30 में मूल्य 3.00 का गुणा करना होगा अर्थात 30 X 3.00 = 90 जैसा खाना नं. 5 में प्रदर्शित है। पर पूर्ण प्रतियोगिता की तरह मूल्य के द्वारा गुणा करके ही सामान्त आय उत्पादन की गणना नहीं की जा सकती है। इसको ज्ञात करने के लिए पहले कुल आय या (मूल्य X कुल उत्पादन) को खाना नं. 6 में प्रदर्शित किया गया है और तब श्रम की एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि के कारण कुल आय में होने वाली वृद्धि के आधार पर सीमान्त आय उत्पादन की गणना की गई है।

19.3.5 सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन को प्रदर्शित करने वाले वक्रों के स्वरूप: सारिणी नं. 19.1 तथा 19.2 के सम्बन्धित खानों से ही स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में इन दोनों वक्रों के स्वरूप में भिन्नता होगी। चूँकि प्रत्येक में इन वक्रों का आधार

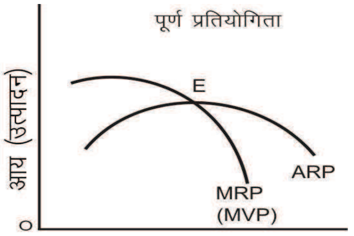

चित्र नं0 19:1

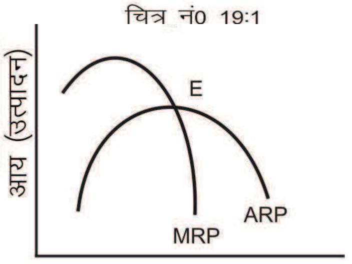

चित्र नं0 19:2

सीमान्त भौतिक उत्पादन है इसलिए इतना तो निश्चित है कि इनका स्वरूप सीमान्त भौतिक उत्पादन को प्रदर्शित करने वाले वक्र के समान होगा और चूँकि सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र का स्वरूप उत्पादन के तीनों नियमों के क्रियाशीलन के कारण अंग्रेजी के न् अक्षर उल्टे आकार का होगा। इसलिए इस पर आधारित ये वक्र भी इसी के आकार के होंगे। जहाँ तक पूर्ण प्रतियोगिता का प्रश्न हैं इसमें सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन वक्र एक ही होंगे और दोनों सीमान्त भौतिक उत्पादन के वक्र से समान दूरी पर होंगे क्योंकि इन्हें ज्ञात करने के लिए सीमान्त भौतिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर एक स्थिर मूल्य का ही गुणा करना पड़ता है। दूसरी बात यह है कि पूर्ण

प्रतियोगिता में प्रदर्शित सीमान्त मूल्य तथा सीमान्त आय उत्पादन वक्र सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र से अधिक चपटे होंगे। जहाँ तक अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित इन दोनों वक्रों का प्रश्न है इनका स्वरूप तो सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र की ही तरह होगा पर जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ये दोनों वक्र सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र से समान दूरी पर स्थित होंगे, अपूर्ण प्रतियोगिता में ये दोनों ही सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र के अधिक नजदीक पहुँचते जायेंगे (जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता जायेगा)। इसमें भी सीमान्त आय उत्पादन वक्र अधिक करीब होगा।

19.3.6 पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित वक्रों में अन्तर:

(1)पूर्ण प्रतियोगिता में 'सीमान्त मूल्य उत्पादन वक्र' तथा 'सीमान्त आय उत्पादन वक्र' में भेद नहीं होता पर अपूर्ण प्रतियोगिता में होता है क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में AR=MR परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार में AR की मात्रा MR से अधिक होती है AR > MR ।

(2)पूर्ण प्रतियोगिता में ये वक्र सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र से समान दूरी पर होगें जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में ये दोनों ही MRP तथा ARP करीब आते जायेंगे।

(3)पूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित सीमान्त आय उत्पादन = सीमान्त मूल्य उत्पादन वक्र, अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित इन्हीं वक्रों की अपेक्षा अधिक चपटा होगा।

(4)अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रदर्शित सीमान्त आय उत्पादन वक्र सीमान्त मूल्य उत्पादन वक्र की अपेक्षा अधिक ढालू होगा।

सामान्यता सीमान्त आय (MRP) को ही सीमान्त उत्पादन या सीमान्त उत्पादकता के रूप में स्वीकार किया जाता है। हम अपने अगले विश्लेषण में इसी का प्रयोग करेंगे। पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियों में सीमान्त आय उत्पादन तथा उससे सम्बन्धित औसत आय उत्पादन वक्र का प्रदर्शन रेखाचित्र नं. 19.1 तथा 19.2 में किया गया है।

रेखाचित्र नं. 19.1 में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति तथा नं. 19.2 में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में सीमान्त आय उत्पादन वक्र प्रदर्शित है। स्पष्ट है कि नं. 19.2 में प्रदर्शित MRP, नं. 19.1 में प्रदर्शित MRP की उपेक्षा अधिक ढालू है। इनसे सम्बन्धित औसत आय उत्पादन वक्र (ARP) भी प्रदर्शित है। सीमान्त तथा औसत मूल्यों के बीच सम्बन्धों की जो व्याख्या इसके पूर्व की जा चुकी है उससे यह स्पष्ट है कि MRP वक्र ARP वक्र के शीर्ष विन्दु से होकर जायगा।

19.3.7 निष्कर्ष

यदि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो तो ऐसी स्थिति में नियोक्ता द्वारा जो मजदूरी या मूल्य चुकाना होगा वह पूर्व निश्चित है जिसका निर्धारण बाजार में क्रियाशील होने वाली शक्तियों के द्वारा उद्योग ने निर्धारित किया है, ठीक उसी प्रकार से जैसे वस्तु के मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में हम लोगों ने देखा कि फर्म के लिए मूल्य पूर्वनिश्चित है। नियोक्ता अपने व्यवहार द्वारा बाजार की मांग को प्रभावित नहीं कर सकता है, वह दिये हुए मूल्य या पारिश्रमिक की दर पर जितने भी श्रमिक चाहे उतने खरीद सकता है। ऐसी स्थिति में अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए वह अधिक से अधिक यह कर

सकता है कि वह उत्पादन के साधनों का प्रयोग उस सीमा तक बढ़ाये जहाँ कि प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता बाजार की शक्तियों द्वारा निर्धारित दर के बराबर हो जाय। यहीं संस्थिति होगी। इस प्रकार संस्थिति की स्थिति में -

(1)प्रत्येक रोजगार में एक साधन की सीमान्त उत्पादकता समान हो।

(2)एक रोजगार में प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता उसी रोजगार में लगे अन्य साधनों की सीमान्त उपादकता के बराबर हो।

इसी प्रकार की संस्थिति का चित्रण रेखाचित्र नं0 19.3 से स्पष्ट है।

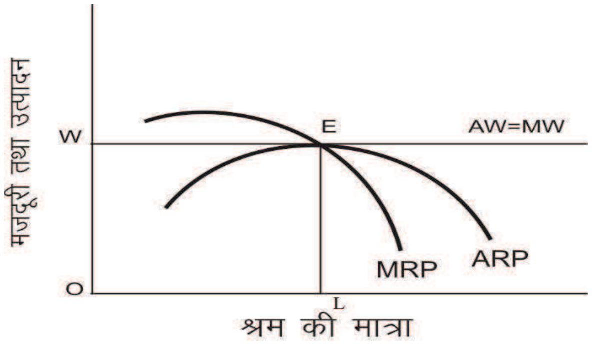

चित्र नं0 19:3

इस चित्र में ल् अक्ष पर मजदूरी तथा उत्पादकता प्रदर्शित किया गया है तथा दोनों वक्रों के माध्यम से औसत आय-उत्पादन (ARP) तथा सीमान्त आय उत्पादन (MRP) प्रदर्शित किया गया है। बाँयें से E बिन्दु तक औसत आय-उत्पादन बढ़ता है जो उत्पादन वृद्धि नियम का पारिचायक है तथा E बिन्दु से दाहिनी ओर यह नीचे की ओर गिरता है जो उत्पादन ह्रास नियम का प्रतीक है, E बिन्दु पर उत्पादन-समता-नियम लागू है। इसी बिन्दु पर दीर्घकालीन सन्तुलन की स्थिति होगी। उत्पादक श्रमिकों की OL मात्रा लगायेगा तथा OW मजदूरी देगा। इस बिन्दु पर मजदूरी सीमान्त आय-उत्पादन तथा औसत आय उत्पादन के बराबर होगी।

19.3.8 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनाएँ

1.इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन-साधन की सभी इकाइयाँ सजातीय होती है जबकि वास्तविक व्यवहार में उत्पादन-साधन की इकाइयाँ विजातीय   होती हैं।

2.इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न उपयोगों के बीच उत्पादन-साधनों की गतिशीलता पूर्ण होती है। जबकि यह मान्यता सही नहीं है। भूमि में तो गतिशीलता का पूर्ण अभाव होता ही है, पूँजी व श्रम भी पूर्णतः गतिशील नहीं होते। जिससे उनकी सीमान्त उत्पादकता समान नहीं हो सकती।

3. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन साधन पूर्णतया विभाज्य होते हैं। परिणामतः उनकी मात्राओं में अनन्तसूक्ष्म परिवर्तन किये जा सकते हैं। सत्य तो यह है कि एक निश्चित सीमा से आगे उत्पादन-साधन अविभाज्य हो जाते हैं।

4.इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन-प्रक्रिया में साधन के अनुपातों को बदला जा सकता है। जबकि प्रावैधिक अन्य कारणों से सामान्यतया ऐसा सम्भव नहीं होता।

5.आलोचकों के अनुसार बड़े उद्योगों तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में किसी एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को मापना ही सम्भव नहीं होता।

6.कुछ आलोचक इसे वास्तविक नहीं मानते। क्योंकि सिद्धान्त सामान्यतः साधन के पारिश्रमिक को दिया हुआ तथा स्थिर मानता है।

7.इस सिद्धान्त के अनुसार किसी उत्पादन-साधन की सीमान्त उत्पादकता उसके पारिश्रमिक को प्रभावित करती है,

8.यह सिद्धान्त स्थिर अथवा आनुपातिक प्रतिफल नियम की मान्यता पर आधारित है। जबकि वास्तविक जीवन में वर्धमान अथवा ह्रासमान प्रतिफल नियम भी कार्यशील होता है।

9.यह सिद्धान्त साधन के कीमत-निर्धारण की केवल दीर्घकालीन व्याख्या ही हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

10.यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की गलत एवं अवास्तविक धारणा पर निर्मित किया गया है।

11.कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त को इस आधार पर स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है कि यह पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान आय-वितरण को उचित बताता है जबकि इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह वितरण अन्यायपूर्ण ही नहीं, बल्कि असमतायुक्त भी है।

12.कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की इस आधार पर आलोचना की है कि सीमान्त उत्पादकता आय-वितरण के लिए कोई वास्तविक आधार प्रस्तुत नहीं करती और न ही किसी उत्पादन-साधन के पारिश्रमिक तथा उसकी सीमान्त उत्पादकता के बीच कोई घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

13.यह सिद्धान्त उत्पादन-साधन की पूर्ति को स्थिर मानकर चलता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि भूमि को छोड़कर किसी भी साधन की पूर्ति स्थिर नहीं है, विशेषकर दीर्घकाल में तो किसी भी साधन की पूर्ति स्थिर नहीं होती।

14.यह सिद्धान्त केवल मांग पक्ष पर बल देने के कारण एकपक्षीय है।

19.4 वितरण का आधुनिक सिद्धान्त अथवा मांग एवं पूर्ति सिद्धांत

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत एकपक्षीय है क्योंकि यह केवल मांग-पक्ष पर ही बल देता है। वितरण का सही सिद्धांत माँग एवं पूर्ति का सिद्धांत है जिसमें वस्तु के मूल्य-निर्धारण की ही तरह माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के क्रियाशीलन के कारण उत्पादन के साधन का मूल्य अथवा पारितोषिक निर्धारित होता है।

19.4.1 मांग-पक्ष: किसी वस्तु की मांग इसलिए होती है क्योंकि उससे उपभोक्ताओं के प्रत्यक्ष उपयोगिता मिलती है। साधन की भी एक उपयोगिता होती है पर यह व्युत्पादित (क्मतपअमक) होती है। तात्पर्य यह है कि साधन की मांग उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। कोई भी उत्पादक इससे अधिक पारिश्रमिक के रूप में किसी भी साधन को नहीं देगा। जिसकी व्याख्या सीमान्त उत्पाकदता के सम्बन्ध में की जा चुकी है।

19.4.2 पूर्ति-पक्ष: पूर्ति-पक्ष अथवा लागत-पक्ष वह न्यूनतम सीमा है जिससे कम पर कोई उत्पादन का साधन कार्य करने के लिए तैयार नहीं होता है। वह न्यूनतम सीमा साधन के त्याग पर निर्भर करती है और जैसे-जैसे किसी साधन की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे-वैसे अन्य परिस्थितियों के समान रहने पर, त्याग बढ़ता जाता है। सीमान्त त्याग की माप अवसर लागत के आधार पर करते है।

19.4.3 संतुलन: इस प्रकार किसी भी साधन का मूल्य या पारिश्रमिक सीमान्त उत्पादकता पर आधारित मांग तथा त्याग पर आधारित पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है तथा मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होगा जहाँ साधन की सीमान्त उत्पादकता उसके सीमान्त त्याग के बराबर हो जाये। इस स्थिति का प्रदर्शन रेखाचित्र नं0 19.4 के माध्यम से किया जा सकता है।

इस रेखाचित्र में सीमान्त उत्पादकता पर आधारित मांग वक्र (DD) तथा सीमान्त त्याग पर आधारित पूर्ति वक्र (SS) एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। उत्पादक OL साधनों को लगायेगा तथा OW पारिश्रमिक देगा।

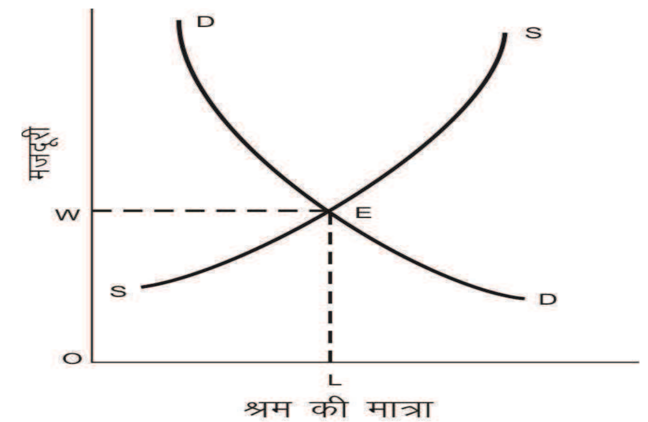

चित्र नं0 19:4

वितरण के मांग एवं पूर्ति सिद्धांत की व्याख्या विशेषरूप से मजदूरी के सन्दर्भ में की गयी है, पर यहाँ इतना स्पष्ट कर देना उचित होगा कि किसी साधन के मांग एवं पूर्ति के ऊपर बाजार की दशाओं का भी प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि किसी साधन की मांग उस साधन की सीमान्त उत्पादकता या सीमान्त आय उत्पादन के ऊपर निर्भर करता है और सीमान्त आय उत्पादन के ऊपर उस बाजार की दशाओं

का प्रभाव पड़ेगा जिसमें साधन द्वारा उत्पादित वस्तुयें बेची जायेंगी। इस प्रकार किसी साधन के मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में, माँग एवं पूर्ति की इन विभिन्न दशाओं के आधार पर, निम्नांकित प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती है -

1. जब वस्तु बाजार तथा साधन-बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता हो।
2. जब वस्तु बाजार तथा साधन-बाजार दोनों में अपूर्ण प्रतियोगिता हो।
3. जब वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता तथा साधन-बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता हो।
4. जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता तथा साधन-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो।

उपरोक्त विभिन्न परिस्थितियों में किसी साधन के मूल्य का निर्धारण की विस्तृत व्याख्या मजदूरी वाले इकाई - 22 में की गयी है।

19.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त आज भी हमें एक ऐसा उपकरण प्रदान करता है जिसकी सहायता से विभिन्न बाजार-परिस्थितियों में किसी साधन के कीमत-निर्धारण की व्याख्या की जा सकती है। व्यक्तिगत फर्म के लिए तो इस सिद्धान्त का विशेष महत्व है। चूँकि प्रत्येक फर्म अधिकतम लाभ कमाना चाहती है, अतः इसे प्रत्येक साधन के सीमान्त उत्पाद को उसकी बाजार-कीमत के साथ समीकृत करना होगा। यदि साधन की कीमत उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य से कम है तो उस साधन की अतिरिक्त इकाइयाँ लगाकर फर्म अपने लाभ को अधिकतम बना सकती है। इसके विपरीत, यदि साधन की कीमत उसके सीमान्त उत्पाद के मूल्य से अधिक है तो उस साधन को कुछ इकाइयों को सेवामुक्त करना फर्म के हित में होगा।

19.6 शब्दावली

(क) सीमान्त भौतिक उत्पादन = साधन की एक अतिरिक्त इकाई के बाद कुल उत्पादन - साधन की उस अतिरिक्त इकाई के पहले का कुल उत्पादन

(ख) सीमान्त मूल्य उत्पादन = सीमान्त भौतिक उत्पादन ग मूल्य

(ग) सीमान्त आय उत्पादन = सीमान्त भौतिक उत्पादन ग सीमान्त आय

19.7 अभ्यास प्रश्न व उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

बहुविकल्पीय प्रश्न

i. ''अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं'' किसका कथन है ?

(क) मार्शल (ख) राबर्टसन (ग) सैम्युलसन (घ) जान राविन्सन

ii. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन में अन्तर नहीं होता, क्योंकि -

(क) वृद्धिमान नियम लागू नहीं होता (ख) समता नियम नहीं लागू होता

(ग) ह्वासमान नियम नहीं लागू होता (घ) प्रति इकाई मूल्य समान होता है

iii. अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन में अन्तर होता है, क्योंकि -

(क) वृद्धिमान नियम लागू नहीं होता (ख) समता नियम नहीं लागू होता

(ग) ह्वासमान नियम नहीं लागू होता

(घ) बढ़ते उत्पादन के साथ क्रमशः मूल्य घटता है।

अभ्यास प्रश्न-1

बहुविकल्पीय प्रश्न

i. क
ii. घ
iii. घ

अभ्यास प्रश्न-2

1. सीमान्त उत्पादकता से क्या समझते हैं ? - देखें 19.3.2
2. सीमान्त भौतिक उत्पादन - देखें 19.3.2 (क)
3. सीमान्त मूल्य उत्पादन - देखें 19.3.2 (ख)
4. सीमान्त आय उत्पादन - देखें 19.3.2 (ग)
5. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन में अन्तर नहीं होता - देखें 19.3.3
6. अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन में अन्तर होता है - देखें 19.3.4

19.8 संदर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

1. Dwivedi, D.N. (2008) Micro Economi, 7th edition, Vikas Publising House.
2. Ahuja, H.L. (2010) Principles of Micro Economics, S & Chand Publishing House.

3. Peterson, L and Jain (2006) Managerial Economics,4th edition, Pearson Education.
4. Colander, D. C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
5. Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
6. Joan Robinson : The Economics of Imperfect Competition.
7. एस0एन0 लाल, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, शिव पब्लिशिंग हाउस।
8. एम0एल0 सिंह, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
9. डॉ0 एस0एन0 बंसल एवं डॉ0 अनुपम अग्रवाल, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन।
10. डॉ0 जे0सी0 पन्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन।

19.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP), सीमान्त मूल्य उत्पादन (MVP) तथा सीमान्त आय उत्पादन (MRP) की धारणा समझाइयें। पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त आय उत्पादन के वीच अन्तर स्पष्ट कीजिये
3. वितरण का माँग-पूर्ति सिद्धान्त समझाइये।

इकाई - 20:लगान या अधिशेष का सिद्धान्त

इकाई संरचना

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 लगान की अवधारणा
20.4 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त
20.4.1 रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की मान्यतायें
20.4.2 दुर्लभता या आर्थिक लगान
20.4.3 भेदात्मक लगान
20.4.4 औसत लागत के आधार पर लगान की व्याख्या
20.4.5 रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनाएँ
20.5 लगान का आधुनिक सिद्धान्त
20.5.1 लगान का माप
20.5.2 रेखा चित्रों द्वारा लगान का स्पष्टीकरण
20.6 रिकार्डो तथा लगान के आधुनिक-सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन
20.7 आभास लगान अल्पकाल में स्थिर साधनों का मूल्य निर्धारण
20.8 आर्थिक लगान, आभास लगान तथा ब्याज
20.9 लगान तथा मूल्य
20.10 सारांश
20.11 शब्दावली
20.12 अभ्या प्रश्न व उत्तर
20.13 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची
20.14. निबन्धात्मकप्रश्न

20.1 प्रस्तावना

इस 20वीं इकाई के अन्तर्गत, व्यष्टि अर्थशास्त्र के वितरण सिद्धान्त से सम्बन्धित लगान या अधिशेष के सिद्धान्त का अध्ययन किया गया है, लागत के वितरण के अन्तर्गत श्रम को मजदूरी, पूंजी को ब्याज, साहस को लाभ मिलने के साथ-साथ मुख्य रूप से भूमि को लगान मिलती है। इस इकाई में भूमि तथा उत्पादन के अन्य साधनों से सम्बन्धित अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन संतुलन की स्थितियों में लगान की व्याख्या की गयी है।

साधारण बोलचाल की भाषा में 'लगान' शब्द का अर्थ द्रव्य की उस मात्रा से है जो कि एक व्यक्ति मकान, खेत, यन्त्र, बिजली के पंखे, फर्नीचर आदि के प्रयोग के लिए इनके स्वामी को देता है। परन्तु अर्थशास्त्र में 'लगान' शब्द का अर्थ कुछ भिन्न लिया जाता है। इतना ही नहीं अर्थशास्त्र में लगान शब्द के अर्थ के बारे में क्लासिकल अर्थशास्त्रियों (रिकार्डो तथा मार्शल) का मत है कि लगान का सम्बन्ध केवल भूमि से है जबकि आधुनिक अर्थशास्त्री 'लगान' से अभिप्राय किसी उत्पादन-साधन के वास्तविक उपार्जनों एवं हस्तान्तरण उपार्जनों के अन्तर से समझते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह उत्पादन-साधन भूमि ही हो यद्यपि प्रायः हम भूमि का ही उदाहरण लेकर चलते हैं।

20.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- अल्पकालिक विशिष्टता प्राप्त उत्पादन के सभी साधनों के वास्तविक आय तथा हस्तान्तरण आय के अन्तर द्वारा लगान या अधिशेष की जानकारी प्राप्त करना।
- बदलते हस्तान्तरण आय के साथ-साथ परिवर्तित लगान को ज्ञात करना।

20.3 लगान की अवधारणा

लगान की तीन धारणाएँ है:

(अ)साधारण बोलचाल की लगान की अवधारणा।

(आ) लगान की क्लासिकल अथवा रिकार्डियन अवधारणा इसके अनुसार लगान केवल भूमि के प्रयोग का भुगतान है।

(इ) लगान की आधुनिक अवधारणा - इसके अनुसार लगान किसी भी उत्पादन-साधन को प्राप्त होने वाला वह भुगतान है जो इसके (साधन के) हस्तान्तरण उपार्जनों पर आधिक्य के रूप में उत्पन्न होता है।

अर्थशास्त्र में भूमि शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में करते हैं। भूमि के अर्थ के सम्बन्ध में क्लासिकल अर्थशास्त्रियों तथा आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मत में भिन्नता मिलती हैं। इसीलिए भूमि से प्राप्त प्रतिफल-लगान के भी सम्बन्ध में दो सिद्धान्त मिलते हैं। मार्शल द्वारा दी गयी भूमि की परिभाषा से क्लासिक अथ्रशास्त्रियों के भूमि के दृष्टिकोण पर प्रकाश पड़ता है। मार्शल के शब्दों में ''भूमि से तात्पर्य उन सब पदार्थों तथा शक्तियों से है जो प्रकृति मनुष्य की सहायता के लिये भूमि, पानी, हवा तथा गर्मी के रूप में निःशुल्क प्रदान करती है।'' इसलिए मार्शल ने लगान की परिभाषा इस प्रकार दी ''लगान वह आय है जो कि भूमि तथा प्रकृति के निःशुल्क उपहारों के स्वामी को प्राप्त होता है।'' तथा रिकार्डो के अनुसार ''लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो कि भूमि के स्वामी को मिट्टी की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के बदले दिया जाता है।'' आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने विशिष्टता के आधार पर भूमि की परिभाषा दी तथा यह प्रतिपादित किया कि उत्पादन के प्रत्येक साधन, जो विशिष्ट स्वभाव के हैं तथा जिनकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार नहीं है, उन्हें भूमि को श्रेणी में रक्खें। जिस किसी भी साधन में भूमि का गुण वर्तमान होगा उसे इस गुण के कारण लगान प्राप्त होगा। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान वह अतिरेक है जो किसी साधन को वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्री लगान को केवल भूमि तक ही सीमित नहीं रखते बल्कि विस्तृत अर्थ में प्रयोग में लाते हैं। क्लासिकल तथ आधुनिक अर्थशास्त्रियों के लगान सम्बन्धी सिद्धान्त का अलग अलग विस्तृत अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है। लगान के निम्न दो महत्वपूर्ण सिद्धान्त है।

1-रिकार्डो का लगान सिद्धान्त या लगान का प्रतिष्ठित सिद्धान्त।

2-लगान का आधुनिक सिद्धान्त।

20.4 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सुविख्यात ब्रिटिश अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो द्वारा किया गया था। रिकार्डो ने विभेदक लगान की व्याख्या की है। रिकार्डो के अनुसार लगान ''भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमिपति को भूमि की मौलिक एवं अनश्वर शक्तियों के प्रयोग के लिए चुकाया जाता है।[1] ("Rent is that portion of the produce of the earth which is paid to the landlord for the use of the original and indestructible power of the soil"- David Ricardo : *Principles of Political Economy,* p. 47.) दूसरे शब्दों में लगान वह आधिक्य है जो अधिक उपजाऊ भूमियों को कम उपजाऊ भूमियों की तुलना में प्राप्त होता है। भूमियों की उर्वरा शक्तियों में पाये जाने वाले अन्तरों के ही कारण लगान का सृजन होता है। यदि सभी भूमियाँ सजातीय होती अर्थात् समान रूप में उपजाऊ होतीं तो रिकार्डो के अनुसार लगान का सृजन ही न होता।

लगान के विभेदक स्वरूप की व्याख्या दोनों प्रकार की कृषियों- विस्तृत तथा गहन- के अन्तर्गत की जा सकती है। रिकार्डों का लगान-सिद्धान्त कुछ मान्यताओं पर आधारित है जिनका उल्लेख सिद्धांत के स्पष्टीकरण के पूर्व आवश्यक है। वे मान्यताएं निम्नांकित हैं:

20.4.1 रिकार्डों के लगान सिद्धान्त की मान्यतायें

यह सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर आधारित है:

(1)अन्य सभी क्लासिकल सिद्धान्तों की भाँति रिकार्डो का लगान सिद्धान्त दीर्घकाल में लगान के निर्धारण की व्याख्या करता है।

(2)प्रत्येक देश में एक लगान-रहित अथवा सीमान्त भूमि होती है। बढ़िया भूमियों के लगान इसी भूमि कि ऊपर की दशा में मापे जाते हैं।

(3)इस सिद्धान्त के अनुसार परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दृष्टिकोण से भी भूमि सीमित होती है।

(4)भूमि में कुछ ‘‘मौलिक एवं अविनाशी शक्तियाँ’’ पायी जाती हैं जो अन्य साधनों में नहीं होती। लगान भूमि की इन्हीं शक्तियों के प्रयोग का भुगतान होता है।

(5)लगान केवल भूमि से उत्पन्न होता है क्योंकि भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार है। पूँजी जैसे मानव-कृत साधनों पर लगान उत्पन्न नहीं होता।

(6)देश में भूमि की जुताई अवरोही क्रम में होती है। सबसे अधिक उपजाऊ एवं सबसे अच्छी स्थित भूमि पर खेती सर्वप्रथम की जाती है।

(7)भूमि पर लगान विभेदक उर्वरता एवं विभेदक स्थिति के कारण उत्पन्न होता है।

(8)कृषि में ह्रासमान प्रतिफल नियम कार्यशील होता है।

(9)देश की जनसंख्या निरन्तर बढ़ रह रही है।

इन मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए अब हम इस पर विचार करेंगे कि लगान क्यों उत्पन्न होता है तथा इसकी कितनी मात्रा होती है ? रिकार्डो ने इसके सम्बन्ध में दो कारणों का उल्लेख किया- प्रथम, यदि भूमि के गुण में समरूपता या एकरूपता हो पर माँग की तुलना में उसकी पूर्ति सीमित हो तो पूर्ति की सीमितता के कारण लगान उत्पन्न होगा। इस प्रकार के लगान को ’दुर्लभता-लगान कहा। दूसरा, यदि भूमि के विभिन्न टुकड़ों के गुण में भिन्नता हो अर्थात् या तो उर्वराशक्ति में भिन्नता हो या उनकी स्थिति में भिन्नता हो पर उत्तम कोटि की भूमि की पूर्ति उसकी माँग की तुलना में कम हो तो गुण की भिन्नता तथा पूर्ति की सीमितता के कारण लगान उत्पन्न होगा। रिकार्डो ने इसे

भेदात्मक लगान कहा। स्पष्ट है कि दोनों के ही मूल में 'पूर्ति' की सीमितता है। अब हम इन पर अलग-अलग विचार करेंगे।

20.4.2 दुर्लभता या आर्थिक लगान - रिकार्डो ने यह प्रतिपादित किया कि यदि भूमि के विभिन्न टुकड़ों में भिन्नता नहीं हो अर्थात् टुकड़े उत्पादकता तथा स्थिति की दृष्टि से समान हो तो भी लगान उत्पन्न् होगा यदि भूमि की पूर्ति दुर्लभ हो या पूर्ति सीमित हो। इस प्रकार के लगान को उन्होने शुद्ध दुर्लभता का लगान कहा। कुछ लोग शुद्ध दुर्लभता-लगान को आर्थिक लगान कहते है। रिकार्डो के अनुसार यदि पूर्ति सीमित हो तो जब तक भूमि निष्क्रिय या अप्रयुक्त रूप में पड़ी हो तब तक लगान का प्रश्न नहीं उठेगा पर यदि भूमि की माँग इतनी बढ़ जाय कि अब प्रयुक्त भूमि नहीं रह जाए फलस्वरूप अनाज की माँग में वृद्धि के कारण बाजार में प्रचलित मूल्य औसत उत्पादन-लागत से अधिक होगा, और यह औसत आय तथा औसत लागत का अन्तर ही लगान होगा। इस प्रकार दुर्लभता का लगान औसत उत्पादन लागत (जिसमें लगान नहीं सम्मिलित हैं) के ऊपर औसत आय का वह अधिक्य है जो भूमि के गुण में एकरूपता होने के बावजूद भी भूमिपति को भूमि की पूर्ति की सीमितता के कारण प्राप्त होता है। इसे निम्न चित्र 20.1 में पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में देख सकते हैं।

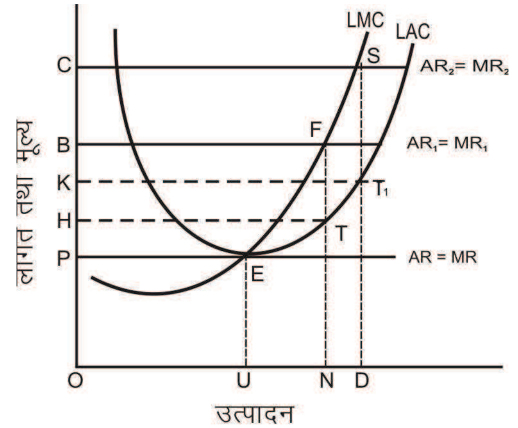

चित्र 20:1

रेखाचित्र 20.1 में LAC दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है जिसमें लगान सम्मिलित नहीं है क्योंकि रिकार्डो यह मानते हैं कि लगान उत्पादन लागत में सम्मिलित नहीं होता। उत्पादक संस्थिति की स्थिति में E बिन्दु पर होगा जबकि अन्न का मूल्य OP के बराबर हो जिससे कि उत्पादक को इतनी आय प्राप्त हो जाय कि वह पूँजी तथा श्रम के रूप में लगी हुई लागत को पूरा कर सके। यदि उस टापू पर उपलब्ध सभी भूमि प्रयोग में न आयी हों, कुछ अप्रयुक्त हों, ऐसी स्थिति में यदि जनंसख्या में वृद्धि के कारण अनाज का मूल्य OP से अधिक हो जाये तो मूल्य में इस प्रकार की वृद्धि अल्पकालिक होगी क्योंकि निष्क्रिय पड़ी हुई भूमि जोत में आयेगी और मूल्य OP को ही प्राप्त हो जायेगा। यह तब तक होता रहेगा जब तक कि निष्क्रिय भूमि जोत में रहेगी पर यदि सम्पूर्ण भूमि जोत

में आ जाय तो अनाज की माँग में वृद्धि मूल्य में स्थायी वृद्धि लायेगी। मान लीजिये मूल्य OB हो जाय, ऐसी स्थिति में प्रत्येक उत्पादक पूर्ति वक्र LMC के ही विन्दु F पर उत्पादन करेगा जिससे सीमान्त लागत मूल्य के बराबर हो जाय। ऐसी स्थिति में उत्पादक थ् बिन्दु पर संस्थिति की स्थिति में होगा जहाँ सीमान्त लागत OB मूल्य के बराबर है। उत्पादक अब ON उत्पादन करेगा। यहाँ यह स्पष्ट है कि इस स्थिति में पूँजी तथा श्रम के रूप में लगी औसत लागत (NT) तथा मूल्य (OB) के बीच अब अन्तर है। मूल्य का लागत के ऊपर यह अतिरेक ही लगान है। इन स्थिति में औसत लागत NT मूल्य NF या OB से कम है और FN-TN=FT उत्पादन की प्रति इकाई लगान है। कुल लगान (HTFB) होगा। मान लीजिए जनसंख्या में और वृद्धि हो जाने के कारण माँग बढ़ जाय फलस्वरूप मूल्य बढ़कर OG या DS हो जाय तो अब उत्पादन होगा OD होगा और प्रतिइकाई लगान OC-OK=CK होगा। कुल लगान CST_1K होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि लगान भूमि की पूर्ति की सीमितता का परिणाम है जिसके फलस्वरूप जैसे-जैसे मूल्य बढ़ता जायेगा निष्क्रिय भूमि के अभाव में लगान बढ़ता जायेगा। स्टोनियर एवं हेग के अनुसार, ‘‘दुर्लभता का लगान आवश्यक रूप से इस बात का परिणाम है कि भूमि की पूर्ति अपरिवर्तनीय है।’’

20.4.3 भेदात्मक लगान - भूमि के विभिन्न टुकड़ों में विभिन्नता पायी जाती है- उर्वरता के कारण विभिन्नता अर्थात् भूमि के किसी टुकड़े में उत्पादकता अधिक हो सकती है तो किसी में कम, इसी तरह स्थिति के कारण विभिन्नता जैसे बाजार से संन्निकटता तथा दूरी के कारण विभिन्नता। रिकार्डो ने यह प्रतिपादित किया कि इस स्थिति में भी लगान एक भेदात्मक बचत है। उत्तम तथा खराब भूमि के उत्पादन या आय के अन्तर को ही रिकार्डो ने लगान कहा। विशिष्ट भाषा में इसे रिकार्डो ने इस प्रकार व्यक्त किया ’’लगान अधि-सीमान्त तथा सीमान्त भूमि के उत्पादनों का अन्तर है।’’ यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि रिकार्डो का सीमान्त भूमि से अभिप्राय भूमि के ऐसे टुकड़ों से है जिस पर उत्पादित वस्तुओं से प्राप्त आय उत्पादन लागत के ठीक-ठीक बराबर होती है। इस प्रकार की भूमि पर कृषि करने वाले को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। उसे कोई अतिरिक्त बचत नहीं प्राप्त होगी। इस प्रकार इस भूमि से लगान मिलने का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होगा।

इस प्रश्न की व्याख्या कि लगान कितना दिया जाय, का और स्पष्टीकरण एक उदाहरण से किया जा सकता है। रिकार्डो ने एक ऐसे टापू की कल्पना की जो बिल्कुल नया है, जिसमें चार श्रेणियों की भूमि उपलब्ध हैं तथा जिनकी उर्वराशक्ति में विभिन्नता है। सभी टुकड़े एक फसल की एक ही किस्म की कृषि के लिए उपयुक्त हैं। सब भूमि पर एक ही श्रम तथा पूॅजी की लागत से कृषि होती है। इस नई जगह में जब आदमी आकर रहना शुरू करेंगे तो सबसे पहले प्रथम श्रेणी की भूमि में कृषि होती रहेगी लगान का कोई प्रश्न नहीं उठेगा क्योंकि पूर्व मान्यता के अनुसार वर्तमान मूल्य ऐसा होगा जिससे इस भूमि से मिलने वाली आय उसकी उत्पादन-लागत के बराबर होगी। इस भूमि के टुकड़े पर कोई

अतिरिक्त बचत नहीं होगी फलस्वरूप लगान का प्रश्न ही नहीं उठेगा। यह भूमि ही सीमान्त भूमि होगी।

अब जनसंख्या में यदि वृद्धि हो जाय तथा प्रथम श्रेणी की भूमि समाप्त हो जाय तो खाद्यान्नों की माँग की पूर्ति के लिए लोग दूसरी श्रेणी की भूमि पर कृषि करना शुरू कर देंगे। खाद्यान्नों की माँग की वृद्धि के कारण अब मूल्य पहले से अधिक हो जायेगा। ऐसी परिस्थिति में यदि मूल्य इतना अधिक हो कि दूसरी श्रेणी की भूमि से मिलने वाली उपज के बेचने से कम से कम उसकी उत्पादन लागत मिल जाय तब लोग दूसरी श्रेणी पर कृषि करना शुरू करेंगे, इस श्रेणी की भूमि पर कृषि के प्रारम्भ होते ही दूसरी श्रेणी की भूमि सीमान्त तथा प्रथम श्रेणी की भूमि अधि सीमान्त भूमि हो जायेगी। दूसरी श्रेणी तो 'बिना लगान की भूमि' या लगानहीन भूमि होगी क्योंकि इस पर केवल उत्पादन-लागत के बराबर ही आय प्राप्त होगी पर प्रथम श्रेणी की भूमि पर अब मूल्य बढ़ने के कारण पहले से अधिक आय प्राप्त होगी जो उत्पाद-लागत से अधिक होगी। यह अतिरिक्त आय ही जो प्रथम श्रेणी की भूमि को उत्पादन-लागत के ऊपर प्राप्त होती है, लगान होगी। उत्तरोत्तर जनसंख्या वृद्धि जो किसी देश को निम्न श्रेणी की भूमि को कृषि में लाने के लिये बाध्य करेगा जिससे उसकी खाद्यान्नों की पूर्ति बढ़ सके, अधिक उपजाऊ भूमि पर मिलने वाले लगान में वृद्धि लायेगा।''

लगान सम्बन्धी गणना की उपर्युक्त क्रिया को एक सरल संख्यात्मक उदाहरण से और स्पष्ट किया जा सकता है। उपर्युक्त उदाहरण में यदि प्रथम श्रेणी की भूमि से 20 कि. गेहूँ, दूसरी श्रेणी की भूमि से 15 कि. गेहूँ, तीसरी श्रेणी की भूमि से 10 कि. तथा चौथी श्रेणी से 5 कि. गेहूँ की उपज मिले, तथा प्रत्येक में 100 रू. की उत्पादन-लागत लगे तथा बाजार में गेहूँ का मूल्य 20 रूपया प्रति कि. हो तो प्रत्येक श्रेणी की भूमि पर लगान की गणना रूपया तथा गेहूँ के रूप में सारिणी नं. 20.1 के अनुसार होगी।

तालिका सं0 20.1

भूमि की श्रेणी	गेहूँ की उपज कि.में	लगान कि. में	गेहूँ का मूल्य 20 रू. प्रति कि.	लागत	लगान रूपये में (4-5)
1	2	3	4	5	6
I	20	20-5=15	400	100	400-100=300
II	15	15-5=10	300	100	300-100=200
III	10	10-5=5	200	100	200-100=100
IV	5	0	100	100	100-100=0

सारिणी नं. 20.1 से यह स्पष्ट है कि चौथी श्रेणी की भूमि सीमान्त भूमि है तथा अन्य श्रेणी का भूमि अधिसीमान्त है। चौथी भूमि लगान-हीन भूमि है क्योंकि इस भूमि पर केवल उत्पादन-लागत के बराबर ही आय प्राप्त होती है, कोई अतिरिक्त नहीं होता है। अधिसीमान्त भूमि की श्रेणियों पर होने वाल लगान की गणना, सीमान्त भूमि के आधार पर की गई है। इसे हम रेखा चित्र 20.2 तथा 20.3 से भी दिखा सकते हैं।

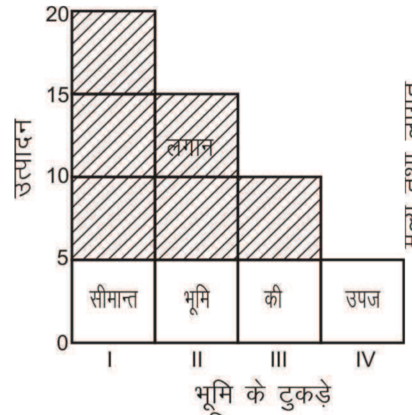

चित्र 20:2

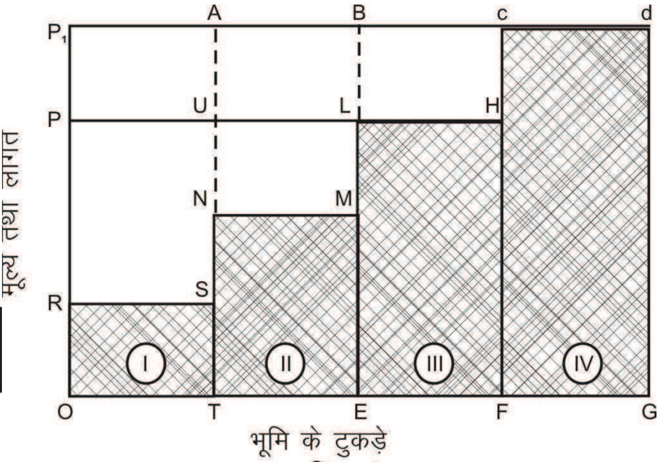

चित्र नं0 20:3

उक्त रेखाचित्र 20.2 का छायांकित तथा रेखाचित्र 20.3 का अछायांकिंत भाग लगान है।

अब तक व्याख्या से स्पष्ट है कि चाहे दुर्लभता का लगान हो या भेदात्मक लगान प्रत्येक स्थित में लगान भूमि की पूर्ति की सीमितता का परिणाम है। इस तरह यह स्पष्ट है कि मूल्य की वृद्धि के कारण लगान का जन्म होगा तथा इसमें वृद्धि होगी।

20.4.4 औसत लागत के आधार पर लगान की व्याख्या - प्रसिद्ध रिकार्डियन टापू वाले उदाहरण में भूमि की तीन श्रेणियाँ हैं- प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी तथा तृतीय श्रेणी की। औसत लागत की दृष्टि से भूमि के श्रेणी-विभाजन का आशय यह हुआ कि प्रथम श्रेणी की भूमि में द्वितीय तथा तृतीय श्रेणियों की तुलना में औसत लागत कम होगी, इसी प्रकार द्वितीय श्रेणी में तृतीय की तुलना में औसत लागत कम होगी। यहाँ हम यह मानकर व्याख्या कर रहे हैं कि केवल विस्तृत खेती का ही सहारा लिया जा रहा है। स्पष्ट है कि जिस समय लोग उस टापू पर पहली बार बसने के लिए आये होंगे उन्होंने प्रथम श्रेणी की भूमि पर कृषि करना प्रारम्भ किया होगा। उस समय अनाज का प्रचलित औसत मूल्य इतना रहा होगा जिससे कि इस भूमि पर उत्पादन करने वालों को श्रम एवं पूँजी के रूप में लगी औसत लागत के बराबर आय प्राप्त हो जाय। ऐसी स्थिति में प्रथम श्रेणी की भूमि पर उत्पादन करने वाले कृषक औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर उत्पादन करेंगे जैसा रेखाचित्र नं. 20.4 में प्रदर्शित है।

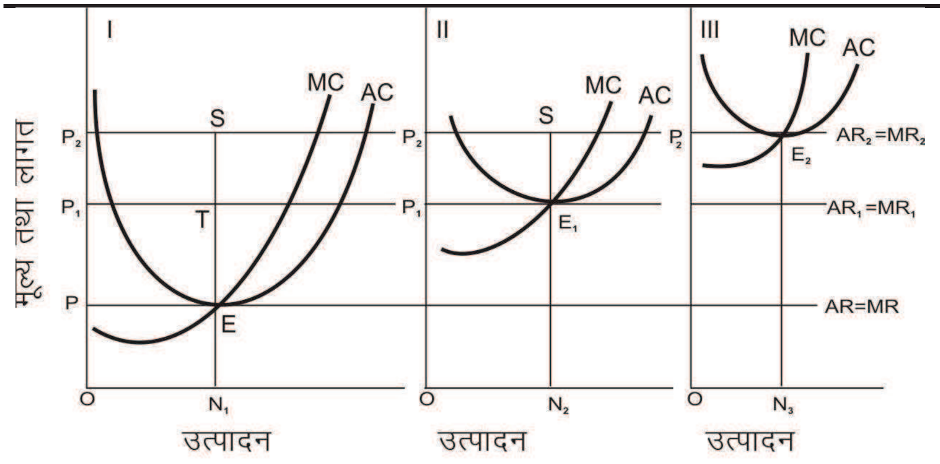

चित्र नं0 20:4

चित्र 20.4 से स्पष्ट है कि उत्पादक I को उत्पादक II की तुलना में भूमि पर OP_1 मूल्य की स्थिति में आधिक्य प्राप्त होगा, जो $N_1T-N_1E=TE$ होगा। यही प्रथम श्रेणी की भूमि का प्रति-इकाई लगान होगा। कुल लगान की मात्रा $PETP_1$ होगी। मान लीजिए माँग की वृद्धि के कारण मूल्य और बढ़ जाय और यह इतना बढ़े जाय कि तृतीय श्रेणी की भूमि की औसत लागत के बराबर हो जाय तो III भूमि भी जोत में आ जायेगी। तीसरी किस्म की भूमि पर तो आधिक्य अर्थात् लगान नहीं प्राप्त होगा पर अब दूसरी किस्म की भूमि को भी लगान मिलने लगेगा और इस मूल्य की वृद्धि के कारण प्रथम श्रेणी की भूमि के लगान में वृद्धि आ जायेगी। मान लीजिये माँग की इतनी वृद्धि होती है कि मूल्य बढ़कर OP_2 हो जाता है जो तृतीय श्रेणी की भूमि की औसत लागत के बराबर है। मूल्य के OP_2 होते ही प्रथम श्रेणी पर लगान बढ़कर $PESP_22$ हो जायेगा। अब तीसरी भूमि सीमान्त भूमि हो जायेगी। इसी बात को चित्र 20.5 से भी देखा जा सकता है, जहाँ विस्तृत तथा गहन कृषि प्रणाली साथ-साथ चल रही है। I श्रेणी पर उत्पादन करने वाला कृष्ण ON के स्थान पर ON, उत्पादन करेगा तथा लगान P_1TDM होगा तथा II श्रेणी के कृषक को लगान नहीं प्राप्त होगा, पर यदि मूल्य OP_2 हो जाय तो प्रथम श्रेणी मेंउत्पादक MO के K बिन्दु पर ON_2 उत्पादन करेगा। जिसके अनुसार III में लगान शून्य रहेगा तथा II में MP_2HL तथा I में RP_2KG लगान होगा।

20.4.5 रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनाएँ

1. रिकार्डो की मान्यता गलत है क्योंकि भूमि की शक्तियाँ न मौलिक हैं और न ही अविनाशी।
2. रिकार्डो का कृषि-क्रम ऐतिहासिक दृष्टिकोण से गलत है।
3. आलोचको के अनुसार भूमि की उत्पादकता (अथवा मौलिक उर्वरता) को उसमें (भूमि में) लगायी गयी पूँजी से पृथक नहीं किया जा सकता।

4. वास्तविक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता दुर्लभ होती है। साथ ही यह सिद्धान्त दीर्घकाल से जुड़ने कारण अल्पकाल की उपेक्षा करता है।

5. रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित लगान-रहित भूमि सभी देशों में नहीं मिलती।

6. ब्रिग्स एवं जोर्डन के अनुसार रिकार्डो का लगान सिद्धान्त लगान के वास्तविक कारण पर मौन है। क्योंकि यह सिद्धान्त यह नहीं स्पष्ट करता कि लगान उत्पन्न क्यों होता है।

7. आलोचकों के अनुसार लगान उर्वरता के कारण नहीं वरन् भूमि की दुर्लभता के कारण होता है।

8. आलोचकों के अनुसार प्रत्येक भूमि में कुछ न कुछ मौलिक उपजाऊ शक्ति अवश्य ही होती है, जबकि रिकार्डो सीमान्त भूमि में लगान नहीं मानता।

9. आलोचकों के अनुसार लगान केवल भूमि से ही उत्पन्न नहीं होता। बल्कि अन्य साधनों से भी उत्पन्न हो सकता है।

20.5 लगान का आधुनिक सिद्धान्त

लगान के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या करने का श्रेय प्रो0 जे.एस. मिल को जाता है पर वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप में इसको प्रतिपादित तथा विकसित करने का श्रेय श्रीमती जॉन राबिन्स को जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार भूमि की ही आपूर्ति सीमित नहीं है बल्कि भूमि की तरह श्रम एवं पूँजी की भी मात्रा सीमित है। रिकार्डो के अनुसार लगान एक प्रकार का अतिरेक है और आधुनिक अर्थशास्त्री भी इस बात से सहमत हैं। अन्तर इतना है कि रिकाडों अतिरेक का कारण भूमि की उर्वरता की विभिन्नता मानते हैं, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्री इसे विशिष्टता दुर्लभता, अथवा पूर्ति की सीमितता का परिणाम मानते हैं। विशिष्टता से अभिप्राय गतिशीलता के अभाव से है।

आस्ट्रियन अर्थशास्त्री वीजर ने उत्पत्ति के साधनों का वर्गीकरण दो भागों में किया- (क) विशिष्ट साधन तथा (ख) अविशिष्ट साधन। विशिष्ट साधन वे साधन हैं जिनका एक ही प्रयोग सम्भव हो अर्थात् जिनमें गतिशीलता की कमी हो। अविशिष्ट साधन वे साधन होंगे, जिनमें गतिशीलता हो तथा जिनका एक से अधिक उपयोग सम्भव हो। जहाँ तक अविशिष्ट साधनों के पारितोषिक का प्रश्न हैं, इन साधनों का पारिश्रमिक तो उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर निर्धारित होगा क्योंकियदि किसी साधन का पारिश्रमिक किसी उपयोग में इससे कम हो तो वह उस उपयोग को छोड़कर किसी अन्य दूसरे उपयोग में स्थानान्तरित हो जायेगा जहाँ उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर पारिश्रमिक मिले। पर विशिष्ट साधन को चाहे उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर, उससे कम या अधिक पारिश्रमिक मिले, हर दशा में यह उसी उपयोग में बना रहेगा। इस प्रकार किसी साधन की

विशिष्टता तथा अविष्टता का यह गुण यह निर्धारित करेगा कि उसे पारिश्रमिक उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर मिलेगा या नहीं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी भी उत्पादन के साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता से जो अधिक पारिश्रमिक मिलेगा वही लगान होगा, और वह लगान उस साधन की विशिष्टता का परिणाम होगा क्योंकिसीमान्त उत्पादकता के बराबर जो मिलेगा वह तो उस साधन की अविशिष्टता के गुण के कारण मिलेगा। इस प्रकार साधन जितना ही अधिक विशिष्ट होगा उसका लगान अंश उतना ही अधिक होगा।

माप के सम्बन्ध में आधुनिक अर्थशास्त्री अवसर आय अथवा स्थानान्तरण आय एवं वास्तविक आय का सहारा लेते हैं। अवसर लागत या आय के आधार पर लगान की प्रथम व्याख्या का श्रेय मार्शल को जाता है जिन्होंने यह प्रतिपादित किया कि किसी व्यक्तिगत भूमिपति को उसकी अवसर लागत के ऊपर जो अतिरिक्त भुगतान प्राप्त होता है, वह लगान है। बेन्हम के अनुसार ''सामान्यतया उत्पत्ति के साधन की कोई भी इकाई अपनी स्थानान्तरण आय के ऊपर जो अतिरिक्त आय प्राप्त करती है, वह लगान के स्वभाव का होता है।'' सूत्र के रूप में इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

लगान = (साघन की वास्तविक आय) - (स्थानान्तरण आय) या (AE-TE)

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार ''लगान किसी साधन की उस बचत को कहते हैं जो कि उस न्यूनतम राशि के अतिरिक्त उत्पन्न होता है जिसके कारण वह साधन उस व्यवसाय में कार्य करने के लिए आकृष्ट होता है।'' स्पष्ट है जो साधन जितना की अधिक विशिष्ट होगा उसकी स्थानान्तरण आय (TE) उतनी ही कम होगी और उसका लगान उतना ही अधिक होगा।

20.5.1 लगान का माप

अवसर-आय तथा वास्तविक आय के माध्यम से आर्थिक लगान का गणना को और स्पष्ट करने के लिए सारिणी नं. 20.2 दी गई है। इसमें भूमि के ऐसे टुकड़े का लगान ज्ञात किया गया है जिसमें गेहूँ की खेती की जा रही है, तथा यदि गेहूँ की खेती नहीं होती तो चावल की खेती होती। यदि इस पर गेहूँ की खेती होती तो 1000 रूपया वार्षिक आय प्राप्त होती, किन्तु यदि उस पर चावल की खेती की जाती तो लगान सारिणी में दी गई आय की रकमों में से कोई एक होती।

सारिणी 20.2 से स्पष्ट है कि यदि भूमि का टुकड़ा पूर्णतया विशिष्ट हो अर्थात् उस पर चावल की खेती की ही नहीं जा सके तो गेहूँ से प्राप्त कुल वास्तविक आय ही लगान होगी जैसा सारिणी में पहली अवस्था में दिखाया गया है, जब चावल के उत्पादन से आय शून्य है। पर यदि उस टुकड़े पर चावल की कृषि की जा सकती है तो वह टुकड़ा अंशतः विशिष्ट तथा अंशतः अविशिष्ट होगा। उस

साधन की विशिष्टता और अविशिष्टता का मापदण्ड यह होगा कि उससे चावल की कृषि से कितनी आय प्राप्त होती है।

सारिणी नं0 20.2

गेहूँ की खेती से आय वास्तविक आय (A.E.)	चावल की खेती से आय स्थानान्तरण आय (T.E.)	आधिक्य अथवा लगान (AE – TE)
रूपया	रूपया	रूपया
1000	0 ⟶ पूर्ण विशिष्ट	1000-0=1000
	200	1000-200=800
	400 ⟶ अंशतः विशिष्ट	1000-400=600
	600	1000-600=400
	800	1000-800=200
	1000 ⟶ पूर्ण अविशिष्ट	1000-1000=0

यदि आय अधिक प्राप्त हो सके तो वह अधिक अविशिष्ट होगा और यदि कम आय प्राप्त होगी तो अधिक विशिष्ट होगा। यदि चावल की कृषि से आय गेहूँ की आय के बराबर हो अर्थात् वास्तविक आय स्थानान्तरण आय के बराबर हो जैसा सारिणी में अन्तिम अवस्था में दिखाया गया है अर्थात् जब चावल से भी आय 1000 रूपया हो तो वह टुकड़ों पूर्ण अविशिष्ट होगा और उसे लगान नहीं मिलेगा। सारिणी के सूक्ष्म विश्लेषण से स्पष्ट है कि लगान विशिष्टता का ही परिणाम है जिसका माप वास्तविक आय तथा स्थानान्तरण आय के अन्तर के आधार पर किया जाता है। विलियम फेल्नर के शब्दों में आधुनिक सिद्धान्त का सारांश इस प्रकार है- ''लगान के प्रतिपादन का आधुनिक विचार यह है कि लगान को एक अतिरेक माना जाता है जो किसी उत्पादन के साधन की इकाई को उसी व्यवसाय में लगाये रखने के लिये आवश्यक आय के अतिरिक्त प्राप्त होता है। वास्तव में इस प्रकार की अतिरेक पूर्ति के सीमित होने का प्रतिफल है।''

20.5.2 रेखा चित्रों द्वारा लगान का स्पष्टीकरण

विभिन्न अवस्थाओं में किस प्रकार से लगान का निर्धारण होगा, इसका स्पष्टीकरण आगे दिये गये रेखाचित्रों के माध्यम से किया गया है-

(1)यदि उत्पादन का साधन पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति अथवा पूर्णतया हो तो उसकी पूर्तिरेखा आधार पर लम्ब होगी। 20.6 चित्र में व्ग् अक्ष पर उत्पादन के साधन की मात्रा तथा OY अक्ष पर उसका मूल्य प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र में OX पूर्ति-वक्र तथा DD माँगवक्र है। साधन पूर्णतया विशिष्ट है इसलिए इसकी अवसर-लागत शून्य है। तात्पर्य यह है कि वर्तमान उपयोग में OP मूल्य से

कम मिलने पर भी यह दूसरी जगह नहीं जा सकेगा। इस प्रकार उसकी कुल आय OPTL ही लगान होगी।

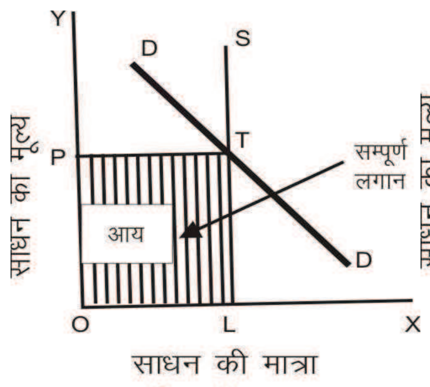

चित्र नं0 : 20:6

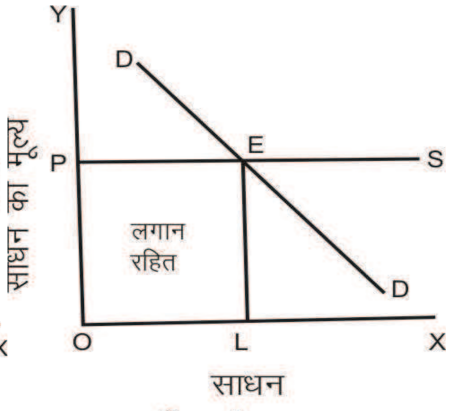

चित्र नं0 : 20:7

(2)यदि उत्पादन का साधन पूर्णतया लोचदार अथवा पूर्णतया अविशिष्ट हो तो ऐसी परिस्थिति में साधन का पूर्ति-वक्र आधार के समान्तर होगा। इस रेखाचित्र 20.7 में आधार-अक्ष पर साधन की मात्रा तथा लम्ब अक्ष पर साधन को मिलने वाला मूल्य प्रदर्शित है। इस रेखाचित्र में PS पूर्ति वक्र है जो इस बात का प्रतीक है कि दिये गये मूल्य पर कोई उत्पादक जितना चाहे उतना उत्पादन का साधन खरीद सकता है। ऐसी परिस्थिति में साधन का सम्पूर्ण आय स्थानान्तरण आय के बराबर होगी। स्थानान्तरण आय के ऊपर उसे कुछ भी बचत नहीं होगी। ऐसी स्थिति में लगान शून्य होगी।

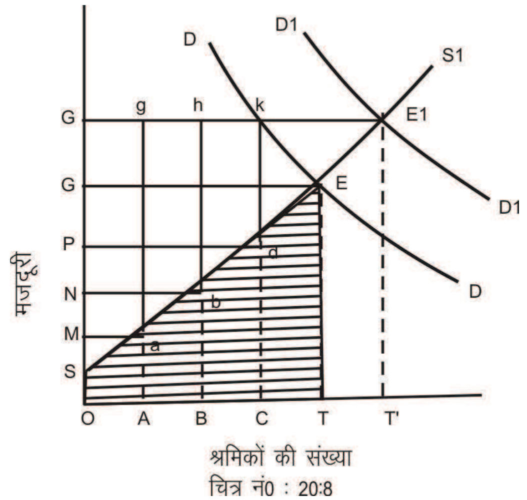

चित्र नं0 : 20:8

(3)यदि उत्पादन का साधन पूर्णतया लोचदार अथवा पूर्णतया बेलोचदार न हो, दूसरे शब्दों में उत्पत्ति का साधन पूर्ण विशिष्ट अथवा पूर्ण अविशिष्ट न हो तो, ऐसी स्थिति का स्पष्टीकरण चित्र नं. 20.8 में किया गया है-

चित्र से स्पष्ट है कि - (E संतुलन बिन्दु पर)
वास्तविक आय (कुल मूजदरी) = O G x O T = O T E G
अवसर लागत = पूर्ति रेखा SS_1 के नीचे का क्षेत्र = O S E T
श्रमिकों की OT संख्या पर लगान = O T E G-OSET = GSE

यदि माँग और बढ़ जाय जैसा (D_1, D_1 से व्यक्त है तो लगान में वृद्धि हो जायेगी तथा लगान $OT_1 E_1G_1$-OSE_1T_1=G_1SE_1 होगा।

20.6 रिकार्डों तथा लगान के आधुनिक-सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन

रिकार्डो का लगान-सिद्धान्त	लगान का आधुनिक सिद्धान्त
1.रिकार्डो लगान का कारण भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियाँ मानता है।	1.आधुनिक सिद्धान्त लगान को विशिष्टता, दुर्लभता अथवा पूर्ति की सीमितता का परिणाम मानते हैं।
2. इस सिद्धान्त के अनुसार लगान केवल भूमि का ही प्रतिफल है। इस अर्थ में यह एक संकुचित सिद्धान्त है जो केवल भूमि पर लागू होता है।	2 इनके अनुसार उत्पादन के अन्य साधन भी लगान प्राप्त कर सकते हैं। इस अर्थ में यह एक विस्तृत तथा सामान्य सिद्धान्त है जो उत्पादन के सभी साधनों पर लागू होता है।
3. रिकार्डो का सिद्धान्त पूर्ण-प्रतियोगिता तथा दीर्घकाल की मान्यता पर आधारित होने के कारण काल्पनिक है।	3.आधुनिक सिद्धान्त एक व्यावहारिक सिद्धान्त है।
4. इस सिद्धान्त के अनुसार लगान = अधि सीमान्त भूमि की आय - सीमान्त भूमि की आय	44. इस सिद्धान्त के अनुसार लगान = वास्तविक आय - स्थानान्तरण आय

20.7 आभास लगानअल्पकाल में स्थिर साधनों का मूल्य निर्धारण:

आभास लगान की धारणा के प्रतिपादन का श्रेय प्रो0 मार्शल को है। इस धारणा का प्रतिपादन मार्शल ने उन साधनों के मूल्य या पारिश्रमिक निर्धारण के लिए किया जिनकी पूर्ति अल्पकाल में

स्थिर रहती है। अल्पकाल में स्थिर साधनों जैसे मशीन द्वारा अर्जित आय को मार्शल ने आभास लगान कहा। मार्शल के शब्दों में, ''आभास लगान उस अतिरिक्त आय को कहते हैं जो उत्पादन के साधनों की पूर्ति के अल्पकाल में सीमित होने के कारण होती है।''

आभास लगान (Q_R) = TR - TVC (कुल आय - कुल परिवर्तनीय लागत)

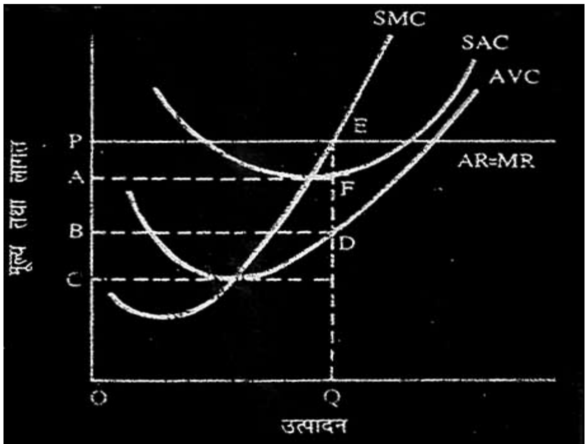

चित्र सं0 20:9

आभास लगान को स्पष्ट करने के लिए रेखाचित्र नं0 20.9 दिया गया है। चित्रानुसार दी हुयी औसत लागत वक्र (SAC), सीमान्त लागत (SMC), औसत आय (AR), सीमान्त आय (MR) तथा पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में प्रतिफल मूल्य OP है। संस्थिति उत्पादन OQ है। फर्म संस्थिति की स्थिति में E बिन्दु पर है। संस्थिति की स्थिति में

फर्म की कुल आय (TR) = OQ x OP = OPEQ

फर्म की कुल परिवर्तनीय लागत (TVC) = OQ x QD = OBDQ

यहाँ OBDQ परिवर्तनीय साधनों को फर्म में बनाये रखने की अवसर लागत होगी। इस प्रकार आभास लगान = OPEQ – OBDQ = PBDE

आभास लगान = अल्पकालीन सम्पूर्ण आय - परिवर्तनीय लागत

आभास लगान सदैव शून्य के बराबर अथवा उससे अधिक होगा, इसके ऋणात्मक होने का प्रश्न नहीं उठता। उदाहरण के लिए, जब तक मूल्य OC से अधिक होगा, आभास लगान शून्य से अधिक होगा। जब मूल्य OC होगा तो आभास लगान शून्य होगा और मूल्य OC से नीचे होने पर उत्पादक उत्पादन करेगा ही नहीं। फलस्वरूप आभास लगान का प्रश्न ही नहीं होगा। इसलिए आभास लगान शून्य से अधिक या बराबर होगा- $Q_R \geq 0$ या 1 आभास लगान परिवर्तनीय लागत से अधिक होगा।

आभास लगान को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- कुल स्थिर लागत (TFC) जो रेखाचित्र में ABDF से व्यक्त है तथा लाभ आधिक्य या असामान्य लाभ PAFE । TFC स्थिर साधन की अवसर लागत है क्योंकि यह वह प्रतिफल है जिसको कि उस साधन ने प्रतियोगिता की स्थिति में

उसी उद्योग के किसी अन्य फर्म में अर्जित किया होता तथा लाभ आधिक्य आभास लगान तथा कुल स्थिर लागत का अन्तर होगा। लाभ आधिक्य = Q_R – TFC इस प्रकार

Q_R = TFC + लाभ अधिक्य

इसलिए $Q_R \geq$ TFC तथा Q_R लाभ आधिक्य से अधिक या कम हो सकता है तथा Q_R कुल आय से कम होगा।

स्टोनियर एवं हेग आभास लगान को इस रूप में व्यक्त करते हैं।

Q_R = कुल अल्पकालीन प्राप्ति - परिवर्तनीय लागत तथा मशीन को कायम रखने की लागत दीर्घकाल में आभास लगान शून्य हो जायेगा क्योंकि फर्म संस्थिति की स्थिति में केवल सामान्य लाभ ही अर्जित करेगी।

इस प्रकार आभास लगान तथा आर्थिक लगान में अन्तर है। आभास लगान एक अल्पकालीन धारणा है जबकि आर्थिक लगान एक दीर्घकालीन अवधारणा है। आर्थिक लगान एक प्रकार का अतिरेक है जो उत्पादन की सम्पूर्ण लागत के ऊपर प्राप्त होता है, यह किसी साधन की दीर्घकाल में पूर्ति की सीमितता के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार ऐसे साधन का मूल्य जिसकी पूर्ति दीर्घकाल में स्थिर हो (विशिष्टता के आधार पर) लगान कहलायेगा तथा ऐसे साधन का मूल्य जिसकी पूर्ति अल्पकाल में स्थिर हो, आभास लगान कहलायेगा। इस प्रकार लगान दीर्घकाल में बना रहेगा जबकि आभास लगान दीर्घकाल में समाप्त हो जायेगा क्योंकि अल्पकाल में स्थिर साधन दीर्घकाल में परिवर्तनीय साधन हो जायेगा। दीर्घकाल में फर्म सामान्य लाभ ही अर्जित करेगी।

आभास लगान की धारणा को एक दूसरे रेखाचित्र नं0 20.10 के माध्यम से और स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र 20.10 में यंत्रों की संख्या OT_1 है तथा मांग रेखा D_1D_1 है। ऐसी स्थिति में यन्त्र की आय प्रतियन्त्र OT_1 है। अब यदि यन्त्र की मांग बढ़कर D_2D_2 हो जाय तो अल्पकाल में पूर्ति तो व्ज्1 ही रहेगी फलस्वरूप प्रतियन्त्र आय OT_1 से बढ़कर OP_2 हो जायेगी। यह आय का अन्तर OP_2-OP_1=P_1P_2 आभास लगान होगा। यह अल्पकाल में बना रहेगा। दीर्घकाल में यन्त्र की पूर्ति बढ़कर OT_2 हो जायेगी और यन्त्र को केवल OP_1 आय ही प्राप्त हो सकेगी। इस प्रकार आभास लगान अल्पकाल में ही होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आभास लगान आय का वह

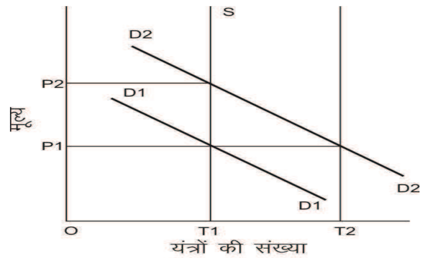

चित्र नं0 : 20:10

अतिरेक है जो उत्पत्ति के किसी साधन को अल्पकाल में उसकी पूर्ति की सीमितता के कारण मिलता है पर दीर्घकाल में पूर्ति के बढ़ने के साथ स्वतः समाप्त हो जाता है। इस प्रकार आभास लगान एक अल्पकालिक प्रतिमास है जो दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है।

20.8 आर्थिक लगान, आभास लगान तथा ब्याज

प्रायः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आर्थिक लगान, आभास लगान तथा ब्याज में क्या अन्तर है? लगान तथा आभास लगान की अलग-अलग व्याख्या ऊपर की गई जिसमें दोनों के अन्तर पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है।

1. आर्थिक लगान तथा आभास लगान दोनों ही अल्पकाल में एक समान प्रतीत होते है पर दीर्घकाल में इन दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। लगान अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में बना रहता है पर आभास लगान अल्पकाल में ही होता है। दीर्घकाल में स्वतः विलुप्त हो जाता है।

2. कुछ लोगों का यह मत है कि लगान ब्याज से अलग नहीं है क्योंकि भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिये अथवा उत्पादकता बढ़ाने के लिए अधिक पूँजी विनियोजित करनी पड़ती है। लगान पूँजी के इस विनियोजन का ही प्रतिफल है। पर यह धारणा ठीक नहीं। लगान वास्तव में पूँजी का प्रतिफल नहीं बल्कि पूँजी में भूमि के विशिष्ट लक्षण रखने का प्रतिफल अवश्य है। पूँजी का प्रतिफल तो ब्याज ही है। पूँजी पर आभास लगान मिलने का मौलिक कारण यह है कि अल्पकाल में उसमें भूमि के गुण आ गये हैं। उसकी पूर्ति बेलोच हो गयी है। जब तक यह गुण रहेगा आभास लगान मिलेगा पर दीर्घकाल में यह स्वतः समाप्त हो जायेगा।

20.9 लगान तथा मूल्य

लगान तथा मूल्य के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री एकमत नहीं रहे हैं और अब भी एकमत नहीं है। सर्वप्रथम रिकार्डो ने यह तथ्य प्रस्तुत किया कि लगान मूल्य द्वारा निर्धारित होता है, मूल्य लगान द्वारा निर्धारित नहीं होता है। रिकार्डो के शब्दो में ''अनाज का मूल्य इसलिये ऊँचा नहीं है क्योंकि लगान दिया जाता है परन्तु लगान इसलिए दिया जाता है क्योंकि अनाज महँगा है।'' लगान के विवेचन के संदर्भ में यह देखा गया कि जब जनसंख्या की वृद्धि के कारण अनाज की मांग बढ़ती है, तथा मूल्य इतना ऊँचा उठ जाता है कि कम उत्पादक भूमि से भी उत्पादन-लागत से अधिक मूल्य मिल सकता है तभी पहली भूमि से कम उत्पादक भूमि पर खेती प्रारम्भ हो पाती है। इसी के फलस्वरूप लगान उत्पन्न होता है। इसकी व्याख्या रिकार्डो के सिद्धान्त की व्याख्या करते समय विभिन्न रेखाचित्रों के माध्यम से की गयी है।

रिकार्डो के लगान-सिद्धान्त से एक और बात स्पष्ट होती है और वह यह है कि सीमान्त भूमि वह भूमि है जो लगानहीन हो तथा वस्तु का मूल्य सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है। स्पष्ट है कि सीमान्त भूमि पर चूँकि कुछ भी लगान नहीं होता, इसलिए उसकी उत्पादन-लागत में लगान नहीं होगा। इस प्रकार लगान द्वारा मूल्य प्रभावित नहीं होता है।

परन्तु व्यावहारिक जीवन में तो सीमान्त भूमि का भी लगान दिया जाता है, ऐसी परिस्थिति में यदि उत्पादक सीमान्त भूमि का लगान दे तो निश्चित रूप से वस्तु का मूल्य निर्धारित करते समय इस लगान को ध्यान देगा और यदि वह ऐसा करता है तो यह कहना गलत नहीं होगा कि लगान मूल्य निर्धारण को प्रभावित करता है। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि यदि लगान को एक व्यक्तिगत उत्पादक की दृष्टि से देखा जाय तो लगान उसकी उत्पादन-लागत में सम्मिलित होता है क्योंकि जहाँ तक एक उत्पादक अथवा फर्म का प्रश्न है उत्पति के साधन की स्थानान्तरण आय होगी; उत्पादक को लगान देना पड़ेगा और इसलिए यह कहा जायेगा कि लगान मूल्य को निर्धारित करता है। पर यदि सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से देखा जाय तो रिकार्डो का सिद्धान्त सही दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक अर्थशास्त्री भी रिकार्डो के ही मत के हैं। सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से भूमि प्रकृति का उपहार है, उसकी पूर्ति स्थिर है, उसकी स्थानान्तरण आय शून्य होती है। समाज की दृष्टि से भूमि की समस्त आय लगान होगी, लागत में प्रवेश नहीं करेगी फलस्वरूप मूल्य को प्रभावित नहीं करेगी। इस प्रकार का उत्तर व्यावहारिक दृष्टिकोण से ठीक हो सकता है पर सैद्धान्तिक कसौटी पर सही नहीं उतरता है।

लगान तथा मूल्य के सम्बन्ध की व्याख्या यदि लगान के आधुनिक सिद्धान्त के भी आधार पर की जाय तो भी यही निष्कर्ष निकलेगा कि लगान मूल्य निर्धारित नहीं करता है। लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान साधन की विशिष्टता का परिणाम है और साधन की यह विशिष्टता अल्पकाल में ही रहती है, दीर्घकाल में सामान्यतया सभी साधन अविशिष्ट हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में दीर्घकाल में किसी साधन को लगान मिलता ही नहीं है इसलिए दीर्घकाल में मूल्य-निर्धारण में लगान का प्रश्न ही नहीं उठता। लगान एवं मूल्य के सम्बन्ध में डेवेनपोर्ट ने अपना एक अलग मत दिया है जिसका समर्थन अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री भी करते हैं। उनके शब्दों में ‘‘लगान न तो मूल्य द्वारा निर्धारित होता है और न ही मूल्य लगान द्वारा निर्धारित होता है। मूल्य तथा लगान दोनों ही भूमि पर उत्पादित वस्तु की दुर्लभता होते हैं। दोनों में ही परिवर्तन उत्पादित वस्तु की सापेक्ष दुर्लभता के परिवर्तनों के कारण होता है।‘‘

20.10 सारांश

अनेक आलोचनाओं के बावजूद रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को आर्थिक साहित्य में सम्माननीय स्थान प्राप्त है। पश्चिमी देशों में रिकार्डो के लगान सिद्धान्त ने व्यवहारिक नीति के निर्माण पर गहरा प्रभाव डाला है। इस सिद्धान्त ने जमींदारी प्रथा के परान्भोजी स्वरूप पर बुद्धिजीवियों का ध्यान

केन्द्रित किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार लगान जमींदार द्वारा किये गये किसी प्रयास के कारण उत्पन्न नहीं होता। लगान के इसी स्वरूप के कारण अमरीका के हेनरी जॉर्ज जैसे उग्रवादी विचारकों ने लगान की पूर्ण जब्ती तक का समर्थन किया था। उन्होने यह भी कहा था कि यदि सम्भव हो तो राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय। यह रिकार्डो के सिद्धान्त का प्रभाव ही था जिसके कारण विश्व के बहुत-से देशों में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया है। इस सिद्धान्त की दूरगामी उपलक्षणाओं के ही कारण समाजवादी लेखक इसको सम्माननीय स्थान देते हैं।

20.11 शब्दावली

वास्तविक आय - उत्पादन साधन को मिलने वाली वास्तविक आय।

हस्तान्तरण आय - उत्पादन साधन को दूसरे क्षेत्र में हस्तान्तरित करने पर साधन को प्राप्त होने वाली आय।

आभास लगान - उत्पादन साधन को मिलने वाली वह अतिरिक्त आय जो अल्पकाल में साधनों की सीमित पूर्ति के कारण होती है।

20.12 अभ्यास प्रश्न-1

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

i. ‘‘लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमिपति को भूमि की मौलिक एवं अनश्वर शक्तियों के प्रयोग के लिए चुकाया जाता है’’ किसका कथन है ?
(क) राविन्सन (ख) रिकार्डो (ग) कीन्स (घ) पीगू

ii. यदि कोई श्रमिक पूर्णतया विशिष्ट है तथा यदि उसकी आय 500 रूपया है तो-
(क) लगान शून्य होगी (ख) लगान 500 रूपया होगी
(ग) मजदूरी 500 रूपया होगी (घ) 300 रू0 मजदूरी तथा 200 रू0 लगान

iii. अर्थशास्त्र में लगान से सम्बन्धित है -
(ख) आर्थिक लगान (ख) प्रसंविदा लगान
(ग) आर्थिक तथा प्रसंविदा लगान (घ) इसमें से कोई नहीं

अभ्यास प्रश्न-1 (उत्तर)

i. ख
ii. ख
iii. क

अभ्यास प्रश्न - 2

1. भेदात्मक लगान से आप क्या समझते हैं - देखें 20.4.3

2. आभास लगान अल्पकाल से सम्बन्धित और यह दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है - देखें 20.7

3. लगान तथा मूल्य को स्पष्ट कीजिए - देखें 20.9

20.13 संदर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

- Dwivedi, D.N. (2008) Micro Economi, 7th edition, Vikas Publising House.
- Ahuja, H.L. (2010) Principles of Micro Economics, S & Chand Publishing House.
- Peterson, L and Jain (2006) Managerial Economics,4th edition, Pearson Education.
- Colander, D. C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
- David Ricardo : Principles of Political Economy.
- Stonier & Hauge : A Text Book of Economic Theory.
- एम0एल0 सिंह, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
- डॉ0 एस0एन0 बंसल एवं डॉ0 अनुपम अग्रवाल, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन।
- डॉ0 जे0सी0 पन्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन।

20.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1.लगान एक विभेदात्मक वचत है, स्पष्ट कीजिये।

2.रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की व्याख्या उस स्थिति में कीजिये

(क)जब भूमि के सभी टुकड़े समान उर्वरता के हों, तथा

(ख)जबकि विभिन्न टुकड़ों की उर्वरता में भिन्नता हो।

व्याख्या करते समय यह भी स्पष्ट करें कि मूल्य में वृद्धि के साथ-साथ लगान में भी वृद्धि होती जायेगी।

3.अनाज का मूल्य इसलिये ऊँचा नहीं है क्योंकि लगान ऊँचा है पर लगान इसलिये ऊँचा हैं क्योंकि अनाज का मूल्य ऊँचा है, स्पष्ट कीजिये।

4.लगान एक प्रकार का अतिरेक है। रिकार्डो तथा आधुनिक दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए इस कथन की व्याख्या कीजिये।

5.निम्नांकित को स्पष्ट कीजिये -

(क)आभास लगान एक अल्पकालिक प्रतिभास है जो दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है।

(ख)आभास लगान शून्य से अधिक या उसके बराबर हो सकता है, पर कभी भी ऋणात्मक नहीं होगा।

(ग)लगान किसी साधन की वास्तविक आय तथा स्थानान्तरण आय का अन्तर है।

इकाई – 21 ब्याज का सिद्धान्त

इकाई संरचना

21.1 प्रस्तावना
21.2 उद्देश्य
21.3 कुल ब्याज तथा शुद्ध ब्याज
21.4 मार्शल या प्रतिष्ठित ब्याज का सिद्धान्त
21.4.1 बचत की पूर्ति
21.4.2 बचत की माँग
21.4.3 संस्थिति दर
21.5 ऋण योग्य कोष सिद्धान्त या नव-परम्परावादी सिद्धान्त
20.5.1 बचत
20.5.2 बैंक साख
20.5.3 असंचय
20.5.4 अनिवेश
20.5.5 ऋण योग्य कोष की माँग
20.5.6 ब्याज का निर्धारण
21.6 ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त
21.6.1 मुद्रा की माँग
21.6.1.1 सौदा उद्देश्य
21.6.1.2 दूरदर्शिता उद्देश्य
21.6.1.3 सट्टा उद्देश्य
21.7 तरलता जाल
21.7.1 मुद्रा की पूर्ति
21.7.2 ब्याज दर का निर्धारण
21.8 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त
21.8.1 विनियोग बचत(IS) वक्र
21.8.2 LM वक्र
21.8.3 सन्तुलन
21.9 सारांश
21.10 शब्दावली
21.11 अभ्यास प्रश्न व उत्तर
21.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
21.13 निबन्धात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

व्यष्टि अर्थशास्त्र के खण्ड-6 के वितरण सिद्धान्त से सम्बन्धित ब्याज का सिद्धान्त 21वीं इकाई है। उत्पादन के लागत वितरण में जिस तरह भूमि को लगान, श्रम को मजदूरी तथा साहसी को लाभ मिलता है, ठीक उसी तरह पूँजी को ब्याज मिलता है। अभी तक वितरण सिद्धान्त में सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त तथा लगान सिद्धान्त की व्यख्या क्रमशः 19वें एवं 20वें इकाई में कर चुके हैं। इस इकाई में ब्याज सम्बन्धित व्याख्या के साथ-साथ इसके विभिन्न सिद्धान्तों को समझेंगे।

वस्तुतः ब्याज, पूँजी या ऋण या ऋणयोग्य कोषों के उपयोग के लिए दिया गया पुरस्कार है। अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की परिभाषा भिन्न-भिन्न दृष्टिकाणों से दी है, किन्तु उसमें कोई आधारभूत अन्तर नहीं है। प्रो0 मार्शल के अनुसार, ‘‘ब्याज किसी बाजार में पूँजी के उपयोग की कीमत है।’’ प्रो. विकसैल के अनुसार ‘‘ब्याज वह भुगतान है जो पूँजी के उधारकर्ता द्वारा इसकी उत्पादकता के कारण चुकाया जाता है। यह बचतकर्ता के उपभोग-स्थगन पर पुरस्कार भी है।’’ प्रो. मेयर्स के कथनानुसार, ‘‘ब्याज वह कीमत है जो ऋणयोग्य कोष के प्रयोग के लिए चुकाया जाता है’’। प्रो. कारवर के अनुसार, ‘‘व्याज वह आय है जो पूँजी के स्वामी को प्राप्त होती है’’। प्रो. केयरनक्रॉस का कहना है कि ‘‘ब्याज वह कीमत है जो ऋण के एवज में चुकाया जाता है’’। डॉ. केन्ज ब्याज को विशुद्ध मौद्रिक विषय मानते हैं। उनके कथानुसार,’’ब्याज वह पारितोषिक है जो लोगों को अपना धन अपसंचित मुद्रा को छोड़ अन्य किसी रूप में रखने के लिए चुकाया जाता है’’। इस तरह इन सभी कथनों में ब्याज को मौद्रिक पूँजी के उपयोग का भुगतान माना गया है।

21.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- ब्याज का तात्पर्य एवं उपयोगिता समझना।
- ऋण योग्य कोष (पूँजी) का मूल्य निर्धारित करना।
- बचत की पूर्ति तथा ब्याज दर में सम्बन्धों की व्याख्या करना।
- बचत तथा निवेश के फलनात्मक सम्बन्धों को समझना।

21.3 कुल ब्याज तथा शुद्ध ब्याज

ऋणदाता ऋणी से जो आय वसूल करता है, वह सारी की सारी शुद्ध ब्याज नहीं होती। इस आय को कुल ब्याज कहना अधिक उपयुक्त होगा। शुद्ध ब्याज के अलावा कुल ब्याज में और भी बहुत से भुगतान सम्मिलित होते हैं। कुल ब्याज में चार मुख्य तत्व पाये जाते हैं: (1) शुद्ध ब्याज-शुद्ध

ब्याज तो पूँजी को उधार देने का पुरस्कार है। (2) जोखिम के विरूद्ध बीमा - कुल ब्याज का एक अंश उस जोखिम का भुगतान होता है जो ऋणदाता द्वारा ऋण देते समय उठाया जाता है। ऋण देते समय जितना जोखिम कम होता है, उतना ही ब्याज दर कम होती है। (3) असुविधा का भुगतान - ऋण देते समय ऋणदाता को असुविधा का अनुभव होता है उदाहरणार्थ, यदि ऋणदाता पाँच वर्ष के लिए अपना धन उधार देता है तो इस अवधि के बीच उसका धन अवरूद्ध हो जाता है। वह इस धन का अपने लिए कोई प्रयोग या निवेश नहीं कर सकता है। वह निवेश की इस असुविधा के कारण शुद्ध ब्याज में 1 अथवा 2 प्रतिशत की वृद्धि कर देता है। ऐसा करके वह अपनी असुविधा की क्षतिपूर्ति कर लेता है। (4) प्रबन्धक का पारिश्रमिक - प्रत्येक ऋण दाता को ऋण-प्रबन्ध पर कुछ न कुछ व्यय करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, ऋणदाता को प्रत्येक ऋणी के लिए अलग से खाता खोलना पड़ता है और समय-समय पर उसकी देखभाल करनी पड़ती है। यह भी सम्भव है कि ऋण वापस लेने से पूर्व उसे कई बार ऋणी का दरवाजा खटखटाना पड़े । इन सभी के कारण ऋणदाता को अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है और वह शुद्ध ब्याज में 1 अथवा 2 प्रतिशत की वृद्धि करके अपनी क्षतिपूर्ति कर लेता है। इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुल ब्याज में से यदि तीनों भुगतानों (अर्थात जोखिम का भुगतान, असुविधा का भुगतान तथा प्रबन्ध का भुगतान) को घटा दिया जाये तो शेष शुद्ध ब्याज बच रहेगा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में ऋणियों एवं ऋणदाताओं को बाजार के बारे में पूर्ण जानकारी होती है। परिणामतः समूचे बाजार में शुद्ध ब्याज की दर समान होती है। हमारे अध्ययन का सम्बन्ध शुद्ध ब्याज से है न कि कुल ब्याज से ।

अब हम ब्याज के चार महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का अध्ययन करेगे।

21.4 मार्शल या प्रतिष्ठित ब्याज का सिद्धान्त

अथवा

ब्याज का बचत-निवेश सिद्धान्त

अथवा

ब्याज का माँग-पूर्ति सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो0 मार्शल ने किया, इसीलिए इसे 'मार्शल का ब्याज सिद्धान्त' कहा जाता है। पीगू, कैसेल,वालरा, टॉसिंग आदि अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया। इन सिद्धान्तों के अनुसार किसी दिए हुए समय में ब्याज-दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ बचत की माँग, बचत की पूर्ति के बराबर हो। इसीलिए इस सिद्धान्त को माँग-पूर्ति का सिद्धान्त भी कहते हैं। किसी अवधि विशेष में ब्याज की संस्थिति-दर ज्ञात करने के लिए प्रो0 मार्शल ने उस अवधि से सम्बन्धित बचत की माँग तथा पूर्ति सारिणी को आवश्यक बताया।

21.4.1 बचत की पूर्ति - बचत का अर्थ है-(Y-C) अर्थात् आय का वह भाग जो उपभोग व्यय निकालने के बाद शेष रहता है, बचत कहलाता है। बचत उपभोग स्थगन, प्रतीक्षा, समय अधिमान आदि वास्तविक तत्वों पर निर्भर करती है। यह बात हम सीनियर, मार्शल तथा फिशर के ब्याज दर सिद्धान्तों से जानते हैं। इन वास्तविक तत्वों की पूर्ति में परिवर्तन आने से बचत की मात्रा में भी परिवर्तन आता है। ब्याज दर में वृद्धि होने से बचत की मात्रा में भी बृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में, ब्याज की विभिन्न दरों पर बचत के भी विभिन्न स्तर होंगे। अतः हम यह सकते हैं कि बचत और ब्याज की दर में सीधा सम्बन्ध होता है। इसी कारण बचत पूर्ति वक्र का ढाल धनात्मक होता है और पूर्ति वक्र नीचे से ऊपर की ओर उठी हुई होती है।

जहॉ S = f(r)

S = बचत की मात्रा, f = फलन (Function), r = ब्याज की दर (Rate of Interest)

21.4.2 बचत की माँग - बचत की माँग पूँजीगत पदार्थों के लिए की जाती है। कुछ परिस्थियों में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी बचत की माँग की जाती है। परन्तु यहाँ हम यह मानकर चल रहे हैं कि बचत की माँग पूँजीगत पदार्थों के लिए ही की जाती है। अन्य साधनों को स्थिर रखकर जब हम पूँजी की इकाइयों को बढ़ाते जाते हैं तो एक बिन्दु के बाद पूँजी की सीमान्त उत्पादकता लगातार घटती जाती है। एक उद्यमी पूँजी की माँग उसी समय तक करेगा जब पूँजी के बदले लिया जाने वाला पारितोषिक ;ब्याज दरद्ध उसकी सीमान्त उत्पादकता के समान हो जाय। इस बिन्दु के बाद जब ब्याज दर से भी पूँजी की सीमान्त उत्पादकता गिर जाती है तो पूँजी की माँग नहीं होगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पूँजी की माँग प्रमुख रूप से सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। यदि सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर से अधिक हो तो पूँजी की माँग कम होगी। अतः निवेश की मात्रा और ब्याज दर में विपरीत या ऋणात्मक सह-सम्बन्ध होता है। बचत की माँग का वक्र बायें से दायें नीचे गिरता है और इसका ढाल ऋणात्मक होता है।

जहाँ I = f(r)

I = निवेश (Investment), f = फलन (Function), r = ब्याज दर (Rate of Interest)

21.4.3 संस्थिति दर . ब्याज दर निर्धारण को हम एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। तालिका 21.1 में हमने ब्याज दर, पूँजी की पूर्ति और माँग को दर्शाया है। सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जहाँ कि पूँजी की पूर्ति और पूँजी की माँग समान हो। जिसे चित्र 21.1 में देख सकते हैं। जहाँ संस्थिति की स्थिति में ब्याज दर 3 प्रतिशत है।

तालिका – 21.1

ब्याज दर (Rate of Interest)	बचत पूर्ति (Supply of Savings)	बचत माँग (Demand for Savings)
5%	500	100
4%	400	200
3%	300	300
2%	200	400
1%	100	500

यहाँ **S = f(r)** **संतुलन की दशा में S=I**

I = f(r) **निर्धारित ब्याज दर 3 प्रतिशत है**

उक्त फलनात्मक सम्बन्ध को हम बचत की पूर्ति (रेखा चित्र 21.2) तथा बचत की माँग (रेखा चित्र 21.3) तथा संस्थिति ब्याज दर (रेखा चित्र 21.4) के माध्यम से भी दिखा सकते हैं।

उक्त रेखाचित्र 21.4 से स्पष्ट है कि बचत की माँग प्रदर्शित करने वाला वक्र II तथा पूर्ति वक्र SS परस्पर E बिन्दु पर बराबर हैं। मार्शल के अनुसार यही संस्थिति ब्याज दर है। Or_1संस्थिति ब्याज दर है जिस पर बचत की माँग तथा बचत की पूर्ति OQ है। Or_2 उस समय में संस्थिति-दर होगी जिसमें माँग I_1I_1 तथा पूर्ति SS हो। ऐसा हो सकता है कि किसी अन्य अवधि में ये वक्र

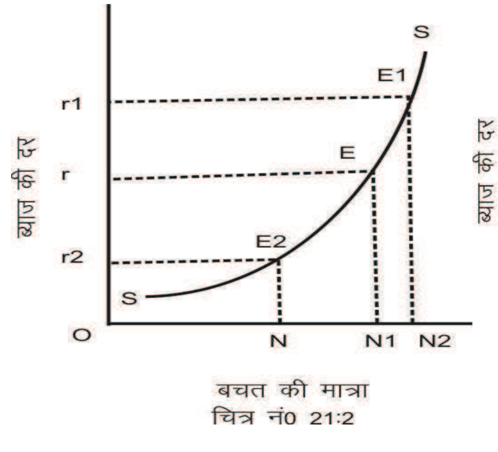

बचत की मात्रा
चित्र नं0 21:2

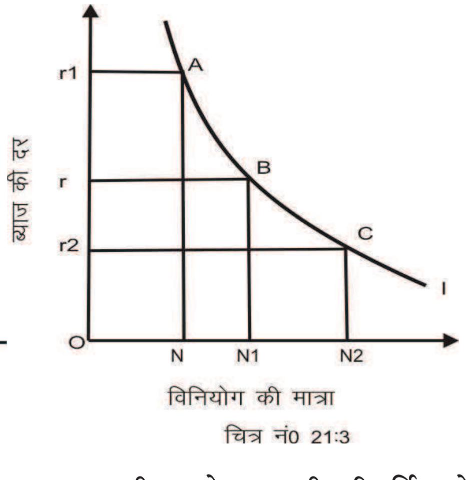

विनियोग की मात्रा
चित्र नं0 21:3

ही ’परिवर्तित हो जायें फलस्वरूप निर्धारित संस्थिति-ब्याज दर भी अपने आप ही परिवर्तित हो जाय। स्थैतिक स्थिति में इन वक्रों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होगा। फलस्वरूप इन वक्रों

का कटान-बिन्दु तथा इस बिन्दु द्वारा प्रदर्शित संस्थिति ब्याज दर भी पूर्ववत उसी स्तर पर बनी रहेगी। स्पष्ट है कि यदि प्रवैगिक दशा में किसी कारण से विनियोग-माँग बढ़ जाये जैसे I_1 I_1 से व्यक्त है तो ब्याज की दर (बचत की पूर्ति रहने पर) बढ़कर Or_2 हो जायेगी।

21.4.4 आलोचनाएँ - प्रो. कीन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त की निम्नलिखित आलोचनाएँ की हैं -

1. **पूर्ण रोगार की मान्यता :** यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की गलत मान्यता पर आधारित है, जबकि वास्तविक जीवन में अपूर्ण रोजगार की स्थिति पायी जाती है।
2. **बचत तथा निवेश पर ब्याज का प्रभाव :** प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार बचत और निवेश दोनों ही ब्याज दर पर निर्भर करते हैं। कीन्स इस बात से सहमत नहीं हैं। कीन्स के अनुसार बचत ब्याज दर की अपेक्षा प्रमुख रूप से राष्ट्रीय आय पर ही निर्भर करती है और निवेश ब्याज दर की अपेक्षा प्रमुख रूप से पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करता है।
3. **बचत और निवेश में सन्तुलन:** प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार बचत और निवेश में सन्तुलन ब्याज दर के माध्यम से होता है। परन्तु कीन्स के अनुसार यह सन्तुलन ब्याज दर की अपेक्षा आय में होने वाले परिवर्तनों के माध्यम से होता है।
4. **पूँजी की संकुचित धारणा :** प्रतिष्ठित विचारधारा के अनुसार केवल वर्तमान आय से प्राप्त होने वाली बचत को ही पूँजी में सम्मिलित किया जाता है। जबकि पिछली संचित राशि और बैंक साख दोनों ही पूँजी की पूर्ति के प्रमुख स्रोत हैं।
5. **अनिर्धारित सिद्धान्त :** कीन्स के अनुसार ब्याज दर बचत की पूर्ति और बचत की माँग की सापेक्षिक शक्तियों पर निर्भर करती है। जब तक ब्याज का पता न हो बचत और निवेश निर्धारित नहीं किया जा सकता और जब बचत और निवेश ही निर्धारित नहीं होगें तो ब्याज दर किस प्रकार निर्धारित होगा ? अतः यह ब्याज का एक अनिर्धारित सिद्धान्त है।
6. **उपभोग और निवेश सम्बन्ध की उपेक्षा:** इस सिद्धान्त में उपभोग के प्रभाव को बिल्कुल छोड़ दिया गया है। कीन्स का कहना है कि जब उपभोग माँग कम होती है तो अर्थव्यवस्था की समग्र मांग भी कम होती है। समग्र माँग कम होने से निवेश के लिए प्रोत्साहन भी कम होता है।
7. वास्तविक सिद्धान्त : इस सिद्धान्त में ब्याज दर को निर्धारित करने वाले केवल वास्तविक तत्वों को ही शामिल किया गया है। जैसे उत्पादकता, त्याग, प्रतीक्षा, समय अधिमान

आदि। मौद्रिक तत्वों की उपेक्षा की गयी है। कीन्स ने अपने ब्याज दर सिद्धान्त में मौद्रिक तत्वों को ही शामिल किया है।

8. **मुद्रा निष्क्रिय :** प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि मुद्रा निष्क्रिय होती है अर्थात् मुद्रा आर्थिक चर मूल्यों को प्रभावित नहीं करती। जबकि कीन्स के अनुसार मुद्रा सक्रिय होती है क्योंकि ब्याज दर मुद्रा की पूर्ति और मुद्रा की माँग द्वारा निर्धारित होती है।

9. **बचत अनुसूची और निवेश अनुसूची** : प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार निवेश में कमी अथवा वृद्धि का बचत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जबकि वास्तव में यदि निवेश कम हो जाता है तो आय कम हो जायेगी और इसके फलस्वरूप बचत भी कम हो जायेगी।

अतः ब्याज निर्धारण का यह सिद्धान्त भी आदर्श नहीं कहा जा सकता।

21.5 ऋण योग्य कोष सिद्धान्त या नव-परम्परावादी सिद्धान्त

ऋण योग्य कोष सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय स्वीडन के अर्थशास्त्री विकसेल , ओहलिन तथा मिर्डल को जाता है। इस सिद्धान्त का समर्थन अंग्रेज अर्थशास्त्री प्रो0 रॉबर्टसन ने किया है। इस सिद्धान्त में ब्याज दर निर्धारण करते समय वास्तविक तत्वों के अलावा मौद्रिक तत्वों जैसे-मुद्रा का संचय, असंचय तथा बैंक साख आदि को भी शामिल किया गया है साथ ही वास्तविक तत्व-उत्पादकता, प्रतीक्षा, बचत आदि भी हैं। इस प्रकार ऋण योग्य कोष सिद्धान्त प्रतिष्ठित सिद्धान्त के ऊपर एक सुधार है। ऋण योग्य कोष की माँग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा ही ब्याज दर का निर्धारण किया जाता है। दूसरे शब्दों में, ब्याज दर वह कीमत है जो ऋण योग्य कोष की मांग व पूर्ति को सन्तुलित करती है।

ऋण योग्य कोष की पूर्ति :- ऋण योग्य कोष की पूर्ति के चार संकेत बतायें गये हैं -

21.5.1 बचत - आय और उपभोग व्यय का अन्तर बचत कहलाती है अर्थात् उपभोग करने के बाद जो आय रह जाती है, वही बचत है। बचतें व्यक्तिगत क्षेत्र, व्यावसायिक क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र तीनों द्वारा की जाती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार बचत ब्याज दर पर निर्भर करती है, परन्तु आलोचकों का कहना है कि बचत प्रमुख रूप से राष्ट्रीय आय पर निर्भर करती है। ब्याज दर भी बचत का दूसरा प्रमुख निर्धारक तत्व है। कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना था कि वर्तमान बचत वर्तमान आय पर निर्भर करती है परन्तु रॉबर्टसन के अनुसार वर्तमान बचत पिछली आय पर निर्भर करती है क्योंकि जुलाई मास का व्यय जून मास की आय पर भी निर्भर करता है। अतः जुलाई की बचत भी जून की आय पर निर्भर करेगी। व्यावसायिक बचतों पर अन्य बातों के अतिरिक्त ब्याज दर का भी प्रभाव पड़ता है। यह स्वाभाविक है कि ब्याज दर अधिक होगी तो फर्में अधिक बचत करेंगी और

ब्याज दर कम होगी तो फर्में कम बचत करेंगी। इस प्रकार ब्याज दर और बचत पूर्ति का सीधा सम्बन्ध है।

21.5.2 बैंक साख - ऋण योग्य कोष की पूर्ति का दूसरा प्रमुख साधन बैंक साख है। व्यापारिक बैंक साख का निर्माण कर सकते हैं। ब्याज की एक न्यूनत्तम दर के बाद बैंक साख ब्याज सापेक्ष होती है। यह भी स्वाभाविक है कि ब्याज की ऊँची दर पर बैंक अधिक रूपया उधार देंगे और ब्याज की नीची दर पर बैंक कम रूपया उधार देंगे। इस प्रकार ब्याज दर और बैंक साख का भी सीधा सम्बन्ध है।

21.5.3 असंचय - प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मुद्रा को निष्क्रिय मानते हैं अर्थात मुद्रा का केवल एक ही कार्य विनिमय माध्यम है। परन्तु वास्तविकता यह है कि मुद्रा का एक और प्रमुख कार्य है- संचय। संचय से अभिप्राय सम्पत्ति के उस भाग से है जिसे लोग मुद्रा के रूप में रखना चाहते है। यदि ब्याज दर अधिक होती है तो संचय की हुई राशि असंचय कर दी जाती है और यदि ब्याज दर कम हो तो असंचय भी कम होगा।

21.5.4 अनिवेश या विनिवेश -अनिवेश का यह अर्थ नहीं कि उद्योगपति चलता हुआ कारखाना बन्द कर दें परन्तु यदि उद्योग में किसी नयी तकनीक के आ जाने से मशीन पुरानी हो जाय और लाभ दर की आशाएँ अधिक न हों तो उद्यमी उस उद्योग को नयी परिस्थितियों के अनुकूल नहीं बनाता और कारखाने को बेचकर उधार ली गयी पूँजी का भुगतान कर देता है। इस स्थिति को अनिवेश कहा जा सकता है। जिस समय बाजार में व्याज की दर अधिक होती है तो अनिवेश अधिक होता है और ब्याज की दर कम हो तो अनिवेश कम होगा।

ऋण योग्य कोष की पूर्ति

SL	=	**S + M + DH + DI**
SL	=	**Supply of Loanable Funds (ऋण योग्य कोष की पूर्ति)**
S	=	**Saving (बचत)**
M	=	**Bank Credit (बैंक साख)**
DH	=	**Dishoarding (अपसंचय)**
DI	=	**Dis-investment (अनिवेश)**

21.5.5 ऋण योग्य कोष की मांग - ऋण योग्य कोष की मांग प्रमुख रूप से तीन कारणों से की जाती है।

1. निवेश : ऋण योग्य कोषों की माँग प्रमुख रूप से निवेश के लिए की जाती है। पूँजी की माँग उद्यमी द्वारा इसलिए की जाती है कि पूँजी उत्पादक होती है और उद्यमी यह अपेक्षा करता है कि वह पूँजी उधार लेकर निवेश कर दे जिससे उसे प्रतिफल प्राप्त हो। इसी प्रतिफल से वह

उधार ली गई पूँजी पर ब्याज का भी भुगतान कर देता है। ब्याज की दर कम होने पर ऋण योग्य कोषों की निवेश के लिए अधिक मांग होगी और ब्याज दर अधिक होने पर ऋण योग्य कोषों की निवेश के लिए मांग कम होगी।

2. उपभोग : कुछ लोग स्वभाव से फिजूलखर्ची होते हैं और वह अपनी आय से अधिक भाग उपभोग पर खर्च करते हैं जिसके कारण उन्हें ऋण लेना पड़ता है। कुछ लोग अधिक खर्च करने के लिए विवश होते हैं क्योंकि आय बहुत कम होती है। कुछ परिस्थितियों में ऋण लेना पड़ता है। जैसे सामाजिक संस्कारों को मनाने में बहुत पैसा खर्च हो जाता है। ब्याज दर कम होने पर उपभोग ऋण अधिक लिये जाते है।
3. संचय : संचय के लिए भी ऋण योग्य कोषों की मांग की जाती है। व्यक्ति अनेक कारणों से संचय करना चाहता है। ब्याज दर कम होने पर संचय माँग अधिक होगी।

(DL) ऋण योग्य कोषों की कुल मांग = I + C + H

यहाँ **DL = Demand for Loanable Funds ऋण योग्य कोषों की कुल माँगद्ध**

I = Investment (निवेश)

C = Consumption उपभोग)

H = Hoarding (संचय)

साम्य की स्थिति में,

$$S_L = D_L$$

ऋण योग्य कोष की पूर्ति त्र ऋण योग्य कोष की मांग

S + M + DH + DI = I + C + H

S + M = (I – DI) + (H – DH) + C

अर्थात्, बचत + बैंक मुद्रा = निबल निवेश + निबल संचय + उपभोग

(S-C) + M = (I-DI) + (H – DH)

अर्थात, शुद्ध बचत + बैंक मुद्रा =निबल निवेश + निबल संचय

या **Net Saving + Bank Credit = Net Investment + Net Hoarding**

21.5.6 ब्याज दर का निर्धारण - उपर्युक्त विश्लेषण में ऋण कोष मांग वक्र तथा ऋण योग्य कोष पूर्ति वक्र प्राप्त होते है जो चित्र 21.5 में व्याज दर का निर्धारण बिन्दु E पर करते हुए बाजार ब्याज दर को Or के बराबर निश्चित करते हैं।

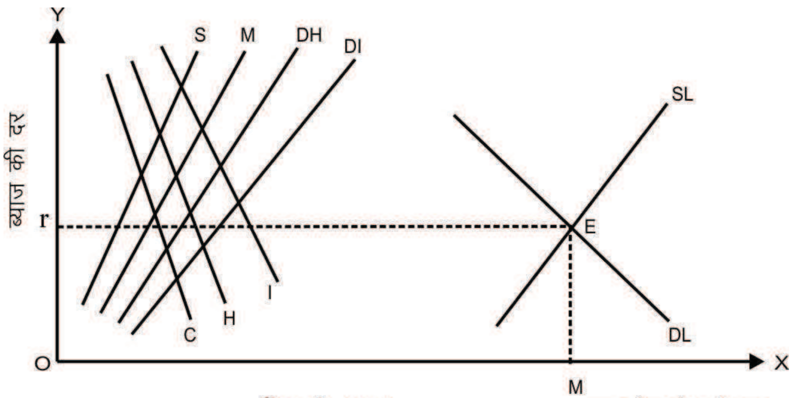

चित्र नं0 21: 5

21.5.7 ऋण योग्य राशियों के सिद्धान्त की आलोचनाएँ - लॉर्ड कीन्स तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त में निम्न दोष बतायें हैं-

(1)संचय की गलत धारणा : प्रो0 कीन्स के अनुसार अर्थव्यवस्था में मुद्रा की कुल पूर्ति स्थिर होती है अतः यदि एक व्यक्ति मुद्रा का संचय अधिक करता है तो दूसरे व्यक्ति कम करेगा। क्योंकि कुल संचय की मात्रा में परिवर्तन नहीं हो सकता। यह परिवर्तन व्यक्तिगत दृष्टिकोण से सम्भव है परन्तु सामूहिक दृष्टि से नहीं। परन्तु प्रो0 हॉम का कहना है कि मुद्रा के बेग में परिवर्तन होने के कारण संचय की मात्रा में भी परिवर्तन सम्भव है।

(2)पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता: प्रो0 कीन्स ऋण योग्य कोष सिद्धान्त को भी पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित होने के कारण अव्यवहारिक मानते हैं।

(3)वास्तविक एवं मौद्रिक तत्वों का मिश्रण : आलोचकों के अनुसार इस सिद्धान्त में वास्तविक एवं मौद्रिक तत्वों को शामिल किया गया है। जबकि ये दोनों तत्व भिन्न-भिन्न हैं। जिससे इनका विभिन्न चर मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का भी अलग-अलग अध्ययन किया जाना चाहिए।

(4)अनिर्धारणीय सिद्धान्त : ऋण योग्य कोष आय तथा निवेश स्तर पर निर्भर करते हैं और निवेश स्तर ब्याज दर पर निर्भर करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ऋण योग्य कोषों की पूर्ति एवं मांग की सापेक्षिक शक्तियाँ ब्याज दर का निर्धारण करती हैं। अतः यह सिद्धान्त एक ऐसे चक्र में फंसा देता है जिससे ब्याज दर का निर्धारण नहीं हो सकता।

अन्त में, यह कहा जा सकता है कि यह सिद्धान्त भी आय पर निवेश के प्रभाव की उपेक्षा करता है और उन्हीं अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जिन पर प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का सिद्धान्त आधारित था। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री जिनमें प्रो0 एच0जी0 जॉनसन अन्य इस सिद्धान्त को ब्याज दर निर्धारण का एक गतिशील सिद्धान्त मानते हैं।

21.6 ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे0एम0 कीन्स द्वारा 1936 में अपनी पुस्तक "General Theory of Employment, Interest and Money" में किया गया है। कीन्स के अनुसार ब्याज दर पूर्णतः एक मौद्रिक घटना है। उनके अनुसार ब्याज की दर मुद्रा का पूर्ति एवं मांग की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है।

कीन्स के अनुसार, ''ब्याज वह कीमत है जो कि धन की नकद रूप में रखने की इच्छा तथा प्राप्त नकदी की मात्रा में समानता स्थापित करती है।''

कीन्स मुद्रा की माँग को तरलता पसन्दगी के संदर्भ में परिभाषित करते हैं। नकद मुद्रा की मांग को तरलता पसन्दगी कहा जाता है। मुद्रा को कई रूपों में रखा जा सकता है किन्तु विभिन्न रूपों में सबसे तरल रूप नकद मुद्रा है क्योंकि नकद मुद्रा को ही जब हम चाहें इच्छानुसार प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार नकदी को कीन्स ने तरलता का नाम दिया।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री यह मानते थे कि मुद्रा केवल विनियम माध्यम के रूप में कार्य करती है और एक निष्क्रिय वस्तु है। परन्तु कीन्स के अनुसार मुद्रा मूल्य संचय का भी कार्य करती है तथा अर्थव्यवस्था में आर्थिक चर मूल्यों को प्रभावित भी करती है। मुद्रा में तरलता का गुण होने के कारण व्यक्ति मुद्रा का संचय करना चाहते हैं। व्यक्ति जब किसी दूसरे व्यक्ति को मुद्रा उधार देता है तो उसे तरलता का त्याग करना पड़ता है। इसी त्याग के बदले व्यक्ति को जो पुरस्कार दिया जाता है वही ब्याज दर है।

कीन्स के अनुसार, ''किसी निश्चित अवधि के लिए तरलता के त्याग का पुरस्कार ही ब्याज है।''

कीन्स के अनुसार मुद्रा की मांग तथा मुद्रा की पूर्ति सापेक्षिक शक्तियों द्वारा ब्याज का निर्धारण होता है।

21.6.1 मुद्रा की मांग :- कीन्स के अनुसार मुद्रा की मांग विनियम के लिए ही नहीं की जाती बल्कि संचय के लिए भी की जाती है। धन के संचय के रूप में मुद्रा भविष्य की कठिनाइयों से सुरक्षित रहने के लिए सट्टा उद्देश्य से की जाती है। एक मौद्रिक अर्थव्यवस्था में विनियम के माध्यम के रूप में मुद्रा की माँग होना स्वाभाविक है। इस प्रकार मुद्रा की माँग नकदी अभियान के रूप में

प्रकट की जाती है। प्रो0 कीन्स के अनुसार मुद्रा की माँग अर्थव्यवस्था में निम्न तीन कारणों से की जाती हैः

21.6.1.1 सौदा उद्देश्य :- व्यक्तियों को आय एक निश्चित अवधि के बाद मिलती है जबकि व्यय करने की आवश्यकता दैनिक जीवन में प्रतिदिन पड़ती रहती है। इस प्रकार, आय प्राप्त करने तथा व्यय करने के बीच एक अन्तर रहता है। दूसरे शब्दों में, दैनिक लेन-देन (अर्थात् क्रय-विक्रय) करने के लिए व्यक्तियों द्वारा नकद मुद्रा की कुछ मात्रा सदैव अपने पास रखी जाती है ताकि दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इस प्रकार एक अर्थव्यवस्था में सभी व्यक्ति, परिवार और फर्मे दैनिक खर्चे के लिए जो मुद्रा की माँग करते हैं, उसे सौदा उद्देश्य वाली मांग कहा जाता है, यह माँग निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करती है।

1. आय तथा रोजगार का स्तर : देश में आय, उत्पादन एवं रोजगार का स्तर जितना अधिक होगा क्रय-विक्रय के लिए नकद मुद्रा की माँग उतनी ही अधिक होगी। कीमतें तथा मजदूरी बढ़ जाने से भी क्रय-विक्रय के लिए नकदी की मांग बढ़ जाती है।
2. आय प्राप्ति की आवृत्ति : नकदी की माँग आय के परिणाम पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि आय कितने अन्तराल के बाद प्राप्त हो रही है। आय प्राप्ति की आवृत्ति में वृद्धि के साथ सौदा उद्देश्य के लिए नकद की मांग बढ़ जाती है।
3. व्यय की अवधि: व्यय की अवधि भी नगदी की मांग को प्रभावित करती है। खर्चो का भुगतान जितनी लम्बी अवधि के बाद किया जायेगा उतनी ही दैनिक क्रय-विक्रय के लिए धन की मांग कम होगी।

21.6.1.2 दूरदर्शिता उद्देश्य:- भविष्य की अनिश्चितताओं- जैसे बेकारी, बीमारी, दुर्घटना, मृत्यु, आदि की दशाओं में सुरक्षित रहने के लिए अथवा भविष्य में सामाजिक रीति-रिवाजों को पूरा करने के लिए व्यक्ति नकद मुद्रा की मात्रा अपने पास रखना चाहता है। नकदी का संचय भी अनिश्चित भविष्य के प्रति सर्तकता के उद्देश्य से किया जाता है। ऐसी आपातकालीन परिस्थितियों से बचने के लिए व्यक्ति मुद्रा की कुछ मात्रा नगद रूप में रखता है जिसे दूरदर्शिता उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग कहा जाता है। यह माँग मुख्यतः व्यक्तियों के आय स्तर पर निर्भर करती है तथा यह मांग ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती।

सौदा उद्देश्य तथा दूरदर्शिता उद्देश्य दोनों के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाली मुद्रा की मांग आय पर निर्भर करती है। यदि दोनों उददेश्यों के लिए माँगी गयी मुद्रा की मात्रा

L_1 हो तब $L_1 = f(Y)$

अर्थात् सौदा उद्देश्य एवं दूरदर्शिता उद्देश्य के लिए मांगी जाने वाली मुद्रा की मात्रा आय के स्तर (Y) का एक फलन होती है।

21.6.1.3 सट्टा उद्देश्य :- व्यक्ति अपने पास नकद मुद्रा इसलिए भी रखना चाहता है ताकि भविष्य में ब्याज दर, बॉण्ड तथा प्रतिभूतियों की कीमतों में होने वाले परिवर्तन का लाभ उठा सके।

प्रो0 कीन्स के अनुसार, ''भविष्य के सम्बन्ध में बाजार की तुलना में अधिक जानकारी द्वारा लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य को सट्टा उद्देश्य कहा जाता है''।

व्यक्ति सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत नकद मुद्रा की माँग इस इच्छा से करता है जिससे व्यक्ति बॉण्ड आदि की कीमतों में होने वाले परिवर्तनों का लाभ उठा सके।

सट्टा उद्देश्य के लिए रखी जाने वाली नकद मुद्रा की मात्रा ब्याज की दर पर निर्भर करती है। बॉण्ड की कीमतों तथा ब्याज की दर में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। कम बॉण्ड कीमतें ऊँची ब्याज दरों को तथा ऊँची बॉण्ड कीमतें कम ब्याज दरों को प्रकट करती हैं। बॉण्ड कीमतों में वृद्धि (अर्थात् ब्याज दर में कमी) की सम्भावना दशा में लोग अधिक बॉण्ड खरीदेंगे ताकि भविष्य में उनकी कीमतें बढ़ने पर उन्हें बेच कर लाभ कमाया जा सके। इस स्थिति में सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत रखी गयी नकद मुद्रा की मात्रा में कमी हो जाती है। इसके विपरीत, यदि भविष्य में बॉण्ड की कीमतें गिरने की सम्भावना होती है (अर्थात् ब्याज की दर बढ़ने की सम्भावना होती है) तब ऐसी दशा में सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत अधिक मुद्रा की मात्रा रखी जायेगी (इस प्रकार, ब्याज की दर जितनी ऊँची होगी सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग उतनी ही कम होगी तथा इसके विपरीत भी सही होगा)। सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत रखी गयी मुद्रा निष्क्रिय पड़ी रहती है, अतः इस मुद्रा को निष्क्रिय मुद्रा भी कहा जाता है।

यदि सट्टा उद्देश्य के लिए नकद मुद्रा की माँग को L_2 द्वारा प्रदर्शित किया जाय, तब

$$L_2 = f(r)$$

अर्थात् सट्टा उद्देश्य के लिए नकद मुद्रा की मात्रा ब्याज की दर (r) पर निर्भर करती है। L_2 तथा r में विपरीत सम्बन्ध होने के कारण सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग का वक्र बायें से दायें नीचे गिरता हुआ होता है।

इस प्रकार मुद्रा की कुल माँग के अन्तर्गत, सौदा, दूरदर्शिता तथा सट्टा उद्देश्यों के लिए माँगी गयी मुद्रा की माँगे सम्मिलित होती हैं।

कुल मुद्रा की माँग या तरलता पसन्दगी = L_1+L_2

$$L = f(Y)+f(r)$$

$$L = f(Y,r)$$

कुल मुद्रा की माँग या तरलता पसन्दगी = (सौदा उद्देश्य + दूरदर्शिता उद्देश्य)

= सौदा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग + सट्टा उदेश्य के लिये मुद्रा की माँग

$$L = L_1 + L_2$$

$$= f(Y) + f(r) \text{ या } L = f(Y, r)$$

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि आय स्थिर होने के कारण सौदा तथा दूरदर्शिता उद्देश्यों के लिए मुद्रा की माँग (अर्थात् सक्रिय मुद्रा) का ब्याज की दर पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु सट्टा के उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग व्यक्ति की प्रत्याशा तथा मनोवैज्ञानिक स्थिति पर निर्भर करती है। अतः कहा जा सकता है कि ब्याज की दर का परिवर्तन ही सट्टे के लिए मुद्रा की माँग उत्पन्न्ा करता है।

21.7 तरलता जाल सिद्धान्त

तरलता पसन्दगी रेखा (LP Line) का आकार एवं ढाल ब्याज की दर (r) तथा सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग (L_2) द्वारा निर्धारित होती है। हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि r तथा L_2 में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है जो LP रेखा के ऋणात्मक ढाल को बतलाता है। चित्र 21ण्6 में तरलता पसन्दगी रेखा (LP Curve) को ABC द्वारा दिखाया गया है। चित्र में LP रेखा का AB भाग ऋणात्मक ढाल वाला होने के कारण बायें से दायें नीचे गिरता हुआ होता है। ऋणात्मक ढाल वाला AB भाग यह बताता है कि ऊँची ब्याज पर सट्टा उद्देश्य के लिए नकद मुद्रा की माँग कम होगी तथा इसके विपरीत कम ब्याज पर सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग अधिक होगी। LP रेखा के बिन्दु B के बाद अपने BC भाग में एक पड़ी रेखा के रूप में हो जाती है जिसका अभिप्राय यह है कि कम ब्याज दर (चित्र में r_0) पर सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग पूर्णतया लोचदार हो जाती है अर्थात् व्यक्ति अपनी समस्त मुद्रा को अपने पास नकद रूप में रखने को इच्छुक होंगे। LP वक्र के पूर्ण लोचदार भाग को ही कीन्स ने तरलता जाल का नाम दिया। तरलता पसन्दगी वक्र (LP Curve) के पूर्ण लोचदार होने की दशा में लोगों का नकदी अधिमान पूर्ण या चरम स्तर तक पहुँच जाता है और उधार की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। इसे पूर्ण नकदी अधिमान अवस्था या तरलता जाल कहा जाता है। इस न्यूनतम ब्याज की दर (r_0) पर लोगों को यह आशा नहीं है कि ब्याज की दर इससे भी नीचे गिरेगी और ब्याज दर नीचे गिरने पर बॉण्ड की कीमतें बढ़ेंगीं। अतः ऐसी दशा में लोगों में बॉण्ड खरीदने की प्रवृत्ति भी नहीं होगी। परिणाम स्वरूप लोग बॉण्ड खरीदने के स्थान पर अपने पास नकद

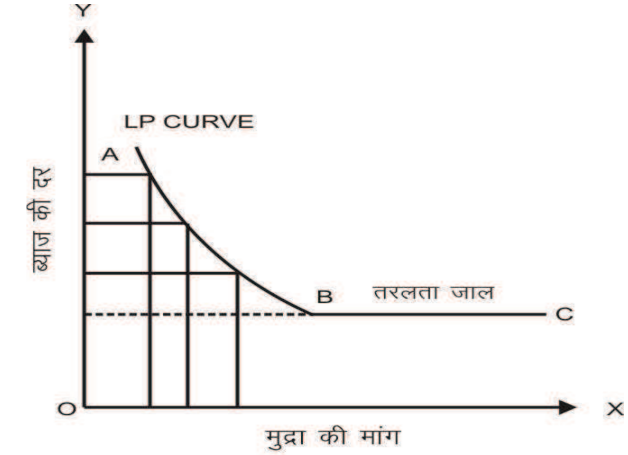

चित्र नं0 21:6 तरलता जाल

मुद्रा ही रखना चाहेंगे। नकदी अधिमान (अथवा तरलता पसन्दगी) की इस विशेषता के कारण यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि ब्याज दर शून्य नहीं हो सकता आय स्तर (Y) मे परिवर्तन की दशा में तरलता पसन्दगी वक्र (LP Curve) की स्थिति (Position) भी बदलती जाती है। चित्र 21.7 में विभिन्न आय स्तरों (Y, Y_1 तथा Y_2)पर LP वक्रों की स्थिति स्पष्ट की गयी है। आरम्भिक आय स्तर Y पर तरलता पसन्दगी वक्र L (Y) द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यदि अन्य बातों के समान रहते हुए आय स्तर बढ़कर Y_1 हो जाता है तब सौदा तथा दूरदर्शिता उद्देश्यों के लिए माँगी गयी नकद मुद्रा की मात्रा (L_1) में वृद्धि होने के कारण LP वक्र परिवर्तित होकर $L(Y_1)$ की स्थिति में आ जायेगा। इसके विपरीत आय स्तर के घटकर L_2 हो जाने की दशा में LP वक्र परिवर्तित होकर $L(Y_2)$ की स्थिति में आ जाता है। बिन्दु B पर सभी आय स्तरों के LP वक्र मिलकर पूर्णतया लोचदार हो जाते हैं।

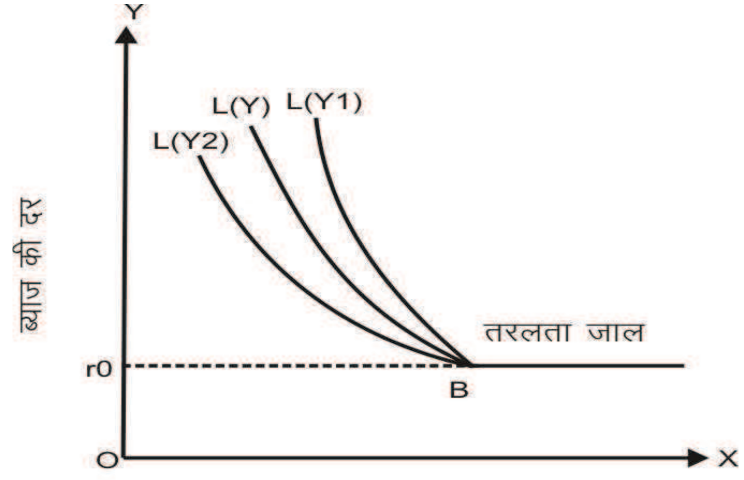

चित्र नं0 21 : 7

21.7.1 मुद्रा की पूर्ति - कीन्स के अनुसार मुद्रा की पूर्ति देश में परिचलन मुद्रा तथा बैंक जमा पर निर्भर करती है। ब्याज दर मुद्रा की पूर्ति को निर्धारित नहीं
करती। मुद्रा की पूर्ति अर्थव्यवस्था की आवश्यकता को ध्यान में रखकर मौद्रिक अधिकारियों (केन्द्रीय बैंक) द्वारा निर्धारित की जाती है और इसी कारण यह ब्याज के सापेक्ष पूर्णतः बेलोच (Prefectly Elastic) होती है।

21.7.2 ब्याज दर का निर्धारण - ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ तरलता पसन्दगी (LP Curve), मुद्रा की पूर्ति रेखा को काटता है। सन्तुलन का यह बिन्दु ब्याज की उस दर को बताता है जहाँ तरलता पसन्दगी (अथवा नकद मुद्रा की इच्छा) नकद मुद्रा की वास्तविक मात्रा (मुद्रा की पूर्ति) के बराबर होती चित्र 21.8 में ब्याज दर निर्धारण समझाया गया है। बिन्दु E पर तरलता पसन्दगी तथा नकद मुद्रा की पूर्ति सन्तुलित अवस्था में है जहाँ ब्याज दर r निर्धारित होती है। इस प्रकार सन्तुलन बिन्दु E ब्याज की सन्तुलित दर को बताता है।

ब्याज दर r_1 पर असन्तुलन की दशा उपस्थित होती है क्योंकि इस ब्याज दर पर तरलता पसन्दगी, मुद्रा की पूर्ति से कम है ($OQ_1 < OQ_0$)। इस असन्तुलन के परिणाम स्वरूप लोग अधिक बॉण्ड खरीदेंगे जिससे बॉण्ड कीमतों में वृद्धि तथा ब्याज दर में कमी होगी। पुनः सन्तुलन वहाँ स्थापित होगा जहाँ तरलता पसन्दगी मुद्रा की पूर्ति के बराबर हो जाती है।

यदि ब्याज की दर r_2 निर्धारित होती है तब मुद्रा बाजार में पुनः असन्तुलन होता है क्योंकि इस ब्याज दर पर तरलता पसन्दगी (अर्थात् नकद मुद्रा की इच्छा) मुद्रा की पूर्ति से अधिक है। इसके परिणामस्वरूप बॉण्ड बेचना आरम्भ करेंगे जिससे बॉण्ड की कीमतों में कमी एवं ब्याज की दर में वृद्धि होती है। पुनः सन्तुलन बिन्दु E पर स्थापित होता है जहाँ तरलता पसन्दगी मुद्रा की पूर्ति के बराबर है।

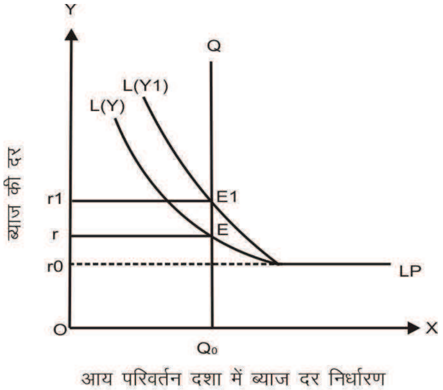

आय परिवर्तन दशा में ब्याज दर निर्धारण
चित्र नं0 21 : 9

ब्याज की सन्तुलन दर में परिवर्तन दो कारणों से होता हैः

1. आय स्तर में परिवर्तन हो जाय।
2. मुद्रा की पूर्ति परिवर्तित हो जाय।

1.आय में परिवर्तन की ब्याज की दर पर प्रभाव चित्र 21.9 में स्पष्ट किया गया है। मुद्रा का पूर्ति वक्र (QQ_0) पूर्णतया बेलोचदार है जो मुद्रा की स्थिर पूर्ति को बताता है। चित्र में आय के दो विभिन्न स्तरों पर तरलता पसन्दगी वक्र क्रमशः L (Y) तथा L (Y_1) दिये गये हैं। L(Y) तरलता पसन्दगी वक्र स्थिर मुद्रा पूर्ति के साथ r ब्याज की सन्तुलित दर को बताता है। आय स्तर में वृद्धि होने पर परिवर्तित तरलता पसन्दगी वक्र L (Y_1) स्थिर मुद्रा पूर्ति के साथ त1 ब्याज की सन्तुलित दर को बताता है। इसके विपरीत आय स्तर की कमी ब्याज की दर को घटायेगी।

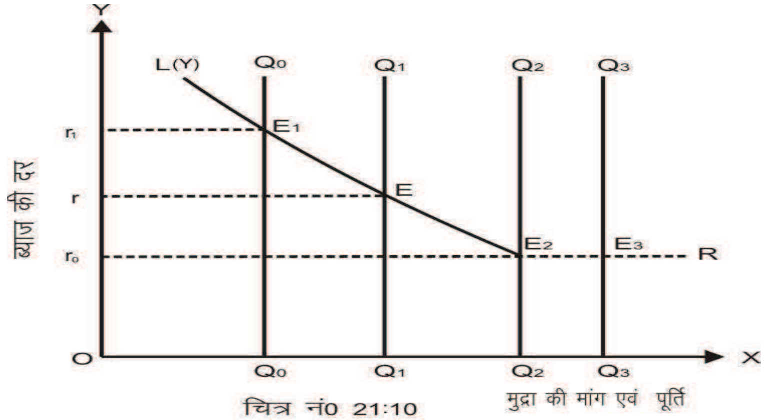

चित्र नं0 21:10

मुद्रा पूर्ति की परिवर्तन दशा में ब्याज दर निर्धारण

2.मुद्रा की पूर्ति का परिवर्तन भी ब्याज दर में परिवर्तन उत्पन्न करता है। इसकी व्याख्या चित्र 21.10 की गयी है। स्थिर आय स्तर की दशा में L (Y) वक्र तरलता पसन्दगी को बताता है। मुद्रा की पूर्ति Q_0Q_0 होने की दशा में ब्याज दर का निर्धारण बिन्दु E_1 पर r_1के बराबर होता है। मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि की दशा में नवीन पूर्ति रेखा Q_1 Q_1 होने पर ब्याज दर गिरकर r रह जाती है। ब्याज-दर के घटने का यह कारण है कि मुद्रा की पूर्ति अधिक होने से लोग अधिक बॉण्ड खरीदते हैं जिससे बॉण्ड की कीमतों में वृद्धि तथा ब्याज की दर में कमी होती है।

मुद्रा की पूर्ति रेखा Q_2 Q_2 होने की दशा में तरलता पसन्दगी माँग रेखा पूर्णतया लोचदार हो जाती है। इस दशा में ब्याज की निर्धारित r_0 इतनी कम होती है कि जो समस्त मुद्रा तरल रूप में ही अपने पास रखना चाहेंगे। यदि ऐसी स्थिति में मुद्रा की पूर्ति और बढ़ा दी जाय (चित्र में Q_3 Q_3 रेखा।) तब भी ब्याज दर r_0 से कम नहीं होती क्योंकि बिन्दु E_2 के बाद तरलता पसन्दगी रेखा पूर्णतया लोचदार है। इस प्रकार मुद्रा की अतिरिक्त पूर्ति तरलता जाल द्वारा निर्धारित ब्याज दर को नीचे गिराने में असफल रहेगी।

21.7.3 आलोचनायें :- कीन्स द्वारा प्रतिपादित ब्याज दर के सिद्धान्त को हेन्सन , हैजलिट, बॉमोल आदि अर्थशास्त्रियें ने कटु आलोचना की। आलोचना के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं :

(1)वास्तविक तत्वों की उपेक्षा - प्रो0 हैजलिट का विचार है कि कीन्स ने अपने सिद्धान्त में ब्याज दर के प्रमुख निर्धारक वास्तविक तत्वों पूँजी की उत्पादकता, मितव्ययिता (अथवा बचत) आदि की उपेक्षा की है। जबकि वास्तव में ब्याज दर वास्तविक तत्वों से भी प्रभावित होती है। प्रो. वाइनर वास्तविक तत्व-बचत-की उपेक्षा को अनुचित बताते हुए लिखा है, ''बिना बचत के तरलता का परित्याग नहीं हो सकता'' ।

(2)अनिर्धारणीय सिद्धान्त - कीन्स के अनुसार ब्याज दर मुद्रा की पूर्ति एवं मुद्रा की माँग (प्रमुख रूप से सट्टा उद्देश्य) द्वारा निर्धारित होती है। यदि हम मुद्रा की पूर्ति को स्थिर मान लें तो माँग (सट्टा उद्देश्य) ज्ञात करने के लिए सौदा उद्देश्य वाली माँग अवश्य ज्ञात करनी होगी। यह माँग आय पर निर्भर करती है। आय का परिवर्तन निश्चित रूप से तरलता पसन्दगी में परिवर्तन करता है। अतः मुद्रा की माँग आय के बिना ज्ञात नहीं की जाती है अर्थात् आय के बिना ब्याज दर का पता नहीं लगा सकते है और ब्याज दर के बिना आय का पता नहीं लगा सकते। इस प्रकार यह सिद्धान्त हमें वृत्ताकार तर्क में फँसा देता है। अतः प्रो. हेन्सन के अनुसार कीन्स का सिद्धान्त अनिर्धारणीय है।

(3)असंगत सिद्धान्त - प्रो. नाइट तथा प्रो. हैजलिट का विचार है कि कीन्स के अनुसार ब्याज दर उस समय अधिक होनी चाहिए जब तरलता पसन्दगी अधिक हो। परन्तु मन्दी के दिनों में तरलता पसन्दगी अधिक होते हुए भी ब्याज दर कम होती है।

(4)समय तत्व की उपेक्षा - कीन्स का सिद्धान्त अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ब्याज दरों में अन्तर स्पष्ट नहीं करता। इस तरह यह सिद्धान्त समय तत्व की सर्वथा उपेक्षा करता है।

(5)सौदा उद्देश्य माँग एवं ब्याज की दर - कीन्स के ब्याज दर के सिद्धान्त में मुद्रा की सौदा उद्देश्य माँग को ब्याज दर से स्वतंत्र माना गया है। बामोल तथा टाबिन का कहना है कि मुद्रा की सौदा उद्देश्य माँग तथा ब्याज की दर में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। यदि बाजार में ब्याज दर अधिक हो तो हो सकता है कि कुछ लोग उपभोग पर कम व्यय करें।

(6)तरलता जाल - अमेरिकन अर्थशास्त्रियों का कहना है कि अमेरिका की अर्थव्यवस्था में द्रवता फलन कभी भी पूर्णतः लोचदार होने की स्थिति न तो सैद्धान्तिक रूप से सिद्ध हुई और न ही व्यवहार में देखी गयी। जबकि कीन्स का यह मुख्य स्पष्टीकरण है।

(7)कीमत परिवर्तनों की उपेक्षा - कीन्स ने मुद्रा की माँग का जो वर्णन किया है वह कीमत स्तर की स्थिरता की मान्यता के आधार पर प्राप्त किया गया है। वास्तव में मुद्रा की माँग कीमत स्तर के परिवर्तनों द्वारा प्रभावित होती है। कीन्स ने कीमत स्थर में परिवर्तन की उपेक्षा की है।

(8)मुद्रा का सही अर्थ स्पष्ट नहीं -कीन्स की परिभाषा में मुद्रा में बैंक जमा सम्मिलित है अथवा नहीं, स्पष्ट नहीं होता। मुद्रा की पूर्ति का ब्याज दर से सम्बन्ध है अथवा नहीं, यह भी स्पष्ट नहीं होता।

अन्त में, हम कह सकते हैं कि कीन्स का ब्याज दर सिद्धान्त न केवल अनिर्धारणीय है बल्कि अपर्याप्त भी है क्योंकि इसमें केवल मौद्रिक तत्वों को ही सम्मिलित किया गया है।

21.8 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त

ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो. हिक्स तथा प्रो. हेन्सन ने किया। इसी कारण ब्याज के इस सिद्धान्त को हिक्स-हेन्सन समन्वय सिद्धान्त भी कहा जाता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रीयों के अनुसार ब्याज दर वास्तविक तत्वों अथवा अमौद्रिक तत्वों जैसे-विनियोग तथा बचत पर निर्भर करती है। कीन्स का सिद्धान्त ब्याज की दर को पूर्णतः मौद्रिक घटना के रूप में परिभाषित करता है तथा ब्याज की दर मुद्रा की माँग (अथवा तरलता पसन्दगी) तथा मुद्रा की पूर्ति द्वारा प्रभावित होती है।

प्रो. हिक्स ने दोनों ही विचारधाराओं को अपूर्ण बताते हुए स्पष्ट किया कि प्रतिष्ठित विचारधारा वस्तु बाजार के सन्तुलन को बताती है जिसमें ब्याज दर के निर्धारण के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। यह सिद्धान्त केवल यह बतलाता है कि विनियोग बचत समानता की दशा में विभिन्न ब्याज की दरों पर आय के स्तर क्या होंगे। कीन्स का सिद्धान्त मुद्रा बाजार के सन्तुलन को बताता है जिसमें ब्याज की दर पुनः अनिर्धारणीय है क्योंकि यह सिद्धान्त केवल मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति में समानता की दशा को स्पष्ट करता है।

प्रो. हिक्स एवं प्रो. हेन्सन ने उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं का उचित समन्वय करते हुए ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। आधुनिक सिद्धान्त में आय परिवर्तन का मौद्रिक एवं वास्तविक तत्वों पर प्रभाव देखकर ब्याज दर का निर्धारण किया गया है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि आधुनिक सिद्धान्त में मौद्रिक एवं वास्तविक तत्वों का एकीकरण करके ब्याज दर निर्धारित की गयी है।

प्रतिष्ठित विचारधारा एवं कीन्स की तरलता पसन्दगी विचारधारा का समन्वय करके हमें निम्नलिखित चार तत्व प्राप्त होते हैं

1. विनियोग माँग वक्र
2. बचत वक्र
3. तरलता पसन्दगी वक्र
4. मुद्रा की पूर्ति

उपर्युक्त तत्वों के आधार पर हमें दो प्रकार के वक्र प्राप्त होते हैं।

21.8.1 विनियोग बचत वक्र - विनियोग बचत वक्र -विनियोग बचत वक्र, प्रतिष्ठित सिद्धान्त से प्राप्त किया जाता है जो ब्याज एवं आय के ऐसे संयोगों को बताता है जिन पर विनियोग एवं बचत बराबर होते हैं। (IS curve depicts those different combinations of state of interest & income level keep I=S)

इस प्रकार वस्तु बाजार में वास्तविक तत्वों के सन्तुलन को बताने वाला, IS वक्र कहलाता है। वस्तु बाजार में,

I = *f(r)* अर्थात् विनियोग ब्याज की दर का फलन है।

S = *f(Y)* अर्थात् बचत आय का फलन है।

तथा I = S अर्थात् वस्तु बाजार में सन्तुलन के लिए आवश्यक है कि विनियोग तथा बचत बराबर हों।

वस्तु बाजार के इन सभी कारणों की सहायता से IS वक्र की व्युत्पत्ति की जा सकती है। चित्र 21.11 में IS वक्र की व्युत्पत्ति समझायी गयी है। चित्र के । भाग में विभिन्न आय स्तरों Y_1, Y_2, Y_3,Y_4,तथा Y_5 पर बचत वक्र क्रमशः S_1Y_1, S_2Y_2, S_3Y_3, S_4Y_4, तथा S_5Y_5 हैं। इन विभिन्न आय स्तरों पर बचत वक्र, विनियोग वक्र के साथ समानता (I=S) स्थापित करते हुए क्रमशः ब्याज की दर r_1, r_2, r_3, r_4, तथा r_5 निर्धारित करते हैं। इस प्रकार चित्र का A भाग हमें यह बतलाता है कि विभिन्न आय स्तरों पर, बचत तथा विनियोग की समानता की दशा में, ब्याज की विभिन्न दरें क्या हैं। चित्र के भाग B में इसी सम्बन्ध का निरूपण किया गया है। IS वक्र ऐसे बिन्दुओं का बिन्दुपथ है जो आय एवं ब्याज की दर के उन विभिन्न संयोगों को बताता है जिन पर बचत एवं विनियोग समान होते हैं।

21.8.2 LM वक्र (LM Curve) - कीन्स के विश्लेषण के अनुसार अर्थव्यवस्था में ब्याज दर पूर्णतः एक मौद्रिक घटना है। ब्याज दर अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति तथा मुद्रा की माँग की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। आय के विभिन्न स्तरों पर तरलता पसन्दगी के भी कई स्तर होंगे। दूसरे शब्दों में, कीन्स की तरलता पसन्दगी विचाराधारा से LM वक्र की उत्पत्ति की जा सकती है। LM वक्र हमें यह बतलाता है कि तरलता पसन्दगी वक्र दिये हुए होने की दशा में विभिन्न आय स्तरों पर ब्याज की क्या-क्या दरें होंगी।

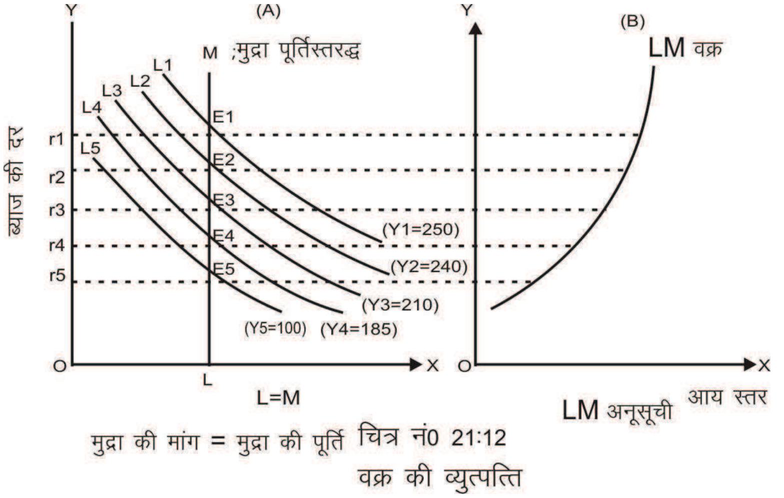

मुद्रा की मांग = मुद्रा की पूर्ति चित्र नं0 21:12
वक्र की व्युत्पत्ति

चित्र 21.12 में LM वक्र की उत्पत्ति समझायी गयी है। चित्र के भाग A में स्थिर मुद्रा की पूर्ति डस् वक्र दिखाया गया है। विभिन्न आय स्तरों Y_1, Y_2, ,Y_3, Y_4 तथा Y_5 पर तरलता पसन्दगी वक्र क्रमशः L_1Y_1, L_2Y_2, L_3Y_3, L_4Y_4 तथा L_sY_5 प्रदर्शित किये गये हैं जो विभिन्न आय स्तरों पर मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति में समानता (L=M) स्थापित करते हुए विभिन्न ब्याज की दरें r_1, r_2, r_3,r_4तथा

r_5 निर्धारित करते हैं। इस प्रकार चित्र का A भाग स्पष्ट रूप से हमें मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति की समानता की दशा में आय स्तर तथा ब्याज की दर के सम्बन्ध को बताता है। चित्र के B भाग में इसी सम्बन्ध को LM वक्र की सहायता से व्यक्त किया गया है। LM वक्र आय तथा ब्याज की दर के ऐसे संयोग बिन्दुओं का बिन्दुपथ है जिन पर मुद्रा की पूर्ति (M) तथा मुद्रा की माँग (L) परस्पर बराबर हों। LM वक्र की सहायता से हम दिये गये आय स्तरों पर ब्याज की दरों का अनुमान लगा सकते हैं। किन्तु यदि हमें पहले से आय स्तर का पता न हो तो हम ब्याज की दर का अनुमान नहीं कर सकते।

21.8.3 संतुलन:

IS वक्र तथा LM वक्र दोनों की सहायता से हम ब्याज की दर तथा आय स्तर का निर्धारण कर सकते हैं। निर्धारण की इस प्रक्रिया को चित्र 21.13 में समझाया गया है। चित्र में आरम्भिक IS_1 वक्र तथा LM_1 वक्र एक-दूसरे को बिन्दु E_1पर काटते हैं तथा Or_1 ब्याज दर तथा OY_1 आय स्तर निर्धारित होते हैं। इस सन्तुलन बिन्दु E_1पर आय स्तर तथा ब्याज की दर में सम्बन्ध इस प्रकार निर्धारित होता है कि-

i. विनियोग एवं बचत सन्तुलन में हो (अर्थात् वास्तविक बचत एवं विनियोग इच्छित बचत के बराबर हो) तथा
ii. मुद्रा की माँग, मुद्रा की पूर्ति के बराबर होनी चाहिए (अर्थात् माँगी गयी मुद्रा की मात्रा वास्तविक मुद्रा की पूर्ति के बराबर होनी चाहिए)।

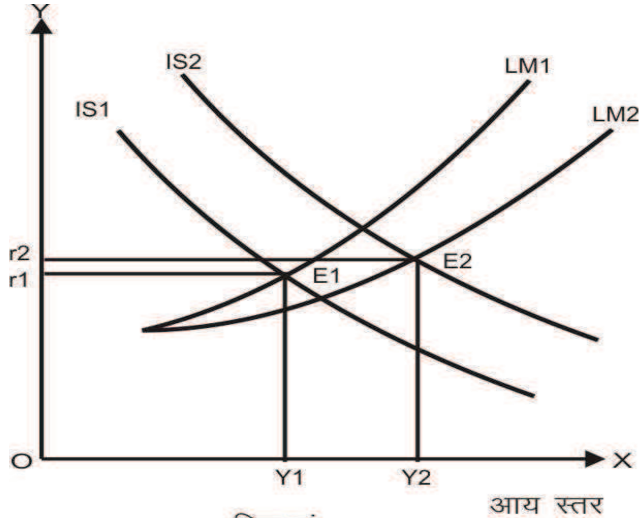

चित्र नं0 21:13
ब्याज दर निर्धारण

चित्र में IS_2 परिवर्तित IS वक्र को बताता है, IS वक्र का यह परिवर्तन विनियोग फलन में वृद्धि अथवा बचत फलन में कमी के कारण उत्पन्न् होता है। परिवर्तित LM_2 वक्र मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि

और/अथवा तरलता पसन्दगी में कमी के कारण उपस्थित होता है। परिवर्तित IS_2 तथा LM_2 वक्रों के साथ Or_2 ब्याज दर तथा OY_2 आय स्तर निर्धारित होते हैं।

इस प्रकार ब्याज आधुनिक सिद्धान्त निर्धारणीय है जो निम्नलिखित फलनों पर आधारित हैः

(1)विनियोग माँग फलन

$$\mathbf{I = I\ (}r\mathbf{)}$$

अर्थात् विनियोग ब्याज दर का फलन होता है।

(2) बचत फलन $S = S\ (Y,r)$

अर्थात् बचत, आय स्तर तथा ब्याज की दर दोनों का फलन होती है।

(3) तरलता पसन्दगी फलन

$$\mathbf{L= L\ (Y,}r\mathbf{)}$$

अर्थात् मुद्रा की माँग, आय स्तर तथा ब्याज की दर पर निर्भर करती है।

(4) मुद्रा की मात्रा, जो सरकार द्वारा नियन्त्रित की जाती है, स्थिर होती है।

उपर्युक्त फलनों के आधार पर सन्तुलन शर्तों को निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता हैः

1. $I = S$ अर्थात् विनियोग = बचत
2. $L = M$ अर्थात् मुद्रा की माँग = मुद्रा की पूर्ति

21.9 सारांश

इस 21वीं इकाई में हम ब्याज दर की सबसे जटिल एवं विवादित अवधारणाओं को समझने का प्रयास किये हैं। विशेष रूपे से, विकासशील देशों में प्राकृतिक एवं मानवी संसाधनों का उपयोग करने के लिए पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करने हेतु पूँजी के प्रतिफल के रूप में ब्याज की विशेष भूमिका होने के कारण इसके विभिन्न सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है। इस इकाई में हम प्रायः सभी मूलभूत सिद्धान्त का अध्ययन किये हैं। इस प्रकार ब्याज की परम्परावादी तथा आधुनिक सिद्धान्तों के अन्तरों को समझते हुए ब्याज के विभिन्न आयामों की जानकारी की गयी है। इस तरह इस इकाई में ब्याज से सम्बन्धित मुद्रा की पूर्ति तथा मांग की समग्र जानकारी हो सकती है।

21.10 शब्दावली

- **S = f(r)** या बचत = ब्याज दर का फलन होता है।
- **I = f(r)**या निवेश त्र ब्याज दर का फलन होता है
- **S = I = f(r)** या संस्थिति की स्थिति में बचत = निवेश
- सौदा उद्देश्य - दैनिक लेन देन के लिए मुद्रा की मांग सौदा उद्देश्य के अन्तर्गत आती है।
- दूरदर्शिता उद्देश्य - भविष्य की अनिश्चितताओं को पूरा करने हेतु मुद्रा की मांग दूरदर्शिता उद्देश्य के अन्तर्गत आती है।

- सट्टा उद्देश्य - भविष्य में ब्याज दर, बाण्ड तथा प्रतिभूतियों की कीमतों में होने वाले परिवर्तन से लाभ उठाने हेतु की मुद्रा की मांग सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत आती है।

21.1.1 अभ्यास - 1

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

i. ''ब्याज पूँजी के त्याग का प्रतिफल है'', यह कथन है -
(क) मार्शल (ख) हिक्स (ग) सीनियर (घ) फिशर

ii. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रीयों द्वारा प्रतिपादित ब्याज का सिद्धान्त है-
(क) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (ख) IS एवं LM वक्र सिद्धान्त
(ग) बचत विनियोग सिद्धान्त (घ) तरलता पसन्दगी सिद्धान्त

iii. कीन्स के अनुसार ब्याज का सम्बन्ध है -
(क) सौदा उद्देश्य (ख) दूरदर्शिता उद्देश्य
(ग) सट्टा उद्देश्य (घ) इनमें से तीनो

उत्तर अभ्यास - 1

i. क
ii. ग
iii. घ

अभ्यास प्रश्न - 2

ब्याख्या करें -

i. कुल ब्याज तथा शुद्ध ब्याज - देखें 21.3
ii. असंचय - देखें 21.5.3
iii. अनिवेश - देखें 21.5.4
iv. सौदा उद्देश्य - देखें 21.6.1.1
v. दूरदर्शिता उद्देश्य - देखें 21.6.1.2
vi. सट्टा उद्देश्य - देखें 21.6.1.3

21.12 संदर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

- Dwivedi, D.N. (2008) Micro Economi, 7th edition, Vikas Publising House.
- Ahuja, H.L. (2010) Principles of Micro Economics, S & Chand Publishing House.
- Peterson, L and Jain (2006) Managerial Economics,4th edition, Pearson Education.

- Colander, D. C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
- Prof. J.M. Keynes : The General Theory of Employment Interest and Money, Macmillan.
- A.H. Hansen, Guide to Keynes.
- Stonier & Hauge : A Text Book of Economic Theory.
- एस0एन0 लाल, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, शिव पब्लिशिंग हाउस।
- एम0एल0 सिंह, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
- डॉ0 एस0एन0 बंसल एवं डॉ0 अनुपम अग्रवाल, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन।
- डॉ0 जे0सी0 पन्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन।

21.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्याज के मार्शल सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये
2. ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
3. ''ब्याज पूँजी बचतों की पूर्ति एवं पूँजी निवेश में समानता स्थापित करता है।'' इस कथन का परीक्षण कीजिये।
4. ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
5. ब्याज के तरलता पंसदगी सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
6. व्याज के नव परम्परावादी सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।

इकाई - 22: मजदूरी का सिद्धान्त

इकाई संरचना

22.1 प्रस्तावना

22.2 उद्देश्य

22.3 मजदूरी के सिद्धान्त

22.3.1 मजदूरी का लौह, प्राकृतिक अथवा जीवन-निर्वाह-सिद्धान्त

22.3.1.1 मान्यतायें

22.3.1.2 व्याख्या

22.3.1.3 आलोचनायें

22.3.2 मजदूरी के रहन सहन का सिद्धान्त

22.3.3 मजदूरी कोष का सिद्धान्त

22.3.4 अवशेष या अवशिष्ट स्वत्व सिद्धान्त

22.3.5 मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

22.3.6 पूर्ण प्रतियोगी बाजार से मजदूरी निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त

22.3.6.1 श्रम की पूर्ति

22.3.6.2 श्रम की माँग

22.3.6.3 मजदूरी निर्धारण-माँग पूर्ति संतुलन

22.3.6.4 पूर्ण प्रतियोगिता में दी हुई मजदूरी के अन्तर्गत एक फर्म का संतुलन

22.3.6.5 अल्पकाल में श्रमिकों का प्रयोग

22.3.6.6 दीर्घ काल में श्रमिकों का प्रयोग

22.3.7 अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण

22.4 सारांश

22.5 शब्दावली

22.6 अभ्यास प्रश्न व उत्तर

22.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

22.8 निबन्धात्मक प्रश्न

22.1 प्रस्तावना

इस 22वें इकाई में मजदूरी के सिद्धान्त की चर्चा लागत के वितरण सिद्धान्त, - खण्ड-6 के अन्तर्गत की गयी है। जिस तरह से भूमि को लगान, पूँजी को ब्याज तथा साहसी को लाभ मिलता है ठीक उसी तरह उत्पादन की क्रिया, में भाग लेने के कारण श्रम को उसकी मजदूरी मिलती है। कुल उत्पादन का वह भाग जो मजदूर को उत्पादन की क्रिया में उसकी सेवाओं के लिये दिया जाता है उसे मजदूरी कहते हैं। वह श्रम के त्याग का प्रतिफल है। मार्शल के अनुसार ''श्रम को सेवाओं के लिये दिया गया मूल्य मजदूरी है।''

22.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- मजदूरी पर प्रभाव डालने वाले तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना।
- मुद्रा की क्रय शक्ति तथा नकद मजदूरी दरों में सम्बन्ध स्थापित करना।
- नकद मजदूरी के अन्तर्गत अन्य लागतों का मूल्यांकन करना।
- कार्य के स्वभाव, भावी उन्नति की आशा, कार्यावधि, अन्य का मजदूरी दर के साथ समन्वय स्थापित करते हुए मजदूरी दर के सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करना।

22.3 मजदूरी के सिद्धान्त

समय-समय पर मजदूरी निर्धारण के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त इस प्रकार हैं:

22.3.1 मजदूरी का लौह, प्राकृतिक अथवा जीवन-निर्वाह-सिद्धान्त - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 18वीं तथा 19वीं शताब्दी के मध्य एक प्रकृतिवादी अर्थशास्त्री टारगॉट ने किया। मजदूरी-निर्धारण के इस सिद्धान्त का जब प्रतिपादन किया गया उस समय यूरोप की जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही थी और उत्पादन उसकी तुलना में अत्यन्त ही कम था। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी निर्धारण का एक प्राकृतिक सिद्धान्त है जिसके अनुसार मजदूरी जीवन-निर्वाह के बराबर ही रहती है।

22.3.1.1 मान्यतायें - जनसंख्या में अत्यन्त ही तेजी के साथ वृद्धि होती है। इस मान्यता का आधार माल्थस का जनसंख्या-सिद्धान्त है। यह है कि क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के क्रियाशीलन के कारण उत्पादन में कमी, फलस्वरूप मूल्यों में बढ़ने की प्रवृत्ति दिखाई देगी।

इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार एक ओर तो जनसंख्या की वृद्धि के फलस्वरूप श्रमिकों की पूर्ति में वृद्धि के कारण मजदूरी में कमी दिखाई देगी, दूसरी ओर उत्पादन-ह्रास-नियम के क्रियाशील होने के कारण मूल्य में वृद्धि के फलस्वरूप वास्तविक मजदूरी में कमी होगी। एडमस्मिथ तथा रिकार्डो ने इस बात पर बल दिया कि यदि मजदूरी जीवन-निर्वाह से ऊपर होती तो श्रमिकों में सन्तानोत्पत्ति की प्रवृत्ति तेज होगी जिसके कारण श्रम की पूर्ति बढ़ेगी और मजदूरी इस न्यूनतम स्तर पर आकर रूक जायेगी और यदि जीवन-निर्वाह में मजदूरी कम है तो मृत्यु-दर बढ़ेगी, श्रम की पूर्ति घटेगी और पुनः इसी न्यूनतम स्तर पर पहुँच जायेगी।

22.3.1.2 व्याख्या:- रिकार्डो ने इस सिद्धान्त की व्याख्या करते समय दो प्रकार की मजदूरी की दरों की चर्चा की-प्राकृतिक दर तथा बाजार-दर। रिकार्डो के अनुसार श्रम की प्राकृतिक दर वह कीमत है जो कि श्रमिकों को एक दूसरे के साथ निर्वाह करने, अपनी जाति को, बिना बृद्धि अथवा किसी कमी के, स्थिर बनाये रखने के लिए आवश्यक है, अर्थात् प्राकृतिक दर वह है जो जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक है। दूसरी ओर मजदूरी की बाजार दर वह है जो बाजार में प्रचलित रहती है तथा जिस पर श्रमिक कार्य करते हैं, श्रमिकों की संख्या में वृद्धि अथवा कमी के कारण मजदूरी की बाजार-दर तथा प्राकृतिक दर में अन्तर हो सकता है। पर दीर्घकाल में दोनों बराबर होंगी।

रिकार्डो ने यह विश्वास किया कि मजदूर का मूल्य (मजदूरी) जिसे भोजन तथा आवश्यक आवश्यकता के रूप में व्यक्त किया जाता है। प्रत्येक अवस्था में स्थिर रहता है। इसीलिए जर्मन अर्थशास्त्री लासेल ने इस सिद्धान्त को मजदूरी का लौह सिद्धान्त कहा।

मजदूरी का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त एक ओर तो आशावादी है दूसरी ओर निराशावादी है। आशावादी होने का कारण यह है कि इस सिद्धान्त से यह स्पष्ट मालूम होता है कि मजदूरी जीवन-निर्वाह के न्यूनतम स्तर से कभी नीचे नहीं होगी। दूसरी ओर निराशावादी इसलिए है क्योंकि यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से कहता है कि मजदूरी जीवन-निर्वाह के स्तर से कभी ऊपर नहीं होगी। इसका तात्पर्य यह है कि श्रमिकों का जीवन-स्तर तथा उनकी कार्यक्षमता कभी उठेगी नहीं।

22.3.1.3 आलोचनाएँ:-

1.आलोचना यह सिद्धान्त माल्थस के जनसंख्या-सिद्धान्त पर आधारित है जो स्वयं एक त्रुटिपूर्ण सिद्धान्त है। जीवन-निर्वाह का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि जैसे-जैसे मजदूरी बढ़ती जायेगी, श्रमिकों में सन्तानोत्पत्ति की प्रवृत्ति बढ़ेगी। पर व्यावहारिक जीवन की दृष्टि से यह ठीक नहीं

है। मजदूरी बढ़ने से जीवन-स्तर ऊँचा हो सकता है, जन्म दर बढ़ने के स्थान पर अधिक आनन्द तथा ऊँचे जीवन-स्तर के सुख को प्राप्त करने के लिए जन्म-दर कम भी हो सकती है।

2.मजदूरी में निर्वाह स्तर के बराबर होने के कारण भिन्नता नहीं होगी, जबकि वास्तविक जीवन में मजदूरी में भिन्नता पायी जाती है।

3.इस सिद्धान्त में मजदूर की कार्य क्षमता की वृद्धि पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। फलस्वरूप कार्यक्षमता निरन्तर गिरती जायेगी।

4.यह सिद्धान्त पूर्ति पक्ष पर ध्यान देने के कारण, एकपक्षीय है।

उपर्युक्त दोषों के कारण ही मजदूरी-निर्धारण के इस सिद्धान्त का प्रयोग उन्ीसवीं शताब्दी के बीच से ही छोड़ दिया गया। पर यह कहना गलत नहीं होगा कि समाजवादियों ने रिकार्डो के इसी सिद्धान्त को आधार मानकर यह प्रतिपादित किया कि श्रमिकों को केवल जीवन-निर्वाह के बराबर पारितोषिक मिलता है। जबकि उनका उत्पादन में योगदान इससे अधिक रहता है। इस प्रकार श्रमिकों का शोषण होता है।

22.3.2 मजदूरी के रहन-सहन का सिद्धान्त :- मजदूरी के जीवन-निर्वाह-सिद्धान्त की कटु आलोचना इसके निराशावादी दृष्टिकोण के कारण की गई तथा यह भी कहा गया कि इस सिद्धान्त में मजदूरी एवं कार्य-क्षमता के बीच सम्बन्ध स्थापित नहीं किया गया। इन्हीं कमियों को दूर करने के लिये इस सिद्धान्त का सुधरा हुआ रूप मजदूरी के रहन-सहन-स्तर के सिद्धान्त के रूप में व्यक्त किया गया। रहन-सहन सिद्धान्त का प्रतिपादन टारेन्स ने किया । इसे मजदूरी का सुनहरा सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी जीवन निर्वाह के बराबर नहीं, बल्कि रहन-सहन के स्तर के बराबर होनी चाहिए। इस सिद्धान्त के समर्थकों का यह मत रहा है कि श्रमिकों को यदि रहन-सहन के स्तर के बराबर मजदूरी मिल जाये तो उसे वे वस्तुयें उपलब्ध हो जायेंगी जिनसे उसकी कार्यक्षमता भी बढ़ सकेगी। वह अपने भविष्य के लिए कुछ बचा भी सकेगा। इस दृष्टिकोण से मजदूरी का यह सिद्धान्त जीवन-निर्वाह-सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक विवेकपूर्ण तथा उत्तम है।

22.3.2.1 आलोचनाएँ

1.इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि रहन-सहन के स्तर का ठीक से पता लगाना अत्यन्त ही कठिन है। रहन-सहन का स्तर स्थिर नहीं रहता है।

2.इतना ही नहीं यह भी नहीं कहा जा सकता है कि मजदूरी के कारण रहन-सहन के स्तर में वृद्धि होती है अथवा रहन-सहन के स्तर के वृद्धि के कारण मजदूरी में वृद्धि होती है।

3.जीवन निर्वाह-सिद्धान्त की ही भाँति यह सिद्धान्त भी पूर्तिपक्ष पर ही आधारित है, इसमें माँग-पक्ष पर ध्यान नहीं दिया गया है।

4.ऊँची मजदूरी के ऊपर केवल जीवन-स्तर का ही प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि यह अन्य कारणों से भी प्रभावित होता है।

5.व्यवहारिक जीवन में मजदूरी की दर समान नहीं होतीं, बल्कि उनमें भिन्नता पायी जाती है।

22.3.3 मजदूरी-कोष का सिद्धान्त :- मजदूरी-निर्धारण के लिए मजदूरी-कोष-सिद्धान्त की व्याख्या सिद्धान्त के रूप में जॉन स्टुअर्ट मिल ने 1848 में अपनी पुस्तक Principles of Political Economy में की पर इस सिद्धान्त की झलक एडमस्मिथ के विचारों में भी मिलती है। एडमस्मिथ ने यह कहा कि मजदूरी देने के लिए उत्पादक के पास एक अलग कोष रहता है। एडमस्मिथ के इस कथन को इस सिद्धान्त का बीज मानना गलत नहीं होगा। पर इसके आधार पर एडमस्मिथ को इस सिद्धान्त का प्रतिपादक मानना गलत होगा तत्पश्चात् मिल, माल्थस, सीनियर, रिकार्डो आदि ने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है।

मिल के अनुसार ‘‘मजदूरी श्रम की माँग एवं पूर्ति पर निर्भर करती है। या इसे प्रायः इस रूप में भी व्यक्त किया जाता है कि मजदूरी जनसंख्या तथा पूँजी के सम्बन्ध पर निर्भर करती है।’’ मिल का जनसंख्या से अभिप्राय उस समूह से था जो मजदूरी के बदले अपनी सेवाओं को देने के लिए तत्पर हो तथा पूँजी का भी प्रयोग मिल ने विशिष्ट अर्थ में किया। उनके अनुसार पूँजी का अर्थ धन के उस भाग से था जिसका प्रयोग उत्पादक श्रमिक की मजदूरी तथा उसी से सम्बद्ध कार्यों से भुगतान के लिये करता है। इस प्रकार मजदूरी उत्पादक द्वारा निश्चित एक स्थिर राशि होगी जिसमें से वह मजदूरों को भुगतान करता है। इसे मिल ने मजदूरी कोष कहा। इस प्रकार मजदूरी की दर मजदूरी कोष तथा जनसंख्या के उस भाग के सम्बन्ध में निर्भर करेगी जिस मजदूरी दर पर श्रमिक कार्य करने के लिये तैयार हैं। यदि मजदूरों की संख्या बढ़ जाये तो प्रति मजदूर मजदूरी कम हो जायेगी तथा यदि मजदूरों की संख्या कम हो जाये तो मजदूरी बढ़ जायेगी। मजदूरी बढ़ाने के दो रास्ते हैं, एक तो मजदूरी-कोष में वृद्धि, दूसरा श्रमिकों की संख्या में कमी। जहाँ तक मजदूरी कोष में वृद्धि का प्रश्न है; यह बचत की वृद्धि पर निर्भर करेगा। माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त से अधिक प्रभावित होने के कारण मिल के इस सिद्धान्त के अनुसार जनसंख्या में बृद्धि दर बचत की वृद्धि दर से अधिक होगी। फलस्वरूप मजदूरी कम होगी, अधिक नहीं होंगी। इस प्रकार मिल ने स्वीकार किया कि मजदूरी की बृद्धि लेकर इस बात पर निर्भर करेगी कि श्रमिक अपनी जनसंख्या को किस सीमा तक नियन्त्रित कर पाते हैं। मिल ने यह भी कहा कि यदि मजदूरी में बृद्धि-कोष में बृद्धि के बिना अथवा श्रमिकों की संख्या में कमी के बिना लायी जाती है तो इससे ब्याज अथवा लाभ में कमी आयेगी। पर ब्याज अथवा लाभ की यह कमी अन्त में श्रमिकों के लिये अहितकर होगी क्योंकि ऐसा करने से पूँजीपति श्रमिकों की

कम माँग करने लगेंगे और पुनः मजदूरी अपने प्रारम्भिक स्थान पर पहुँच जायेगी। इस प्रकार मजदूरी की वृद्धि बिना श्रमिकों की कमी के असम्भव होगी।

मिल के इस सिद्धान्त को सीनियर, माल्थम रिकार्डो आदि ने स्वीकार किया। माँग और पूर्ति दोनों पक्षों पर ध्यान रखनें के कारण यह सिद्धान्त जीवन-निर्वाह-सिद्धान्त तथा रहन-सहन से उत्तम है।

22.3.3.1 आलोचनाएँ

(1)वाकर , लॉन्ज और थॉर्नटन मजदूरी का भुगतान केवल पूँजी से नहीं किया जाता, जैसा इस सिद्धान्त में प्रतिपादित किया गया, बल्कि उसका भुगतान चालू आय में से भी किया जाता है। इतना ही नहीं श्रमिक की माँग उपभोक्ताओं द्वारा निश्चित की जाती है।

(2)यह सिद्धान्त यह तो बताता है कि औसत मजदूरी का ज्ञान मजदूरी-कोष को कुल श्रमिकों की संख्या से भाग देकर किया जा सकता है पर यह सिद्धान्त इस बात का उल्लेख नहीं करता है कि मजदूरी कोष का निर्माण कैसे होता है।

(3)मिल ने यह कहा कि मजदूरी का निर्धारण मांग एवं पूर्ति द्वारा होता है। पर व्याख्या तथा विश्लेषण में उनका यह कथन सही नहीं उतरता है। मिल के अनुसार श्रम की माँग पूँजी द्वारा निर्धारित होती है पर यह पूँजी स्थिर है। यदि पूँजी पर आधारित मजदूरी कोष स्थिर हो तो यह कहना भ्रामक होगा कि मजदूरी-निर्धारण में माँग अथवा पूँजी का प्रभाव पड़ा।

(4)क्रमागत उत्पादन-वृद्धि नियम के लागू होने पर मिल द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त सही नहीं उतरता। कारण यह है कि मिल ने यह कहा कि यदि श्रमिकों की संख्या एवं मजदूरी कोष स्थिर रहे, तो मजदूरी की वृद्धि के कारण लाभ में कमी होगी पर ऐसी बात उस समय नहीं होगी जिस समय उद्योग में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू हो। ऐसी स्थिति में मजदूरी के साथ-साथ लाभ में वृद्धि होगी।

(5)इस सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि लाभ के कम होने पर पूँजी कम हो जायेगी, फलस्वरूप मजदूरी में कमी होगी। पर यह व्यावहारिक नहीं है। मिल ने पूँजी में जितनी गतिशीलता की कल्पना की उतनी गतिशीलता व्यावहारिक जीवन में नहीं मिलती है।

(6)यह सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि मजदूरी कोष की मात्रा उत्पादक सदैव के लिए निश्चित कर लेता है पर वास्तविकता यह है कि मजदूरी-कोष की मात्रा परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है।

(7)अन्य सिद्धान्तों की ही भांति यह सिद्धान्त भी यह स्पष्ट नहीं कर पाता है कि विभिन्न उद्योगों अथवा स्थानों में मजदूरी में विभिन्नता क्यों पाई जाती है।

(8)इस सिद्धान्त की यह मान्यता कि पहले मजदूरी-कोष का निर्धारण होता है इसके बाद मजदूरी निर्धारित होती है, अवैज्ञानिक है। सत्य यह है कि पहले मजदूरी का निर्धारण होता है तत्पश्चात् मजदूरी कोष का निर्माण होता है।

(9)पीछे स्पष्ट किये गये सिद्धान्तों की ही भांति इस सिद्धान्त में मजदूरी एवं कार्यक्षमता के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं व्यक्त होता है।

22.3.4 अवशेष या अवशिष्ट स्वत्व-सिद्धान्त :- मिल के मजदूरी-कोष-सिद्धान्त की यह आलोचना की गई कि मजदूरी तथा श्रम की कार्यक्षमता में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इस कमी को दूर करने के लिये अवशिष्ट स्वत्व-सिद्धान्त को प्रस्तुत किया गया। सबसे पहले जेवेन्स ने 1862 में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया पर बाद में अमेरिकन अर्थशास्त्री वाकर ने इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया और आजकल यह सिद्धान्त उन्हीं के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी कुल उत्पादन का वह भाग है जो उत्पादन के अन्य साधनों को उनके पारिश्रमिक देने के बाद शेष रह जाता है। जेवेन्स के शब्दों में ‘श्रमिक की मजदूरी अन्त में उसके उत्पादन के ही अनुरूप होती है। कुल उत्पादन में से लगान, कर तथा पूँजी के भुगतान (ब्याज) को घटा देने पर जो शेष बचता है वहीं उसका उत्पादन होता है।‘ सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करते समय वाकर ने कहा ‘मजदूरी कुल उत्पादन में से लगान, ब्याज तथा लाभ को घटाने पर शेष के बराबर होती है।‘ उदाहरण के लिये यदि ‘क‘ ‘ख‘ तथा ‘ग’ भूमि के तीन टुकड़े हों तथा प्रत्येक से क्रमशः 250 रू0, 200 रू0 तथा 150 रू0 की आय प्राप्त हो तो कुल आय 600 रूपया होगी। इसमें से लगान (सीमान्त भूमि के आय के आधार पर) 600 - 3 x 150 = 600 - 450 = 150 रू0 होगा। यदि ब्याज की मात्रा 100 रू0 मान लिया जाय तो 600-(100 ब्याज + 150 लगान = 250) = 350 रू0 शेष बचेगा। इसमें से यदि लाभ जो एक प्रकार का लगान है, 150 रूपया मान लिया जाय तो 200 रूपया मजदूरी का भाग होगा।

इस सिद्धान्त की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि यह सिद्धान्त यह मानता है कि यदि श्रमिकों की कार्य-कुशलता में वृद्धि हो जाये तो उससे उत्पादन में वृद्धि होगी, फलस्वरूप श्रमिकों को अधिक मजदूरी मिलेगी। पर यह सिद्धान्त दोषपूर्ण है। प्रथम, इस सिद्धान्त में श्रम की मांग एवं पूर्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। दूसरी बात यह है कि वास्तविक जीवन में अवशेष भाग तो साहसी को लाभ के रूप में मिलता है, मजदूरी अवशिष्ट नहीं होती है। तीसरी बात, इस सिद्धान्त के अनुसार श्रम-संघ तथा मजदूरी के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण नहीं मिलता है। व्यवहार में ऐसा देखा गया है कि श्रमिक-संघ मजदूरी को बढ़वाने में सफल हो जाते हैं।

22.3.5 मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता-सिद्धान्त :- मजदूरी-निर्धारण का सीमान्त-उत्पादकता सिद्धान्त वितरण के सन्दर्भ में दिये गये सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का एक विशिष्ट रूप है। मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे पहले मार्शल ने किया। जे0वी0 क्लार्क, थनन आदि अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी मजदूर की

मजदूरी उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगी। प्रत्येक नियोक्ता किसी भी श्रमिक को पारिश्रमिक उसके सीमान्त उत्पादन से अधिक नहीं देता है। यदि किसी श्रमिक की उत्पादकता अधिक हो तो उसे अधिक मजदूरी देने में भी नियोक्ता संकोच नहीं करेगा। अल्पकाल में हो सकता है कि श्रमिक की मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से अधिक हो अथवा कम हो पर दीर्घकाल में निश्चित रूप से मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगी। यदि अल्पकाल में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम हुई तो उत्पादक को मजदूरी देने के बाद सीमान्त श्रमिक से कुछ अतिरिक्त उत्पादन लाभ के रूप में मिलेगा। परिणाम स्वरूप श्रम की माँग बढ़ेगी। अधिक श्रमिकों के कार्य पर लगाये जाने के कारण सीमान्त उत्पादकता घटेगी क्योंकि क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम लागू होने लगेगा। इतना ही नहीं श्रम की मांग बढ़ने के कारण, नियोक्ताओं में पारस्परिक प्रतियोगिता के कारण मजदूरी बढ़ेगी तथा दोनों क्रियाओं के फलस्वरूप मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। इसी प्रकार यदि अल्पकाल मे मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से अधिक हो तो नियोक्ता को हानि होगी पर यह स्थिति दीर्घकाल तक नहीं बनी रहेगी। हानि के कारण श्रम में कमी होगी। मजदूरी गिरेगी तथा उत्पादकता बढ़ेगी। फलस्वरूप दीर्घकालीन संस्थिति की अवस्था में मजदूरी उत्पादकता के बराबर होगी। इसका रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन चित्र नं0 22.1 में किया गया है-

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि दीर्घकालीन संस्थिति E बिन्दु पर निर्धारित होगी जहाँ मजदूरी OW सीमान्त उत्पादकता के बराबर है।

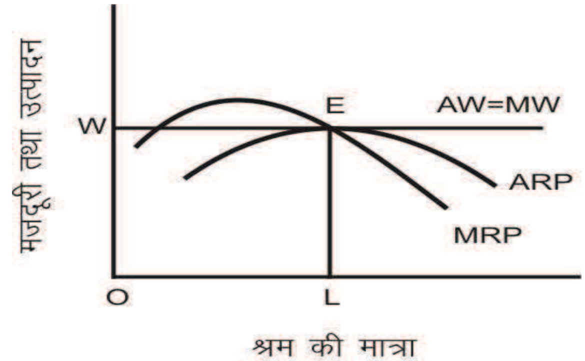

चित्र नं0 22:1

22.3.5.1 आलोचनाएँ

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की अनेक आलोचनायें की हैं। जो इस प्रकार हैं-

1-यह सिद्धान्त कुछ काल्पनिक मान्यताओं पर आधारित है जो स्थैतिक अर्थव्यवस्था में सत्य होती हैं। ये मान्यतायें प्रमुख रूप से निम्न हैं- श्रम-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता, श्रम की पूर्ण गतिशीलता, श्रम

की विभिन्न इकाइयों में समरूपता आदि। इस प्रकार एक प्रवैगिक अर्थव्यवस्था में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है।

2-मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त एक पक्षीय है। यह केवल माँग-पक्ष पर ध्यान देता है, पूर्ति-पक्ष की ओर ध्यान नहीं देता है। मारिस डॉव के अनुसार ''इसकी अपूर्णता का एक कारण यह है कि इसमें कहीं पर यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि श्रम की पूर्ति किस प्रकार निर्धारित होती है । इस सिद्धान्त में श्रम का शुद्ध सीमान्त उत्पादन ज्ञात करने के लिए उसकी कुछ निश्चित मात्रा मान लेनी पड़ती है।''

3-इस सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि सभी श्रमिक एक समान हैं तथा उनकी उत्पादकता में कोई अन्तर नहीं है पर यह एक सैद्धान्तिक सत्य हो सकता है व्यवहारिक सत्य नहीं।

4-श्रम की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करना सरल नहीं होता है। श्रम की सीमान्त उत्पादकता तभी ज्ञात की जा सकती है जब उत्पत्ति के अन्य साधन स्थिर हों पर कुछ ऐसे भी उत्पादन के कार्य हैं जिनमें उत्पादन के सभी साधनों को एक निश्चित अनुपात में ही लगाना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में श्रम की सीमान्त उत्पादकता नहीं ज्ञात की जा सकती ।

5-पीगू, हिक्स तथा श्रीमती जॉन रॉबिन्सन का यह मत है कि किसी उद्योग-विशेष में फर्मों के आकार की भिन्नता के कारण उनके श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता अलग-अलग होगी, किन्तु श्रमिकों की मजदूरी एक होगी।

6-यह सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि श्रमिक की मजदूरी उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होगी पर व्यावहारिक जीवन में मजदूरी श्रमिकों एवं नियोक्ताओं के मोल भाव की क्षमता द्वारा निर्धारित होगी।

प्रो0 मार्शल ने मजदूरी के इस सिद्धान्त को एक अर्थहीन सिद्धान्त कहा। पर अनेक आलोचनाओं के बावजूद भी यह कहना गलत नहीं होगा कि इस सिद्धान्त ने वह नींव तैयार की जिस पर आगे चल कर मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्त का महल खड़ा हुआ।

22.3.6 पूर्ण प्रतियोगी बाजार में मजदूरी-निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्तः- वस्तु कीमत की भांति श्रम की कीमत अर्थात् मजदूरी भी श्रम की मांग और श्रम की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। श्रम की कुछ विशेषताओं के कारण मजदूरी का निर्धारण करने के लिए एक अलग सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है। पूर्ण प्रतियोगी बाजार में एक उद्योग के अन्तर्गत मजदूरी उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ श्रमिकों की पूर्ति रेखा श्रमिकों की मांग रेखा को काटती है।

22.3.6.1 श्रम की पूर्ति :- श्रम की पूर्ति से अभिप्राय यह है कि एक दिये हुए श्रमिक द्वारा विभिन्न मजदूरी दरों पर प्रस्तुत किये जाने वाले कार्य घण्टों की संख्या। श्रम कार्य घण्टों एवं मजदूरी दर में सामान्यतः एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है। ऊँची मजदूरी दर पर अधिक श्रमिक कार्य करने के लिए उपलब्ध होंगे तथा कम मजदूरी दर पर श्रमिकों की कम संख्या कार्य के लिए उपलब्ध होगी। इस प्रकार एक वृहत् दृष्टिकोण के अन्तर्गत कहा जा सकता है कि श्रम का पूर्ति वक्र बायें से दायें ऊपर बढ़ता हुआ होता है। एक उद्योग को इसी प्रकार के पूर्ति वक्र का सामना करना पड़ता है जिसके अन्तर्गत ऊँची मजदूरी देकर ही अधिक श्रम को आकर्षित किया जा सकता है। श्रम की पूर्ति एक व्यक्तिगत फर्म के लिए पूर्णतः लोचदार होती है, अर्थात् एक दी हुई मजदूरी दर एक फर्म के लिए पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में श्रम का पूर्ति वक्र एक पड़ी रेखा के रूप में होता है किन्तु पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में श्रमिक का पूर्ति वक्र उद्योग के सन्दर्भ में पूर्णतः लोचदार नहीं होता। उद्योग के श्रम पूर्ति वक्र की लोच निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है।

(1)यदि व्यवसायिक गतिशीलता : श्रमिकों के मध्य अधिक होगी, जो उद्योग विशेष का श्रम पूर्ति वक्र अधिक लोचदार हो जायेगा, क्योंकि एक मजदूरी दर दूसरे उद्योगों के श्रमिकों को इस उद्योग विशेष में आने के लिए प्रोत्साहित करेगी। व्यवसायिक गतिशीलता निम्नलिखित वातों पर निर्भर करती है:

(a)श्रम की प्रकृति : शिक्षित अथवा अशिक्षित। अशिक्षित श्रमिकों के लिए उद्योगों के मध्य गतिशीलता अधिक होती है, जबकि शिक्षित श्रम अधिक गतिशील नहीं हो पाता।

(b)व्यवसाय परिवर्तन में होने वाली स्थानान्तरण लागत ऊँची स्थानान्तरण लागत गतिशीलता को रोकती है।

(c)अन्य उद्योगों में मजदूरी दर: यदि अन्य उद्योगों में उद्योग विशेष की अपेक्षा ऊँची मजदूरी दर और व्यवसाय सुरक्षा है तो श्रमिक उद्योग विशेष को छोड़कर अन्यत्र जाने लगेंगे, और श्रमिकों की पूर्ति कम हो जायेगी।

(2) कार्य आराम अनुपात: श्रम की पूर्ति को प्रभावित करने वाला यह एक महत्वपूर्ण तत्व है। जैसे-जैसे मजदूरी दर में परिवर्तन होता जाता है, वैसे-वैसे एक श्रमिक के लिए कार्य आराम अनुपात परिवर्तित होता जाता है। मजदूरी में परिवर्तन के कारण दो प्रकार के प्रभाव उत्पन्न होते है।

1. प्रतिस्थापन प्रभाव

2. आय प्रभाव

जब मजदूरी दर में वृद्धि होती है तो यह बृद्धि श्रमिकों को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करती है जिसके कारण वे श्रमिक अपने आराम के घण्टों का अपने कार्य के घण्टों से प्रतिस्थापन करने लगते हैं। इसी प्रक्रिया को मजदूरी में वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाला प्रतिस्थापन प्रभाव कहा जाता है। प्रतिस्थापन प्रभाव सदैव धनात्मक होता है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव मजदूरी में वृद्धि होने पर श्रम पूर्ति को बढ़ाता है क्योंकि मजदूरी दर में वृद्धि होने पर अधिक से अधिक लोग अधिक से अधिक काम करने के लिए उस उद्योग में उपस्थित होंगे।

दूसरी ओर, यह श्रमिक की मनोवैज्ञानिक प्रकृति है कि आय का स्तर बढ़ जाने पर श्रमिक अधिक आराम पसन्द हो जाता है। जब मजदूरी दर में बृद्धि होती है तो अतिरिक्त आय मिल जाने के कारण श्रमिक अपने कार्य-आराम के घण्टों की संख्या को बढ़ा देता है। यह मजदूरी में बृद्धि के कारण उत्पन्न आय प्रभाव है जो ऋणात्मक होता है जिसके अनुसार मजदूरी की वृद्धि श्रमिक को अधिक आराम करने के लिए प्रोत्साहित करती है न कि अधिक काम करने के लिए। इस प्रकार ऊँची मजदूरी पर श्रम पूर्ति संकुचित होने की प्रवृत्ति रखती है।

मजदूरी में वृद्धि के कारण उत्पन्न प्रतिस्थापन प्रभाव एवं आय प्रभाव के कारण श्रम की वास्तविक पूर्ति दोनों प्रभावों की परिभाषा पर निर्भर करती है। श्रम की इस वास्तविक पूर्ति पर मजदूरी के परिवर्तन का सही अनुमान लगाना एक कठिन कार्य है। अर्थशास्त्रियों ने यह स्पष्ट किया है कि कम मजदूरी स्तर पर धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव, ऋणात्मक आय प्रभाव की तुलना में अधिक बलशाली होता है जिसके कारण मजदूरी में वृद्धि होने पर अधिक श्रम-पूर्ति उपलब्ध होती है। इसके अनुसार श्रम का पूर्ति वक्र बायें से दायें ऊँपर बढ़ता हुआ होता है किन्तु मजदूरी में एक पर्याप्त स्तर तक वृद्धि हो जाने पर एक सीमा के बाद यह सम्भव है कि ऋणात्मक आय प्रभाव धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक बलशाली हो जाय। दूसरे शब्दों में, मजदूरी दर में बृद्धि के कारण श्रमिकों की वास्तविक पूर्ति में कमी हो जायेगी। ऐसी स्थिति में श्रम का पूर्ति वक्र उस पर्याप्त मजदूरी दर के बाद पीछे की ओर झुका हुआ हो जाता है जैसा कि चित्र 22.2 में दिखाया गया है। इस चित्र में श्रम का पूर्ति वक्र OW_2 मजदूरी स्तर तक बाये से दायें ऊपर बढ़ता हुआ है क्योंकि इस मजदूरी स्तर तक धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव, ऋणात्मक आय प्रभाव से अधिक है किन्तु इस मजदूरी स्तर के बाद जब मजदूरी बढ़कर OW_3 हो जाती है तब आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव से बलशाली हो जाता है जिसके कारण श्रमिक की पूर्ति ON_2 से घट कर ON_3 हो जाती है।

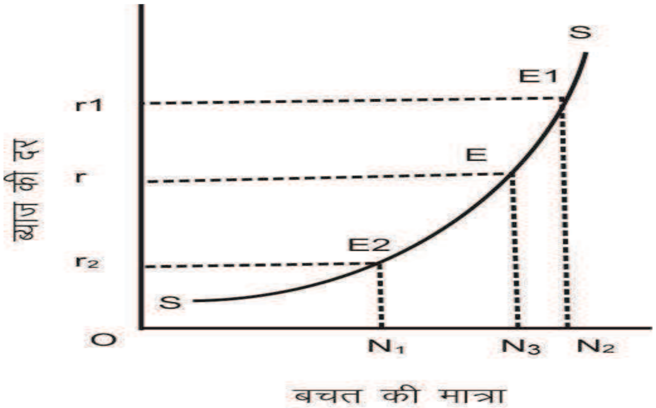

चित्र नं0 21:2

22.3.6.2 श्रम की मांग :- श्रम की माँग उद्यमियों द्वारा किसी वस्तु के उत्पादन के लिए की जाती है। जैसा कि हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि श्रम की माँग अप्रत्यक्ष अथवा व्युत्पन्न माँग होती है

क्योंकि श्रम की माँग उस वस्तु की माँग पर निर्भर करती है जिसके उत्पादन में उस श्रम का प्रयोग किया जाता है। उद्यमी किस बिन्दु तक श्रमिक की माँग करेगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उस

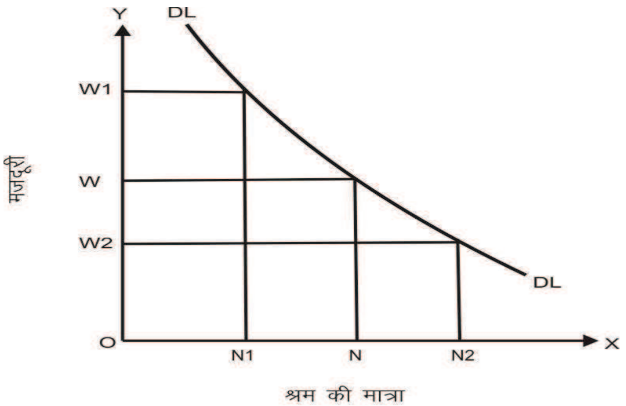

चित्र नं0 22:3

श्रम की क्या उत्पादकता है? श्रम की सीमान्त उत्पादकता के बराबर श्रमिक को मजदूरी दी जाती है। उत्पत्ति हा्स नियम के कारण जब श्रम की अधिक इकाइयों का प्रयोग हम करते चले जाते हैं तो अतिरिक्त श्रम की इकाइयों की सीमान्त उत्पादकता घटती चली जाती है। उद्यमी अपने उद्योग में श्रमिकों का प्रयोग उस सीमा तक करता है जहाँ पर श्रम की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य उसको दी जाने वाली मजदूरी के बराबर होगा। किसी उद्योग के MRP वक्र का घटता हुआ भाग ही उस उद्योग-विशेष के श्रम के माँग वक्र को बताता है। चित्र 22.3 में श्रम का वक्र D_L D_L प्रदर्शित किया गया है जो बायें से दायें नीचे गिरता है। यह श्रम का माँग वक्र मजदूरी दर एवं श्रम की माँग होती है। मात्रा के विपरीत सम्बन्ध को बताता है अर्थात् ऊँची मजदूरी दर पर श्रमिकों की मॉग कम होती है।

श्रम की माँग कुछ मुख्य बातों पर निर्भर करती है जो निम्नलिखित है-

1. श्रम की माँग श्रम की उत्पादकता पर निर्भर करती है।
2. श्रम की माँग व्युत्पन्न माँग होने के कारण उत्पादित वस्तु की माँग पर निर्भर करती है।
3. श्रम की माँग उद्योग के द्वारा अपनायी गयी उत्पादन की तकनीक एवं तकनीकी दशाओं पर भी निर्भर करती है। यदि फर्म पूँजी गहन रीति का प्रयोग करती है तो ऐसे उद्योग में श्रम की कम माँग होगी, इसके विपरीत, यदि फर्म श्रम गहन रीति का प्रयोग करती है तो ऐसे उद्योग में श्रम की माँग अपेक्षाकृत अधिक होगी।
4. श्रम की माँग पूँजीगत साधनों की कीमतों पर भी निर्भर करती है क्योंकि श्रम और पूँजी में स्थानापन्नता का अंश उपस्थित होता है। यदि पूँजीगत साधनों की कीमत में वृद्धि होती है

तो श्रम की मांग में वृद्धि होगी। इसके विपरीत, यदि पूँजीगत साधन सस्ते होते हैं तो इन साधनों द्वारा श्रमिक का प्रतिस्थापन होगा और श्रम की माँग कम हो जायेगी।

22.3.6.3 मजदूरी निर्धारण-मांग-पूर्ति सन्तुलन :- एक उद्योग में मजदूरी का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ श्रम की माँग एवं श्रम की पूर्ति परस्पर बराबर होते हैं। चित्र संख्या 22.4 में इस सन्तुलन स्थिति को बिन्दु E पर दिखाया गया है।

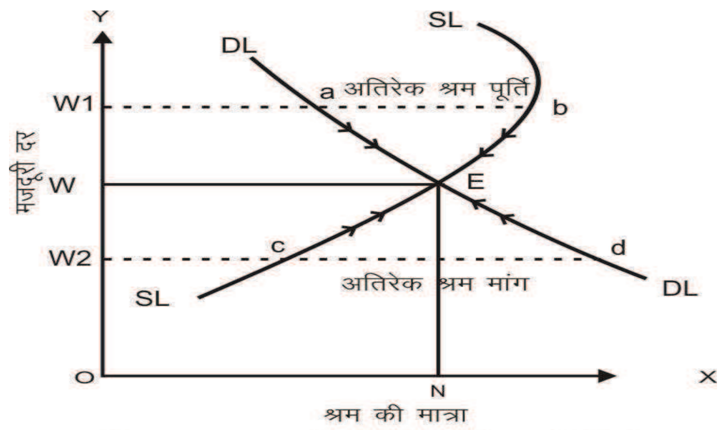

चित्र नं0 : 22:4 पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी निर्धारण

सन्तुलन बिन्दु E पर

श्रम की मांग = ON

श्रम की पूर्ति = ON तथा, मजदूरी पर = OW

पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी निर्धारण एक स्वतः प्रक्रिया है। यदि मजदूरी दर पर aW_1 श्रम की मांग तथा aW_1 श्रम की पूर्ति है। दूसरे शब्दों में OW_1 मजदूरी दर पर ab अतिरेक श्रम पूर्ति उपस्थित होती है। यह अतिरिक्त पूर्ति अथवा बेरोजगारी श्रमिकों के मध्य स्पर्धा उत्पन्न करेगी जिसके कारण मजदूरी दर में कमी होनी आरम्भ होगी। मजदूरी में कमी की यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक श्रम की मांग तथा श्रम की पूर्ति पुनः बिन्दु E पर बराबर न हो जाये।

इसके विपरीत, यदि किसी कारणवश श्रम की मजदूरी दर OW_2 हो जाती है तो इस दशा में cW_2 श्रम की पूर्ति और dW_2 श्रम की मांग प्राप्त होती है अर्थात OW_2 मजदूरी दर पर cd अतिरेक श्रम मांग प्राप्त होती है। श्रमिकों की यह अतिरिक्त मांग मजदूरी दर को तब तक बढ़ायेगी जब तक पुनः बिन्दु E पर माँग और पूर्ति सन्तुलन में न आ जाये।

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ श्रमिक की माँग श्रमिकों की पूर्ति के बराबर हो जाय।

22.3.6.4 पूर्ण प्रतियोगिता में दी हुई मजदूरी के अन्तर्गत एक फर्म का सन्तुलन

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म और उद्योग के मध्य एक विशेष सम्बन्ध पाया जाता है जिसके अनुसार उद्योग में श्रम की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा जो मजदूरी निर्धारित होती है उसे उद्योग के अन्तर्गत कार्यरत प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है। पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म मजदूरी दर को प्रभावित नहीं कर सकती, क्योंकि एक फर्म श्रमिक को कुल पूर्ति का केवल एक छोटा अंश प्रयोग करती है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता में एक व्यक्तिगत फर्म के लिए मजदूरी रेखा पूर्ण लोचदार अथवा एक क्षैतिज रेखा के रूप में होती है।

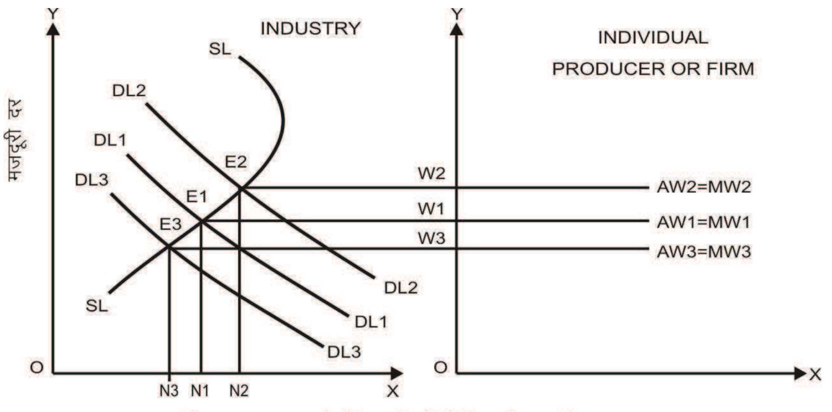

व्यक्तिगत उत्पादक के लिए पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी
चित्र नं0 : 22.5

चित्र 22.5 में उद्योग एवं फर्म के सम्बन्ध को दिखाया गया है। उद्योग में श्रम की मांग एवं श्रम की पूर्ति वक्रों का सन्तुलन बिन्दु E_1, E_2 तथा E_3 पर दिखाया गया है जिन पर क्रमशः उद्योग में OW_1, OW_2 तथा OW_3 मजदूरी दरों का निर्धारण होता है। इन विभिन्न मजदूरी दरों पर व्यक्तिगत फर्म को क्रमशः $AW_1=MW_1$, $AW_2=MW_2$ तथा $AW_3=MW_3$ को बताने वाली पड़ी रेखाएं पूर्ति रेखा के रूप में उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक व्यक्तिगत फर्म के लिए औसत मजदूरी (AW) तथा सीमान्त मजदूरी (MW)बराबर होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म के लिए मजदूरी रेखा पड़ी होने के कारण व्यक्तिगत फर्म के लिए मजदूरी दर स्तर दिया हुआ तथा स्थिर होता है। पूर्ण प्रतियोगी फर्म इस दिये हुए स्तर पर उस बिन्दु तक श्रमिकों की संख्या का प्रयोग करेगी जहाँ श्रमिकों की सीमान्त आगम उत्पादकता श्रमिकों की सीमान्त मजदूरी के बराबर हो जाय (अर्थात् MRP=MW) । इस प्रकार एक फर्म के सन्तुलन की

शर्त है MRP=MW । यदि MRP अधिक है MW से, इस स्थिति में एक फर्म अतिरिक्त श्रमिकों का प्रयोग उस सीमा तक करती रहेगी जब तक MRP=MW न हो जाय। दूसरी ओर, यदि MRP कम है MW से तो फर्म अपनी हानि के कम करने की दृष्टि से श्रमिकों का उस सीमा तक कम प्रयोग करेगी जहाँ MRP=MW । संक्षेप में, MRP=MW ही फर्म की साम्य दशा है।

22.3.6.5 अल्पकाल में श्रमिकों का प्रयोग:- अल्पकाल में एक फर्म को श्रमिकों के प्रयोग की दृष्टि से लाभ, सामान्य लाभ या हानि तीनों स्थितियाँ सम्भव हैं।दी हुई मजदूरी की दशा में फर्म का अल्पकालीन लाभ चित्र 22ः6 में दिखाया गया है। चित्र में सन्तुलन बिन्दु E है जहाँ-

मजदूरी की दर	**= OW**
प्रयोग की गयी श्रम की मात्रा	**= ON**
प्रति इकाई लाभ	**= ER**
फर्म का कुल लाभ	**= ERSW क्षेत्रफल**

चित्र 22.7 में दी गयी मजदूरी की दशा में फर्म का अल्पकालीन सामान्य लाभ दिखाया गया है। फर्म का सन्तुलन बिन्दु E पर उपस्थित होता है।

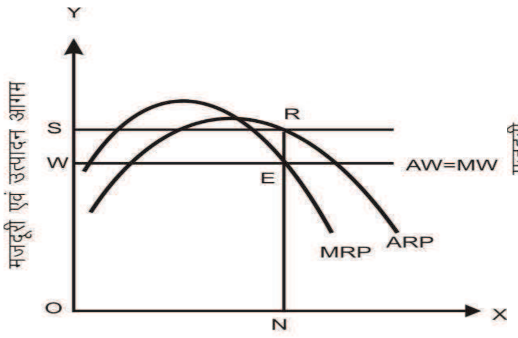

श्रम की मात्रा
चित्र नं0 22:6
फर्म का अल्पकालीन लाभ
(दी हुई मजदूरी की दशा में)

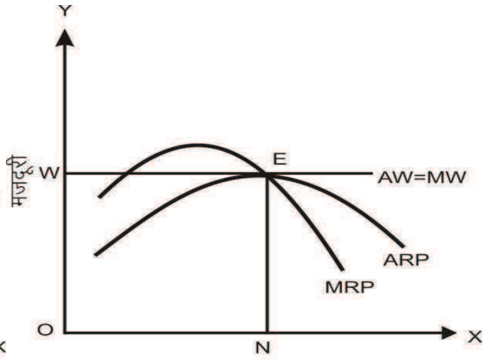

श्रम की मात्रा
चित्र नं0 22:7
फर्म का सामान्य लाभ
(दी हुई मजदूरी की दशा में)

जहाँ **मजदूरी दर = OW = औसत मजदूरी = सीमान्त मजदूरी**

प्रयोग की गई श्रम की मात्रा = ON

चित्र 22.8 में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दी हुई मजदूरी की दशा में फर्म की अल्पकालीन हानि को दिखाया गया है। सन्तुलन की शर्त के अनुसार सन्तुलन बिन्दु E पर उपस्थित होगा जहाँ-

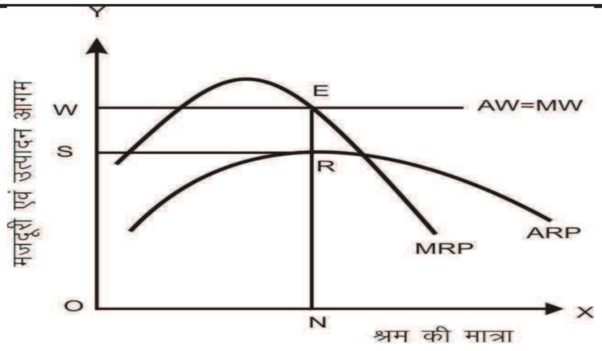

चित्र नं0 22:8
फर्म की अल्पकालीन हानि
(दी हुई मजदूरी की दशा में)

मजदूरी की दर	**= OW**	**प्रयोग की गयी श्रम की मात्रा**	= ON
प्रति इकाई हानि	= ER	**फर्म का कुल हानि**	= WERS

22.3.6.6 दीर्घकाल में श्रमिकों का प्रयोग :- पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकालीन अवधि में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है। क्योंकि दीर्घकाल में सदैव औसत मजदूरी (AW), औसत आगम उत्पादकता (ARP) के बराबर होती है। दीर्घकाल में यदि फर्म की अतिरेक लाभ प्राप्त होता है जो इस अतिरेक लाभ से आकर्षित होकर उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश होगा जिसके फलस्वरूप श्रमिकों की माँग बढ़ने के कारण उनकी मजदूरीं (AW)भी बढ़ेगी तथा अधिक फर्मों द्वारा उत्पादन करने के कारण ARP कम हो जायेगी। इन दोनों प्रभावों का सामूहिक परिणाम यह होगा कि पुनः ARP =AW की स्थिति उत्पन्न होगी, अर्थात् फर्म का अतिरेक लाभ घटकर सामान्य लाभ में परिवर्तित हो जायेगा। इसके विपरीत यदि फर्म को हानि होगी तो दीर्घकाल में कुछ फर्में उद्योग छोड़कर बाहर चली जायेंगी जिसके कारण उद्योग में श्रमिकों की माँग घट जायेगी तथा साथ ही वस्तु का उत्पादन भी घट जाएगा। इन प्रभावों का संयुक्त परिणाम ARP = AW के रूप में उपस्थित होगा जो कि फर्म के दीर्घकालीन सन्तुलन को बताता है।

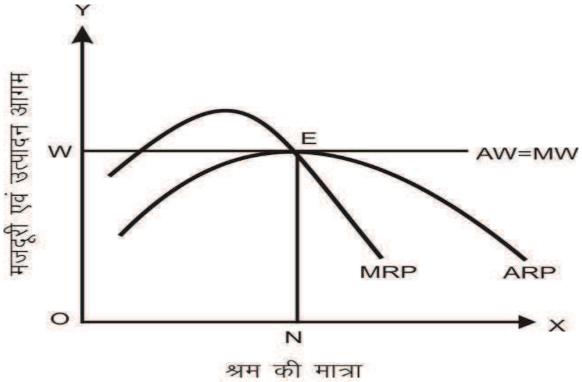

चित्र नं0 22:9
दीर्घकालीन फर्म का सामान्य लाभ

चित्र 22.9 में दीर्घकाल में फर्म की सामान्य लाभ की दशा को दिखाया गया है। सन्तुलन बिन्दु E पर,

मजदूरी दर = **OW**

प्रयोग की गयी श्रम की मात्रा = **ON**

तथा **AW = MW = ARP = MRP**

अर्थात् दीर्घकालीन सन्तुलन के लिए इस स्थिति का होना आवश्यक

22.3.7 अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण:- श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता कई रूपों में उत्पन्न हो सकती है। क्रय एकाधिकार श्रम बाजार की अपूर्ण प्रतियोगिता का एक महत्त्वपूर्ण रूप है। श्रम बाजार में क्रय एकाधिकार का अभिप्राय है कि श्रम की माँग करने वाले संगठित होकर एकाधिकार का रूप लें, जबकि श्रम बाजार में श्रमिकों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण पूर्ण प्रतियोगिता उपस्थित हो। क्रय एकाधिकार की दशा में अनेक उत्पादक संगठित होकर एकसमान मजदूरी दर एवं श्रम नीति तय कर लेते हैं ऐसी परिस्थिति में मजदूरी दर का निर्धारण चित्र 22.10 में दिखाया गया है।

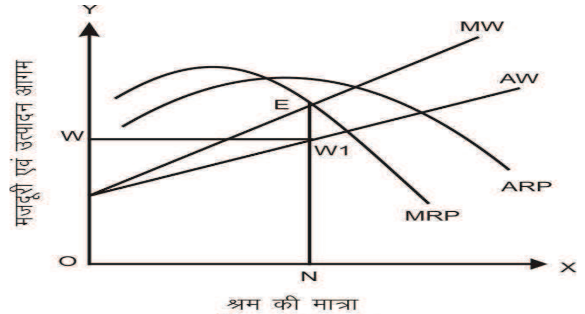

चित्र नं0 22:10
अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण

क्रय एकाधिकार की अवस्था में उद्यमी श्रम का अकेला खरीददार होने के कारण मजदूरी दर को परिवर्तित कर सकता है। उसकी इस क्षमता के कारण औसत मजदूरी वक्र अर्थात् श्रमिकों का पूर्ति वक्र बाये से दायें ऊपर बढ़ता हुआ होता है। एकाधिकार परिस्थितियों के कारण सीमान्त मजदूरी वक्र भी ऊपर बढ़ता हुआ होगा, किन्तु MW वक्र तीव्र गति से बढ़कर AW वक्र से ऊपर स्थित होता है। चित्र में ARP तथा MRP क्रमशः औसत आय उत्पादकता तथा सीमान्त आय उत्पादकता को बढ़ाते हैं। क्रय एकाधिकार की दशा में उत्पादन का सन्तुलन बिन्दु E पर होगा, जहाँ सीमान्त मजदूरी, सीमान्त आय उत्पादकता के बराबर है। सन्तुलन की दशा में उत्पादक ON श्रम मात्रा का प्रयोग करेगा। सन्तुलन की अवस्था प्राप्त होने पर मजदूरी दर का निर्धारण AW वक्र की सहायता से किया जाता है। चित्र के अनुसार व्छ श्रम मात्रा पर औसत मजदूरी दर NW_1 अथवा OW है जबकि श्रम

की सीमान्त आगम उत्पादकता EN के बराबर है। EW_1 को क्रेता एकाधिकार शोषण कहा जाता है।

22.4 सारांश

इस इकाई में समय-समय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा राष्ट्रीय आय में से श्रमिकों को मिलने वाले अंश को निर्धारित करने वाले सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी है। इसमें प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों से लेकर मजदूरी के आधुनिक सिद्धान्तों की चर्चा है। यद्यपि की मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्तों से कुछ भिन्न है, किन्तु प्राचीन सिद्धान्तों के महत्व को पूरी तरह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। बढ़ते मूल्यों के क्रम में मजदूरी का बढ़ना सर्वथा उचित है। यही नहीं जीवन स्तर में वृद्धि, वर्तमान की बढ़ती मांगें, श्रम कल्याण उपाय, बाजार की दशा, कार्य आराम अनुपात, श्रम की मांग, श्रमिकों की विशिष्टता, अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन अवधि का मजदूरी निर्धारण में महत्वपूर्ण भागीदारी होती है। स्थान, समय तथा परिस्थिति का भी मजदूरी दर पर प्रभाव पड़ता है। एकाधिकारी की दशा में मजदूरों का शोषण ही होता है। इसके बावजूद मजदूरी का सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण का महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक पक्ष है, जिसे नकारा नहीं जा सकता।

22.5 शब्दावली

- मजदूरी कोष - मजदूरी देने के लिए उत्पादक के पास जो अलग कोष होता है, जिसमें से वह मजदूरी देता है, उसे मजदूरी कोष कहते हैं।
- श्रम की पूर्ति - से अभिप्राय एक दिये हुए श्रमिक द्वारा विभिन्न मजदूरी पर प्रस्तुत किये जाने वाले कार्य घण्टों की संख्या।
- कार्य-आराम अनुपात - श्रम की पूर्ति को प्रभावित करने वाला वह तत्व जिसमें एक श्रमिक के लिए कार्य आराम अनुपात को जाना जाता है।
- औसत मजदूरी (Average Wage - AW) सामान्य रूप से एक मजदूर को मिलने वाली मजदूरी।
- सीमान्त मजदूरी (Marginal Wage - MW) - एक अतिरिक्त श्रमिक की सीमान्त मजदूरी।

22.6 अभ्यास प्रश्न - 1

बहुविकल्पीय प्रश्न

i. मजदूरी का अवशेष सिद्धान्त प्रतिपादित किया -

क. पीगू ख. मार्शल ग. जे.वी. से घ. वाकर

ii. मजदूरी का लौह नियम का प्रतिपादन किस अर्थशास्त्री ने किया ?

क. रिकार्डो ख. एडमस्मिथ ग. जे0एस0 मिलघ. पीगू

iii. श्रम पूर्ति वक्र-

क. पूर्ति वक्र के ही समान होता है।

ख. पूर्ति वक्र से विपरीत होता है।

ग. एक सीमा तक पूर्ति वक्र जैसा होता है, फिर बायीं ओर मुड़ता है।

घ. एक सीमा तक पूर्ति वक्र जैसा होता है फिर दायीं ओर मुड़ता है।

अभ्यास प्रश्न-1 (उत्तर)

i. (घ)

ii. (ख)

iii. (ग)

अभ्यास प्रश्न-2

1. श्रम की पूर्ति - देखें 22.3.6.1
2. श्रम की मांग - देखें 22.3.6.2
3. मजदूरी निर्धारण मांग, पूर्ति, संतुलन - देखं ें 22.3.6.3
4. अल्प काल में श्रमिकों का प्रयोग - देखें 22.3.6.5
5. दीर्घ काल में श्रमिकों का प्रयोग - देखें 22.3.6.6

22.7 संदर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

- Dwivedi, D.N. (2008) Micro Economi, 7th edition, Vikas Publising House.
- Ahuja, H.L. (2010) Principles of Micro Economics, S & Chand Publishing House.
- Peterson, L and Jain (2006) Managerial Economics,4th edition, Pearson Education.
- Colander, D. C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
- Prof. J.M. Keynes : The General Theory of Employment Interest and Money, Macmillan.

- A.H. Hansen, Guide to Keynes.
- Stonier & Hauge : A Text Book of Economic Theory.
- एस0एन0 लाल, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, शिव पब्लिशिंग हाउस।
- एम0एल0 सिंह, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
- डॉ0 एस0एन0 बंसल एवं डॉ0 अनुपम अग्रवाल, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन।
- डॉ0 जे0सी0 पन्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन।

22.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मजदूरी से क्या समझते हैं? मजदूरी के प्रतिष्ठित-सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
2. मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का परीक्षण कीजिय।
3. एक पूर्ण प्रतियोगी बाजार में मजदूरी निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
4. पूर्ण प्रतियोगिता में दी हुई मजदूरी के अन्तर्गत एक फर्म का संतुलन समझाइये।
5. अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी निर्धारण बताइये।

इकाई - 23: लाभ का सिद्धान्त

इकाई संरचना

23.1 प्रस्तावना
23.2 उद्देश्य
23.3 सामान्य लाभ
23.4 असामान्य लाभ
23.5 लाभ के सिद्धान्त
23.5.1 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त
23.5.2 लाभ का लगान सिद्धान्त
23.5.3 लाभ का प्रवैगिक सिद्धान्त
23.5.4 शुम्पीटर का नव प्रवर्तन सिद्धान्त
23.5.5 लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
23.5.6 लाभ का जोखिम सिद्धान्त
23.5.7 लाभ का अनिश्चितता सिद्धान्त
23.5.7.1 ज्ञात जोखिम
23.5.7.2 अज्ञात जोखिम
23.5.7.3 आलोचनायें
23.5.8 प्रो0 मेहता का लाभ का माँग एवं पूर्ति सिद्धान्त
23.5.9 लाभ का समाजवादी सिद्धान्त
23.6 सारांश
23.7 शब्दावली
23.8 अभ्यास प्रश्न व उत्तर
23.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
23.10 निबन्धात्मक प्रश्न

23.1 प्रस्तावना

इस इकाई 23 खण्ड-6 में वितरण के लाभ सिद्धान्त की व्याख्या की गयी है। उद्यमियों का लाभ भी श्रमिकों की मजदूरी, भूमि के लगान तथा पूँजी के ब्याज की तरह उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है। साहसी लाभ की प्रत्याशा में उद्योग का प्रबन्धन करता है।

सामान्यतया लाभ शब्द का प्रयोग साहसी (प्रबन्धक) की आय के रूप में किया जाता है। कुल उत्पादन का यह अवशेष जो भूमि, श्रम तथा पूंजी के पारिश्रमिक के बाद साहसी को उत्पादन क्रिया में प्राप्त होता है, वही लाभ है। इसप्रकार स्पष्ट है कि लाभ एक गैर प्रसंविदा स्वभाव की आय है जो भूमिपति, श्रमिक तथा पूँजीपति को प्रसंविदा के अन्तर्गत आय देने के बाद साहसी को प्राप्त होता है। साहसी उत्पादन का एक ऐसा साधन है जो निश्चित समझौते या प्रसंविदे के अनुसार श्रम, भूमि तथा पूँजी को उत्पादन क्रिया मे लगाता है तथा उन्हें उत्पादित वस्तु के बिकने के पहले ही भुगतान करता है। चूँकि साहसी तथा उत्पादन के अन्य साधनों के बीच समझौता हुआ रहता है, इसलिए उन्हे भुगतान के बाद जो आय बच जाती है, वही साहसी को लाभ के रूप में प्राप्त होती है। अन्य साधनों को मिलने वाली प्रसंविदा आय-निश्चित रूप से धनात्मक होगी पर अवशिष्ट आय धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों हो सकती है - धनात्मक आय लाभ तथा ऋणात्मक आय हानि होगी।

सामान्य - भाषा में लाभ से अभिप्राय कुल आय से उस भाग से है जो कुल खर्चो को निकाल देने के बाद बच जाती है। पर वास्तव में कुल आय - व्यय कुल त्र कुल लाभ अर्थशास्त्र में प्रयोग किया गया शुद्ध लाभ नहीं। प्रो0 वाकर के अनुसार कुल लाभ अनेक तत्वों के मिश्रण से बना होता है, शुद्ध लाभ उनमें से एक है। वाकर ने कुल लाभ में निम्नांकित तत्वों का उल्लेख किया -

(क) उत्पादन-क्रिया में साहसी द्वारा लगायी पूँजी तथा भूमि का प्रतिफल।

(ख) उत्पादन में लगी हुई मशीनों का ह्रास तथा उन मशीनों को सुरक्षित बनाये रखने का खर्च।

(ग) कुल लाभ में उत्पादन के प्रबन्ध के लिए किया जाने वाला प्रबन्ध आय।

(घ) एकाधिकारी लाभ जो व्यवसाय को एकाधिकार की स्थिति प्राप्त होने के कारण मिल जाता है। इस प्रकार का लाभ सामान्य लाभ से ऊपर होता है, क्योंकि यह मूल्य ऊँचा करके वस्तुयें बेचने का परिणाम है।

(ड.) आकस्मिक लाभ जो अचानक परिस्थितियों के अनुकूल हो जाने के कारण उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार के लाभ के लिये साहसी कुछ नहीं करता है।

(च) कुल लाभ में एक तत्व शुद्ध लाभ का होता है। यह शुद्ध लाभ भी साहसी के दो कार्यो का पारितोषिक होता है - प्रथम जोखिम उठाने के लिए होता है तथा दूसरी उसकी सौदा करने की चतुराई

के लिए होता है। इस प्रकार का योगदान वह विभिन्न साधनों को क्रय करते समय तथा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय करते समय करता है। जिससे एक ओर तो उत्पादन लागत कम हो तथा दूसरी ओर अधिक आय प्राप्त हो। इस प्रकार -

कुल लाभ = कुल आय - कुल व्यापारिक व्यय

= साहसी द्वारा लगाये गये व्यक्तिगत साधनों, जैसे भूमि तथा पूंजी का प्रतिफल + ह्रास तथा संरक्षण व्यय +प्रबन्ध का प्रतिफल +एकाधिकार लाभ + आकस्मिक लाभ + शुद्धलाभ

शुद्ध लाभ = कुल लाभ - (साहसी के साधनों का प्रतिफल +_ ह्रास तथा सरक्षण व्यय + प्रबन्ध का प्रतिफल + एकाधिकारी लाभ + आकस्मिक लाभ)

कुल लाभ तथा शुद्ध लाभ के साथ-साथ हम लाभ के अन्य दो रूपों - सामान्य लाभ तथा असामान्य लाभ को भी समझेगे।

23.2उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे

- लाभ के प्रतिष्ठित सिद्धान्त से लेकर लाभ के वर्तमान सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करना।
- लाभ के अन्तर्गत होने वाले अनिश्चितता की जानकारी प्राप्त करना।
- लाभ के समाजवादी सिद्धान्त की जानकारी प्राप्त करना।

23.3 सामान्य लाभ

प्रत्येक साहसी लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से जोखिम उठाता है। अतएव यह आवश्यक है कि उसे उत्पादन प्रक्रिया में कम से कम इतना लाभ मिलता रहे जिससे वह कार्य में लगा रहे। यही सामान्य लाभ है। लाभ की यह एक न्यूनतम सीमा है, जिससे कम मिलने पर साहसी जोखिक उठाना छोड़ देगा। किसी उद्योग में साहसी के सामान्य लाभ वे होते हैं जो उसे उद्योग में बनाये रखने के लिए आवश्यक होते हैं। इस प्रकार सामान्य लाभ साहसी की स्थानान्तरण आय है। इसका सम्बन्ध दीर्घकाल से होता है। सामान्य लाभ पर विचार करते हुए प्रो0 मार्शल ने कहा कि दीर्घकालीन मूल्य प्रतिनिधि फर्म की उत्पादन-लागत के बराबर होता है और सामान्य लाभ इस उत्पादन लागत का एक भाग होता। इसलिए सामान्य लाभ प्रतिनिधि फर्म को मिलने वाला लाभ है। सामान्य लाभ उत्पादन

लागत में जुटा रहता है इस प्रकार सामान्य लाभ उत्पादन लागत में उसी प्रकार से जुटा रहता है, जैसे मजदूरी, लगान तथा ब्याज सम्मिलित रहते हैं। शुद्ध लाभ लागत मे नहीं जुटा रहता है, यह तो वास्तव में उत्पादन लागत के ऊपर अधिक्य होता है।

23.4 असामान्य लाभ

किसी भी साहसी को सामान्य लाभ के ऊपर जो लाभ प्राप्त होता है उसे असामान्य लाभ कहते हैं। हैन्सन के शब्दों में ''सामान्य लाभ के अतिरिक्त जो लाभ प्राप्त होता है उसे असामान्य लाभ कहते हैं। असामान्य लाभ लगान की तरह एक प्रकार का अतिरेक है, जो कुशल साहसियों को मिलता है सीमान्त साहसी असामान्य लाभ नहीं प्राप्त कर पाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में असामान्य लाभ बाहरी फर्मो के प्रवेश के लिए आकर्षण का कारण बनता है और दीर्घकाल में असामान्य लाभ विलुप्त हो जाता है।

प्रो0 नाइट के सामान्य तथा असामान्य लाभ के बीच भेद जोखिम के विभिन्न प्रकारों के आधार पर किया है। नाइट के अनुसार '''ऐसी जोखिमों के लिए जो ज्ञात है तथा जिनका बीमा कराया जा सकता है, जो लाभ प्राप्त होते हैं उसे सामान्य लाभ कहते हैं, पर अज्ञात जोखिमों के लिये जो लाभ प्राप्त होता है उसे असामान्य लाभ कहते हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में असामान्य लाभ हो सकता है पर दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ होगा, जबकि एकाधिकार में असामान्य लाभ अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों अवस्थाओं में सम्भव है।

यहाँ एक तथ्य का स्पष्टीकरण उचित प्रतीत होता है कि जो हम औसत-लागत वक्र (AC) खींचते हैं उसमें सामान्य लाभ भी सम्मिलित रहता है, इसलिए जब औसत-आय वक्र (AR) औसत-लागत वक्र (AC) का स्पर्श रेखा होता है तो फर्म को सामान्य लाभ होता है तथा जब यह औसत-आय वक्र से नीचे हो तो फर्म को असामान्य लाभ होगा।

23.5 लाभ के सिद्धान्त

विभिन्न विद्वानो ने लाभ निर्धारण की दृष्टि से कई सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं, परन्तु अभी तक ऐसा कोई सिद्धान्त नही आ पाया गया जो सर्वमान्य हो। लाभ का प्रत्येक सिद्धान्त केवल एक कारण लेकर चला है, इसी कारण आर्थिक सिद्धान्त में लाभ अव्यवस्थित और अनियमित विषय रहा है। लाभ के प्रमुख सिद्धान्त निम्न है-

23.5.1 लाभ का मजदूरी सिद्धान्त :- इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 टॉजिंग द्वारा किया गया था। एक अन्य अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो0 डेवनपोर्ट ने इसका समर्थन किया

था। इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ भी एक प्रकार की मजदूरी होता है, जिसे उद्यमकर्ता को उसकी सेवाओ के बदले चुकाया जाता है। प्रो0 टॉजिग के शब्दों में, ''लाभ उद्यमकर्ता की वह मजदूरी है जो उसे उसकी विशेष योग्यता के कारण प्राप्त होती है।'' इस सिद्धान्त के अनुसार श्रम एवं उद्यम में पूर्ण समानता है। जिस प्रकार श्रम अपनी सेवाओ के बदले मजदूरी प्राप्त करता है, ठीक उसी प्रकार उद्यमी अपनी उत्पादन सम्बन्धी भूमिका के एवज में लाभ प्राप्त करता है। अन्तर केवल इतना है कि श्रम की सेवाएँ शारीरिक होती हैं जबकि उद्यमकर्ता का कार्य मानसिक होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार उद्यमी, डॉक्टरों, वकीलों एवं अध्यापकों जैसे मानसिक कार्यकर्ताओं से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं होता है। इसी आधार पर प्रो0 टॉजिग ने लाभ को एक प्रकार की ऐसी मजदूरी कहा है जो उद्यमी को सेवाओं के बदले प्राप्त होती है।

निम्नलिखित आधारो पर इस सिद्धान्त को आलोचना की गयी है:

आलोचना :- आलोचकों ने इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न बताये हैं -

i. लाभ एक अवशेष भुगतान है जबकि मजदूरी सदैव धनात्मक रहती है।

ii. उद्यमी को जोखिम व अनिश्चिताओं का सामना करना पड़ता है जबकि श्रमिक को ऐसी कोई समस्या नहीं होती।

iii. अपूर्ण प्रतियोगिता में लाभ बढ़ते हैं जबकि मजदूरी में कमी होने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

iv. संयुक्त पूँजी कम्पनी में अंशधारी लाभ प्राप्त करते हैं जबकि वे कोई भी मानसिक श्रम नहीं करते।

23.5.2 लाभ का लगान सिद्धान्त:-इस सिद्धान्त की परिकल्पना का श्रेय ब्रिटिश अर्थशास्त्री सीनियर तथा मिल को जाती है परन्तु प्रस्तुत करने का श्रेय अमरीकन अर्थशास्त्री प्रो0 वॉकर को जाता है। यह सिद्धान्त वॉकर के नाम से ही जाना जाता है। इस सिद्धान्त का मूल मंत्र रिकार्डो का लगान सिद्धान्त है। रिकार्डो के अनुसार लगान एक भेदात्मक उपज है जो अधिक उर्वरता वाली भूमियों पर सीमान्त भूमि की अपेक्षा प्राप्त होती है। जिस प्रकार भूमि के भिन्न-भिन्न टुकड़ों की उपजाऊ शक्ति में अन्तर होता है उसी प्रकार उद्यमियों की योग्यता मे भी अन्तर पाया जाता है। सीमान्त भूमि की भाँति सीमान्त उद्यमी सामान्य योग्यता का व्यक्ति होता है और वह अपनी वस्तु को उत्पादन लागत पर ही बेच पा सकने के कारण कोई आधिक्य प्राप्त नहीं कर पाता। सीमान्त उद्यमी से अधिक योग्य व कार्यकुशल उद्यमी आधिक्य प्राप्त कर लेते हैं, वही लाभ है।

आलोचना :- इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न पाये गये हैं -

i. यह सिद्धान्त एकाधिकारी लाभ व आकस्मिक लाभ के स्पष्ट नहीं करता।

ii. सीमान्त उद्यमी की परिकल्पना ही गलत है क्योंकि सामान्य लाभ न मिलने पर उद्यमी व्यवसाय छोड़ जाता है।

iii. संयुक्त पूँजी कम्पनी के हिस्सेदारों को जो लाभांश मिलता है उसमें योग्यता का प्रश्न ही नहीं आता।

iv. लाभ व लगान दोनों मे मौलिक अन्तर है क्योंकि लगान कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकता।

v. यह सिद्धान्त लाभों में पाये जाने वाले अन्तर को स्पष्ट करता है, उसकी प्रकृति को स्पष्ट नहीं करता।

23.5.3 लाभ का प्रवैगिक सिद्धान्त :- लाभ के इस सिद्धान्त का वैज्ञानिक विवेचन अमेरिकन अर्थशास्त्री जे0वी0 क्लार्क के द्वारा किया गया है। क्लार्क के मत में लाभ अर्थव्यवस्था की प्रवैगिक स्थिति का परिणाम है, स्थैतिक अवस्था में लाभ का जन्म नहीं होगा। प्रवैगिक अवस्था, वस्तु के विक्रय-मूल्य तथा लागत में अन्तर उत्पन्न करती है और यह अन्तर ही लाभ है। उनके अनुसार स्थैतिक अवस्था में जहाँ माँग तथा पूर्ति की दशाओं में कोई परिवर्तन नही होता है, सीमान्त उत्पादकता-सिद्धांत के आधार पर उत्पादन के साधनों के मूल्य दिये जाने पर कुल सीमान्त उत्पादन बँट जायेगा और साहसी को लाभ नहीं मिलेगा। क्लार्क के शब्दों में ‘‘स्थैतिक अवस्था मे उत्पत्ति के प्रत्येक साधन को उसके उत्पादन के बराबर भाग पारितोषिक के रूप में मिलता है और चूँकि लागत तथा विक्रय-मूल्य सदैव समान रहते हैं, अतएव मजदूरी के अतिरिक्त निरीक्षण कार्य के लिए कोई मजदूरी नहीं मिलती है।’’

क्लार्क के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि स्थैतिक अवस्था में लाभ नहीं होता है क्योंकि स्थैतिक अवस्था में प्रत्येक चीज निश्चित होती है, अनिश्चितता नाम की वस्तु नहीं होती है। प्रत्येक विक्रेता यह जानता है कि पिछले वर्ष की सभी बातें पुनः इस वर्ष भी घटेंगी, माँग ज्योति की त्यों रहेगी, पूर्ति मुं किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होगा। इस प्रकार की अवस्था मे जोखिम नहीं होगी, फलस्वरूप लाभ भी नहीं होगा। पूर्ण प्रतियोगिता की दीर्घकालीन स्थिति में औसत लागत मूल्य के बराबर होती है, इसलिए सामान्य लाभ ही अर्जित होगा जो एक तरह से निरीक्षण तथा प्रबन्ध के लिए मजदूरी है, साहसी को कुछ भी शुद्ध लाभ नहीं प्राप्त होगा। पर स्थैतिक अवस्था एक काल्पनिक विचार है, व्यावहारिक जीवन में परिवर्तन होते रहते हैं और परिवर्तन के कारण वस्तु के विक्रय मूल्य तथा लागत में अन्तर आ जाता है और यही लाभ होता है। क्लार्क ने प्रवैगिक अवस्था में निम्नांकित पाँच परिवर्तनों का उल्लेख किया हैः

1. जनसंख्या में वृद्धि

2. उत्पादन विधि में सुधार तथा तकनीकी विकास

3. पूँजी की पूर्ति में वृद्धि

4. उपभोक्ताओं की रूचि, इच्छा आदि मे परिवर्तन, तथा

5. औद्योगिक संगठन में परितर्वन

इस प्रकार क्लार्क के अनुसार ऊपर निर्दिष्ट, पाँचों परिवर्तनों के कारण लाभ उत्पन्न होता है। स्थैतिक अवस्था मे उत्पादक को जो आय प्राप्त होती है उसे क्लार्क ने लाभ न कह कर मजदूरी कहा क्लार्क के मत मे प्रावैगिक अवस्था में नये-नये आविष्कार होते हैं। कुशल साहसी, सामान्य उत्पादकों की अपेक्षा इन आविष्कारो के ज्ञान का प्रयोग पहले ही करता है और उत्पादन लागत में कमी के द्वारा लाभ अर्जित करता है। इसी प्रकार कुशल साहसी अपनी दुरदर्शिता, साहस, योग्यता तथा व्यावसायिक संगठनों में परिवर्तनों के द्वारा, उपभोक्ताओं की रूचि आदि का अनुमान लगाकर लाभ उठाता रहता है।

आलोचनायें :- अर्थशास्त्रियों के अनुसार इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न हैं -

i. सभी प्रकार के परिवर्तन लाभ को जन्म नहीं देते बल्कि केवल वे परिवर्तन जो अनिश्चित या अज्ञात होते हैं, लाभ को जन्म देते हैं।

ii. यह कहना भी गलत है कि स्थिर अर्थव्यवस्था में लाभ बिल्कुल नहीं मिलता।

iii. इस सिद्धान्त में लाभ और प्रबन्ध की मजदूरी के बीच एक काल्पनिक अन्तर किया गया है।

iv. इस सिद्धान्त में जोखिम तत्व की पूर्णतः उपेक्षा की गयी है।

23.5.4 शुम्पीटर का नवप्रर्वतन सिद्धान्त :- प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जोजेफ शुम्पीटर ने इस बात पर बल दिया कि साहसी का प्रमुख कार्य उत्पादन क्रिया में नवप्रवर्तन को लाना है तथा लाभ इसी नवप्रवर्तन की क्रिया का प्रतिफल है। नवप्रवर्तन से उनका अभिप्राय किसी भी ऐसे परिवर्तन से है जिसके फलस्वरूप उनकी आय में वृद्धि आये। हम पहले ही जान चुके हैं कि किसी साहसी की आय दो बातों पर निर्भर करती है - प्रथम उत्पादन की मात्रा तथा उत्पादन-लागत, दूसरे उत्पादित वस्तु की मांग। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नव प्रवर्तन एक ओर तो उत्पादन फलन में लाये जाने वाले ऐसे परिवर्तनों से सम्बन्धित है, जिससे न्यूनतम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन की प्राप्ति हो सके तथा दूसरे ऐसे परिवर्तन जिनसे उत्पादित वस्तुओं की मांग में वृद्धि हो सके। इन प्रकार नवप्रवर्तन के अन्तर्गत प्रायः निम्नांकित क्रियायें आती हैं -

1. उत्पादन की नयी प्रविधि या तरीकों को जन्म देना।

2. कच्चे माल तथा सामग्रियों के किसी नये स्रोत की खोज।

3. किसी भी उद्योग में नयी संगठन व्यवस्था को बनाये रखना।

4. किसी नयी वस्तु को बाजार में लाना तथा

5. किसी नये बाजार की खोज।

प्रो0 शुम्पीटर ने यह मत व्यक्त किया है कि यदि किसी नवप्रवर्तन के कारण सफलता मिली है तथा इसके फलस्वरूप या तो उत्पान-लागत में कमी हुई या मांग में वृद्धि हुयी तो लाभ का जन्म होगा। स्पष्ट है कि इस प्रकार का लाभ साहसी के उस प्रयास का ही परिणाम है, जिसे नवप्रर्वतन कहा जा सकता है। नवप्रवर्तन के सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि आवश्यक नहीं है कि साहसी उस नयी प्रविधि का आविष्कार करे। आविष्कार करने वाला तो कोई दूसरा व्यक्ति हो सकता है, जिसने शोध किया है, जैसे किसी नयी मशीन का आविष्कार। उस नयी मशीन या प्रविधि के लिए वित्तीय सहायता भी दूसरा व्यक्ति दे सकता है पर इन्हें जो इस क्रिया के कारण आय प्राप्त होगी वह लाभ नहीं होगा। वित्तीय सहायता देने वाले पूँजीपति को तो ब्याज मिलेगा, आविष्कारक को 'पेटेन्ट राइट' के रूप में पारिश्रमिक प्राप्त होगा। लाभ तो उस साहसी को मिलेगा जो उस नये आविष्कार या प्रविधि को क्रियान्वित करता है, उत्पादन में उसे प्रयोग करने का साहस करता है।

नवप्रवर्तन तथा लाभ के सम्बन्ध में प्रो0 स्टिगलर का दृष्टिकोण अत्यन्त ही उल्लेखनीय हैं। उनके अनुसार ''जब तक कि कोई एक स्थायी एकाधिकार की स्थिति स्थापित नहीं कर लेता, ऐसे लाभ जो सफल नवप्रवर्तन के कारण प्राप्त होते हैं, संक्रमणकारी (अस्थायी) होंगे और अन्य फर्मो के इन्हें बाँटने के प्रयास के कारण समाप्त हो जायेंगे। पर ये लाभ अन्य फर्मों की इसके सम्बन्ध में अनभिज्ञता के कारण या नयी फर्मों के प्रवेश में समय लगने के कारण, पर्याप्त समय के लिए बने रह सकते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि एक सफल नव प्रवर्तक लगातार इस प्रकार के असामान्य लाभ को अर्जित कर सकता है, क्योंकि नवप्रवर्तन को उत्पादन के प्रयोग में शुरू करता है तो कुछ समय तक तो उसकी सफलता के कारण उसे एकाधिकार की स्थिति प्राप्त हो जाती है और वह लाभ अर्जित करता है। पर धीरे-धीरे यह लाभ समाप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रो0 शुम्पीटर के नवप्रवर्तनजन्य लाभ की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसका स्वभाव अस्थायी होता है। दीर्घकाल में यह समाप्त हो जाता है। यदि कोई साहसी अपने नवप्रवर्तन के सम्बन्ध में पेटेण्ट राइट प्राप्त कर ले तथा इस प्रकार दूसरों द्वारा इसके अनुकरण को कानून के अन्तर्गत प्रतिबन्धित कर दें तो उसका एकाधिकारिक लाभ बना रहता है पर ऐसा कम ही हो पाता है। प्रो0 शुम्पीटर का यह मत है कि नवप्रवर्तनजन्य लाभ कभी भी स्थायी नहीं होता। इस दृष्टि से लाभ आय के अन्य स्वरूप जैसे लगान, ब्याज, मजदूरी से भिन्न होता है। आय के अन्य स्वरूप तो स्थायी है क्योंकि ये प्रसंविदाजन्य

हैं, सभी परिस्थितियों में ये बने रहेंगे पर लाभ एक अस्थायी अवशेष या अतिरेक है जो नवप्रवर्तन के कारण उत्पन्न होता है।

आलोचनायें :- अर्थशास्त्रियों के अनुसार इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न हैं

i. यह सिद्धान्त हमारे समक्ष लाभ की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता। इसमें सन्देह नहीं है कि नवप्रवर्तनों के कारण लाभ उत्पन्न होता है। नव प्रवर्तन, वास्तव में लाभ के महत्वूर्ण निर्धारक हैं। लेकिन नवप्रवर्तनों के अलावा अन्य बहुत से ऐसे तत्व हैं जो लाभ का कारण बनते हैं। किन्तु यह सिद्धान्त उन पर कुछ भी प्रकाश नहीं डालता। यह सिद्धान्त तो समूचा बल नवप्रवर्तनों पर ही देता है।

ii. इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ जोखिम झेलने का प्रतिफल नहीं है। प्रो0 शुम्पीटर के शब्दों में, ''उद्यमकर्ता कभी जोखिम नहीं उठाता। यदि उसका व्यवसाय असफल हो जाता है तो उससे ऋण प्रदान करने वाले व्यक्ति को ही हानि होती है।'' प्रो0 शुम्पीटर के अनुसार, जोखिम पूँजीपति द्वारा उठाया जाता है, उद्यमकर्ता द्वारा नहीं। लेकिन प्रो0 शुम्पीटर का कथन तथ्यों के विपरीत है। वास्तव में, उद्यमकर्ता जोखिम उठाता है, पूँजीपति नहीं।

iii. उद्यमकर्ता के कार्यों पर यह सिद्धान्त एक संकुचित - सा दृष्टिकोण अपनाता है। उद्यमकर्ता का कार्य केवल नवप्रवर्तनों को क्रियान्वित करना ही नहीं है, यह व्यवसाय के समुचित संगठन के लिए भी समान रूप में उत्तरदायी होता है। अतः लाभ केवल नवप्रवर्तनों के कारण ही नहीं होता, यह उद्यमकर्ता द्वारा सम्पन्न किये गये अन्य संगठनात्मक कार्यों के कारण भी होता है। यह सर्वविदित है कि सभी उद्यमकर्ता नवप्रवर्तन नहीं करते लेकिन फिर भी उन्हें कुछ लाभ तो प्राप्त होता ही रहता है।

23.5.5 लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त:- वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त साधनों के पुरस्कार निर्धारण की दृष्टि से एक वैज्ञानिक सिद्धान्त माना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि अन्य बातें समान रहें तो दीर्घकाल में किसी साधन का पुरस्कार उसकी सीमान्त उत्पादकता में समान होने की प्रवृत्ति पायी जाती हैं। उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता अधिक होने पर लाभ की मात्रा अधिक होगी और उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता कम होने पर लाभ की मात्रा कम होगी। यहाँ एक बात स्पष्ट रूप से कहना आवश्यक है कि भूमि, श्रम, पूँजी आदि साधन तो ऐसे हैं, जिनकी सामान्य उत्पादकता सरलता से ज्ञात की जा सकती है, क्योंकि अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रखकर इनकी क्रमशः एक इकाई बढ़ाकर सीमान्त उत्पादकता निकाली जा सकती है और परिवर्तनशील अनुपातों के नियम लागू होने के कारण एक बिन्दु के बाद सीमान्त उत्पादकता क्रमशः गिरती जाती है। एक फर्म में उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करना कठिन है, क्योंकि एक फर्म में एक ही उद्यमी होता है। हाँ, उद्योग में उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात की जा सकती है।

आलोचनायें :- इस सिद्धान्त की आलोचना निम्न बातों पर आधार की गयी है -

i. यह सिद्धान्त माँग पर ही विचार करता है और पूर्ति पक्ष की उपेक्षा करता है। इसे एकपक्षीय सिद्धान्त कहा जा सकता है।

ii. साहसी या उद्यमी की सीमान्त उत्पादकता की गणना सरलता से नहीं की जा सकती क्योंकि एक फर्म की स्थिति में एक ही उद्यमी होता है।

iii. इस सिद्धान्त में भी लाभ के निर्धारक महत्वपूर्ण तत्वों को छोड़ दिया गया है।

23.5.6 लाभ का जोखिम सिद्धान्त :- अमेरीकन अर्थशास्त्री हॉले के अनुसार लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है, क्योंकि उद्यमी का सबसे बड़ा कार्य जोखिम उठाना है। उत्पादन के अन्य साधनों को उनके पुरस्कार का निश्चित समय पर भुगतान कर दिया जाता है, परन्त उद्यमी को चार प्रकार की जोखिमें उठानी पड़ती हैं

(i) **प्रतिस्थापन की जोखिक** : क्योंकि बिल्डिंग व मशीनरी में घिसावट होती है।

(ii)**मुख्य जोखिम** : जिसमें उत्पादन का न बिक पाना, व्यापार चक्रों का सामना करना, बाजार में प्रतिकूल परिस्थितियों का उत्पन्न होना, आदि

(iii) **पुराना पड़ जाना :** जिसमें उत्पादन तकनीकी तथा फैशन आदि के कारण प्लाण्ट का पुराना हो जाने की स्थिति आती है तथा

(iv) **अनिश्चितता :** प्रतिस्थापन या घिसावट का अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु मशीन अथवा बिल्डिंग के पुराने पड़ जाने के सम्बन्ध में उचित अनुमान लगाना सम्भव नहीं हो पाता। वस्तु को उत्पन्न करने तथा बेचने में समय अन्तर होने के कारण हो सकता है कि उद्यमियों के अनुमान गलत सिद्ध हो जायें। इसके फलस्वरूप उद्यमी को हानि भी हो सकती है। उद्यमी हानि तभी सहेगा जब उसे लाभ की अपेक्षा हो। हॉले यह मानते थे कि उद्यमी को प्रबन्ध समन्वय का पुरस्कार लाभ के रूप में नहीं मिलता बल्कि लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है।

भविष्य की मांग उत्पादन तथा कीमत के बारे में सही अनुमान लग सकें, यह आवश्यक नहीं है, इसी कारण व्यवसाय में जोखिम की संभावना बनी रहती है।

आलोचनायें :- अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की त्रुटियाँ निम्न बतायी हैं -

i. जोखिम और लाभ के बीच कोई सहसम्बन्ध नहीं होता। कारवर के अनुसार उद्यमी को लाभ जोखिम कम करने के फलस्वरूप मिलता है।

ii. जोखिम उठाने के अलावा भी उद्यमी अनिश्चितता बहन अन्य कई महत्वपूर्ण कार्य करता है, जिन्हें इस सिद्धान्त में छोड़ दिया गया है।

iii. प्रो0 नाइट के अनुसार लाभ ज्ञात जोखिमों के बजाय अज्ञात जोखिमों को सहने के कारण मिलता है।

23.5.7 लाभ का अनिश्चितता सिद्धान्त :- इस सिद्धान्त का प्रतिपादन शिकागो विश्वविद्यालय के प्रो0 नाइट ने अपनी पुस्तक "Risk, Uncertainty and Profit" में किया है। प्रो0 नाइट अपने सिद्धान्त में इस बात पर बल देते हैं कि उद्यमी को लाभ जोखिम उठाने के कारण प्राप्त नहीं होता बल्कि उत्पादन प्रक्रिया की अनिश्चितता सहन करने के पुरस्कार के रूप में प्राप्त होता है। प्रो0 नाइट ने जोखिम एवं अनिश्चितता में भेद किया है। उनके अनुसार सभी प्रकार के जोखिम उद्यमी के लिए अनिश्चितताएँ उत्पन्न नहीं करते। जोखिम की अनिश्चितता के आधार पर प्रो0 नाइट ने दो भागों में बांटा है-

1. ज्ञात जोखिम

2. अज्ञात जोखिम

23.5.7.1 ज्ञात जोखिम :- उत्पादन प्रक्रिया में उन जोखिमों को ज्ञात जोखिमों की संज्ञा दी जाती है, जिनकी उद्यमी पूर्वानुमान लगा सकता है, जैसे आग, बाढ़, चोरी, दुर्घटना, टूट-फूट आदि घटनाओं का उद्यमी को पूर्वानुमान होता है। ऐसी जोखिमों का अनुमान सांख्यकी रीतियों द्वारा लगाया जा सकता है। ज्ञात जोखिमों का पूर्वानुमान होने के कारण उद्यमी अपनी सुरक्षा के उपाय बीमा आदि सेवाओं की सहायता से कर सकता है। इस प्रकार ज्ञात जोखिम बीमा योग्य जोखिम कहलाते हैं। इस प्रकार ज्ञात जोखिमों में अनिश्चितता का घटक उपस्थित नहीं रहता क्योंकि ज्ञात जोखिमों का उद्यमी पहले से ही बीमा करवाकर अपने को सुरक्षित कर लेता है और जोखिम का भार बीमा कम्पनी पर डाल देता है। दूसरे शब्दों में, जोखिम की अनिश्चितता बीमा कम्पनी द्वारा वहन की जाती है। अतः उद्यमी को बीमा योग्य ज्ञात जोखिमों को वहन का कोई पुरस्कार देय नहीं होता। बीमा शुल्क की धनराशि उत्पादन लागत का एक भाग होती है जिसके लिए उद्यमी लाभ प्राप्त नहीं करता।

23.5.7.2 अज्ञात जोखिम :- ज्ञात जोखिमों में विपरीत उद्यमी के लिए उत्पादन प्रक्रिया में कुछ ऐसे जोखिम विद्यमान रहते हैं जिनका उद्यमी को पूर्वानुमान नहीं होता अर्थात् जिनके बारे में सही-सही जानकारी हासिल नहीं की जा सकती। ऐसे अनिश्चित जोखिमों को अज्ञात जोखिम कहा जाता है। प्रो0 नाइट ने ऐसे अज्ञात जोखिमों को अनिश्चितता की संज्ञा दी है। ऐसे अनिश्चित प्रकृति वाले जोखिम बीमा अयोग्य जोखिम कहलाते हैं। बाजार माँग, कीमत, प्रतियोगिता, बाजार परिस्थितियाँ, सरकारी नीतियाँ आदि कुछ ऐसी अनिश्चितताएँ उद्यमी के साथ सदैव उपस्थित रहती हैं, जिनका पूर्वानुमान उद्यमी को नहीं होता तथा उद्यमी उनसे अपनी सुरक्षा का कोई उपाय नहीं कर पाता। प्रो0

नाइट के अनुसार, ''उद्यमी को ऐसी अनिश्चितता झेलने का पुरस्कार ही लाभ के रूप में प्राप्त होता है। व्यवसाय में जितनी अधिक बीमा अयोग्य अनिश्चितताएँ उपस्थित होंगी, उद्यमी की लाभ की मात्रा उतनी ही अधिक होगी।

इस प्रकार प्रो0 नाइट लाभ को जोखिम उठाने का पुरस्कार नहीं मानते बल्कि अनिश्चितता उठाने का पुरस्कार मानते हैं।

23.5.7.3 आलोचनायें :- आलोचकों ने इस सिद्धान्त की निम्न आलोचनाएँ की हैं -

i. उद्यमी के अन्य महत्वपूर्ण कार्यों को इस सिद्धान्त में छोड़ दिया गया है, जैसे व्यवसाय में समन्वय का कार्य।

ii. आलोचक अनिश्चितता वहन करना एक अलग कार्य के रूप में स्वीकार नहीं करते।

iii. संयुक्त पूँजी कम्पनी के हिस्सेदारों को जो लाभांश प्राप्त होता है उसमें वे अनिश्चिततओं का सामना नहीं करते। अतः कोई आवश्यक नहीं कि लाभ अनिश्चितताएँ सहने के परिणामस्वरूप ही प्राप्त हों।

23.5.8 प्रो0 मेहता का लाभ का माँग एवं पूर्ति का सिद्धान्त (प्रो0 मेहता द्वारा नाइट के सिद्धान्त का परिष्करण):- प्रो0 नाइट द्वारा प्रतिपादित लाभ के सिद्धान्त की कमियों पर विचार करते हुए पाया गया है कि नाइट का सिद्धान्त अत्यन्त ही पूर्ण सिद्धान्त होने के बावजूद भी मुख्य रूप से दोषों से दूषित है - एक ओर यह आकस्मिक आय तथा अनिश्चितता जन्य जोखिम के कारण लाभ के बीच भेद नहीं करता। (नाइट दोनों को ही एक में सम्मिलित करते हैं) तथा दूसरे वे संगठन तथा साहसी के अनिश्चितता वहन से सम्बन्धित कार्य को अलग नहीं करते हैं, बल्कि दोनों को एक साथ मिले रूप में रखते हैं और यहाँ तक कि सैद्धान्तिक रूप में भी इनके बीच भेद को स्वीकार नहीं करते हैं। प्रो0 मेहता ने लाभ को केवल अनिश्चितता वहन का प्रतिफल माना तथा इसे संगठन के लिए मिलने वाली आय से भिन्न रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार प्रो0 मेहता का लाभ सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रो0 नाइट के अनिश्चितता वहन सिद्धान्त का ही अत्यन्त ही परिष्कृत रूप है, जिसमें नाइट के सिद्धान्त में पायी जाने वाली कमियाँ नहीं है। प्रो0 मेहता ने यह प्रतिपादित किया कि ''लाभ अनिश्चितता वहनकर्ता की आय है''। जिस प्रकार किसी वस्तु का मूल्य उसकी माँग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है उसी प्रकार साहसी को मिलने वाले मूल्य (लाभ) का भी निर्धारण अनिश्चितता वहन की माँग तथा उसकी पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। लाभ अनिश्चितता वहन का मूल्य है। ''इस प्रकार नाइट की ही तरह प्रो0 मेहता यह मानते हैं कि लाभ केवल प्रवैगिक स्थिति में ही उत्पन्न होगा, जहाँ परिवर्तन नहीं वहाँ अनिश्चितता होगी ही नहीं, इसलिये अनिश्चितता वहन का प्रश्न ही नहीं उठेगा। उत्पादन क्रिया में साहसी भाग ही इसलिए लेता है क्योंकि हम भविष्य को ठीक ढंग से देख ही नहीं सकते। इस क्रिया को पूरा करने के लिये अथवा दूसरे शब्दों में उत्पादन के अन्य साधनों -

शारीरिक क्षति को वहन करने वाले श्रमिक, मानसिक कठिनाई तथा उलझन को वहन करने वाले संगठन तथा उपभोग का स्थगन या परित्याग करने वाले पूंजीपति को अनिश्चितता के भय से बचाने के लिए साहसी को जो अनिश्चितता वहन करने के लिए पारिश्रमिक या मूल्य प्राप्त होता है, वही लाभ है।

प्रो0 मेहता अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते समय दो बातों को ध्यान में रखते हैं, जिसमें उनके सिद्धान्त में वे दोष न आ जायें जो नाइट के सिद्धान्त में व्याप्त थे। प्रथम, वह यह मानते हैं कि साहसी का कार्य अनिश्चिता वहन करना है, उत्पादन का निर्देशन तथा नियंत्रण करना नहीं। इस प्रकार साहसी का कार्य संगठन के कार्य से भिन्न है। इसलिए लाभ केवल अनिश्चितता वहन के लिए ही मिलता है। प्रो0 नाइट दोनो के बीच भेद करने की कठिनाई को महसूस करते हैं और प्रो0 मेहता भी इस कठिनाई का अनुभव करते हैं पर वह यह मानकर चलते हैं कि यह सम्भव है कि हम मस्तिष्क में इन दोनों के बीच भेद कर लें। दूसरा, लाभ के अन्तर्गत वे आकस्मिक आय को सम्मिलित नहीं करते हैं, केवल अनिश्चितता वहन के बदले प्राप्त आय को ही लाभ के रूप में स्वीकार करते हैं तथा यह मत व्यक्त करते हैं कि किराये पर या प्रसंविदा के आधार पर लिये गये उत्पादन के साधनों को पारिश्रमिक देने के बाद जो अवशेष होगा, यदि वह अनिश्चितता वहन के बदले दिये जाने वाले पारिश्रमिक से अधिक हो तो यह अतिरेक आकस्मिक लाभ होगा और यदि यह कम हुआ तो आकस्मिक हानि होगी।

माँग-पूर्ति के द्वारा लाभ का निर्धारण: चूँकि लाभ अनिश्चितता वहन का पुरस्कार है, इसका निर्धारण अनिश्चितता वहन की माँग एवं पूर्ति के द्वारा होता है। पर प्रश्न यह है कि अनिश्चितता वहन की माँग तथा पूर्ति रेखाओं को कैसे खींचा जाय ? इसका क्या स्वरूप हो ?

अनिश्चितता वहनकर्ता की माँग कौन करता है ? तथा इस प्रकार की माँग तथा लाभ की दर में क्या सम्बन्ध है ? अनिश्चितता वहन की माँग उन उत्पादन के साधनों द्वारा होती है जो उत्पादन - क्रिया में भाग लेना तो चाहते हैं पर जोखिम उठाने अथवा अनिश्चितता को वहन नहीं करना चाहते। इसीलिए वे एक ऐसे साधन की खोज करते हैं, जो उन्हें अनिश्चितता से सुरक्षित रखें, उन्हें एक स्थिर आय प्राप्ति का आश्वासन दे दें। इस प्रकार वे साहसी की माँग अनिश्चितता वहन के लिए करते हैं। स्पष्ट है कि साहसी की माँग श्रमिक, भूमिपति, पूँजीपति तथा संगठन या जिन्हें हम प्रसंविदा के अन्तर्गत किराये पर लिये गये उत्पादन के साधन कह सकते हैं, के द्वारा होती है। अब हम दूसरे प्रश्न पर विचार करेंगे अर्थात् लाभ की दर तथा माँग में क्या सम्बन्ध होता है ? प्रो0 मेहता का यह मत है कि यदि अन्य बातें समान रहें तो लाभ की दर जितनी ऊँची होती जायेगी अन्य साधनों की आय उतनी ही कम होती जायेगी। इसलिए लाभ की ऊँची दर पर वे कम साहसियों की मांग करेंगे। इनके विपरीत लाभ दर नीची होने पर अधिक साहसियों की मांग करेंगे। इसका दूसरा कारण यह हो सकता है कि किसी भी साधन की माँग एवं व्युत्पन्न माँग है। यह उसकी सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। अन्य साधनों की ही तरह साहसी की भी सीमान्त उत्पादकता साहसी की इकाई में वृद्धि के साथ घटती

जायेगी इसलिये इसपर आधारित माँग-रेखा नीचे दाहिनी ओर गिरेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामान्य माँग-वक्र की तरह अनिश्चितता वहन की माँग-रेखा दाहिनी ओर गिरती जायेगी जैसा रेखाचित्र नं0 23.1 में दिखाया गया है।

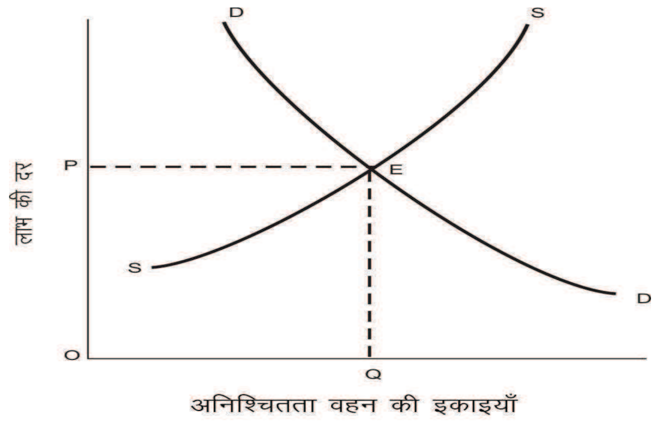

चित्र नं0 23:1

अनिश्चितता वहन की पूर्ति तो त्याग के ऊपर निर्भर करती है, जैसे-जैसे अनिश्चितता वहन की पूर्ति बढ़ती जायेगी लाभ की मात्रा बढ़ती जायेगी। इसलिए ऊँची लाभ दर पर अनिश्चितता वहन की पूर्ति अधिक होगी क्योंकि उनके त्याग की क्षतिपूर्ति हो जायेगी। रेखाचित्र से स्पष्ट है, यदि लाभ दर OP से अधिक हो जाय तो ऐसे लोग भी साहसी के रूप में सामने आ सकते हैं जो पहले कम लाभदर पर जोखिम को वहन करने के लिए तैयार नहीं थे। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि अनिश्चितता ही पूर्ति रेखा सामान्य पूर्ति रेखा की ही तरह ऊपर दाहिनी ओर उठती हुई होगी जो यह प्रदर्शित करेगी कि जैसे-जैसे लाभ की दर बढ़ती जायेगी साहसी की पूर्ति बढ़ती जायेगी।

लाभ की संस्थिति दर का निर्धारण वहाँ होगा जहाँ नीचे गिरती हुयी माँग रेखा ऊपर से उठती हुयी पूर्तिरिखा के बराबर हो जाय जैसा रखाचित्र 23.1 में प्रदर्शित है। नीचे गिरती हुयी माँग-रेखा (DD) ऊपर उठती हुयी पूर्ति रेखा (SS) को E बिन्दु पर काटती है। लाभ की दर OP निर्धारित होगी।

23.5.9 लाभ का समाजवादी सिद्धान्त :- कार्ल मार्क्स ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन का पारिश्रमिक श्रम को प्राप्त नहीं होगा। बल्कि वह जितना भाग उत्पादित करता है, उससे कम भाग उसे प्राप्त होता पाता है। इस व्यवस्था में पूँजीपति, श्रम का शोषण करता है और श्रम एक अधिक्य मूल्य का निर्माण करता है, जिसे पूँजीपति हड़प कर जाता है। मार्क्स यह मानते थे कि लाभ एक प्रकार की कानूनी डकैती है जो पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम के शोषण के फलस्वरूप पूँजीपति को प्राप्त होती है। श्रम-शक्ति की यह विशेषता है कि यह अपने मूल्य से अधिक मूल्य का सृजन करती है। श्रम-शक्ति का निर्धारण श्रम की पुनरूत्थान लागत पर निर्भर करता है अर्थात् उन वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य पर जो श्रमिक को न्यूनतम निर्वाह - स्तर पर बनाये रखने के लिए आवश्यक है। मार्क्स के अनुसार लाभ श्रम-शक्ति के शोषण के कारण उत्पन्न होता है।

आलोचनायें:- इस सिद्धान्त के विरुद्ध विद्वानों की तीखी प्रतिक्रियाएँ हुई हैं। उनमें से कुछ प्रमुख निम्नवत् है -

i. यह सिद्धान्त रिकार्डो के मूल्य सिद्धान्त पर आधारित है जिसके अनुसार श्रम ही मूल्य निर्धारत करता है। यह बात गलत है क्योंकि उत्पादन के अन्य साधन भी उत्पादन में योगदान देते हैं और वे भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

ii. लाभ जोखिम अनिश्चितता के कारण उत्पन्न होते हैं न कि श्रम के शोषण के कारण।

iii. समाजवादी व्यवस्था में भी लाभ का औचित्य है नहीं होने से अर्थव्यवस्था में उथल-पुथल हो सकतती है। क्योंकि यदि सरकारी उद्यम हानि ही देते रहें तो अर्थव्यवस्था की क्या स्थिति होगी हम इसकी कल्पना कर सकते हैं।

iv. लाभ को कानूनी डाका कहना उद्यमी की पृष्ठभूमि को समाप्त करना है।

अन्त में यह कहना ही उपयुक्त होगा कि लाभ की प्रकृति बड़ी अनिश्चित है। आज से पचास वर्ष पूर्व प्रो0 टॉजिग ने ठीक ही कहा था कि लाभ एक मिश्रित तथा कलह करने वाला तथ्य है। वास्तव में लाभ के सभी सिद्धान्त लाभ की प्रकृति की व्याख्या करते हैं। इस तरह लाभ निर्धारण की सिद्धान्त देना एक कठिन कार्य है।

23.6 **सारांश:**

इस इकाई 23 में लाभ के विभिन्न अर्थ व परिभाषायें दिये गये हैं। कुल लाभ तथा वास्तविक लाभ के अन्तर को बताते हुए सामान्य लाभ तथा असामान्य लाभ की चर्चा की गयी है। लाभ के प्रतिष्ठित से लेकर आधुनिक सिद्धान्तों की चर्चा है। जनसंख्या में वृद्धि, उत्पादन विधि में सुधार, तकनीकी विकास, पूँजी की पूर्ति में वृद्धि, उपभोक्ताओं की रूचि, इच्छा आदि में हुए परिवर्तन तथा औद्योगिक संगठनों में हुए परिवर्तनों तथा नव प्रवर्तन का लाभ के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है ? निश्चित तथा अज्ञात जोखिम का लाभ पर कैसे प्रभाव पड़ता है ? इसको समझाने का प्रयास किया गया है। अन्त में विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से लाभ की जानकारी करते हुए लाभ से सम्बन्धित विस्तृत विवेचना की गयी है।

23.7 **शब्दावली:**

- **सामन्य लाभ -** किसी उद्योग में साहसी द्वारा वह लाभ जो उसे उद्योग में

  बनाये रखने के लिए आवश्यक है। सामान्य लाभ या साहसी की स्थानान्तरण आय है।

- **कुल लाभ** = कुल आय - कुल व्यापारिक व्यय

  = साहसी द्वारा लगाये गये व्यक्तिगत साधनों जैसे भूमि तथा पूंजी का प्रतिफल + ह्रास तथा संरक्षण व्यय + प्रबन्धक का प्रतिफल + एकाधिकारी लाभ + आकस्मिक लाभ + शुद्ध लाभ

- शुद्ध लाभ =कुल लाभ - साहसी के साधनों का प्रतिफल + ह्रास तथा संरक्षण व्यय + प्रबन्ध का प्रतिफल + एकाधिकारी लाभ +आकस्मिक लाभ

- **ज्ञात जोखिम -** उत्पादन प्रक्रिया में उन जोखिमों को जिनका पूर्वानुमान लगाया जा सकता है,जैसे आग, बाढ़, चोरी, दुर्घटना, टूट-फूट आदि। (जिनका बीमा कराया जा सकता है)

- **अज्ञात जोखिम -** ऐसे जोखिम जिनका पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता अर्थात् जो बीमा योग्य नहीं होते। उदाहरण के लिए - बाजार मांग, कीमत, प्रतियोगिता, बाजार परिस्थितियाँ, सरकरी नीतियाँ अन्य।

अभ्यास प्रश्न - 1

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

   i. लाभ का मजदूरी सिद्धान्त प्रतिवादित किया -
   (क) मार्शल (ख) राविन्सन (ग) प्रो0 टॉजिंग (घ) प्रो0 कीन्स

   ii. नव प्रवर्तन सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया -
   (क) हाले (ख) प्रो0 नाइट (ग) प्रो0 शुम्पीटर (घ) प्रो0 कीन्स

   iii. नव प्रवर्तन के अन्तर्गत निम्न आते है। -
   (क) उत्पादन की नयी प्रविधि (ख) कच्चे माल के नये स्रोत
   (ग) उद्यम की नयी संगठन व्यवस्था (घ) उपरोक्त सभी

अभ्यास प्रश्न-1 (उत्तर)

i. (ग)
ii. (ग)
iii. (घ)

अभ्यास प्रश्न-2

- सामान्य लाभ - देखें 23.3
- असामान्य लाभ - देखें 23.4

- लाभ का जोखिम सिद्धान्त - 23.5.6
- लाभ का अनिश्चितता सिद्धान्त - 23.5.7

23.9 संदर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

- Dwivedi, D.N. (2008) Micro Economi, 7th edition, Vikas Publising House.
- Ahuja, H.L. (2010) Principles of Micro Economics, S & Chand Publishing House.
- Peterson, L and Jain (2006) Managerial Economics,4th edition, Pearson Education.
- Colander, D. C (2008) Economics, McGraw Hill Education.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.
- Prof. J.M. Keynes : The General Theory of Employment Interest and Money, Macmillan.
- A.H. Hansen, Guide to Keynes.
- Stonier & Hauge : A Text Book of Economic Theory.
- एस0एन0 लाल, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, शिव पब्लिशिंग हाउस।
- एम0एल0 सिंह, अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
- डॉ0 एस0एन0 बंसल एवं डॉ0 अनुपम अग्रवाल, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन।
- डॉ0 जे0सी0 पन्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन।

23.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रो0 नाइट के लाभ सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
2. प्रो0 मेहता ने इस सिद्धान्त (नाईट सिद्धान्त) का परिष्करण किस रूप में किया ?
3. लाभ से क्या तात्पर्य समझते हैं ? सामान्य लाभ तथा असमान्य लाभ बतायें।
4. शुम्पीटर के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
5. लाभ का जोखिम सिद्धान्त बतायें।